श्री सरस्वतीगच्छीय ज्ञान मन्दिर, ज...

परोपकाराय सताम् विभूतयः

श्री प्रश्नोत्तररत्नचिन्तामणि

और

अठारह दूषणनिवारक.

(शुद्ध-सरल-हिंदि भाषा संकलित.)

ग्रंथ कर्त्ता

भरुचबंदर निवासी शेठ अनूपचंद मलुकचंद.

आत्मार्थी जीवोंके हितार्थ.

श्री मांगरोळ निवासी स्वर्गवासी शेठ त्रिभोवनदास परशोतम मुळजीके पुण्यार्थ शेठ अमरचंद तलकचंद तरफसें भेट.

प्रकाशक.

श्री जैन श्रेयस्कर मंडळ—मेसाणा.

प्रथमावृत्ति—प्रत ३७५

अहमदाबाद.

पानकोरके नाके घाचीकी वाडीमें नथुभाइ रतनचंद मारफातियेने स्वकीय " अँग्लोवर्नाक्यूलर " मुद्रालयमें मुद्रित की.

संवत् १९६५ सने १९०९ वीर संवत् २४३५

प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणिका उपोद्घात.

विदित हो कि इस ग्रन्थमें प्रथम, जैनी किस सबबमें कहेजाते हैं? और जैनी होयः उन्होंकों क्या क्या करना चाहियें? वो अधिकार है, उसपीछे मार्गानुसारीका, समकितका, श्रावकके बारह व्रत और साधुके मार्गका अधिकार, चौदह गुणस्थानकका स्वरूप, धर्म कितने हैं उन्होंकी संख्या, कर्मकी प्रकृति कितनी है? कर्म किसतरहसे आते हैं? कर्म क्या पदार्थ है? कर्म क्या फल देते हैं? कर्म क्या करनेसें नाश होते हैं? कर्म नाश करनेका क्या उपाय है? गृहस्थ धर्म, पूजा भक्ति और प्रभुजीका किस प्रकार बहुतमान करना? किस तरह गुणग्राम करना? क्या क्या भावनाएं भावनी? किंवा देवद्रव्य भक्षणसें, ज्ञानद्रव्य भक्षणसें और साधारणद्रव्य भक्षणसें क्या नुकसान होता है? वो और उसी मतलबकी कथाए, धर्मप्रवृत्तिमें शास्त्रके आधार और उसके फलाक सहित विविध प्रकारके प्रश्नोत्तर, ध्यानके स्वरूप, प्रतिक्रमणके हेतु, और आत्माशुद्धि किस प्रकार की जाय? किसीके चिंतवन इत्यादि दर्शाये हैं तदनतर मरनेके वक्त क्या क्या करकें संथारा करना? उसका स्वरूप, और रात्रिमें सोनेके समयका विधि, प्रतिष्ठा, दिक्षादिके मुहूर्त्त वगैर' वस्तुओंके स्वरूप बतलाया है कि जो आत्माके हितकर्त्ता है वो अनुक्रमणिका अवलोकन करनेसें विदित हो जायगा

प्रिय पाठक महाशय! इस ग्रंथकी रचना करनेमें पेस्तर मेरा दिल प्रवृत्त न हुवा था, लेकिन मेरे परमप्रिय मित्र रायचंदभाइ उदेचंदजी आदिनें मुझकों बहुतसी प्रेरणा की, जिससें मेरे दिलमें आया कि-मेरेमें शास्त्र रचनेकी सामर्थ्यता तो नहीं है, तथापि जैसें बालक पढनेके शुरूमें कक्का घूंटते हैं और पीछे अभ्याससें करकें वे सुंदर हुरुफ निकाल शक्ते हैं, वैसें मैंभी इन हेतु भाइयोंकी प्रेरणा है तो थोडा बहुत लिखकर जो जो शास्त्रमें जो वार्त्ता जिस पत्रमें होय उस नोंधके साथ जाहिर करु तो पाठक महाशयोंकों समजमें लेना सुगम हो पडेगा, और मुजकोंभी यह कितान लिखनेका प्रयास करनेसें प्रमादका संग छूट जायगा, फिर शास्त्रकी पढी हुइ बातेंभी पुनः स्मृतिमें आ जायगी-ऐसा विचार करकें जिस जिस समय जो जो प्रश्न मुझकों याद आये, या मेरे पास मेरे धर्मस्नेही बैठते थे उन्होंनें जो जो प्रश्न किये थे सभी मैंनें इस पुस्तकमें दाखिल किये हैं, इसी समयके लिये इस पुस्तकमें क्रमका नियम नहीं रहा है

इस ग्रन्थकी, मुख्यतासें तो जैनबान्धवोंके हितार्थ रचना है; तदपि इस ग्रन्थमें अन्य धर्मकी निंदाके शब्द किसी जगहपर नहीं है; किन्तु इस पुस्तकमें मार्गानुसारीके गुण वगैरः कितनीक आत्मिक बातें है कि जो कुछ धर्मवालोंको पसंद पडे और उपयोगी होवै वैसी सामिल रख्खी गइ हैं; इसीसें अन्य धर्मवालोंको भी मध्यस्थ दृष्टि रखकर सच्चा क्या है ! और झूँठा क्या है ! वो ध्यानमें लिया जावे. और इस बाबतका शोच विचार करकें यह किताब पढी जावै, या वै पढ लेवें तो उन्होंकोंभी जरूर अत्यंत लाभ–फायदा प्राप्त होवैगा. अगर तो कोइ कोइ बात या बाबत समजमें न आ सकें तो उस संबंधमें मुझकों प्रश्न लिखें भेजे जायेंगे तो बेशक मैं उन्का योग्य खुलासा विदित करुंगा.

शुरूमें यह पुस्तक बनानेके वक्त मेरा छपावानेका ईरादा बिलकुल न था; परन्तु मेरे प्रिय स्वदर्शनी और अन्यदर्शनी मित्रोंकी प्रेरणासें छपवाकर प्रसिद्ध करनेका समय सानुकूल हुवा.

इस पुस्तकके बहुतसें खरीददार हैं और दूसरेभी बहुत खरीदनेवाले उत्सुक होनेका संभव है, उसीके लिये बहुत नकल छपवानेके खर्चमें पेस्तरसेंही पैसेकी मदद देकर आज तक गुजराती भाषामें तीन आवृत्ति छपकर बिक चुकी हैं और यह हिंदीभाषामेंभी इसीतरह छपवानेकी उत्सुकतासें मकसुदाबादवाले रायबहादुर बुधसिंघजी साहबकी भव्य जीवके हितार्थ छपवानेकी इच्छा हुइ और बाबु साहबने मुझकुं फरमाया उससें मेने बाबुसाहबकी तर्फसें यह किताब छपवाइ.

मेरी लिखी हुइ गुजराती किताब छपवानेमें मेरे मित्र कुंवरजी आणंदजी भावनगर निवासीने बहुतसी मदद दीथी, कितनीक जगह मेरे लेखके हस्तदोषका भी वै सुधारा करकें छपवानेके लिये भेजा करते थे और [उन्होंने] उसके लिये प्रशंसनीय महेनत लीथी; वास्ते मै उन्ह महाशयका उपकार मानता हुं; क्या कि गुजराती भाषाका [यह] पुस्तक सुधारा गयाथा तो उसपरसें यह हिंदिभाषाका ठीक बनानेमें आया.

पुनः यह पुस्तक बनानेमें मेरी शक्ति प्रफुल्लित करनेवाले मेरे सबसें पेस्तर उपकारी पुरुष थे कि जिनका मैं कुछ वर्णन करता हुंः–मैं जब आठ वर्षकी उमरका हुवा तब अहमदाबादवाले शाह ठाकरसी पुंजाभाई कि जो भरुचमें दफतरदार थे. उन्होंका मेरेपर बडा प्यार था और उन्होने मुजकों हमेशाः नियम धारण करनेका शिखाय

और पोषध वगैर' करनेका अभ्यास करवाया. उस दिनसें मेरी स्वधर्मपर विशेष अभिरुचि-प्रीति उत्पन्न हुइ

पीछे मेरी चौदह वर्षकी उमर हुइ उस वक्त श्री हुकम मुनिजीका समागम हुआ, तो उन्होंनें मुझकों आगम सार नवतत्त्वके छूटे बोल सिखाये, कितनीक अध्यात्मिक बातें भी एकान्तमें समजा दी, और सूत्र पढने-वाचनेकी छुट्टी बतलाइ, जिससें मैंनें बहुतसें ग्रंथ बहुत वक्त वाच लिये उससें मुझको स्याद्वाद मार्गकी श्रद्धा हुइ

कुछ समयके बाद श्रावककों सूत्र पढने मुनासिब ही नहीं हैं ऐसा मुझकों विदित हुआ, और श्री हुकम मुनिजीका बताया हुआ एकांत मार्ग जैनशैलीकें आगमोंसें विरुद्ध कथनवाला समजनेमें आया, उससें संवत १९२१ की सालमें मैंने श्री हुकममुनीजीका प्रसंग छोड दिया.

तत्पश्चात् पंजाबी तपस्वीजी साहब श्री मोहनलालजी और मुनिमहाराजजी साहब बुटेरायजी महाराजका प्रसंग हुवा, जिससें उन्होंके पाससे मैंनें स्याद्वाद मार्ग समज लिया, और श्रावकके बारह व्रत अंगीकार कियें, और कितनीक बातोंका बोधभी हुआ

उस बाद संवत १९४२ की सालमें मुनीमहाराजजी श्री आत्मारामजी साहबजीकी मुझकों भेट हुई और उन्होंके प्रसंगसें ज्यादे बोध प्राप्त हुआ.

संवत १९२८ की सालके बाद मैंने व्यापारकी उपाधि कमती कर डाली, उससें शास्त्रावलोकनकी उत्तम तक हाथ लगी, उसमें श्री कलिकालसर्वज्ञ हेमाचार्यजी महाराज, श्री हरीभद्रसूरीजी और न्यायशास्त्रपारगत श्रीमन् यशोविजयजी वगैरः अनेक आचार्यजी और महोपाध्यायजी आदिके बनाये हुवे ग्रंथ वाच लिये, जिससें अच्छा बोध हुवा कहनेका तात्पर्य यही है कि मेरेमें यह पुस्तक बनानेकी जो कुछ शक्ति प्राप्त हुइ सो सब उपकार उक्त महान् पुरुषोंकाही है, और उन्हींकाही आभारी-ऋणी हुं कि जिसका बदला देनाभी दुर्लभ हे

इस पुस्तककी गुजराती प्रतके ३०५ पत्र तक आचार्य महाराजजी श्री आत्मारामजी महाराजजीने तपासकर शुद्ध कर लिये थे, और पीछेके विभागके पत्र उन्ही महात्मनूजीकों मैं भेजनेवाला था, मगर अफसोसका मुकाम है कि उतने वक्तमें उन्ह आचार्यजीका स्वर्गवास हो गया, उससें मनका संकल्प मनहीमें रहगया बस इतनी बात मेरे उपकारी महाशयोंकों निवेदन करकें मैं नमस्कार करता हु

अब इस पुस्तकके पढनेवाले साहबोंसें मेरी अंतिम प्रार्थना है कि यह पुस्तक मैंने बालखेलके जैसा बनाया है, उसमें कुछ भी भूल चूक हो गइ हो तो उसें आप कृपाळुजन सुधारकर पढनेकी तस्दी लेवें और वो भूल मुझकों विदित होनेके लिये दयालुतासें लिख भेजें कि जिससें वो भूल सुधर जाय. अलम्.

भरुचबंदर
संवत् १९६५
प्रथम श्रावण वद बीज

आप स्वधर्मियोंका कृपाभिलापि.
अनूपचंद मलुकचंद.

अठारह दूषण निवारककी भूमिका.

इस ग्रन्थमें प्रथम आस्तिक मतकी सिद्धता बतला करकें नास्तिक मतका खंडन किया गया है, उससें पाठक महाशयोंकों यह पुस्तक पढनेसें आस्तिकमतकी दृढ श्रद्धा हो सकेगी. तत्पश्चात् अठारह दूषण सहित जीव हैं उसका वर्णन किया गया है और उन्ह दूषणोंसें क्यों करकें लिप्त हुआ जाय ? अगर क्यों करकें मुक्त हुआ जाय वोभी बतलानेमें आया है उक्त बातोंका स्वरूप किसि ग्रन्थमें अलग दर्शाया गया न होनेके सबब, कितनेक धर्मप्रिय बान्धवोंकी प्रेरणासें मैंनें विविध प्रमाणिक शास्त्रोंके आधार युक्त भव्यजीव हितार्थ यह पुस्तक लिखा है. पिछाडीके विभागमें जैनसमुदायका कैसे सुधारा होय उसका वर्णन किया गया है, तथापि मेरी मतिके दोषसें करकें कभी कुछ शास्त्र विरुद्ध लिखा गया हो तो परमगुणग्राही पाठकगणकों मेरी नम्र प्रार्थना है कि शास्त्र देखकर शुद्ध करनेकी कृपा करें

इस ग्रन्थका कितनाक गुजराती लिखान आचार्यजी श्रीमान् विजयानदसूरिजी महाराजजीके शिष्यानुशिष्य परमपूज्य मुनि महाराज श्री हंसविजयजी महाराजने संशोधन कर सुधार लिया था, और कितनाक लिखान शुद्ध करनेकी महेनत ले कर अहमदावाद निवासी स्वधर्मभ्राता धर्मज्ञ हीराचद ककलभाइ शाहने सुधार लिया था जिससें हिंदि भाषामें सुगमता प्राप्त हुइ, वास्ते मैं वे दोनु महाशयोंका उपकार मानता हु पुनः मुझकों जिन जिन महाशयोंने सम्यक्त्व बोध किया है, और श्रीमान् हरिभद्रसूरीजी वगैर तत्त्वज्ञ आचार्य महाराजजीके ग्रंथावलोकनसें करकें जो विमल बोध हुआ है कि जिससें यह ग्रन्थ लिखा गया–वास्ते वो तमाम उपकार उन्ही महान् पुरुषोंका है महाशय ! इसमें किसी समज फेरसें श्री वीतरागजीकी आज्ञा विरुद्ध जो कुछ लिखा गया हो तो में त्रिविध मिच्छामिदुक्कड देता हु. शम.

प्रश्नोत्तररत्नचिन्तामणिकी अनुक्रमणिका.

अठारह दूषण निवारकी अनुक्रमणिका.

श्री विश्वेशंवन्दे

श्री प्रश्नोत्तर–रत्नचिन्तामणि

१ प्रश्न—जैनी किस लिये कहे जाते हैं?

उत्तर—जिनराजके सेवक अर्थात् श्री जिनेंद्र महाराजके वचनरुपी अमृतका पान करनेवाले हैं उस सबबसें जैनी कहेजाते हैं?

२ प्रश्नः—जिन वो कौन हैं?

उत्तर—राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, काम, अज्ञान, रति, अरति, शोक, हास्य, जुगुप्सा इत्यादि भावशत्रुओंकों जीतनेवाले हो सोही जिन हैं.

३ प्रश्नः—पूर्वोक्त रागद्वेषादि किसने जीत लिये हैं?

उत्तर—तीर्थंकर और सामान्य केवलीओंने.

४ प्रश्नः—तीर्थंकर वो कौन हैं?

उत्तर—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकारुप चतुर्विध संघकी स्थापना करके धर्मतीर्थ प्रवर्त्ताकर अनेक भव्य जीवोंकों संसार समुद्रसें पार करते हैं वोही तीर्थंकर कहेजाते हैं

५ प्रश्न—तीर्थंकर और सामान्य केवलीमें क्या तफावत हैं?

उत्तर—स्वयमेव बोध पा कर सर्व जीवोंकों धर्मोपदेश देकें तार दें वो तीर्थंकर, और पूर्वोक्त तीर्थंकरका धर्मोपदेश अंगीकार करकें केवलज्ञान प्राप्त करें वो सामान्य केवली.

६ प्रश्नः—सिद्ध हुवे सामान्य केवली और तीर्थंकरमें क्या तफावत है?

उत्तर—सिद्धमें तो दोनू समान हैं, कुच्छ तफावत नहीं, उनकों किसी दिन पुनः संसारमें आनेका नहीं और शरीरसें रहित हैं?

७ प्रश्न—वर्त्तमान समयमें कोइ तीर्थंकर हैं?

उत्तर—वर्त्तमान कालमें इस क्षेत्रकी अंदर कोइ तीर्थंकर नहीं हैं महाविदेह क्षेत्रमें हैं, मगर वहां जानेकी अपनेमें शक्ति–ताकत नहीं हैं

८ प्रश्नः—तीर्थरक्षक देवताओंकी मददसें वहां जा सकें या नहीं? कोइ आगेके वखत में जाकर आया हो तो उनके नाम जाहिर करो.

उत्तरः—स्थूलिभद्रजीकी भागिनी यक्षानें अपने भाइ श्रेयकको पर्यूषण पर्वमें शक्ति रहित होने परभी पोरसी, साढपोरसी, आदि पच्चख्खाण कराके दिनभर उपवास कराया. श्रेयक क्षुधाकी पीडा भुक्तकर उसी दिन मर गया. यक्षा-को खेद प्राप्त हुवा. ऋषिघातका प्रायश्चित लेनेको संघके पास गइ. शुद्ध भावसें प्रेरणा की हुइ होनेसें संघनें प्रायश्चित्तकी ना कही. यक्षा इस-सें संतुष्ट न हुइ और श्री सिमंधरस्वामीके पास उसका खुलासा पूंछ आने-का आग्रह कीया. शासनदेवीकी सहायता–मददसें यक्षा श्री सिमंधर स्वा-मीके पास गइ. भगवान् श्री सिमंधर स्वामीजीनें भी प्रायश्चित न दीया; मगर चार चूलिकाअें सुनाइ. यक्षानें वे चार चूलिकाअें संघके आगे कह बतलाइ. संघने आचारांगजी और दशवैकालिकजी सूत्रमें उनकी योजना की. जो चार चूलिकाए सांप्रत समयमें (अबी) भी भावना, विमुक्ति, रति-कल्प और विचित्रचर्या ये नांवसें पूर्वोक्त दोनू सूत्रोंमें विद्यमान है.

पुनः कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजीनें खुद कितने भवके पश्चात् (में) मो-क्षगति पाउंगा, वो जाननेके लिये शासनदेवीको श्रीसिमंधर स्वामीके पास भेजीथी. इत्यादि अनेक दृष्टांत मोजूद है.

९ प्रश्नः—तीर्थंकरको देव किसलिये मानने चाहियें?

उत्तरः—दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, दुगंछा, काम, मिथ्यात्व, अज्ञान, निद्रा, अव्रत, राग और द्वेष–यह अठारह प्रकारके दूषण मनुष्य, तिर्यंच, नारकी और दे-वताओंमें रहे हुवे हैं. तीर्थंकर देवमें उक्त कथित एकभी दूषण नही होता है, जन्म मरण पुनः करनेका नहीं होता है, सर्वज्ञ हैं, धर्मका उपदेश करते हैं, अनेक भव्यजीवोंको तारते है. फिर उन्होंके फरमाये हुवे आगम श्रवण करे तो अपने आत्माका कल्याण होने रूप उपकारभी उन्होंकाही है. वा-स्ते उन्होंको देव मानना.

१० प्रश्नः—अन्यमतावलंबी जिनको देव मानते हैं तिनको अपनभी देव माने या नहीं?

उत्तर:—पूर्वोक्त अठारह दूषणोंसें रहित हो तो उन्होंकोभी देव मान लेव तो किंचित् भी दूषण नहीं

११ प्रश्न —अन्य देव दूषण युक्त हैं ऐसा क्यों कहा जाय ?

उत्तर —उन्होंके चरित्र, मूर्तियें और (उन्हींके) शास्त्रोंसें दूषण सिद्ध होते है तो फिर देव क्यों कर माने जाय ?

१२ प्रश्न'—तीर्थंकर देवने आगम लिखे हैं या और किसीने लिखे हैं ?

उत्तर.—तीर्थंकर देवने शिष्योंको सुनाये, शिष्य सपूर्ण ज्ञानवान् हुवे. स्मरणशक्ति तीव्र होनेसें श्री महावीर स्वामीजीके निर्वाण पश्चात् ९८० वर्ष तक उन्होंनें मुखपाठपर रक्खे और पढाये, दिन दिन पाठशक्ति कम हो जानेसें देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने लिखनेका प्रारभ किया

१३ प्रश्न —अगले आचार्य महाराजाओंनें क्यौ नहीं लिखवाये ?

उत्तर'—मुनिमाहाराज आरभके त्यागी हैं. लिखनेमें आरभ होवे वो दोषसें डरकर नहीं लिखवाये.

१४ प्रश्न'—देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण आरभनें क्यों नहीं डरे ?

उत्तर —आपने ज्ञानचक्षुसें देखा कि अब पुस्तक नहीं लिखावेंगे तो सबकी स्मरण शक्ति हीन हुइ होनेसें सर्व शास्त्रका लोप हो जायगा और बडा दूषण प्राप्त होगा इस लिये अपवाद सेवन करकें भी पुस्तक लिखवानेका प्रारभ किया यह अधिकार बृहत्कल्पकी भाष्यमें स्फुटपनसें मौजूद है.

१५ प्रश्न.—वे आगम किनके पाससें सुनने चाहियें ?

उत्तर —गुरु महाराजके पाससें सुनने चाहियें

१६ प्रश्न.—गुरू महाराज किनकों मानने चाहियें ?

उत्तर.—जो गुरू पापसें डरें, सत्योपदेशदेवें, हिंसा, असत्य, चोरी, स्त्रीगमन और धन वगैर परिग्रहके त्यागी होवें, निरतर शास्त्राध्ययन करते होवें उन्हींकों गुरू मानने चाहियें, और उन्हींके मुखद्वारा धर्मोपदेश सुनना चाहिये

१७ प्रश्न —पूर्वोक्त सब गुण न हो, मगर शास्त्रोपदेश करजानते हो तो उनके पाससें धर्म सुननेमें क्या हरकत है ?

उत्तर.—उपदेश करनेवाला मनुष्य उत्तम गुणवान हो, तभी श्रोताओंके मनपर

अच्छी असर कर सक्ता है, और आपके उत्तम गुणोंकी छाप सामनेवालेके -हृदयमें पाड सक्ता है; परंतु जो उपदेशकही गुणहीन हो तो "परोपदेशे पांडित्यं" जैसा होता है, आप मिथ्या डोल धारण करके भवभ्रमण वढाते जाते हैं और श्रोताजन अपना आत्मा सुधार सक्ते नहीं; सवव कि गुरू कहते हैं मगर उन्हींसें पालन किया जाता नहीं है, तो अपन किसतरहसें धर्म पालन कर सके? अैसा मनमें आनेसें लाभ हांसिल नहीं होता है.

१८ प्रश्नः—यत्किंचित् सारभूत धर्मतत्त्व क्या है सो कहो?

उत्तरः—प्रथम तो धर्मकी योग्यता करनी.

१९ प्रश्नः—धर्मकी योग्यता किस रीतिसें हो शके?

उत्तरः—मार्गानुसारी के गुण पैदा करनेसें धर्मकी योग्यता हो शके.

२० प्रश्नः—मार्गानुसारीके गुणका विवेचन करो?

उत्तरः—प्रथम न्यायविभव यानि सव प्रकारके व्यापारमें न्यायपूर्वक वर्त्तन चलाना, अन्याय छोडदेना, नौकरी करता हो तो मालिकने सुपरद किये हुवे कार्यकी अंदरसें पैसा नहीं खा जाना, लांच-रिस्वत नहीं खानी, कमअक्कल वाले मनुष्यकों ठगलेनेका प्रयत्न नहीं करना, व्याजवटा करनेवालोंकों याद रखना चाहियें कि सामने वालेकों ठगकर व्याजके ज्यादे पैसे नही लेना, मालमें भेलसेल करके नहीं वेचना, सरकारी नौकरी करनेवालोंकों मुनाशिव है कि अफसरोंकों प्यारे होनेके लिये लोगोंके उपर कायदे विरुद्ध जुल्म नहीं गुजारना, मजदूरी या कारीगिरीका धंधा करनेवालोंकों योग्य है कि ठहराये हुवे दाम लेकें वरावर काम करना-दिलमें चोरी रख कर काम नहीं करना, ज्ञाति या पंचोंमें शेठाइ करनेवालोंकों योग्य है कि आपसें विरुद्ध मतवालेकों द्वेष बुद्धिसें गैरव्याजवी गुन्हागार नहीं ठहराना, किसी मनुष्यने अपना कुच्छ विगाड किया हो वो द्वेषसें उसके उपर झूंठा कलंक नहीं धरना या उसकों नुकसान नहीं करना, किसीकों नाहक अपराधी-दोषी नहीं वनाना, धर्मगुरुके व्हाने-मिससें पैसे लेनेके वास्ते धर्ममें नही हो वो वात नहीं समझानी, अथवा सेवककी स्त्रीके साथ अयोग्य-नालायक काम नहीं करना, धर्मनीमित्तसें पैसा निकलवाकर अपने घरका-

ममें खर्च नहीं देना, धर्मसबधी कार्यमें खर्च करनेके वास्ते भी झूठी गवासाक्षी पूर कर पैसा नहीं लेना, धर्मकार्यमें कुच्छ फायदा होता हो तो उस के बदलेमें मनमें शोचना कि अपन धर्मके लिये झूठ बोलते है–अपने कामके लिये नहीं बोलते है वास्ते उनमें दोष नहीं, असा समजकर उलटा सूधा करना वो भी अन्याय है जिनमदिर अगर उपाश्रयमें प्रभावना होती हो वो एकसें ज्यादे वक्तत लेनी वोभी अन्याय है जिनमदिर अथवा उपाश्रयके कार्यभार करनेवालोंकों उस खातेके मकान अपने खानगी कार्यमें नहीं• वापरना• या उस खातेके मनुष्यद्वारा खानगी कार्य करवाना नहीं कोइ मनुष्य ज्ञातिभोजन कराता हो और उसके साथ कुच्छ तकरार वा अदावत हो, उससें उनकी भोजनसामग्री बिगाडनेके इरादेसें लढाइ खडी करकें, पकवान वगैरः चाहिये उससें ज्यादे लेकर बिगाड करवाना, एक सप करकें ज्यादे खा जाना और भोजनसामग्रीमें टोटा पडे वैसी ही युक्तियें करनी वो भी अन्याय है परस्त्रीगमन नहीं करना स्त्री या पुरुष कुच्छभी सलाह पुछे तो मालुम होनेपरभी खोटी–बदसलाह नहीं देनी अपने मालिकके हुकम सिवा उनका पैसा नहीं उठाना एक दूसरेकों लढाइ हो जाय असी समज्ञ नहीं देना• अपनी प्रतिष्ठा बढानेके लिये असत्य धर्मोपदेश नहीं देना अन्यमतावलबी धर्म सबधी सच्ची बात कहता हो तो भी 'ये धर्म बढ जायगा' असा जानकर वो बात झूठी पाडनेकी कुयुक्ति करनी वो भी अन्याय है आप अविधिसें चलता हो और दूसेर पुरुषको विधि युक्त चलता देखकर उनकेपर द्वेष धारण करना वो भी अन्याय है. जो पुरुष विधिसें वर्तन चलाता है उसकों धन्यवाद देना और आपसें उस मुजब वर्त्ताव न हो सकता हो तो उनके लिये पश्चाताप करना वो अन्याय नही है सरकारकी या म्युनिसिपालिटीकी जकात चोरी करनी, स्टॅंप चोरी करनी, सच्ची पैदास छुपाकर कमती पैदास–आमदनीपर सरकारकों टयाक्स कम देना वो भी अन्याय है चोरी करनी, दूसरी कुजी लागु करनी या लूट चलानी वो भी अन्याय कहाजाता है गुणवत साधु मुनीराज, भगवत और गुरू महाराजके अवर्णवाद नहीं बोलना शुद्ध धर्मका भी

अवर्णवाद नहीं बोलना. और लडकीके पैसे लेकर आपका व्याह नहीं करना. इत्यादि बहुतसे अन्याय हो सकते हैं उन सबका त्याग करके व्यापार करना सो मार्गानुसारीका प्रथम लक्षण है.

२ शिष्टाचार यानि ज्ञान और क्रियासें करके उत्तम आचरणवाले मनुष्योंके आचार उनकों शिष्टाचार कहते हैं. उनमें लोग निंदा करें वैसा कार्य नहीं करना. राज दंडके पात्र होवें वैसा भी काम नहीं करना. वेश्या तथा परस्त्रीगमनका त्याग करना. जुगार नहीं खेलना, शिकार करनेकों न जाना. चोरी न करनी. बहुत जीवहिंसा होवें वैसा व्यापार नहीं करना. जिस कामसें किसी मनुष्यकों नुकसान होवें या किसीका जान जावें ऐसा झूंट नहीं बोलना. बनसकें तो सर्वथा झूंठ नहीं बोलना और मांस, मदिरा, ताडी, सहत, मख्खन, कंदमूल वगैरः अभक्ष्य पदार्थ नहीं खाना.

३ समान धर्म आचारवालोंके साथ व्याह करना; लेकिन एक गोत्रवाला हो उसके साथ व्याह नहीं करना. हेमचंद्राचार्यजीनें एक गोत्रवालेके साथ व्याह—सादी करनेका योगशास्त्रमें निषेध—मनाइ किया है. स्त्री भर्त्तारका एकही धर्म हो तो धर्म संबंधी तकरार उठनेका संभव नहीं रहता और धर्म कार्य करनेमें परस्पर साधनभूत हो पडे.

४ सब प्रकारके पापसें डरना. पाप करनेसें इस लोकमें निंदा होतीहै और अपर जन्ममें नरकादि दुःख भुक्तने पडते हैं.

५ देशाचार मुजब चलना यानि जिस देशमें रहते होवें उस देशमें जो जो काम करनेसें निंदापात्र न हुवा जावें उस मुजब चलना. वस्त्र आभूषण अशन पानादि देशकी रीति मुजब उपयोगमें लेना. जिस देशमें जो कपडे पहने जाते हो उसकों छोडकर अन्य देशकी रीतिके नहीं पहनना.

६ साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका और राजा, प्रधान, खजानची, कोतवाल वगैरः किसी मनुष्यके अवर्णवाद नहीं बोलना.

७ जिस घरमें बारी दरवाजे वगैरः पैठने निकलनेके बहुतसे मार्ग हो वैसे घर—मकानमें नहीं रहना. वहां रहनेसें चोर प्रमुखकों आनेजानेका तथा औरतकों बदचलन चलानेका सुगम पडता है.

८ अशुद्ध स्थानवाले घरमें नहीं रहना. जिस घरकी जमीनमें दीमग लगी

हुइ हो, जिस मकानके नीचे हड्डीयें तथा मुर्दे गाडे हो अथवा मुर्दे जलाये हुव हो अगर आसपास वेश्या, जुगारी, चोर, कसाइ वगैरः रहते हो वैसे घर छोडकर अच्छे पडोसमें रहना पडोसी धर्मबन्धु हो तो सर्वोत्तम समझना अन्यमतावलम्बीके पडोससें उनके आचार विचार अपनेमें घुस जाते है, वो बहुत श्रम उठाने परभी पीछेसें दूर नहीं हो सक्ते है और बहुत करकें अनेक पापबंधनेंमें पडना पडता है.

९ अति गुप्त स्थानमें नहीं रहना रहनेसें गुणिपुरुषकों दान देनेका अवकाश नहीं मिलता हैं. और आग प्रमुखके भय वक्त जानमाल बचानेका मुश्किल हो पडता हैं.

१० अति प्रगट स्थानमें भी नहीं रहना रहनेसें स्त्री वर्ग पूर्ण प्रकारसें लज्जा-मर्यादा नहीं समाल सकता है. और दरवाजेके आगे सोर गुल मच रहा हो तो स्थिर चित्तसें कार्य नहीं हो सकता है

११ सत्संग यानि गुणी पुरुषका समागम करना मुनि महाराज, देवगुरु भक्तिकारक श्रावक और प्रमाणिक गृहस्थोंकी साथ ही विशेष परिचय रखना मिथ्यात्वीका संग नहीं करना करनेसें अपनी धर्मबुद्धि नष्ट हों जाती है सुसंगसें बुद्धि अच्छी होती है. उनके सदाचरण देखकर अपनेकोभी सदाचरण ग्रहण करनेका अवकाश मिलता है. जुगारी, लुचे, चोर, विश्वासघाति, ठग वगैर की सोबत करनेसें वैसे नीच कृत्य करनेका इरादा सहजही होता है, वास्ते वैसे अधर्मीयोका संग छोड देना

१२ माता पिताकी आज्ञामें रहना, उनकों पूजनेवाले होना, हमेशा प्रातःकालमें उनका वंदन करना, परदेशमें जानेके और विदेशसें आनेके वक्त भी विनयपूर्वक चरणपूजन करना, जो वृद्ध हुवे हो तो उनकी खाने पीने ओर पहनने ओढनेकी शक्ति मुजब तजवीज रखना. कोइ वक्त गुस्सा नहीं करना कटुवचनका उपयोग नहीं करना उनके आदेशका उल्लंघन नहीं करना. कभी गैरव्याजवी नहीं करने योग्य काम बतला देवें तो मौनवृत्ति धर लेनी अयोग्य कार्य करनेसें गैरफायदे होते हैं उनका विनयपूर्वक बयान करकें समझा देनेका प्रयत्न करना उनका अपनेपर अवर्णनीय उपकार हैं माताने नौ महिने तक उदरमें रखकर--बोजा वहन कर अपने लिये अनेक वेदनायें सहन की है, विष्टा मूत्रादि मलीन तत्वोंसें अपना नेरंतर प्रक्षालन कीया है फिर जब अपन रोगग्रस्त हुवे हो तब वो भूख, प्यास सहन कर अनेक उपचार करकें अपना शुद्ध बुद्धिमें पालन करती है इसके उपरांत परोक्ष रीतीसें उनके उपकारका जन्मभरतक निरंतरही

वहन करता है. मातापिता तो जगत्में कल्पवृक्ष समान हैं. अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीजी त्रिशलादेवीके उदरमें आये वाद माता दुःखी होगी, अैसा शोचकर किंचित् वक्तत चलायमान नहीं हुवे; उतनी देरमें तौ माताजी अनेक कल्पांत करने लगे, मुर्च्छित हो पृथिवीपर गिर पडे! उसी वक्तत भगवंतजीने अभिग्रह धारण करलिया कि 'माता पिताका स्वर्गवास हुवे वादही दीक्षा ग्रहण करुंगा.' अहा! पुत्रकी पूजनीक वुद्धि तर्फ दृष्टि करो. राम और लछमन तथा पांडवोंनें मातापिताकी जो सेवा की है, उसका वर्णन सहस्र जिन्हासें भी करना मुश्किल है. उनके किये हुवे उपकारका वदला अपन कोइभी तरहसें नहीं दे सकते हैं; तोभी निरंतर उनकों धर्ममार्गमें योजनेके लिये प्रयत्न करके भक्ति करनी.

१३ जहां स्वराज्यका या परराज्यका भय हो, वैसे स्थानमें नहीं रहना. क्यों कि वहां रहनेसें धर्मकी, धनकी और शरीरकी हानि होती है.

१४ पैदासके प्रमाणमें खर्च करना, पैदासके चार हिस्से कर देना. एक हिस्सा सिल्कमें रखना, दूसरा हिस्सा व्यापारमें रोंकना, तीसरा हिस्सा आपके तथा कुटुंवके खाने पीने और वस्त्रादिकमें वापरना, और चौथा हिस्सा धर्मकार्यमें व्यय करना. इस मुजव आमदनीकी व्यवस्था करनी. यादि पैदास कम हो तो दशवां हिस्सा किंवा अपनी शक्ति मुजव धर्मनिमित्तमें अवश्य द्रव्य व्यय करना. वडी महेनतसें उदरपोषण होता हो तो मन कोमल रखकर धर्मकार्यमें द्रव्य व्यय करनेवालेकी अनुमोदना—प्रशंसा करनी.

१५ धनके अनुसार वस्त्राभूषण पहनना. कम द्रव्य हो और धनवान्के समान वस्त्र पहननेसें या ज्यादे धन हो और गरीवके जैसे पहननेसें लघुता—हलकापन हो जाय; वास्ते शक्त्यानुसार पोषाक रखना.

१६ शास्त्र श्रवण करनेमें चित्त पिरोना. वुद्धिके आठ प्रकारके गुण उपार्जन करना—यानि शास्त्र श्रवण करनेकी इच्छा करनी १, शास्त्र सुनना २, उनका अर्थ समझना ३, वो याद रखना ४, उसमें तर्क करना वो सामान्य ज्ञान ५, अपोह—विशेष ज्ञान मिलाना ६, उहापोहसें संदेह न रखना ७, और तत्त्वज्ञान यानि फलानी चीज अैसीही है अैसा निश्चय करना ८. पूर्वोक्त रीतिसें शास्त्र श्रवण कर अपने औगुन छोड करकें उद्यमवंत होना.

१७ अजीर्ण—बदहजमीके वक्त यानि खोराक हजम नहीं हुआ हो ऐसे समयमें दूसरा नया खोराक नहीं खाना रोगोत्पत्ति होवें वैसीभी वस्तु नहीं खानी और स्वादिष्ट वस्तु देखकर शक्ति उपरांत भोजन नहीं करना

१८ अकाल—वेवक्त भोजन नहीं करना भोजन करनेका जो वक्त कायम किया गया हो वही वक्त भोजन करना यानि वक्त नहीं भूलना—चूकना

१९ धर्म अर्थ और काम यह तीनू वर्ग साधन करना—मतलब यह कि गृहस्थावस्थामें जो समय धर्म साधनेका हो वोही समय धर्म साध लेना, पैसे कमानेके वक्त धनोपार्जन करना, और भोग—उपभोग भोगनेके वक्त उनमें तत्पर रहना धर्मसाधन के समय द्रव्य उपार्जन करनेका ध्यानमें रक्खे तो धर्मसें पतित हुवा जाता है सब वस्तुकी प्राप्ति धर्मसेंही होती है धर्मसें पतित हुवे तो तीनू वर्ग हाथमेंसें गयेही समजना, वास्ते दिनभरमें तीनु वर्ग साधनेका वक्त मुकरर कर रखना कि जिससें धन पैदा करनेमें और संसारोचित कार्य करनेमें विघ्न न आवे, जगत्में निंदा न होवे और अच्छी तरहसें धर्मसाधन हो सके उस मुजब चलना.

२० मुनिराज महाराजको दान देनेरूप आतिथ्य विनय पूर्वक करना दुःखीजनको अनुकंपादान देना, मुनिकी सेवा भक्ति करनेमें कुशल रहना और अहंकार रहित दान देना

२१ जिनमतकी अदर सन्मान पूर्वक राग धरना नाहक झूठा हठ—कदाग्रह नहीं करना

२२ गुणीजनका पक्ष करना उनकी साथ सौजन्यता और दाक्षिण्यता वापरनी, जो जो सुकार्य करनेके हो वो वो कार्य बदरकी तरह चपलताईसें नहीं मगर स्थिरतासें करने चाहियें निरंतर प्रियभाषित होना—किसीको दुःख—पूरा लगे ऐसा नहीं बोलना. अपने और पराये आत्माका उपकार करनेकी बुद्धि रखना, और गुणीपुरूषका अनुयाय वर्त्तन रखना

२३ जिस देशमें जानेकी शास्त्रकार आज्ञा न देते हो या राजकी तर्फसें मना हो उस देशमें उद्धताई करके नहीं जाना जो समय जो कार्य करनेकी आज्ञा—रजा न हो उस कालमें वो कार्य नहीं करना—जैसें कि उष्ण कालमें खेती करे तो वर्षाकालके जैसी न होवें वर्षाकालमें बडे पदार्थ खानेसे हजम नहीं होते हैं और समुद्रपर्यटन

करनेसें नुकसान होता है. यवनके मुल्कमें जानेसें जबरदस्तीसें न खानेलायक चीज- अभक्ष्य खिला देवें और जबरदस्तीसें धर्मभ्रष्ट कर देवें-वैसे देशमें नहीं जाना, अपना बल समालकर काम करना; क्यौं कि शक्ति उपरांत कार्य करनेसें धनकी और शरीरकी हानि होनेका संभव है.

२४ व्रतके अंदर स्थिर चित्तवाले, और ज्ञान सावधान अैसे जो पुरुष होवे उन्हकी पूजा करनी. आत्महितार्थ उन्हके पाससें ज्ञान संपादन करना और उन्होंकी प्रवृत्ति मुजब चलना.

२५ पोषण करने लायक अपने कुटुंबका वस्त्र आहार वगैरःसें पोषण करना.

२६ हरएक कार्य शुरू किये पहिलेही शुभाशुभ परिणाम दीर्घदृष्टिसें विचार लेना और उस बाद शुरु करना.

२७ विशेषज्ञ यानि सामान्य और विशेषकों पहिचानते सीखना और उनके ज्ञाता होना.

२८ लोकवल्लभ यानि सब लोगोंकों वल्लभ लगे वैसा काम करना. किसीका दिल दुभाना नहीं, अनीतिसें और धर्मविरुद्ध आचरणसें लोगोंमें प्यार होनेकी इच्छा नहीं रखनी.

२९ लज्जावंत होना यानि निर्लज कार्य नहीं करना.

३० विनयवंत होना. देव, गुरू, सुश्रावक, कुटुंबी, शिक्षक, हुन्नर सीखानेवाला तथा राजा, प्रधान, शेठ-शाहूकार जो कोइ गुणसें, धनसें, पद्वीसें और अवस्थासे करके अधिक हो उन सबका यथोचित विनय करना.

३१ दुःखी मनुष्यपर दया करनेमें कुशल रहना. ज्यों बन सके त्यों हिंसाका काम नहीं करना.

३२ सौम्यदृष्टि रखनी. किसी वक्तभी कपायवाली प्रकृति धारण नहीं करनी कि जिससें दूसरेकों अपनेपर द्वेष पैदा हो आवे.

३३ छः शत्रुओंकों जीतना यानि कामका पराजय करना-मतलब कि परस्त्रीका बिलकुल त्याग करना-स्वस्त्रीकोंही सेवन करना. वोभी अपनी स्त्रीका जैसे रोगार्त्त पुरुष औषध खानेकी जरूरतसें ओषध खावे, वैसें ही ऋतुस्नानके वक्त केवल चित्तकी समाधी करनेके-उपाधि मिटानेके लिये सेवन करै. भावना तो छोड देनेकीही रक्खै. कूतेकी तरह निरंतर वा एक रात्रिमे बहुत दफै स्त्रीसंग करना वो उत्तम पुरुषोंका

रक्षण नहीं है नित्य स्त्री सेवनसें आपका और स्त्रीका शरीर निर्बल होता जाता है. फिर अैसी बुरी आदतके लिये स्त्रीके विरह वक्त परस्त्री सेवनकी बुद्धि हो आती है बहुत करकें दुनयामें हलकापन प्राप्त होता है-कोइ विश्वास नहीं करता है-राजाके जाननेमें आवे तो दंड करता है. यहभवमें अैसा होता है और आते भवमें नरकके दुःख भुक्तने पडते है, वास्ते ज्यों बन शके त्यों कामदेवकों वश्य करलेना १, क्रोध-किसीके उपर गुस्सा न करना यानि सब प्राणियोंके उपर समभाव धारण करना. अेक क्रोड पूर्व तक संयम पालन करके उपार्जन कियाहुवा फल क्रोधके करनेसें क्षणभरमें नष्ट हो जाता है, और कुगतिका भाजन होना पडता है हालाहल विष खाया हो तो अेक वक्तही मरण प्राप्त करता है, लेकिन क्रोधरूपी हालाहलके तांबे हुवे प्राणियोंका अनंती वेर मरण होता है, वास्ते निरंतर क्षमागुण धारण करनेका सीखना चाहियें २, लोभ-लोभी मनुष्यका चित्त हम्मेशा फिकरमेंही भटकता रहता है, उनको किसी वक्त कोइभी प्रकारसें संतोष पैदा नहीं होता है फिर लोभके वश्य होनेसें नहीं करने लायक काम करनेकों तैयार होता है, उससें इस दुनयामें हीलना होती है और परभवमें भी दुःख भुक्तने पडतेहै, वास्ते जिस औसरमें जो मिले उसीसें संतोषवृत्ति रखनी और नीतियुक्त उद्यम करना अगले जन्मोंमें जैसा उपार्जन किया होवे वैसा यह भवमें मिलता है, लोभ करनेसें कुछ ज्यादे नहीं मिलता है अैसा सोच-समजकर संतोष पकडना क्योंकि संतोषसेंही लोभका पराजय होता है ३, मान-गर्वदशा धरनेसें जगतमें हलकापन प्राप्त होता है लोग गर्विष्ट-अहंकारीका उपनाम देते है गुरु-देवका विनयभी नहीं हो सक्ता है, विद्या हुनर नहीं आते है और मनुष्यजन्म मिलने परभी धर्म नहीं साध सक्ता है, वास्ते मानकों छोडकर गंभीरता धारण करनी ४, हर्ष-किसीभी कार्यमें अत्यंत राजी न होजाना क्योंकि हर्ष करनेसें गर्वकी सीढीपर चढनेमें देर नहीं लगती है. यह संसारमें सब वस्तुअें क्षणिक है शरीर आज सुखी मालम होता है और कल अनेक व्याधियुक्त होजाता है लक्ष्मी चपल है यानि आज जिस मकानमें लक्ष्मी शोभायमान हो रही हो उसी मकानमें दूसरे रोज भूतगण निवास करता है! वास्ते अैसे अस्थिर पदार्थ पूर्वकृत पुण्यके सबबसें प्राप्त हुवे होवे तो उनका सदुपयोग करना, लेकिन अत्यंत हर्षित होकर गर्व नहीं करना ५, मद-आठ प्रकारके है यानि जातिमद, कुलमद, बलमद, रूपमद, ऋद्धिमद, लोभमद, तपमद और विद्यामद यह ८ है जातिमद करनेसें नीच जातिमें उत्पन्न होता है कुलमद करनेसें नीच गोत्र

बांधता है,बल पराक्रमका मद करनेसें आते भव–जन्ममें निर्बलता प्राप्त होती है, रूपका मद करनेसें कुरूपता प्राप्त होती है, धनका या ठकुराइका मद करनेसें परभवमें दरिद्री पना प्राप्त होता है. ज्यौं ज्यौं मिलता जावै त्यौं त्यौं ज्यादे लोभ करै और मनमें इरादा करै कि मैं तो खोनेवाला हुंही नहीं, जो जो व्यापार करुंगा उनमें पैदाही करुंगा! अैसा आजीविकाका मद धरनेवाले मनुष्यकों किसी ना किसी वक्त भारी धक्का लगता है कि सब दिनोंका पैदा किया हुवा अेक दिनमें चला जाता है और निर्धनावस्था प्राप्त होती है; वास्ते लोभका मद नहीं करना. तपमद करनेसें तप निष्फल होता है, विद्याका मद करनेसें आपसें ज्यादे विद्वान हो उनकों मान नहीं दे सकता है; मगर उनकी अवगणना करता है और आप ज्यादे ज्ञान संपादन नहीं कर सकता है. क्यौं कि गर्विष्ट होनेसें शंका पडे वोभी दूसरेकों नहीं पूंछी जाती है और युं करते धीरेधीरे अपनी विद्या खो देता है और आते जन्ममें अज्ञानी होता है; वास्ते विवेकी मनुष्यकों यह आठों मद छोड देनेही चाहियें.

३४ कृतज्ञता यानि किसीने अपना उपकार किया होवै तौ उनका अच्छा बदला देना, नहीं कि समय प्राप्त होनेपरभी उपकारकों भूल जाना.

३५ पांचों इंद्रियोंकों तावे करनेमें तत्पर रहेना. इंद्रियोंकों छुट्टी छोडनेसें इस जन्ममें भी बहुत नुकसान होता है और परजन्ममें भी दुर्गति मिलती है. देखो स्पर्शेंद्रियके सुख भुक्तनेके लिये हस्ति बंधनमें पडता है. रसेंद्रियके विषयसें मछलियां बेजान होती हैं, घ्राणेंद्रियके विषयसें भौंरा कमलपर बैठता है और सूर्य अस्त होजानेसें कमल बंध होतेही अंदर कब्ज हो जाता है. चक्षु इंद्रियके वश होनेसें पतंग नामक जंतु दीपकपर गिरकर जान खो देता है. कर्णेंद्रिय के विषयसें हरिण शिकारीके तावे होकर मरणके शरण होता है. इस तरह एक एक इंद्रियकों छूटी छोडदेनेसें प्राण गुमाना पडता है तौ जब पांचों इंद्रियोंके विषयोंमें लुब्ध होनेसें परभवमें कैसे दुःख भुक्तने पडते है? उनका वर्णन तौ ज्ञानी महाराजही कर सकै; वास्ते यथाशक्ति विषयका संकोच करना. इस मुजब मार्गानुसारीके पेंतीस गुण जिस मनुष्यमें होवै वोही पुरुष धर्मके लायक जानना अैसे गुणोंसें मनुष्य समकितवंत होता हे श्राद्धधर्म और मुनिधर्मकों पाता है और अंतमें मुक्तिसुखकों हाथ करता है.

२१ प्रश्नः—समकित वो क्या है?

उत्तर'—समकितके बहुत प्रकार हैं, लेकिन अल्प मात्र कहता हु. सम कितके मुख्य दो प्रकार है यानि व्यवहार समकित और निश्चय समकित यह दो हैं उनमें व्यवहार समकित सो आगे कहे हुवे अठारह दूषण रहित ऋषभादि चोविश तीर्थंकरको शुद्ध देव तथा तरण तारण नावरूप मानने चाहियें जो देव ससारके पारकों नहीं पहुचे हो उनको देवबुद्धिसें देव नहीं मानना. प्रभुने मुनिका जो मार्ग बताया हैं उन मार्गपर चलनेवालेको गुरुबुद्धिसें गुरू मानना साधु और श्रावकोंका धर्म प्रभुने जिस मुजब बतलाया है सो धर्मकोंही सत्य मानना. यह तीनों तत्त्वोंके ऊपर श्रद्धा रखनी सोही व्यवहार समकित है. निश्चय समकित यही है कि पहिले अपने आत्माका स्वरूप और पुद्गलका स्वरूप जानना आत्मामें चेतन गुण है और पुद्गलमें जड गुण है, उससें आत्मामें सब पदार्थ जाननेकी शक्ति है, मगर कर्मसें करकें आत्मा छा गया है उससें अभी सपूर्ण हाल–भाव नहीं जान सक्ता है ऐसा निश्चय होनेसें जो जो बाह्य पदार्थ हैं उनके ऊपरसें मोह छोड देता है फक्त आत्म गुणमेंही आनद मानता है. जो ससारी आनद है वो सब अस्थिर आनद है और उनकों सचा आनद मान लेनेसें कर्मबधन होता है और दुर्गतिमें उनके दु'ख भुक्तने पडते है आत्माका ज्ञान ज्यौं ज्यौं निर्मल होता जाता है त्यौं त्यौं सासारिक कार्यमें ममता घटती जाती है कर्मके योगसें जो सुख दु.ख प्राप्त होते हैं, उनकों कर्मके फल समझकर राग द्वेष नहीं करते हैं. पुद्गल के सयोगसें कर्म बधन हुवे है सो भुगते जाते हैं, ऐसा विचारता है इस मुजब चित्तकी सुदरता होती है, परतु विशेष विशुद्धि नहीं हुइ उससें ससारकों नहीं छोड सक्ता है श्रावकके व्रत भी नही ले सक्ता है; लेकिन भावना रात दिन बनी रही है, अनतानुबधी कषायकी चोकडी तथा समकित मोहनी, मिश्र मोहनी और मिथ्यात्व मोहनी यह सात प्रकृति क्षय हुइ है ऐसे जीवोंकों समकितकी प्राप्ति होती है, वो निश्चय समकित कहा जाता है

७२ प्रश्न —निश्चय समकित दृष्टिको व्यवहार समकित होवे या नहि ?

उत्तरः—बहुत करके होवे.

२३ प्रश्नः—व्यवहार समकित वालेको निश्चय समकित होवै या नही?

उत्तरः—होवै भी सही और नहीं भी होवे.

२४ प्रश्नः—अकील व्यवहार समकितसें क्या फायदा होता है?

उत्तरः—व्यवहार समकित निश्चय समकितका कारण है. देव गुरुकी श्रद्धा हुइ कि गुरुमहाराजकी सेवा करै. गुरुमहाराज धर्म सुनावें इससें अपना आत्माका और पुद्गलका स्वरूप जाने. यूं करते करते क्रमसें निश्चय समकित होवै.

२५ प्रश्नः—देवकी भक्ति किस प्रकारसें करनी?

उत्तरः—देव अभी नहीं विचरते है; किन्तु उन्होंकी मूर्ति हैं सो अपनेको आलंबनभूत हैं, उससें पाषाणकी, धातुकी, रत्नकी, काष्टकी और दांतकीः- जैसी अपनी शक्ति हो वैसी भगवंतजीके आकारवाली मूर्त्ति करा लेवें, यथाशक्ति सुंदर मंदिर बंधवा लेवे और आचार्य महाराजके पास उन प्रतिमाजीकी प्रतिष्ठा कराके उन्हकी भक्ति करे अथवा पूर्व पुरुषोंने असे जिनबिंब पधराये हुवे होते हैं उन्हीका अष्ट द्रव्यसें करके पूजन करें तथा उन्हकी समीपमें अच्छे प्रकारसें गुणग्राम करें.

२६ प्रश्नः—प्रतिमाजीको पूजनेसें क्या लाभ होता है? प्रतिमाजी कुच्छ भगवान नहीं हैं तो उनको कैसे भावसें पूजनी चाहियें?

उत्तरः—भगवंत धर्म प्रकाश गये हैं उनके आधारसें धर्मका स्वरुप—आत्माका स्वरुप जान लिया है उससें वे उपकारी पुरुष हैं, वे उपकारी पुरुष तो निर्वाण प्राप्त हो गये हैं, तब प्रतिमाजीमें उन्हीके नांवका आरोपण करकें भक्ति करनी. जैसे अपने बुजुर्ग—बडे पुरुष या तो मान्यकारी पुरुषकी तसवीर होती है और उनका कोइ गुण ग्राम करै तो अपन कैसे खुशी होते हैं; अगर अभी अपने राज्यकर्त्ता शहनशाह एडवर्ड या गव्हर्नर जनरल, गव्हर्नर वा प्रतिष्ठित अधिकारीओंकी तसवीर—छबी या पुतले जगह जगह बैठाये हुवे हैं ओर असा कियाहुवा देखकर वै अधिकारीतथा उन्हके उपर प्रीतिभाव धारण करनेवाले-लोग राजी होते है ओर वे अधिकारी

आपकोंही मान्य मिला समझते है, तैस अपनभी भगवतकी मूर्ति बैठानेसें उन्हीकों मान्य देते हैं उन्होंकों मान्य देनेका दिल हुवा वो शुभ अध्यवसायका लक्षण है और उससें जीव बडाभारी पुण्य उपार्जन करता है. जो जैन नाव धारण करकें ढुंढक कहाते है वै प्रतिमाजीकों नही पूजते हैं वो उन्हकी अज्ञानता है, वे जैनशास्त्रकों मान्य करनेका कहते हैं, मगर वे शास्त्रमें कहे मुजब नहीं चलते है इस बाबतकें दृष्टांत श्री प्रतिमाशतक ग्रंथमें श्री यशोविजयजीनें बहुतसें दीये है, तथा समकितशल्योद्धार नामक ग्रंथ छपा गया है, उनमें भी बहुतसें दृष्टांत हैं इसलिये यहांपर विस्तारसें नही लिखता हुं भगवान् विचरतेथे उस वक्तकी प्रतिष्ठाकी हुइ प्रतिमाजीयें अभि विद्यमान् है और ढुंढकमत तो अभी निकला है, तब जो प्रतिमा पूजनेका अयोग्य होता तो भगवत थे जब क्यों मनाइ गइ? उस पीछे भी बहुतसें आचार्य हुवे हैं, कि जिनके उपदेशसें बहुतसे श्रावकोंने प्रतिमाजी करवाइ है तथा अनेक प्रकारसें पूजा भी की है गृहस्थावासमें रहे हुवे श्रावकभाइयोंकों भगवतके गुणग्राम करनेके लीये अनुकूलता भरी जगह देखें तो फक्त जिनमंदिरही हैं और उनकी अंदर भगवतके गुणोंका स्मरण होनेके वास्ते जिनाबिंबकी स्थापना की है उन्हों-की आकृति अैसी सौम्य हैं कि उन्होंकों देखनेसें भगवतके गुण स्मरणमें आते है अपने वृद्ध पुरुषकी या माननेते पुरुषकी छबी या उनकी कोइभी चीज पडी हुइ होती है तो उसकों देखकर वै पुरुष और उनके गुण जैसें स्मरणमें आते है वैसे ही भगवतकी मूर्तिकों देखकर भगवन् गुण स्मरण होता है प्रतिमाजीका मुंह देखकर सोचता है कि यह मुख कैसा है? जिन मुखसें किसीके भी अवर्णवाद, मृषावाद या हिंसाकारी वचन नही बोले गये है उन मुखकी अंदर रही हुइ जीव्हासे रसेंद्रियके विषयोंका सेवन नही किया गया है, किन्तु यह मुखद्वारा धर्मोपदेश देकर अनेक भव्यजीवोंकों संसार समुद्रसें पारकर दिये है वास्ते इस मुखकों धन्यवाद है यह नासिकाद्वारा सुरभिगंध और दुरभिगंधरूप घ्राणेंद्रियके विषयोंका सेवन नही किया गया है यह चक्षु इंद्रियद्वारा पांच वर्णरूप विषयोंका

सेवन नहीं किये हैं. किसी स्त्रीकी तर्फकामविकारकी नजरसें नहीं देखा है और न किसीके सामने द्वेषकी नजरसें भी देखा है. मात्र वस्तुस्वभाव और कर्मकी विचित्रता विचारके समभावसें रहे हुवे हैं उससें अैसे नेत्राकों धन्य है. यह कानोंसें करकें विचित्र प्रकारके राग, रागणीयें श्रवण करनेरूप उनके विषयोंको सेवन नहीं कीये हैं, किन्तु प्रिय अप्रिय जैसे शब्द कानपर पडे तैसेही समभावसें सुने है. यह शरीरसें किसी जीवकी हिंसा या अदत्त ग्रहण वगैरः नही किया हैं. फक्त जीवरक्षा की है और किसी जीवकों दुःख प्राप्त न हो वैसेहीचले हैं. ग्रामानु ग्राम विहार करकें भव्य जीवोंकों संसारिक दुःखोंसें पार किये हैं और आपनें कर्मक्षय करकें केवलज्ञान केवलदर्शन प्रगट किया है; वास्ते इन प्रभुकों धन्य है. वै परमोपकारी हैं, उस्सें उन्होंकी जितनी भक्ति कर सकुं उतनी करनी योग्य है. अैसी सुंदर भावना भगवंतकी मुद्रा देखनेसें उत्पन्न होती है. उत्तम प्राणि अैसे प्रभुकी जल, चंदन, केसर, वरास. पुष्प, धूप, दीप, फल, नैवेद्यसें पूजा करते है. तथा आभूषण चढाते हैं. इस मुजब पूजा करनेमें यथाशक्ति द्रव्य व्यय करते हुवे चिंतवन करते है कि, मैं जो द्रव्य पैदा करता हुं उन्हमें अनेक प्रकारके पाप लगते हैं, फिर वो धन संसारके कार्यमें व्यय करता हुंउससें भी फिर पापकी वृद्धि करता हुं. मेरे ये धनमेंसें मेरे परिणाम पहुंचे उतना धनजो मैं शुभभक्तिकी अंदर खर्चु तौ उनसें पापबंधन रूक जावै और पुण्यबंधन होवै; फिर ये धन अंतमें मेरा नहीं है. और उनका स्वभाव भिन्न है–मैं चेतन हुं वो जड है; वास्ते मेरे उनपरसें मूर्च्छा उतारनी सो योग्य है. फिर सोचता है कि मैं प्रभुकी भक्ति करुंगा तौ वो देखकर दूसरे जीव उनकी अनुमोदना करेंगे, फिर कितनेक भाग्यवान् जीव भक्ति करनेमें तत्पर होंगे तौ उनका कारणीक मैं होउंगा. इससें प्रभुभक्ति करनेमें अनेक लाभ होवेंगे. उत्तम जीव पहिले द्रव्यपूजा करकें पीछे भावपूजा करते हैं उन औसरमें भगवंतके गुण विचारते हैं और प्रभुकें गुण सोच करकें उनका अपने आत्माकें साथ मिलाप करते है कि, अहा! प्रभु निरागी ओर मैं रागी हुं, प्रभु अद्वेषी

और मैं द्वेषी हु, प्रभु अक्रोधी और मैं क्रोधी हु, प्रभु अकामी और मैं कामी हुं, प्रभु निर्विषयी और मैं विषयी हु, प्रभु अमानी और मैं मानी हु, प्रभु अमायी और मैं मायी हु, प्रभु अलोभी और मैं लोभी हुं, प्रभु आत्मानदी और मैं ससारानदी हुं, प्रभु अतिंद्रिय सुखके भोगी और मैं पुद्गलकाभोगी हु, प्रभु स्वस्वभावी और मैं विभावी हु, प्रभु अजर और मैं सजर हु, प्रभु अक्षय और मैं क्षय स्वभाववत हु, प्रभु अशरीरी और मैं शरीरवाला हुं, प्रभु अनिंदक और मैं निंदक हु, प्रभु अचल और मैं सचल हु, प्रभु अमर और मैं मरण सहित हु, प्रभु निंद रहित और मैं निंद सहित हु, प्रभु निर्मोही और मैं समोही हु, प्रभु हास्य रहित और मैं हास्य सहित हु, प्रभु रतिसें रहित और मैं रति सहित हु, प्रभु अरति रहित और मे अरति सहित हुं, प्रभु शोक रहित और मे शोक सहित हु, प्रभु भय रहित और मै भय सहित हु, प्रभु दुगच्छा रहित और मैं दुगंच्छा सहित हुं, प्रभु निर्वेदी और मैं सवेदी हु, प्रभु अक्लेशी और मैं क्लेश सहित हु, प्रभु अहिंसक और मैं हिंसक हु, प्रभु वचनसें रहित है और मैं मृषावादी हुं, प्रभु अप्रमादी और मैं सप्रमादी हु, प्रभु निराशा वत और मैं आशावत हुं, प्रभु सर्व जीवकों सुखदेनेहारे और मैं अनेक जीवोंका दु:ख देनेहारा हु, प्रभु अवचक और मैसवचक–दूसरोंकों ठगने हारा हु, प्रभु सबके विश्वासपात्र और मैं अविश्वासपात्र हु, प्रभु आश्रव रहित और मैं आश्रवसें भरपूर हु, प्रभु निष्पाप और मै सपाप हु, प्रभु परमात्मपदकों पाये हुवे और मै बाहिरात्मपनेसें प्रवर्त्तता हु, प्रभु कर्म रहित और मैं कर्म सहित हु इस मुजब भगवत अनेक प्रकारके गुणसें सयुक्त है और मैं सब प्रकारकें दुर्गुणोंसे भरा हुवा हु, उसीसें यह ससारमें परिभ्रमण करता हु. आज भाग्योदयसें यह प्रभुजीकी मूर्ति मैंने निहाल ली और उसके आलबनसें मेरेको प्रभुके गुणका स्मरण हुवा तथा मेरे औगुन समझनेमें आये, तो अब मैं मेरे औगुण छोडनेका उद्यम करु प्रभु जिस रस्ते चले वही रस्ते मे चलु और प्रभुने जैसा वर्त्तन चलाया वैसा वर्त्तन मे चलाउ. इस मुजब भावना भावते–पूजा करते प्राणी अपना कर्मक्षय

करता है, शुद्ध समकितको प्राप्त करता है और यावत मोक्षसुखकोंभी पाता है; वास्ते जिन प्रतिमाकी पूजा करनेमें उपर मुजब लाभ जानकर समस्त भव्य जीवोंनें यथाशक्ति जिनेश्वर भगवानकी भक्ति करनी चाहियें.

२७ प्रश्नः—सामान्य प्रकारसें जिनभक्तिकी रीति तथा लाभ बतलाये; परंतु अनुक्रमसें दररोज किस प्रकारसे भक्ति करनी? वो कह दो.

उत्तरः—दिनमें तीन दफे जिनमंदिरमें जाना. उनमें प्रातःकाल वासक्षेपसें, मध्यानकाळ जल चंदनादि अष्ट द्रव्यसें-सत्तरह प्रकारसें या जैसी शक्ति हो उन मुजब विशेष द्रव्यसें पूजा करनी और संध्याकालमें धूपपूजा तथा दीपपूजा करनी. उनमें मध्यान्हकी पूजा प्रभुके अंगें स्पर्शकरकें करनेका है, और स्नानभी करना चाहिये-स्नान करकें शुद्ध हुवे सिवा प्रभुके अंगका स्पर्श करना घटित नहीं है. अपना शरीर मलीन होता है सो स्नान करनेसें शुद्ध होता है. वास्ते निर्जीव जगह देखकर शरीरकी शुद्धि हो सके उतने जलसें स्नान करना. ज्यादे पानी नहीं ढोलना. ज्यादे पानी ढोलनेसें असंख्य अपकाय जीवोंकी कारण सिवा विराधना होती है. स्नान कीए बाद पवित्र वस्त्रसें शरीर पुंछकर साफ कर डालना. पीछे सुंदर शोभायमान् सांसारिक कामोंमें जिनका उपयोग न हुवा हो वैसे और धूलेहुवे वस्त्र धारण कर लेवें. विगर धूलेहुवे वस्त्र पहनकर पूजा करनेसें नीवी पच्चख्खाणका प्रायश्चित लगे ऐसा कहा है. पीछे अपनी शक्त्यानुसार योग्य आभरण धारणकरकें फिर जिनपूजाके लिये जल, चंदन, पुष्पादिक शुद्ध द्रव्य लेकर जिनमंदिरमें जाना. जिनमंदिरमें प्रथम द्वारमें पेठतेही 'निसिहि' कहना. तवसें संसारके व्यापारका निषेध कियाही समझना यानि जिनालय अंदर व्यापार रोजगार संबंधी वातचितभी नहीं करना. फक्त जिनमंदिर संबंधी कार्यमेंही चित्त पीरोना. जिनमंदिरमें कुच्छ काम चलता हो तो उनका तपास करना, कुच्छ आशातना हुइ हो तो वो दूर करनी और जिनमंदिरके नौकर चाकरके कार्यकी तर्फ नजर

रखनी जब भगवतकी मूर्ति दृष्टिमे आवे तब दोनू हाथ जोडकर नम स्कार करना और रगमडपमे दाखिल होतेही दूसरी दफे 'निसिहि' कहनी, यहांसें जिनमदिर सबधी व्यापारकाभी त्याग करनेका समज लेना, और जिनपूजा सबधी कार्यमे प्रवृत्त होना प्रथम आपके हाथ धोकर सुवर्ण, चादी, अन्य धातु मिट्टीके (अपनी शक्तिके अनुसार जैसे) कलश हो वैसे कलशमें निर्मल जळ भरना. प्रभुके शरीरपरसें चितवन करना कि भगवतनें इस मुजब आभूषण उतारकर सयम ग्रहण किया था बाद मोर पींछीसें प्रभुके शरीरकी प्रमार्जना दृष्टिपूर्वक करनी. चीटी वगैर जतुओका प्रचारहुवा होवे तो वो दूरकरकें कलशद्वारा अभिषेक करना पीछे वस्त्रके स्वच्छ टुकडेसें केशर निकाल डालना उनसें न निकलसके तो वालाकुचीसें दूर करना बाद पचामृतका अभिषेक करके सुकोमल सुदर और धुलेहुवे उज्वल वस्त्रमें प्रभुका शरीर जल रहित करना पीछे चदन, केसर, बरासादिसें नव अगमें पूजा करनी और जीव जतु विगरके, नही सडे हुवे, भूमिपर न पडे हुवे, अशुचि ससर्गसें रहित और सुगधिवाले मोतिये, गुलाब वगैर के फूल चढाना पीछे मुकुट कुडलादि आभरण पहनाना उसके बाद अगर, सिलारसादि सुगधिदार चीजोंसे बनाया गया हुवा दशाग धूप करना लालटेनमें दीपक रखकर दीपक पूजा करनी भगवनके शरीरपर सोने चादीके वर्क शक्ति मुजब चढाकें आगी रचनी या रचवानी पीछे भगवंतके समीपम सुदर उज्वल अक्षतसें नदावर्त्त अथवा स्वस्तिक करना उनम पहिले तीन ढिगलीयां करनेके अव्वल पहिली ढिगलीसें ज्ञान प्राप्ति, दूसरीसें दर्शन--समकित प्राप्ति और तीसरीसें चारित्र प्राप्ति होवै इस मुजबसें भावना रखकर स्वस्तिक करना, उस वख्त चारों गतियोंका नाश होनेकी भावना रखनी फिर तिन ढगलीयोंके उपरके तर्फ अक्षतसें अर्द्धचद्राकार समान सिद्धशिला बनानी और शोचनाकि यह सिद्धशिलापर मेरा निवास हो इस प्रकार अक्षत पूजा करकें पीछे सुदर फल मेवे वगेर' धरना. अपक्व, सडे हुवे, खराब गधवाले या अभक्ष फळ पूजा प्रकरणमें नही धरना. बाद

नैवेद्य चढाना–धरना; उसमेंभी भक्ष पदार्थ यानि लड्डू, दूधपाक, शाक, दाल, चावल, चूरमा वगैरः विविध जातिके पकवान्न प्रभुके आगे धरना. और पीछे भावना भावें कि–' यह आहार अनेक पापारंभ करके तैयार किया गया है और यह आहार में खाउंगा तो उसमेंभी इसके आस्वादनसें मेरेकों राग द्वेषकी परिणती जाग्रत होयगी; वास्ते जितना आहार प्रभुकों चढाउंगा उतने आहार संबंधी राग द्वेषकी परिणती होनी बंध रहेगी और फिर उपकारकी भक्ति होगी. ' उनसें परंपराद्वारा मुक्तिफलकी प्राप्ति होगी. ऐसा शोचना. इस तरह द्रव्य पूजा करनी. इससें भी ज्यादे द्रव्य हो तो ज्यादे द्रव्य चढाना. उसके बाद तीसरी 'निसिहि' कहनी और शोचनाकि–' अब द्रव्य पूजाका कार्य मोकूफ करकें भाव पूजा करुंगा. ' पहिले तीन प्रदक्षिणा देकें तीन खमासमण देना. तीन दिशाओंकी तर्फ निघा फिरानी छोडकर यानि केवल प्रभु सन्मुख देख वीरासन लगाकर दोनू हाथ जोडकें चैत्यवंदन, नमुथ्थुणं, दोनू जावंती, स्तवन, जयवीयराय आदि कहना, और काउस्सग्ग करना. और काउस्सग्ग पारकर अेक स्तुति वा आठ स्तुति शक्ति अवकाश हो वैसी रीतिसें चैत्यवंदन करना. यह सामान्य विधिसें प्रभु भक्ति कह दी. पीछे प्रभु सन्मुख खडे रहकर आगे जिस मुजब वतलाइ गइ है उसी मुजब भावना भावें. बहुत गुणी आचार्य महाराज भगवंतके गुणरूपी श्लोकबद्ध–काव्यबद्ध रचना कर गये हैं उस स्तुतिसें स्तुति करनी. अैसी सुंदर भावनाका उपयोग करनेसें नागकेतू वगैरः केवलज्ञान पाये हैं. उनकी कथा कल्पसूत्रमें मोजूद है.

२८ प्रश्नः—पुष्प पूजा करनेसें पुष्पोंके जीवोंकों पीडा होती है उसका क्या करना ?

उत्तरः—पुष्पके जीवोंकों वाधा नहीं होती है; लेकिन रक्षण होता है; क्यों कि पुष्प कोइ गृहस्थ ले जावै तो मनुष्यकें स्पर्शसें उनके जीकों किलामना होवै. कितनेक गृहस्थ शय्यामें विछाकर सो जाते हैं उससें भी किलामना होती है; किन्तु जो पुष्प प्रभुजीकों चढते हैं उनकों तो अपने आयुष्यतक अवाधा रहती है. फिर तुम कहोगे कि पुष्पकों सूइसें छेदकर गुंथनेसें

किलामना हुवे निगर क्यों रहे ? तो उसके जवाबमें यही खुलासा है कि, जो पुष्पकी दांडी पोकल हो उसमें डोरा पिरोना शास्त्रमें कहा है, वास्ते उस मुजब काम करनेसें बाधा नही होगी. पुष्प छेदके पिरोकर या कची कलींयें पिरोकर हार बनाके चढानेकी रीति प्राचीन नही, मगर अर्वाचीन-नवीन रीति मालूम होती है ऐसी रीति पडनेसें कितनीक दफै गुथन कियेहुवे पुष्प नहीं मिलते हैं तब विधि पूर्वक पूजा करनेके रसिक पुरुषोंकोंभी सीए हुवे फूल चढाने पडते हैं, सो अपवाद समझकर चढाते हैं, सबब कि जो वो हार न चढावे तो बिल्कुल पुष्पहार चढ सके नहीं वास्ते योग बन सके वहां तक गुथेहुवे फूल चढाना यही श्रेय है प्रभु भक्ति करनेमें कदाचित् अल्पहिंसा होवे तो उसपर आवश्यकजीमें कुवेका दृष्टांत दिया है. जैसे कुवा खोदनेमें कष्ट पडता है, मगर हमेशां पानीका सुख होता है' वैसेही प्रभुपुजनमें अल्पहिंसा होवे, मगर अंतमें मुक्तिके सुखकी प्राप्ति होती है इसलिये श्रावकको अष्टप्रकारी पूजा करनेका महानिशिथ सूत्रमेंभी कहा हैं

२९ प्रश्नः—नैवेद्य-पकाया हुवा धरना ऐसा किस शास्त्रमें कहा है ?

उत्तरः—श्राद्धविधिमें कहा है, फिर श्राद्धविधिमें निशिथ चूर्णी वगैर. के दृष्टांत दिय हैं आचारोपदेश, अष्टप्रकारी पूजाकारास, तथा सकलचंदजी उपाध्याय प्रमुख विरचित पूजाओंमेंभी कहा है वे शास्त्र देखनेसें विस्तार युक्त मालूम हो जायगा. सामान्य प्रकारसें नैवेद्य चढानेका तो महानिशिथ, पंचाशकजी, प्रवचन सारोद्धार, योगशास्त्र आदि बहुतसे शास्त्रोंमें कहा है.

३० प्रश्न'—दीपकपूजा कौनसें शास्त्रमें कही है ?

उत्तर'—महानिशिथसूत्रमें अष्टप्रकारी पूजाका अधिकार चला है, वहां कही है. प्रभुके जन्म समय दिग्कुमारीकाओंने दीपक किये हैं-वगैर वर्णन जंबूद्वीपपन्नतिमें है, और आवश्यकसूत्रमें भी कहा हैं

३१ प्रश्नः—गुरुभक्ति किस प्रकारसें करनी ?

उत्तरः—गुरुको देखते ही दोनू हाथ जोडकर नमस्कार करना गुरु कुन्छ काममें न लगे हो तो खमासमण देकर वंदन करना इच्छकार पूछकर अभूट्ठियो

अभ्यंतरसें खमाना. गुरु खडे हों तों खडेही रहना. गुरुके वचनकी अवगणना नहीं करना. वस्त्र, पात्र, औषध, पाट, पटरे, रहनेकी जगह आदि जो कुच्छ चाहियें सो हाजिर करना. अपनी पास न हों तों जिसकी पास हो उसकी पास गुरुजीकों लेजाकर दिल्वा देना. किसी प्रकारसें उन्होंका वचन नहीं लोपना. गुरु महा उपकारी हैं, वो उपकारीके उपकारका बदला किसी दिन नहीं दिया जायगा; वास्ते यथाशक्ति गुरुभक्ति करना. तन, मन और धन अर्पण करना. शायद गुरुमहाराजके काममें तमाम दौलत व्यय हो जावें तोंभी व्यय करनेमें किंचित्भी अंदेशा नहीं लयाना. ऐसा भाव जिनकों हो जाता है उनकों अवश्य-निश्चय समकित होता है. उनमें जितनी कसर-कचास हो उतनीही समकितमेंभी न्यूनता जाननी. वास्ते देवगुरुकी भक्तिमें कोइभी तरहसें कमीना नही रखनी. गुरु महाराज एक कौडीभी आप नहीं लेते हैं. किसी वक्त अकस्मात् धर्म संबंधी हरकत आ पडी हो और उस कार्यमें पैसे खर्चने पडे वैसा हो-औषधमें वापरने हो, पुस्तक लिखवाने हो-आदि धर्मके कार्यमें पैसेकी जरुरत हो उस वक्त गुरुमहाराज वापरनेका उपदेश करते हैं; वास्ते बिलकुल् मनकों पीछे न हठातें प्रसन्न होकर द्रव्यका सदुपयोग करना.

१२ प्रश्नः—गुरु लोभी हो तो कैसें करना?

उत्तरः—गुरुमहाराज लोभी होवेंही नहीं, जो अपनें शरीर, शिष्य और श्रावककी आशा नहीं रखते हैं वो धनकी आशा क्यों रक्खें! वास्ते उन्होंमें लोभी होनेकी शंका करनीही नहीं. वे फक्त शरीर संरक्षणके लिये प्रमाणोपेत वस्त्रकों ग्रहण करते हैं और शरीरद्वारा ज्ञानदर्शनचारित्रका आराधन किया जाता है उससें शरीरकों शुद्धमान आहार देते हैं-इंद्रियोंकी पुष्टिके लिये तों आहार भी नहीं लेते हैं. उसमें भी जो आहार गृहस्थने अपने वास्ते बनवाया हो वही लेते हैं, उनमेसेंभी इस अंदाजसें ग्रहण करते है कि उन गृहस्थको फिर न बनवाना पडे, और फिर नयाही बनवाना पडेगा ऐसा मालूम हो जाय तौ बिलकुल् नही ग्रहण करते हैं. आहारके संबंधमें ऐसे निरिच्छावान् होते हैं तौ फिर दूसरा लोभ तो करें ही

किसलिये ? उन्होंकों एक कौडी भी पास नही रखना ह, और जिन्होंने रक्खी हैतो उन्होंकों शास्त्रमें गुरुबुद्धिसें (गुरु) मानने नही कहे है. जिनाज्ञा विरूद्ध अैसे वेषधारी द्रव्यलिंगी, पासथ्थादिक द्रव्य रखनेवालेकों जो गुरुबुद्धिसें मानते है उनकों मिथ्यात्व लगता है

३३ प्रश्नः—कोइ अैसा कहता है कि–ज्ञानसे करकें ही धर्म होता है, क्रिया वो तो सीफकर्म है, उससें क्रिया करनेसें धर्म नही होवे, वास्ते कभी क्रियारुचि न होवे तो भी ज्ञान पढे हुवे होवें तों उनकों गुरु माननेमें क्या हरकत है ?

उत्तर—शास्त्रमें समकित करकें सहित हो उनकों ही ज्ञान कहते है और जिनकों समकित हो वो तो भगवतकी आज्ञाके आराधक होते है, जो आज्ञाके आराधक होवे वे क्रियासें विमुख होवेंही नही, कारणकि ज्ञानद्वारा अपने आत्माका और पुद्गलका स्वरूप जान लिया है उससें वे जानते है कि " अहा ! यह पुद्गल तो जड पदार्थ है, पुद्गलकी वशीभूततासें करकें विपरीत बुद्धि हुइ उससें पर वस्तु जो धन–धान्य–और स्त्री–कुटुंबादि उनकों इस जीवन अपनी करकें मान लि है और उसीसें कर्मबंधन करकें चारों गतियोंमे घूमकर अनेक प्रकारके दु ख भुकते इस भवमें भाग्योदयसें श्री जिनराजजीका मार्ग प्राप्त हुवा ओर कर्मने विवर–रस्ता दिया उससें मेरेकों संयमकी प्राप्ति हुइ है, तो अब मुझकों आत्मतत्वमेंही रमण करना योग्य है अनादि कालकी जीवकों परभावमें रमण करनेकी आदत है, उसीसें मेरी दशा वेर वेर पुद्गल भावकी होती है वो बदल डालनेके लिये अशुभ क्रिया छोडके शुभ क्रियामें प्रवर्त्तना योग्य है " इस तरहकी भावनासें संयमकी क्रिया करते हैं और वो क्रिया कर्मनिर्जराकी हेतुभूत होती है. फिर योगादिककी जो शुभ प्रवृत्ति होती है उससें यदि शुभकर्म बंधाजाता है, परंतु वो कर्म मुक्ति प्राप्त करनेमें सहाय्यकारी होते है–विघ्नकारी नहीं होते है अैसे शुभ कर्मके योगसें आर्यक्षेत्रमें जन्म, पांचो इंद्रियें संपूर्ण, धर्मिष्ट कुल, धर्मकार्यमें स्वजनादि अनुकूल, निरोगी शरीर, और देवगुरूकी योगवाइ–इत्यादि साधनोंकी प्राप्ति होती है. यह साधन मिले विगर जीवसें मुक्ति मार्गका आराधन नहीं हो सकता है जो ज्ञानवान् है वे सहजसें ही क्रियामें प्रवर्त्तते है ज्ञा

गुणद्वारा वस्तु स्वरूपकों जाननेसें संसारकी अनित्यता समझकर जिन्होंने चारित्र अंगिकार किया है वैसे मुनिराज हरदम शोचते है कि-सब जीव सत्तासें करकें समान हैं; लेकिन कर्मसें करकें अलग अलग गति प्राप्त हुवे हैं, वै सब सुखके अभिलाषि हैं. दुःखका नहीं चाहते हैं. जैसे मेरे शरीरकों कोइ पीडा प्राप्त करता है तौ मुझकों दुःख होता है, वैसेही सब जीवोंकों भी दुःख होता है; उस वास्ते किसी जीवकोंभी दुःख देना योग्य नहीं है अैसे विचारसें वै, जबजब उठते हैं-बैठते हैं-सोते हैं-चलते हैं, तब तब यत्नापूर्वक प्रवर्त्तते हैं. फिर पडिलेहण भी उसी लि-येही करते है कि वस्त्रमें कोइ जीव हो तो शरीरकों लगनेसें उनको पीडा उत्पन्न होवै. फिर प्रतिक्रमणकी क्रिया करते हैं उनका कारणभी अैसा है कि आप आत्मास्वभावमें रमणता करनेकों चाहते है; परंतु जीवकों अनादिकालका मोह प्रवृत्तिका अभ्यास बना हुवा है उसके जोरसें जो नही करने लायक प्रवृत्ति हो जाती है सो आपके मनमें अनिष्ट लगती है और उसकी निंदा गर्हा तौ कायम हुवा करती है; परंतु प्रतिक्रमणमें विशेष प्रकारसें करनेका बन शके वास्ते प्रतिक्रमण करते हैं. यथाशक्ति तप करते हैं, उसमें भी अैसा भाव प्रवर्त्तता है कि आहार करना वो मेरा स्वभाविक धर्म नही है, मगर अभी तक पुद्गलमें रहा हुं इस्सें ज्ञान ध्यान भले प्रकारसें होनेके लिये इस शरीरकों निर्वद्य आहार देता हुं; तौभी थोडी थोडी तपश्चर्या करुं तौ उस्से कुच्छ ध्यान ज्ञानमें हरकत नहीं, होगी, मगर शुभ भावके योगसें ज्ञान ध्यानकी वृद्धि होगी; वास्ते यथा शक्ति तपस्या करुं-अैसी भावना होनेसें ज्ञानीकों सहजमें तप भी बन आता है. वास्ते ज्ञानवंतकों क्रियाकी रुचि न हो यह बात संभवित ही नहीं है; लेकिन जो फक्त लोकरंजनार्थ ज्ञान पढे हुवे होते हैं उन्होंकों क्रिया रुचि नहीं होती, तौ वै कुच्छ जैनमार्गमें नहीं हैं? श्रीविशेषावश्यकजीमें क्रियारुचि रहित जीवकों अज्ञानी कहे हैं. तौ वैसे अज्ञानी गुरु करने योग्य होवेही नहीं. उनकी संगत करनेसें उनके जैसी विपरीत बुद्धि और मिथ्यात्व प्राप्त होवे, इसालिये भगवंतकी आज्ञा मुजब चलनेवालेकों ही गुरुमानने चाहिये.

३४ प्रश्न:—गुरुमहाराज न हो तो धर्मकरणी किसके आगे करनी ?

उत्तरः—जैसें देवके अभावसें देवकी मूर्ति, तैसें गुरुके अभावसें गुरुकी स्थापना जाननी. उनमें मुख्य अक्ष, सो गोलाकारका काठा समझना वे तीन, पांच सात या नव आवर्त्तवाले हो तो श्रेष्ट गिनेजाते हैं उसका फल श्री भद्रबाहुस्वामीकृत स्थापनाकुलकमें विशेष प्रकारसें दर्शाया है श्री यशो विजयजी उपाध्यायनें स्थापनाकी सज्झाय बनाइ है उनमें भी उनका फल तथा विधि बताया है ऐसे अक्षके स्थापनाचार्य स्थापितकरकें उनके सन्मुख क्रिया करनी. उनका योग न बन सके तो ज्ञान दर्शन और चारित्रक उपकरण-मुख्यत्वमें पुस्तक नौकरवाली-माला मुहपत्ति स्थापना करनी श्री ठाणागजी सूत्रमें दश प्रकारकी स्थापना कही है, सो स्थापित करकें पचिंदियसें उनमें गुरु महाराजके गुणका आरोपण करना और पीछे उनकी समीपमें विधि करना

३५ प्रश्नः—धर्म वो क्या है ?

उत्तरः—धर्म दो प्रकारके है अर्थात् आत्मिक धर्म और व्यवहारिक धर्म ये दो हैं.

३६ प्रश्नः—आत्मिक धर्म सो क्या ?

उत्तर.—आत्मिक धर्म सो आत्माका लक्षण यानि अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनत चारित्र ओर अनतवीर्यादि उनमें रमण-करना वही आत्मिक धर्मका आराधन समझना

३७ प्रश्नः—अनतज्ञान किसकों कहते है ?

उत्तरः—अनत पदार्थोंका और तीनू कालका स्वरूप जाननेकी आत्माकी शक्ति है वही अनतज्ञान

३८ प्रश्न'—आत्माकी ऐसी शक्ति है तो वो मालूम क्यों नहीं होती ?

उत्तर —आत्मा कर्मसें करकें आच्छादित हुवा है उससें उनकी शक्ति नहीं चल सकती है

३९ प्रश्न —आत्मा कर्मसे कबसें करकें आच्छादित हुवा है ?

उत्तरः—आत्मा अनादि कालसें कर्मसे आच्छादित है वो किसी समयमें भी निर्मल होताही नहीं जैसें सुवर्ण खानीकी अदर मूलसेंही मिट्टीके साथ मिलाहुवा है, तैसें जीवके लियेही समझना

४० प्रश्नः—कर्म वे क्या ? और वे जीवके साथ कैसी रीतिसें भेलसेल हुवेले है ? फिर अनादिके कर्म हैं वही चले आते हैं या फेरफार होते है ?

उत्तरः—कर्म वो जड पदार्थ है, जो चर्म चक्षुद्वारा मालूम होता है वो सब जड पदार्थही है, जीव नजर नहीं आते है. जड पदार्थ विचित्र प्रकारके रूप धारण करते हैं. मनुष्यके शरीररूपसें मिले हुव हैं वोही अलग अलग हो कर फिर भस्मरूप होजाते है, वक्तपर अग्निरूप होजाते हैं और वही पीछे पृथिवी, जल, वायु, वनस्पति, तथा जानवरोंके रूपको धारण करते हैं. जीवके, शरीरमेंसें अलग पडे हुवे पुद्गलोंके विचित्र घाट बनते हैं. जीवने ग्रहण न किये हो वैसें छूटे पुद्गलोंके भी स्वभाविक अनेक रूप बनते हैं आकाशमें लीले—हरे पीलेरंग मालूम होते हे वो स्वभाविकही बनते हैं. अैसे पुद्गल परमाणुए मिलकर कर्मयोग्य पदार्थ होता हैं. वैसा कर्मपदार्थ आत्माके साथ अनादिकालसें मिलगया हुवा हैं, वो ज्यौं ज्यौं भुके जाते हैं त्यौं त्यौं अलग होतें जाते हैं और पीछे नये बंधाते हैं. अैसें श्रेणी प्रश्रेणी चलीही आती हे. जैसें चिकनाइवाले पदार्थकों धूल लगती हैं, तैसें जीवकों रागद्वेषकी परिणतीरूप चिकनाइ के योगसें कर्मके पुद्गल आकर लिपट जाते हैं.

४१ प्रश्नः—जीव और पुद्गलका कर्त्ता कोइ है ?

उत्तरः—ये किसीके बनाये हुवे नहीं हैं यानि उसका कर्त्ता कोइ नहीं हैं. फिर न्यायसें शोचनेसें इसका कर्त्ता कोइ हो सके भी नहीं. जो उसका कोइ कर्त्ता—बनानेवाला हो तो वो शरीरधारी होना चाहियें यानि उसका बनानेवालेकाभी फिर बनानेवाला कोइ होनाही चाहियें. फिर जब जगत्में कोइ पदार्थही न होवे तब जीव और पुद्गल क्या पदार्थ न बना सके ? फिर जो जीवका कर्त्ता हो तो वो पापकार्य करनेवालेकों—पैदाही नही करै, और जगत्में तो अैसेही मनुष्य ज्यादे नजर आते हैं ! कभी कोइ कहेगा कि—बनाये गये जब तो अच्छेथेः लेकिन पीछेसें बिगड गये. तो बनाने वाले ज्ञानीकों अैसाभी ज्ञान होना चाहिये कि ये पीछेसें बिगड जायेगेः वास्ते इनको बनानेही न चाहिये. साधारण मनुष्य भी जो

किसी कार्यका बुरा परिणाम आनेका जान लेवे तो वो कार्य नहीं करता है, तब जो सर्वज्ञ है वो तो तीनू कालका स्वरूप जान सके तो फिर पीछेसें विगड ऐसे प्राणीयाकों क्यों बनावे ? फिर इश्वर समदृष्टिवाला होनेसें एककों मनुष्य बनावें और दूसरेकों जानवर बनावे, एककों सुखी बनावे और एककों दुःखी बनावे ऐसा होनही नहीं उनका विचार तो सबकों सुखी बनानेकाही होना चाहियें, और ऐसा तो जगत्में किसी जगहभी नजर नहीं आता है उसीसें मालुम और साबित होता है कि जगत्का बनानेवाला इश्वर नहीं है इश्वरको जगत् कर्त्ता मानना ये वास्तविक नहीं है फिर कितनेक कहते है कि–यह तो सब इश्वरकी इच्छाद्वारा ही बनता है यह कहनाभी असत्य है, क्याकि जो जो धर्मवाले मुक्तिकों मानते है और मुक्ति मिलानेके लिये उद्यम करते है उनके शास्त्रमें अतमें क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारोंसे मुक्त हो जाता और समभावमें रहना उसीका नामही मुक्ति कही है तब शोचोकि दूसरोंकों तो इच्छासे मुक्त होना कहते है और आप यह जगत् उपजानेकी इच्छा करते है ये बात क्योंकर सभवे? जैसे आधुनिक समयमें कितनेक धर्मगुरु नाम धारण करनेवाले आप खुद द्रव्य रखते है, स्त्रीका आनद लेते है और उनके दूसरे सेवक लोगोंको उपदेश करते है कि– " द्रव्य अस्थिर है, अर्थ अनर्थका मूल है, स्त्रीकी सोबतसे अनेक प्रकारके कर्म बधे जाते है, वास्ते तुम लोग द्रव्य और स्त्री इन दोनुका त्याग करो जिससें तुमको बहुतही लाभ–फायदा होगा ! " इस दृष्टात मुजब जगत्के करनेवाले इश्वर आप तो खुद राग द्वेपसें मुक्त हुवेही नहीं है और दूसरोंकों मुक्त होनेका कहते है, वास्ते असा कथन इश्वरका होवेही नहीं असी बातें करनेवाले इश्वरके स्वरुपकों नहीं समझते है और नाहक इश्वरकों दूषण लगाते है इश्वर तो समस्त प्रकारकी राग द्वेपकी परिणतीका त्याग करनेवाले होते है किसी प्रकारकी उपाधि उन्होंको होतीही नहीं, ससारी काम कोइभी उन्हें करनेका नहीं होता है ससारी काम तो देहधारी मनुष्य–प्राणी करते है इश्वर देह रहित हुवेले है अपने

आत्मस्वभावद्वारा सब पदार्थोंको जानते देखते हैं; लेकिन उसमें परिणमते नहीं हैं. इश्वरका सच्चा स्वरुप इस मुजब होनेसें वे जीव या पुद्गलके कर्त्ताही नहीं हैं. जीव और पुद्गल पदार्थ अनादि कालसें स्वभाविकपनेसेही है ऐसा समझ लेना.

४२ प्रश्नः—आत्माके चेतन गुणको कर्मजड होनेसें किसतरह ढांप सकै? या वेष्टित हो सकै?

उत्तरः—अपनी नजरसें प्रत्यक्ष देखते हैं कि बुद्धि अरूपी है; तदापि मदिरापान करनेवालेकी बुद्धि भष्ट होजाती हैं और उसका केफ चढता है तब ज्यों त्यों बकता है, तो मदिरा जड होनेपरभी बुद्धिको क्यों ढांप देती है? फिर केफ उतरता है उस पीछे बुद्धि मुकामपर आती है, तैसें कर्मभी ऐसाही पदार्थ है, उसके संयोगसें आत्माका ज्ञान गुण लुप्त होता है. जैसें परदेमें रही हुइ वा मैलके जथ्थेसें लिप्त हुइ वस्तुओंका सच्चा स्वरूप नजर नहीं आता है, तैसें कर्मरूप मेल लगनेसें आत्माकी शक्ति और स्वरूप नजर नहीं असकता है.

४३ प्रश्नः—आत्मा निरंतर कर्मसेंकरकें आच्छादित हुवाही रहता है कि उसमें फेरफारभी होता है? और वो किसी वक्तभी शुद्ध होगा या नहीं?

उत्तरः—आत्माके ज्ञानको कर्मकी नशा लगाहुवा है. नशा करनेवाले मनुष्यको यदि कोइ भारी फिक्रकी वात करै या तो खटाइ वगैरः नशा उतर जानेकी चीज खिला देवे तो उसका नशा उतर जाता है, वैसें प्राणीकाभी गुरुमहाराजके योगसें या पूर्वके क्षयोपशमद्वारा जब अपने आत्माका सच्चा स्वरूप समझा जाता है और पुद्गलके संगसें अनादि काल संसारमें परिभ्रमण करनेका समझा जाता है, तब उससें भय पाता है और कर्मका नशा उतर जाकर ज्ञानदशा जाग्रत होती है. उस वक्त शोचता है कि, 'जो मैं सुख मानता हुं वो तो जडपदार्थद्वारा मात्र मान लियाहुवा सुख है, उससें मेरे आत्माको तो सुख नहीं मगर उलटा कर्मबंधनरूप दुःख है. फिर वो सुख जैसें फांसी चढानेवाले मनुष्यको अच्छी अच्छी चीजें खानेको देते हैं किंतु थोडी देर पीछे फांसीपर लटका दिया जाता है

उनके जैसा है समारमुखकी ल्गीनताभी अैसीही है, सबब कि अभीके समयमें ज्यादेमें बडा बहुतकरके आयुष्य सौ वर्षका होता है, तो उतने समय तक सुख भुक्तना और पीछे उन्सें भये हुवे कर्मबंध नद्वारा नरकमें जाना पडे वहा सागरोपमके आयुष्य होनेसें असख्य वर्ष पर्यंत दु.ख भुक्तना उनके प्रमाणमे मनुष्यभवका सुख कुच्छ हिसाबमें नहीं कभी मरण हुवे बाद नरकमें न जातें मनुष्यगतिमें जानेका होवे तो वहा स्त्रीकी योनिमें अत्यत अशुचिवाले स्थानकमें बेसुमार दुर्गधिका अनुभव लेते हुवे उत्पन्न होना और वहा उंधे शिरसें नौ मास तक रहना–अैसे गर्भावासके दु.ख भुक्तना पडे तियच गतिमें जानेका होवे तो वहाभी क्षुधा, तृषा सहन करनी पडे और दूसरेभी अनेक प्रकारके दु.ख भुक्तने पडे, वास्ते अैसे पुद्गलीक सुखकों में सुख नहीं मान लुगा. ” अैसी भावना आनेसें सासारिक सुखकों सुख माननेरूप नशा उतर जाता है यौ करते हुवे कदापि सहन नशा न उतर जावे तो उनके निवारणके लिये तप सयमरूप औपधका उपयोग करकें मोहजन्य नशा उतारता है तप सयमादिद्वारा ज्यौं ज्यौं कर्म नाश होते जाते है त्यौं त्यौं आत्मा शुद्ध होता जाता है तो पीछे जो सुख दु.ख प्राप्त होता है उसमें समभाव रखता है और सोचता है कि–‘ देहके साथ रहकर मैंने जो जो कर्म बाध लिये है वो वो देहकें सबधसे उदयमे आनेसें भुक्तेजा है, उसमें मुझे शातपणेसें दूर–अलग रहनाही योग्य है, किंतु मुझको दु.ख होताहै, मुझको सुख होता है अैसा शोचना योग्य नहीं है ’ अैसी विचारनासें नशा उतरता जाता है और सावधानी बढती जाती है उनमे भी जैसें दूसरी दफे नशा करता है तो फिर बुद्धि आच्छादित हो जाती है तैसें गुरुमहाराजके उपदेशसें शुद्ध भाव आनेपरभी फिर संसारके सुखमें गिरजाता है तो फिर ज्ञान आच्छादित हो जाता है ’ कितनेक मनुष्य अैसे दृढ होते हैं कि अेक वेर नशा उतरे बाद उनका गैरफायदा समझकर दूसरी वेर कभीभी नशा नहीं करेंगे उसीतरह कितनेक अल्पससारी जीव तो धर्म श्रवण किये पीछे दिन प्रतिदिन आत्माकी शुद्धता किये जाते है और अतमें सर्वज्ञपना

संपादन करते हैं, उन्होंका ज्ञान पुनः आच्छादित नहीं होता है, सदा काल अेक समानही रहता है और पुनः उनकों संसारमें भी नहीं आना होता है.

४४ प्रश्नः—कर्मसें रहित हो जाय उनकों फिर कर्म नहीं लगते हैं?

उत्तरः--राग द्वेषरुप चिकनाइ योगसेंही कर्म लगते हैं. और रागद्वेष है सो कर्मके योगसें होते हैं; वे कर्म निकल गये कि उनका योग नहीं रहता है और रागद्वेषमय परिणति नहीं रहती है, वास्ते कर्म नहीं लगते हैं. जैसें कि दूधकी अंदर घी रहा हुवा है उसकों निकालनेकें लिये पहलें दहीं बनाना, पीछे उसकों विलोकर मख्खन निकालना, पीछे मखनकों तपाकर घी बनाना. वो निकाले हुवे घीका पुनः दूध नहीं हो सक्ता है—घीही कायम रहता है, उसीही तरहसें आत्माके अनुक्रमसें प्रगट हुवे गुण आच्छादित नहीं होते हैं.

४५ प्रश्नः—कर्मआते है वो नजर नहीं आते हैं; वास्ते आते हैं अैसा कौनसे अनुमानसें सिद्ध हो शके?

उत्तरः—कर्म पुद्गलिक पदार्थ हैं. ठंडी के ठंडे पुद्गल जब अपनेकों स्पर्श करते हैं तब जानते हैं कि ठंडी लगती हैं; परंतु अपन ठंडीके पुद्गल नहीं देख सकते हैं, तोभी निश्चय करते हैं कि ठंडे पुद्गल स्पर्श करने लगे. सुगंधीके पुद्गल नही देख सकते हैं, मगर नॉकमें खुशबु मालूम होनेसें समझनेमें आता है कि यहांपर कोइ सुगंधी—पदार्थ है. गर्मी लगती है; लेकिन उसके आतेहुवे पुद्गलोंकों नही देखते हैं. हवा चलती है उसकों नहीं देख सकते हैं; मगर शरीरकों स्पर्श होनेसें जाना जाता है कि हवा चलती है, तैसे कर्म आते हैं वो अपनकों नजर नहीं आते; लेकिन जब कर्म उदय आते हैं और उनके फल देखनेमें आते हैं तब सिद्ध होता है. अगाडीके जन्मोंमें कर्म बांधे हुवे होते हैं उनके योगसें सुख दुःख प्राप्त होता है. कोइ सुखी, कोइ दुखी अैसा सब जगह मालूम होता है. कोइ मनुष्य वर्त्तमानकालमें अच्छे कृत्य करता है, फिर अकलमें भी खामी नहीं है, दुःख होवै वैसा कार्यभी अभी नहीं करता है; तौ भी वो दुःखी होता है ये सब पूर्व कर्मके योगसें समझना. फिर कितनेक मनुष्य लुचाइ, ठगाइ, चोरी वगैरः करते

हैं, झूठ बोलते है, अच्छे मनुष्यपर कलङ्क धर देते हैं, हिंसा करनेमें तत्पर होते हैं—असे अधर्मी—अधर्मके करनेहारे सुखी मालूम होते हैं, उसका सबब इतनाही है कि इस जन्ममें जो सुख भुक्तता है सो पूर्वजन्ममें कियेहुवे सुकृतके लियेही है असा समझना, परतु इस जन्मम कियेहुवे कृत्यके फल आते जन्ममें भूक्तने पडेंगे क्वचित् इस जन्मकें कियेहुवे धर्म इस जन्ममेंभी उदय आते हैं. कितनेक राजा परस्त्रीके लपटपनेसें इसी जन्ममें ही राज्य खोकर कैदमें गिरफतार हो जाते हैं. चोरी करनेवालेभी इसी जन्ममें तुरत कैद हो जाते हैं—यह सब कर्मकीही विचित्रता हैं जुलाबकी दवा असी जल्लाद होती है कि उसकी फौरन असर होती है, और दूसरी दवा असी होती है कि जिनकी असर दो चार घंटेके बाद होती है मनुष्य विष खाता है उसमें कोइ विष असा होता है कि खा लिया या सूघालिया के तुरत मर जाता है, और कोइ विष—झहर असा होता है कि मनुष्यकों दीर्घ—लंबे वक्त तक पीडित करकें फिर मार देता है, तेसें कर्मभी विचित्र प्रकारके हैं, वे किसीकों तुरत और किसीको जन्मातरमें प्राप्त होते है कर्मके अनुसार मनुष्यकों जुदी जुदी योनियें प्राप्त होती हैं कोइ कहेगा कि इसकी सबूति क्या? तो समझना कि—किसी वक्त मनुष्य मरकें व्यतर होता है और वो आकें उनके कुटुंबके पूछे हूवे सभी जवाब देता है, उसपरसें दूसरा भव सिद्ध होता है, और उन्होंकों प्रतीति करा देता है अपनी करणी माफक जीव दूसरी गतिमें जाता है सब बातें कर्मके सबधसेंही बनती है पुन मत्रवादि सापके मत्र पढते है उस वक्त मत्रके अधिष्ठायक देव सॉपके विषको शरीरमेंसें हरण कर लेते हैं, उसपरसें देवकी जाति भी सिद्ध होती है. जब दूसरी गति है, तब कर्म विगर दूसरी गतिमें कौन लेजावे? इस अनुमानसें भी कर्म सिद्ध होता है

४६ प्रश्न —कर्मके सयोगसें परिणाम बिगडते है—और नये कर्मबधे जाते है—इसी तरहसें परपरा चली जाती है तब कर्मसें मुक्त किस प्रकारसें होवे?

उत्तरः—कर्म दो प्रकारके है—अेक उपक्रमी और दूसरा निरुपक्रमी—उसमें जो निरुपक्रमी कर्मबधे हूवे होते है तो भुक्तने विगर छुटकारा नहीं होता

है, और उपक्रमी कर्मबंधा हुवा होता है तो आत्माकी विशुद्धतासें गिर जाता है और अधिक विशुद्धता प्राप्त होती है. जैसेंकि कितनेक रोग असे होते है कि जन्मपर्यंत–अंततक भुक्तने विगर छूटकारा नहीं होता है और कितनेक रोगकी औषधीका प्रयोग करनेसेंही शांति हो जाती है. जैसें जो गुरुके संयोगसें ज्ञान होता है वो ज्ञानवंत जीव पापका उदय होवै तब शोचता है कि मैंनें अज्ञानतासें कर्म बांध लिये हैं वे भुक्ते विगर छूटकारा ही नहीं है; वास्ते मुजको विकल्प करना दुरस्त नहीं. बुरे काम किये उनकी यह शिक्षा भुक्तनीही चाहियें. असी सुंदर भावना ल्याकर जब जीव समभावमें रहता है तब वो उपक्रम कर्मको उपक्रम लगता है और उस्सें जल्दी उन कर्मका नाश हो जाता है. यहां आत्माकी पुद्गल संयोगसें राग द्वेषरुप परिणति न हुइ वोही चिकनाइ कम हुइ उससें पूर्वके जो कर्म थे वो गिर पडे. फिर शुभ कर्मको भी उपक्रम लगता है सो इस रीतिसें कि–जब जीवको पुण्योदयसें धन–दौलत–पुत्र–मकान–दुकान वगेरः सब चीज सुंदर मीलती है, तब जीव अहंकारमें लीन होता है. इस मुजब अहंकार करनेसें शुभकर्मको उपक्रम लगता है. सबब जो शुभकर्म बंधाते हैं वे मंद राग द्वेपसें बंधाते है और जब अहंकारादि जोर करते हैं तब तीव्र रागद्वेष होता है वो अशुभ है और अशुभ है उस्सें शुभके पुद्गल भुक्ते जावें तब शुभ कमी हुवा यही उपक्रम लगा. वास्ते उत्तम पुरुषको चाहे उतनी ऋद्धि मिलजाय तौ भीवे अहंकार नहीं करते हैं; लेकिन भावना भाते है कि–" पूर्वमें मैनें धर्मकरणी की उनके प्रभावसें शुभ कर्म उपार्जन हुवा है अब मोहके वश होकर मै अहंकार करके कर्म बांधुंगा तौ फिर दुर्गतिमें जाना पडेगा. यह पुद्गलिक सुख तौ अस्थिर है, संसारी वस्तुओंका योग सो तो वियोग संयुक्त है वास्ते उसमें मद करना वो योग्य नहीं है. फिर असे सुखमें मग्न होना वो भी योग्य नहीं. मुजे तौ आत्मस्वभावमेंही स्थिर रहना वोही योग्य है ". असी भावनाका उपयोग करनेवाले उत्तम जीवके शुभकर्मको उपक्रम नहीं लगता है; मगर शुभकर्म पुष्ट होतेहैं.

४७ प्रश्नः—शुभकर्म पुष्ट होनेसें वेभी मुक्तिकों रोक्ते है वास्ते पुन्य तथा पाप दोनू त्याग देने योग्य कहे हैं उसका क्या?

उत्तर.—जैसे शुभकर्म बाधनेके वक्त राजा, चक्रवर्ति, देवता, शाहुकार इत्यादि होकर पुद्गलिक सुख भुक्तनेकी इच्छा रखनेसें जो पुन्य बधाता हैं तैसे पुन्यकी इच्छा रखनेका तो निषेधही है अैसी इच्छा तो रखनी ही नहीं; कारण कि अैसी इच्छासें करकें जो पुन्य बधाजाता है वो पापानुबधी पुन्य बधाजाता है उस्सें वो पुन्य भुक्तनेमें फिर पाप बधाता है और उनसें आत्मा मलीन होता है, दुर्गतिके दु.ख भुक्तने पडते हैं और आत्माकी शुद्धि नहीं होती है, परतु जिन पुरुषोंको पुद्गलिक सुखकी इच्छा नहीं है और आत्मिक धर्म प्रकट करनेके लिये उद्यम करते हैं उसमें शुभ योगकी प्रवृत्ति होनेसें जो शुभकर्म बधे जावें उनसें आत्मधर्मकों विघ्न नहीं होता है. सबब कि ज्यौं ज्यौं गुणस्थानक चढता जावे त्यौं त्यौं पुन्यराशि बढती जाती है, मगर उपरके गुणस्थानमें उनकी स्थिति नहीं पडती है मतलब यह कि जिन जिन पुरुषोंनें श्रेणी मांडी है उनकों मुक्ति नजदीक है. फिर पुन्यराशि ज्यादे और स्थिति अल्प है उससें अल्प कालमें बहुत सुख भुक्त कर वे मुक्तिमें जाते हैं मुक्तिकी अटकायत नहीं होती. जैसें खेतमें जुवारी बोते हैं उनकों जुवारीकी जरूरत है, फडबिनकी जरूरत नहीं है, लेकिन सहजसें फडबिन पैदा होती है उसमें भी फिर पाहेले तो फडबिन देखनेमें आती है उस्सें 'यह तो फडबिन है' अैसा शोचकर फडबिनकों उखाड डाले तो जुवारी भी न देखे, तैसें शुभ योगकी प्रवृत्ति करने के समय अैसा शोचे कि यह तो पुन्यकरणी है, इनसें आत्माकों गुण नहीं होगा अैसा समजकर जो सरूस शुभकरणीका त्याग करे उनकों आत्मिकधर्म प्राप्त होनेका नहीं, और योगप्रवृत्ति बध होनेकी नहीं उस्सें अशुभ योगकी प्रवृत्तिसें अशुभ कर्म बधायगा और आत्मा मलीन होयगा, वास्ते ससार सुखके अर्थे शुभ वा अशुभ क्रिया त्यागने लायक है वो करणी आत्माकों गुण करनेवाली नहीं है. फिर गुणस्थानककी हद मुजब शुभ क्रिया भी त्याग की जाती है जैसेंकी श्रा-

वक पोषध करते हैं तब द्रव्य–पूजा प्रमुख नहीं करते है. और मुनि महाराज भी द्रव्यपूजा नहीं करते हैं. फिर मुनिमहाराज ध्यानरुप होते है उन औसरमें आवश्यकादि क्रियाकी भी अभिलाष नहीं करते है. अपने स्वभावमें ही लीन हो जाते हैं. परभावका विचारही नहीं करते, आत्माके गुण पर्यायकी रमणता करते हैं, चिदानंद सुखमें सदा मग्न रहते हैं; मगर उस ध्यानका काल अंतमुहूर्त्तका है. अेक ध्यान ज्यादे वक्त नहीं रहता है वास्ते जिस औसर ध्यान करते हैं उस औसरमें शुभ क्रियाकी अंदर चित्त नहीं रखते हैं और ध्यानसें रहित होवें उस औसर जिन जिन गुणस्थानमें जो जो क्रिया करनी व्याजवी हो वोही करते हैं. अैसे मुनि किसी प्रकारसें स्वप्नमें भी विषयकी वांछना नहीं रखते हैं. और जो विषयकी वांछासें मोहके वश होकर संयम प्रवृत्ति और श्रावकपनेकी प्रवृत्ति छोड देते हैं और मानते हैं कि हम आत्मज्ञान साधते हैं, वो कुच्छ जैनमार्गकी रीति नहीं है. जैनमार्गके जानेवाले श्री गणधर महाराज तथा आचार्यजी भी अपने गुणस्थान मुजब क्रिया करते हैं. जैसें कि स्थविर मुनिने आत्मस्वरूपकेही प्रश्न किये हैं. और गोतमस्वामीजीनें उनके उत्तर आत्मस्वरूपकेही बताये हैं. लेकिन उसबाद "चार महाव्रतरूप संयम था वो पंच महाव्रत रूप संयम प्रतिक्रमण सहित आदर ल्युं" यह अधिकार श्री भगवती सूत्रजीके पहिले शतकके नौवें उद्देशेमें छपी हुइ प्रतके १३१ मे पानेमे है; वास्ते गुणठाणेकी वर्त्तना मुजब क्रिया आत्मधर्ममें अटकायत नहीं करती है: तदपि जो प्रभुकी आज्ञासें विपरीत विचार स्थापन करते हैं वो सर्वज्ञके मार्गकी रीति नहीं है. सर्वज्ञ महाराजजीनें जिस मुजब सिद्धांतमें कहा है उसी मुजब चलनमें ही कल्यान है.

४८ प्रश्नः—आत्मा नित्य है कि अनित्य है?

उत्तरः—आत्मा सदाकाल नित्य है.

४९ प्रश्नः—जीव मरता है अैसा सब जगत् कहता है उसका खुलासा क्या?

उत्तरः—जीव नहीं मरता है; लेकीन कर्मके संयोगसें करके मनुष्य, तीर्यंच, नारकी, देवपना पाता है. उनके शरीर संबंधी पंचेंद्रिय आदि दश प्राण

बांधता है स्पर्शेंद्रिय सो शरीर, रसेंद्रिय सो जीभ, घ्राणेंद्रिय सो नाक चक्षु इंद्रिय सो आंख, श्रोतेंद्रिय सो कान–यह पांच इंद्रिय तथा मन बल सो मनकी शक्ति, वचनबल सो बोलनेकी शक्ति, कायबल सो शरीरकी शक्ति, श्वासोच्छ्वास और आयुष्य ये दश प्राण पूर्वक कर्मसें प्राप्त होते हैं और उनकी स्थिति पूरी हो जाय कि उनका विनाश हो जाता है–उसको जीव मरता है ऐसा लोग कहते हैं–सबब जो जीवका स्वरूप अरूपी है उसको कोइ देख सकता नहीं, और वो दश प्राणकों देखकर जीता है यौं कहते हैं. जब वो प्राण चले गये तब देह जीव रहित होता है उसको सबब कि जिस शरीरमें जीव रहताथा, उसी लिये ज्ञान रहित कहनेकी प्रवृत्ति है. पीछे जिस जगह जानेका कर्म बधा है उस जगह फिर थे वैसेही प्राण इकठे होते है और उपजते है वस्तुपनेसेंभी आत्माका विनाश नहीं होता जैसें सुवर्णके अनेक घाट बनते है यानि सुवर्णकी माला बनाइ और उनकों तोडकर फिर कटीमेंखला बनाइ. फिर उसकों तोडकर कडे बनवाये, मगर सब ठौर सुवर्ण तो कायमही रहता है, तैसें जो जीव पचेंद्रिय मनुष्य होता है वो एकेंद्रिय, बेंद्रिय, तेंद्रिय, चौरेंद्रिय, नारकी, देवता वगैर में जैसा जैसा कर्म बांधता है उस मुजब जाता है वहां आत्मप्रदेशका घाट फेरफार होता है जैसें कि हाथीके के शरीरमें आत्मप्रदेश महाकायमें व्याप्तमान हुवा रहता है और कथुए (अति सूक्ष्मजंतु विशेष) के शरीरमें कथुए जितना फैला हुवा रहता है- जिस मुजबका शरीर हो उस मुजब बडी छोटी अवगाहना बनती है दीपक करके उसपर टोकरा ढक देवें तो उतनेमेंही प्रकाश पडता है और वो टोकरा उठा लेकर दीपक घरमें रखदेवे तो तो सारे मकानभरमें उजाला करता है, वैसेंही आत्माकी अवगाहना–फेलाव–कमी ज्यादे होता है उसका नाम जैनशास्त्रमे पर्याय कहाजाता है- उसें आत्माद्रव्यसें नित्य हे और उपर मुजब पर्याय बदल जाता है उन अपेक्षासें अनित्य कहा जाता है अब आत्मा नित्य है वोभी प्रत्यक्षपनेसें समझा जाता है, जीव खुद इस भवमें मरगया नहीं है, मगर गतभवमें मरगयाथा उसें बाल्य, युवान और वृद्ध ये सबकों मरनेका भय है

'शायद मर जाउंगा' वो पूर्वकालमें मरगयाथा उसकीही संज्ञा चली आती है. जैसें कि मनुष्य निंद्वश हो जाता है, तब बेभान अवस्था होती है तौ भी दिनकों कप्पडका धंधा करता होता है तो कितनेक जन निंदमें धोती या हरकोइ कपडा हाथमें आवे तो फाड डालता है वो क्या है ? दिनकों काम किया हो उसके उपयोगकी ही संज्ञा है. तैसें निंदमें विचारभी हुवा करते हैं. जाग्रतावस्थामें जिसकों निरथे बजानेकी आदत है उसका चित्त अन्यकार्यमें होता है तो भी अंगुलीआं हिलती ही रहती हैं, तैसें पिछले भवकी संज्ञासें इस भवमें कार्य होता है, पिछले भवका तो भान नहीं होता; मगर पिछलेभवमें आदतथी वैसें किये करता है. जैसेंकि बालक जन्मता है और तीसरेरोज वो अपनी माताकों स्तन-पानके लिये विलग पडता है, उनकों स्तनपान करना किसने सिखाया? अगले जन्मकी संज्ञासेंही स्तन मुंहमें लेकर दुग्धपान करता हैं. कदापि कोइ अैसा कहेदे कि बच्चेकों उनकी मा मुँहमें देती है,; लेकिन मुँह हिलाना वो तो बच्चेकाही काम है, वो काम मातासें बन सके वैसा नहीं है. बास्ते पिछले भवकी वासनासेंही बनता है. छोटे बच्चेकों पैसा बतलाते हैं तौ तुरंत ले लेता है. स्त्रीकों देखकर विषय विकार होता है. स्त्रीभोग किसीने नहीं सिखाया है; मगर पूर्वक अभ्याससें वांछना होती है. फिर पूर्वभवमें धर्म किया होय वैसे बालकके अगाडी धर्मकी बात करैं तौ खुश होता है और वो संज्ञा नहीं होती है तो खुश नहीं होआता है. इस्सें भी सिद्ध होता है कि आत्मा नित्य है.

५० प्रश्नः—कितनेक धर्मवाले चार गति नहीं मानते हैं, फक्त इतनाही मानते हैं कि जीव, इश्वर या खुदा या देवके वहांसें आता है और पीछा वहीं चला जाता है उसका क्या खुलासा है ?

उत्तरः—इस जगतमें जीव जिस धर्ममें उत्पन्न हुवा हो उस धर्ममें जो कहा होवै उसकोंही मानता है. किसी जीवने नीच जातिका कर्म बांधा होवै और वो सर्वज्ञके धर्मसें विरुद्ध धर्म पालता हो; किंतु निकट भवी होता है तौ चित्तमें न्यायकी बुद्धि प्राप्त होती है. और सर्वज्ञके लक्षण तपासता

है. उसमें जिनके लक्षण न्याय युक्त लगें उनकों सर्वज्ञ मानता है. जिनकों इस जन्ममें आत्माका कार्य होनेका नहीं वो मनुष्य दूसरी बातमें कदाचित् हुशीआर हो, मगर सर्वज्ञके लक्षण तपासनेकी बुद्धिवाला नहीं होता है उस्सें वो सर्वज्ञकों नहीं पहेचानता है, इस्सें करकें जिस धर्ममें पैदा हुवा हो उसी मुजब चलता है. देखियें कि—वे पाप पुन्यकों मानते है, तब पाप पुन्यके फल भी भुक्तनेही चाहियें पापके योगसें नरकमें जाता है वहां दु:ख भुक्तता है फिर जैसें यहा गुनहा करनेवालेकों कैद करते हैं और पीछा वो मुदत पूर्ण होनेसें बधीखानेसें छूट जाता है, तैसें नरककी अंदरसेंभी पीछा नीकलता है. अच्छे कृत्य करनेवालोंकों अच्छी पदवी मिलती है, तैसें इस ससारमें पुन्य किया हो तो देवकी गति मिलती है, उससें कमी पुन्य बधा होवे तो मनुष्य गति मिलती हे. पाप बधा होवे तो एकेंद्रिय, बेरेंद्रिय, तेरेंद्रिय, चोरेंद्रिय तिर्यचपचेंद्रिय प्रमुख होता है फिर इस्सेंभी ज्यादे पाप बांधा हो तो नरकमें जाता है इस मुजब जिस गतिमें रहकर जैसे कृत्य किये हो वैसें दूसरी गतिमें फल मिलते हैं इश्वर् कर्मके सयोग बिगर एककों मनुष्य और एककों जानवर क्यों बनावे ? सब समान बनाने चाहियें, वो तो नजर नहीं आता हे, वास्ते असा मानना हमारे विचार मुजब तो गैरव्याजबी मालूम होता है जो सर्वज्ञ चार गतियोंका स्वरूप बताते है वोही व्याजबी मालूम होता है. सर्वज्ञके कथनमें कुच्छभी फेरफार नहीं होता हे. लेकिन जिसकों सर्वज्ञपना प्राप्त नहीं हुवा है उनकों सर्वज्ञ माननेसें फेरफार आता है उनका कुच्छ उपाय नहीं, परतु अर्थी जीवोंकों तो सर्वज्ञकी पहिचान करनेका उद्यम जरुर करना चाहियें. सबब ; कि सब बात प्रत्यक्ष नहीं है जो जो अरूपी पदार्थ हैं उसका, और गतकालमें हो गइ हुइ बातोंका और भविष्यकालमें होनेहारी बातोंका अनुमान क्यु हो सके विशेप तो उन्होंके कथन मुजबही मानना पडे उसी लिये सर्वज्ञका वर्त्तन, उनका उपदेश, ज्ञान तथा उनके शास्त्र—यह चार वस्तुकी तपास करनी चाहिये जिस शास्त्रमें उत्तम ज्ञान होवे उनकों प्रमाण—मजूर करना उवे ज्ञानवा-

लेकी प्रवृत्तिभी अच्छीही होती है और उस मुजब चलनेसें अपनाभी कार्य हो सकता है.

९१ प्रश्नः—जैनशास्त्रमें क्या क्या विषय है ?

उत्तरः—जैन धर्मके सर्वज्ञनें स्वर्गके स्वरूपका वर्णन जितना बतलाया है उतना किसी अन्यशास्त्रमें नहीं बताया है. नरकके भेद, वहांकी वर्त्तनाका स्वरूप, तिर्यंचका स्वरूप तथा मनुष्यका स्वरूपभी जो जो सूक्ष्मरीतिसें उन्होंने वर्णन किया है वैसा वर्णन किसी शास्त्रमें नहीं किया गया है. (वो स्वरूप इस जगह लिखनेसें पुस्तक विस्तारवंत हो जावे.) जीवाभिगम, पन्नवणा, समवायांग, सूयगडांगजी वगैरः सूत्रोमें वहुत विस्तारसह उसका वर्णन–स्वरूप दिखलाया गया है. जिज्ञासु हो सो उन उन सूत्रोसें शंका दूर कर लेंगे. तिर्छालोक कि जिसमें अपन रहते है, उसमें समुद्रकी हद जिसने जितनी देखी उतनीही कह दिखाइ है आगे क्या है ? वो शोच नही सक्ते हैं. कुच्छभी होना तो चाहिये ! लेकिन वो चर्मचक्षुसें देखा नही जावे; क्यौं कि समुद्रमें ज्यादा आगे नहीं जाया जाता है. को लंबसने अमेरिका ढुंढ निकाला उस पहले अमेरिका जाहिर न था, अव तकभी साहसीक इंग्रेज लोग नइ जगह ढुंढ निकालते हैं और आगेभी जिनसें महेनत वन सकेगी वो नइ शोध करेंगे. वास्ते नजरसें देखा उतनाही वस क्यौं कहा जावे ? सव पृथिवीका ज्ञान तौ जिनके अंतरंगसें कर्मक्षय होगये होवैं उनकोंही होता है. जव मंत्रसाधन करते हैं तव उनमंत्रका अधिष्ठायकदेव कुच्छ अपना शब्द नहीं सुनते हैं; मगर उनकों अपनेसें ज्यादे ज्ञान है, उस ज्ञानसें वे जान सकते है कि–'मेरा किसीने स्मरण किया है.' देवतासेंभी आधिकज्ञान सर्वज्ञकों है, उस्सें उन्होंनें असंख्याते द्वीप समुद्रका स्वरूप वतलाया है. गतकालकाभी स्वरूप वतलाया है. फिर कर्मकास्वरूप, कर्मकी वर्गणाकास्वरूप, धर्मास्तिकाय आकाशास्तिकायकास्वरूप, कालकास्वरूप तथा आत्माकास्वरूप वहुत विस्तारसें वतलाया है वो दूसरे शास्त्रोमें मालुम नहीं होता है. यह अधिकार कर्मग्रंथ, कम्मपयडी, पंचसंग्रह, तत्वार्थ, सम्मतितर्क, विशेषाव

श्यकादि शास्त्रोंमें है वो देखोगे तौ मालूम होगा कि जैनशास्त्रमें कितना सूक्ष्म ज्ञान वताया गया है ? वर्त्तनके विषयमें देखोगे तो जो आगे लिख गये हैं वे अठारह दूषणसें रहितकी कैसी प्रवृत्ति होती है ? वो भी मालूम हो जायगा विशेष तौ सिद्धांतमें चरित्रें है वो देखोगे तौ मालूम होगा कि, जिनकों किसी प्रकारकी वांछा नहीं, मात्र उपकारी बुद्धिही है, स्त्रीधन वगैर इच्छा और सगत नहीं, फिर आपकों वडाइभी नहीं, ऐसे देवकों देव कहने योग्य है फिर जो जीव अपने आत्माका ज्ञान मिलाकर राग द्वेषका त्याग करे वो कर्मसें मुक्त हो जावें यहां ऐसा नहीं कहा है कि मेरेकों मानोगे तोही काम फतेह होगा जो आत्माकी शुद्ध परिणती मुजब चलेगा उसका काम फतेह होगा. इस तरहका जिनका शुद्ध उपदेश है उन्होंकी वताइहुइ वाचते वहुतही प्यारी लगती है हमारे कहनेसें कुच्छ नहीं, मगर न्यायबुद्धि धारण करकें निष्पक्षतासें जैनशास्त्र और अन्यमतके शास्त्र देखोगे तो तुमकों वेशक मालूम होगा, वास्ते फुरसुद लेकर निरतर ज्ञानाभ्यास करना ज्ञानाभ्याससें जीवकों कर्मके आवरण हठते जाते है और बुद्धि निर्मळ होती जाती है.

५२ प्रश्नः—जैनशास्त्रमें कितने प्रकारके कर्म कहे है और वे कर्मखप-क्षय हो जानेसें क्या क्या शुद्धता होती है ?

उत्तरः—जैनशास्त्रमें आठ प्रकारके कर्म कहे है यानि ज्ञानावरणीयकर्म १, दर्शनावरणीयकर्म २, मोहनीयकर्म ३, वेदनीयकर्म ४, नामकर्म ५, गोत्रकर्म ६, आयुकर्म ७, और अतरायकर्म-यह आठ हैं उसमें पहले कर्मकी प्रकृति ५, दूसरेकी ९, तीसरेकी २८, चोथेकी २, पाचवेकी १०३, छट्ठेकी २, सातवेकी ४, और आठवेकी ५ ऐसे उत्तर प्रकृति १५८ हैं औरभी प्रकृति भेद विस्तारवत है-यानि एक एक प्रकृतिभी वहुत प्रकारकी हैं.

प्रथम ज्ञानावरणीय कर्मका स्वरूप इस मुजब है -ज्ञान पाच प्रकारके है यानि मति, श्रुति, अवधि, मन. पर्यव और केवल ये पाच है उसमें मतिज्ञान उसकों कहते है कि, मतिसें करकें जान-समझ लेना सो आत्माका उपयोग, पाच इंद्रिये और मन इनके योगसें ज्ञान होवे वो मतिज्ञान मतिनानसें पिछले भवका ज्ञान होना है परंतु आवरण

लगनेसें सब जीवोंको नहीं होता है. मतिज्ञानसें जितनी शक्ति-विचारशक्ति खुली हैं. उतना ज्ञान हो सक्ता है,क्यों कि कितनेक मनुष्य बहुत लंबे विचार करशक्ते हैं,कितनेक अनुमानसेंभी विशेष विचार कर सक्ते हैं और कितनेक नहीं कर शक्ते हैं. उसका सबब यही है कि जिनके कर्म अल्प हैं उनकों बुद्धि विशेष है और जिनके कर्म ज्यादा हैं उनकी बुद्धि कम होती है. फिर दूसरी तरहके भी आवरण-ढकन होते हैं. जैसें कि कितनेक अनेक जातीकी लिपी पढेहुवे होते हैं, तर्क वितर्कभी बहुत कर सक्ते हैं, याददास्तीभी बहुत होती है, उससे जो कुच्छ पढते-वांचते हैं सो याद रहजाता है, पढना होवे तो थोडेही वक्तमें पढजाते हैं; परंतु वो बुद्धिका फक्त संसारके काममें उपयोग करते हैं, धर्मके काममें उपयोग करनेके आवरण खुल गये नहीं, उससें धर्मका सचा अभ्यास नहीं करते हैं और निष्पक्षपात संबंधसें देख नहीं सक्ते. कितनेककों अैसे आवरण होते है कि धर्मका ज्ञान मिलानेमें अच्छी बुद्धि है उससें शास्त्र देखकर शास्त्रकी सुंदर बातका न्यायबुद्धिसें निश्चय करते है. पीछे साररूप शास्त्रकी बात ग्रहण करते हैं और तत्त्व विचारणा करते हैं. कितनेकके अैसे आवरण होते हैं कि संसारमें बुद्धि नहीं चलती और धर्ममेंभी नहीं चलती. दोनू प्रकारसें बुद्धिकी न्यूनता होती है. कितनेकी सब तरहसें बुद्धि खुल जाती है और सब काममें न्यायकीही बुद्धि प्राप्त होती है. सची बातकोंही सची जानता है बहुत प्रकारसें मतिज्ञानके आवरण नाश हो गये होवे तबही अैसी बुद्धि प्राप्त होती है. कितनेकोंमें बुद्धि कम होवे; लेकिन सत्यवादी पुरुषका संग करनेकी बुद्धि जाग्रत हुइ है उससें कम अकल होनेपरभी उनके कथन मुजब चलकर अपने आत्माका काम कर सकता है. कोइ कोइ जीव कर्मके आवरणकें योगसें मूक, अंधे और बेहेरे भी होते हैं. इस्सें ज्ञान बढा नहीं सकते हैं. फिर कोइ मूक और तोतले होवें; मगर कानके आवरण खुले हैं उस्सें धर्म सुनकर अपने आत्माका काम कर सक्ते है; लेकिन दूसरेका उपकार नहीं कर शक्ते. बधिर होते हैं; मगर आंखके जोरसें सुनकर उसका विचार कर अपना काम कर सक्ते हैं. इस मुजब मतिज्ञानावरणी कर्मसें करकें आत्मका ज्ञान आच्छादित होता है उसकों मतिज्ञानावरणी कर्म कहते हैं.

श्रुतज्ञान तो शास्त्र और अक्षरका नाम है. यह ज्ञान मतिज्ञानके संगही रहता है. जहां मतिज्ञान वहां श्रुतज्ञान और जहां श्रुतज्ञान वहां मतिज्ञान होताही है. ये दोनुका आवरण होना और खुलना साथही रहता है. मतिसें जो अंतरमें विचार होती है उसमें

अक्षर है सौ श्रुतज्ञान है. उनमें जिस जीवकों समकित हुवा है उस जीवकों मति श्रुति अज्ञान कहाता है कोई शंका करेगा कि संसारमें बहुत बुद्धिवंत होते है उनकों अज्ञानी क्यों कहे जाँय ? तो उनके जवाबमें-संसारमें बुद्धिका उपयोग करनेसें फिर नये कर्म बांध लिये और अपना आत्मधर्म जैसा है वैसा जानकर प्रकट करनेका उद्यम करना वो तो हुवा नही और उलटा आत्माकों मलीन कर दिया, तब वो ज्ञान सो अज्ञानही कहा जाता है. अब जो पुरुष ज्ञानवंत पुरुषकी और ज्ञान-शास्त्रकी निंदा करता है, पढनेके वख्त अंतराय करता है, पुस्तकपर बैठ जाता है, पुस्तकपर मस्तक रखता है, थुक लगाता है, पुस्तक आगे मोजुद होनेपरभी आहार निहार करता है, ज्ञान पढनेकी मरजी न होनेसें उलटा द्वेष रखता है-इत्यादि ज्ञानकी आशातना करता है,वो पुरुष ज्ञानावरणी कर्म बांधकर आत्माकों आच्छादित करता है और जो पुरुष ज्ञानवंतकी और ज्ञानकी बहुत मानपूर्वक बहुत प्रकारसें भक्ति करता है, ज्ञान पढनेका रात दिन अभ्यास करता है, दूसरोंकों ज्ञान पढनेमें सामिल करता है, शक्ति होवै तो आप धन खरचकर दूसरोंकों पढाता है, ज्ञानके भंडार करता है फिर जो जो लिपी संसारी विद्याकी हैं वै पढकर कोइ मनुष्य हुशीआर हुवा होवै तो धर्म समजना सुलभ होवै बडी पदवी मिलावै और सुखी होवै तो सुखसें धर्मसाधन करै, शासनकों दीपावै, वास्ते सब प्रकारसें ज्ञान पढानेमें महान् लाभ है ऐसा समजकर उनमें धन खर्चता है. इसी तरह ज्ञानाराधन करनेसें कर्मके आवरण कमती होजाते हैं विशेष प्रकारसें तत्त्व विचारणा करनेसें बहुत आवरण नाश होते हैं और आत्मा शुद्ध होता है यह मति श्रुतज्ञानके आवरणका तथा नहीं कर्मक्षयका स्वरूप समझना

अवधि ज्ञानावरणीकी प्रकृति अवधिज्ञानको ढक देती है जिनकों अवधिज्ञान होता है, उनकों चक्षु आदि इंद्रियोंकी जरूरत नहीं पडती है, आत्मासेंही मालुम होता है जिसकों सौ कोषका ज्ञान हुवा है वो सौ कोषपर जो होता होवै सो अपने स्थानमें रहा हुवा जान सकता है गत कालकाभी जान सकता है जिसकों लोकावधिज्ञान हुवा होव उसकों सारे लोकमें जो जो पुद्गलिक पदार्थ हैं उन सबका ज्ञान होता है गुदस्त-भूतकालमेंभी असंख्याते कालका ज्ञान होता है और जिनकों इन धर्मसें करके आवरण लगे होवे उनकों वो ज्ञान बिल्कुल नहीं होता है, लेकिन ज्यों ज्यों फिर आत्माकी शुद्धि होती जाती है और राग द्वेषरूप उपाधि कमती हो जाती है

त्यौं त्यौं अवधिज्ञान प्रगट होता है. किसीकों थोडे आवरण हठ गये होवें तौं थोडे क्षेत्रमें जो अदृश्य पदार्थ होता है वो आत्मासें जान सकता है. पीछे उन करतेंभी ज्यादे आवरण हठ जाय तौ ज्यादे क्षेत्र तथा ज्यादे कालका ज्ञान होता है. जैसें अपन किसी गॉवकों जाते हैं तब आंखसें तौ गाँव नहीं देख शकते है; मगर अंतरंगमें शोचते है तौ जाने वो गाँव नजरके आगे रूजु है वैसा देखते हैं, तैसेंही अवधिज्ञानसें भी विगर देखे हुवे पदार्थ अंतरंगमें मालूम होते हैं. इनके छ भेद हैं. उनका विस्तार नंदीसूत्र तथा आवश्यकसूत्रजी वगैरः में विशेषतासें देख लेना. इस ज्ञानकों ढक देवे उसकों अवधिज्ञानावरणीकर्म कहते है. यह ज्ञान देवताओंकों होता है, उस्सें मंत्रका स्मरण करनेके साथही उनकों खबर होती है और आते हैं. उनमेंभी जैसे जिन देवके आवरण खुलगये होते है उनकों उस मुजब ज्ञान प्रगट होता है. ये गतिमें विशुद्ध परिणामवाले जाते हैं, इस्सें कमी जास्ती भी एककों यह ज्ञान होता है. बिलकुल न हो ऐसा नहीं होता है. वहां भी मिथ्यादृष्टिवंत देव हैं उनकों विभंग अज्ञान होता है—उसका सबब यह है कि उनकों आत्मतत्त्वका ज्ञान नहीं होता है; लेकिन परोक्ष पदार्थकों जान लेनेकी शक्ति होती है. सम्यक्दृष्टि है उनकों तौ अवधिज्ञान कहा जाता है; क्यों कि उनकों तत्त्वज्ञान होताहै. वै पुरुष तो देवताके सुखकोंभी तृणके समान गिनते हैं और मनमें भावना भाते हैं कि—"पीछले भवमें कर्मसें मुक्त होनेके लीये पिछोनेके लिये तप संयम वगैरः साधन किये; मगर वे साधन पूर्ण प्रकारसें नहीं किये, उस्सें यह देवगतिमें संसार वर्त्तना करनेका हुवा और जन्म मरणके दुःख दूर नहीं हुवे. यह देवके सुख अस्थिर हैं और कर्मबंधनके कारण हैं; वास्ते यह देवायु पूर्ण हुवे बाद मानवभव पाउं तौ अब पूर्ण प्रकारसें प्रभुजीकी आज्ञा मुजब धर्म आराधन करुं कि जिस्सें पुनः भवचक्रमे भ्रमण न करना पडे." ऐसी भावना करता है. फिर रत्नमय पुस्तक पढता—वांचता है, शाश्वते जिनमंदिरमें जिनबिंब हैं उनकी विस्तार सह भावयुक्त द्रव्य तथा भावपूजा करता है. तीर्थंकर भगवान् विचरते होवें वहां जाकर उन्होंकी भक्ति करता है, धर्मोपदेश सुनता है, और आत्मस्वभावमें रहनेमें सुख समझकर विचारता है, देवता संबंधी ऐसे ज्ञानकों अवधिज्ञान कहते हैं; किन्तु अवधिज्ञानकें पूर्ण आवरण क्षय नहीं हुवे. पूर्ण आवरण तौ मनुष्यगतिमेंही क्षय होते हैं. जिनकों केवलज्ञान होता है उन्हीके ही संपूर्ण आवरण क्षय होते है.

मनःपर्यव ज्ञानावरणीय कर्म सो मनपर्यव ज्ञानकों आच्छादित कर देता है मनपर्यव ज्ञानके आवरण जिनके क्षय हो जाते हैं या दूर हठ जाते हैं वे मनके भाव याने मनमें शोची हुइ बात जान लेते है वो भी अपने आत्मासेही जानते हे उनकों इंद्रियोकी जरूरत नहीं पडती है. यह ज्ञान ससार त्यागी, सयमी मुनि छट्ठे सातवे गुणस्थानकमें वर्तनेवालोंकोंही होता है उनमेंभी थोडे आवरण हठ गये होंवे तो वे ऋजु मति मनपर्यव ज्ञानी कहाते है. वो पुरूष मनमें चिंतन किये हुवे पदार्थ जानता हैं उन करते विपुलमति मनपर्यवज्ञानी बहुत विशुद्ध जानता हैं. वो ज्ञानकी विशुद्धि ज्यादा है, सबब कि विपुलमति मनपर्यव ज्ञानवाले वही भवमें केवलज्ञान पाते है, उससे मनके विचरा विशुद्धतासें जानते हैं. यहांपर कोइ कहेगा कि अवधिज्ञानी रूपी पदार्थ जान सकते है, उनमें मनके विचारभी रूपी होनेसें उनकोंभी जान सक्ते है, वास्ते यह ज्ञान अलग बतलानेका क्या सबब है ? इसका खुलासा यही है कि–अवधिज्ञानवाला यों मनपर्यव ज्ञानवाले जैसा सपूर्ण नहीं जान सक्ता है अवधिज्ञानवालेकों उसी भवमें केवलज्ञान प्राप्त होंवे अैसाभी निश्चय नहीं है. फिर मनपर्यव ज्ञानवाला मनके भाव सिवा दूसरे पदार्थ नहीं जान सक्ता है–अैसा एक दूसरमें फरक है. सबब कि कर्मने आवरण जिसकों अवधिज्ञानके हठ जाते हैं उनकों अवधिज्ञान होता है और जिसकों मनपर्यव ज्ञानके आवरण हठ गये होवे तो मनपर्यवज्ञान होता है. किसीकों पहिले मनपर्यवज्ञान और किसीकों पहिले अवधिज्ञान होता है–इस मुजब जिनके कर्मावरण जिस तरह हठते है उस मुजब ज्ञान प्रकटता है ज्ञानके नामभी उस मुजब अलग अलग है. केवलज्ञानावरणी पांचमी प्रकृति सो केवलज्ञानकों आच्छादित करदेता है. केवलज्ञानके आवरण जिनके नाश होते हैं उनकों इंद्रिये और मनकी जरूरत नहीं होती है. अपनी आत्मशक्तिसेंही रूपी अरूपी सब पदार्थ, अतीत, अनागत और वर्त्तमानकालका ज्ञान होता है वो ज्ञान कैसा है ? जैसे दर्पन–आयनेमें सब पदार्थका भास पडता है, वैसें आत्मामें सब पदार्थ मालूम होते है मालूम होनेमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं रहती है, एक एक पदार्थने अतीत कालमें अनत स्वरूप धारण किये है उसमें अनत पदार्थ है उन सबके स्वरूप एकही साथ मालूम होते है–अैसी वो ज्ञानकी अद्भुत शक्ति है अैसा ज्ञान प्रकट हुवे बाद उनकों ससारमें फिरना नहीं रहता है–उनकों मुक्तिही मिलती है अैसे ज्ञानवाले पुरूष सपूर्ण प्रकारसें कर्मक्षयमें शक्तिमान होते है. उनका जन्म मरण नहीं होता है.

यह पांच प्रकारके ज्ञानको ढक देवै उनका नाम ज्ञानावरणी कर्म कहते हैं.

दूसरा दर्शनावरणीय कर्म याने आत्माका दर्शन गुण देखनेको रोकनेवाला जो कर्म वो-उसके विषे समझना कि ज्ञान और दर्शन संग वर्त्तना है. प्रथम सामान्य उपयोग सो दर्शन और विशेष उपयोग सो ज्ञान. जैसे एक मनुष्यको देखा उस वक्त मनमें आया कि यह कोइ मनुष्य है! वहां तक सामान्य उपयोग और जब ऐसा समझ गया कि यह तो जिनदास है, जैनधर्मी है, शाहुकार है, अच्छा मनुष्य है ऐसा विशेष प्रकारसें समझ गया तब विशेष उपयोग सो ज्ञानका है. ऐसी रीतिसें हरएक पदार्थमें पहला सामान्य उपयोग और पीछे विशेष उपयोग होता है. अब सामान्य उपयोग चार प्रकारका है याने चक्षुदर्शन-चक्षुसें करके देखना उसमें आवरण होवे तो अंध होवे और थोडे आवरण होवे तो रातको नहीं देखता है-दिनको देख सकै, कोइ दिनको ओर कोइ रातको विशेप देख सक्ता है, कोइ नजदिकके पदार्थ देख सकै, दूरके न देख सकै; मगर आवरणके लियेसें संपूर्ण देख सके नहीं सो चक्षुदर्शनावरणीय कर्म कहाजाता है. १

अचक्षुदर्शन—आंख सिवायकी इंद्रियोंसें सामान्य बोध होवे सो चक्षुदर्शन शरीरको कुच्छ स्पर्श होवै और स्पर्श हुवा ऐसा समझा जाय; लेकिन काहेका स्पर्श हुवा? वो नकी न कहा जाय वहां तक सामान्य उपयोग. नाकको खुशबु आइ; मगर काहेकी खुशबु आइ? वो नहीं कहा जाय वहां तक सामान्य उपयोग. मुँहमें रक्खे हुवे पदार्थके स्वादका निश्चय न होवै वहां तक सामान्य उपयोग. कानमें शब्द पडा; मगर क्या शब्द है वो नकी न होवे वहां तक सामान्य उपयोग. यह उपयोग अचक्षुदर्शनके हैं. उनके आवरण उस मुजब किसी मनुष्यको स्पर्श होवे मगर उनको नहीं समझ सके, कितनेक नाकसें खुशबु नहीं जान सकते हैं, मुंहसें स्वाद नहीं जान सकते हैं, कानसें सुन नहीं सकते हैं-यह दर्शनावरणी कर्मका प्रभाव है. फिर जितनी इंद्रियोंकी शक्ति है उतनी परिपूर्ण नहीं चलती वो भी आवरणसेंही नहीं चलती. अचक्षु-चक्षुदर्शनका संपूर्ण आवरण केवलदर्शन पानेकी वक्त नाश होता है. २, अवधिदर्शनरूपी पदार्थका आतमासें सामान्य पनेसें समझ लेना सो अवधिदर्शन, उनका आवरण जहां तक है वहां तक अवधिदर्शन नहीं होता है. ३

केवलदर्शन—केवलदर्शनका आवरण जहां तक होता है वहां तक केवलदर्शन

प्राप्त नहीं होता, लेकिन इतना फर्क है कि केवलदर्शनका उपयोग पीछे होता है और केवलज्ञानका उपयोग पहिला होता है उनका सबब यह है कि जिनकों केवलज्ञान होता है उनको फौरन बोध होता है—उनकों कोइ अनुक्रमसें बोध नहीं होता है, पहिला विशेष होता हे पीछे सामान्य होता है वो इस प्रकारसें कि जैसें कोइ मनुष्यके सब प्रकारसें लक्षण समझलीए बाद उनकी सब हकीक्त पूछनी नहीं पडती हे—सबब कि वो सामान्य हो जाती है और एक वस्त पूरा बोध हुवे बाद सामान्य होता है यह अधिकार नदीसूत्रजीमें विस्तारसें है.

पांच निद्रा है वो भी दर्शनका आवरण हे जहा तक मनुष्य निंदवश होवे वहां तक कुच्छ समय—देख नहीं सक्ता उनमेंभी आवरणकी तारतम्यतासें फेरफार है वो निद्राका अलग अलग स्वरूप समझनेसें मालम होगा जीवकों प्रथमें—निंदमें कुच्छ सहज स्पर्श होवे या शब्द सुननेमें आवे तो तुरत जागृत हो जाता है और जागृत होनेसें बिलकुल दिलगीर नहीं होता है, वो 'निद्रा' कोइ मनुष्यकों जगावे तो बहुत दफे जोरसें अवाज देवे या बहुतही शोरगुल मच जाय तब जागृत होवे और दिलमें दुःख पावे. जगानेवालेपर गुस्सा करे—एसी सक्त निंद उसकों 'निद्रानिद्रा' कहते हैं बैठे बैठेही निंद आ जावे वो 'प्रचला.' चलते चलतेही निंद लेवे वो 'प्रचला प्रचला' और पांचवा 'स्थिणार्द्धि' निद्रा छ महीने तक आती है. वो निंद ऐसी सक्त आती है कि वो मनुष्य निंदमेंही निंदमें उठ खडा होकर हस्तिके दतूशल निकाल—उखाड डाले उतना उस निंदमें बल होता है. वो निंदका आवरण बहुतही सक्त है उस निंदमें अर्द्ध वासुदेवके जितना बल होता है, मगर निंद जाती रहे तब बल नहीं होता है उस कालमें तो वो निंद वालेका अपने बलसें दुगना तिगुना बल होवे असा कर्मग्रथके बालावबोधमें कहा है ऐसी निंद नरकगामी जीवकों होती है यह पांच निद्रामें सामान्य उपयोग आच्छादित हो जाता है उससें दर्शनावरणीकी ये पाच प्रकृति और चार आगे कही गइ सो मिलकर नौ हुइ—ऐसें दर्शनावरणी कर्म नौ प्रकारसें है इस कर्मका क्षय होनेसें सामान्य उपयोगका, आवरण होवे सो नाश हो जाता है उस्से केवलदर्शन प्राप्त होता है और संपूर्ण आवरण केवलदर्शन प्राप्त होनेके वख्त नाश होते हैं, तब केवलज्ञान और केवलदर्शन साथही प्राप्त होते है

तीसरा मोहनीकर्म—यह कर्म आत्माकों भ्रमग्रस्त कर देता है जैसे शराब पिया होवे उसको करने लायक या न करने लायकका विचार नहीं रहता है, वैसें मोहनीकर्मके जोरसें

जीवकों अपने आत्माका क्या गुन है? और प्रवृत्ति करनेकी है? उनका उपयोग नष्ट हो जाता है, और शरीर, धन, कुटुंब, पुत्र, परिवार, स्त्री आदि पदार्थोंमें मग्न हो कर उन संबंधी अनेक काममें आसक्त हो जाता है. अपने प्राणसेंभी ये वस्तुयें प्यारी मानता है, जो जो अस्थिर पदार्थ हैं उनकों स्थिर मान लेना है. कोइ आत्मतत्त्वकी बात करता है तो वो सुन्नेकीभी चाहना नहीं करता है. कदापि किसीकी सोबतसें सुन्नेकों जावें तो भी सुन्नेमें लक्ष नहीं होना है. कदाचित् कानमें शब्द पड जावे तो उनका शोच विचारभी नहीं करे और कभी शोचे तो असा शोचे कि शास्त्रमें कहा है उन मुजब कौन चलता है? शास्त्र सुनकर उलटे उंधे चलते हैं और पराये दूषण ढुंढ निकालते हैं. कोइ गुणवंत श्रावक होवे, सम्यक् दृष्टिवंत होवे और संसारमें रहा होवे. तो उनकों कहे कि शास्त्रमें संसारकों असार कहा है और तुम वैसी बात जाननेवाले हो तो फिर असार संसारमें क्यौं लुब्ध हो रहे हो? फिर कोइ मुनिराज किसी सबब के लिये अपवाद सेवन करते होवें तो उनकी निंदा करे. उनका सबब यह कि शास्त्र सुनकरकें जो मोहनीकर्म थोडाभी दूर हुवा होता तो आत्माके साथ विचार करता और आपकें दूषण देखता; परंतु मोहनीकर्मका जोर ज्यादा है उसीसें शास्त्र सुनकर-भी उलटा विचार करके मोहनीकर्म ज्यादा बांधता है, और आत्माकों ज्यादा मलीन करता जाता है. फिर अन्याय, लुचाइ, ठगाइ, और चोरी करनी, दूसरेके सिर कलंक देना, दूसरेकी निंदा करनी, दूसरेकों संकटमें डालना, जीवहिंसा करनी, अहंकार ममकार करना, मदसें करकें उन्मत्त होना, झूंठा बोलना और दूसरेके पाससें झूंठा बोलानेका यत्न करनेमेंही सावधान होना, अपनी औरत, पराइ औरतकाभी विचार नहीं रखना ये सभी मोहनीकर्मके लक्षण हैं. कितनेक जीव तो विषयमें असें लुब्ध हो जाते हैं कि अपनी माता, बहिनी और लडकी के साथभी अत्याचार करनेमें भी शर्मिंदे नहीं होते हैं.—ये सब जोर मोहनीकर्मकाही है वो अनादिकालसें लगा हुवा है उनके प्रभावसें आत्माके गुन जो चारित्र तथा समकित है वो ढके जाते हैं. वो मोहनीकर्म दो प्रकारका है—यानें चारित्रमोहनी और दर्शनमोहनी दो प्रकार हैं और ये दोनूकी अट्टाइस प्रकृतिये हैं. उसमें चारित्रमोहनीकी पचीस प्रकृति नीचे लिखे मुजब है:—

अनंतानुबंधी, क्रोध, मान, माया और लोभ. अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया

और लोभ प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभ संजलका क्रोध, मान, माया और लोभ. हास्य, रति, अरति, शोक, भय, दुगछा, स्त्रीवेद पुरुषवेद, और नपुंसकवेद– यह पचीस कषाय हैं उनकी विस्तार सहित पहिचान नीचे मुजब हैं.

अनंतानुबंधी क्रोध जीसकों होता है उसके मनमें गहोतही द्वेष होवे जिस वक्त इस क्रोधका जोर होवे उस वक्त शरीरभी लाल लाल हो जाता है. जिसकेपर द्वेष होवे उनसें मरने तकभी वैर नहीं छोडे मरनेके वक्तभी कहता जाव कि यह भवमें वैर पूरेपूरा नहीं लिया गया है तो आगामिक जन्ममेंभी वैर लउगा अपने पुत्र वगरः कों भी कहवे कि मैंने फलानेंके साथ वैर रख्खा था वास्ते तुमभी उनके साथ वैर र-खकर चलना वक्त हाथ लगे तब उनकों नुकशान करनेका मत भूलना सहामनेवाला मनुष्य शान्त होवे ओर खमानेके वास्ते आवे तो उनकी साथ लडना शुरु करे. अगर उनका किंचित् भी काम आपके हस्तक आया हो तो उनकों बडा भारी नुकशान कर देवे. नुकशानी करनेकी तुरत शक्ति न चले तो मौका हाथ लगनेसें हानि पहुचा-नेमें बिलकुल कसर नहीं रख्खे, ऐसी जो कषायकी परिणती है उनका नाम शास्त्रमें अनंतानुबंधी क्रोध कहा है. जैसें पत्थरके बीच चीरा पडगया होवे वो चीरा फिर नहीं जुड सकता है यानि असलके मुवाफिक बेमालूम नहीं हो सकता है, वैसी त-रह अनंतानुबंधी क्रोधवालेका क्रोध मरने तकभी शान्त नहीं होता है, उन क्रोधके प्रभावसें जीव नरकमें जाता है और महा तीव्र दुःख भुकतता है उन क्रोधके प्रभावसें जीव समकितभी नहीं पाता है, क्योंकि वो दूर हुवे बादही जीवकों समकित उदय हो सकता है

अनंतानुबंधी मान पत्थरके थंभके समान होता है जैसें पत्थरका थंभ झुकानेसें नहीं झुक सकता है, वैसें अनंतानुबंधी मानवाला अपनी बडाइमें इतना मस्त रहता है कि महा गुणवंत मुनिराज होवे उनकोंभी वंदना नहीं करता है. फिर आप धर्म-गुरु होकर धन, स्त्री वगैर का उपभोग करे और दूसरे गुणवंत पुरुषोंने स्त्री धनका त्याग कीया होवे, समताभाव आदर कर संसारसें विमुख हो गये होवे वैसे पुरुषोंकों आप नमस्कार करने लायक है; तदपि आप नमस्कार नहीं करता है; लेकिन उनके पाससें आप नमस्कार करानेका यत्न करता है यदी आप धनवंत होवे, और या धन कभी नग्न जानेसें आजीवीकाभी पूर्ण न होती होवे, तोभी किसीकी नौकरी न करे,

आपके मनमें अहंकार ल्यावें कि 'क्या हम बडे दर्जेके मनुष्य होकर किसीकी नौकरी करें?' फिर किसीने कुच्छ खराब शब्द कहा हो तौ 'वो हमकों कौन कहेनेवाला' अैसा गर्व करकें स्हामनेवालेका प्राण लेनेमेंभी नहीं डरे. फिर कभी मान छोड देनेसें अपना प्राण बच जाता हो तौभी मान न छोड देवै. अैसें अहंकारीका कठिन अहंकार उसकोंही अनंतानुबंधी मान कहेते हैं. अैसा मान जीवन पर्यंत रहना है.

अनंतानुबंधी मायावाला पुरुष वहुतही कपटी होता है. मुंहसें अत्यंत प्यार वतलाता है; परंतु विश्वास रखनेवालेका प्राण लेने तकभी नही डरता है. आपकों किंचित् फायदा होता हो तौ पुष्कळ कपट करता है. जैसे वांसकी गांठ टेढी होती है वो किसी उपायसें सीधी न हो सकै, वैसें अनंतानुबंधी मायावालेका कपटभी छुडाया नहीं जाता है. वो कपटीजीवका जगतमें कोइ विश्वास नहीं रखता है.

अनंतानुबंधी लोभ वहुतही कठीन होता है. चाहे उतनी दौलत मिल जावै– यावत् चक्रवर्तीकी ऋद्धि मिल जाँय; तौ भी मन तृप्त नहीं होवै, खानेके लिये चाहे उतने पदार्थ मिल जावै; तौभी उसका दिल तृप्त न होवै, खानेके वहुत लोभके लिये भक्षाभक्षकाभी विचार नहीं करता है, अपना धर्मभी नहीं शोचता हे, और आपकी कुलमर्यादामें जो चीज न खानेलायक हो; मगर वो चीज खानेकी मरजी हो जाय तौ याचना करनेमेंभी निडर हो जाता है. क्यौं कि पैसेका लोभ होनेसें आप तौ पैसा न खरच सकै और खानेकी मरजी तौ होती है, उस्सें याचना न करने लायक जगहपर भी याचना करता है. चोरी करनेमें निडर हो जाता है, अन्याय करनेमेंभी जरासीभी डर नहीं रखता है, इस मुजब पांचो इंद्रियोंके विषयमें लुब्ध होता है. हरएक विषयके वास्ते अकृत्य करता है. लोभी मनुष्यकों फक्त एक पैसा मीलता हो, और उससें स्हामनेवालेका प्राणभी चला जाता हो तौभी उसकी दरकार नहीं रखता है. हरसूरतसें भी अपना मुतलव हाथ कर लेता है. राजाका तकसीरवार होनेमेंभी उनको भय नहीं रहता है–अैसा लोभ मरनेका वक्त आ पहुंचे तौभी नहीं छोडे. कितनेक इस्सी वर्षके वुढे हो जावै; तोभी अपने लडकेकों तीजोरीकी कुंजी–चावी सुंपरद नहीं करते हैं. जेवर–दागीने वगेरः हो वो मरनेके वक्त तकभी अंगपरसें नहीं उतार डालते हैं, मरणांत रोग हो आनेपरभी औषधके पैसे न खरचै, अनेक प्रकारके दुःख सहन करलेवे, कोइ दस गाली दे देवै, मार मार लेवै; तो भी कुच्छ लालच हो तो सो सब सहन

कर लेता है कितनेक अनाजके व्यांपारी बहुतही लोभीष्ट होते है, वो चातुर्मासके लिये मालका संग्रह कर रखते है और ऐसी भावना रखते है कि दुकाल पडे तो अच्छा, दुष्काल पडनेसें धन ज्यादे हाथ लगे, मगर दुकाल पडनेसें दुनियोंको जितना दुःख उठाना पडे, उनकी बिलकुल फीकरही नहीं करते है यों शोचते भी अच्छी मेघवृष्टि हो गइ तो दिलमें बडे दुःखी होकर दिलगीरीमें गर्क हो जाय ये अनंतानुबंधी लोभका स्वभाव किरमज के रंग जैसा है किरमजका रंग चाहे उतना धोवे तोभी चला नहीं जावे, जला देवे तो भी भस्म किरमजी रंगकी नजर आवे, ऐसें अनंतानुबंधी लोभ मरन पर्यंत नहीं छुटता है ये अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ चारों नरकके देनेहारे है ये चारों जहातक कायम होवें वहातक समकितकी प्राप्ति नहीं हो सकती

अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभसें कुच्छ नरम होते है. जैसे सूखे तालावके भीतर जो चीरे पडते हैं वो ज्यादेसें ज्यादे वर्ष दिन तक कायम रहते हैं, जब फिर वारिश-मेघवृष्टि होवे, तब व चीरे मिट जाते हैं, वैसे किसी जीवके उपर क्रोध हुवा हो, स्हामनेवाले मनुष्यने चाहे उतना नुकशानभी किया हो, मगर संवत्सरी प्रतिक्रमण करनेके वक्त सब जीवोंको खमा कर सबको मित्रके समान गिन लेवे, और किसीके पर गुस्सा न रख्खे उसने कुच्छ काम करनेको दिया हो तो उनकेपर द्वेषबुद्धि न ल्याते खुशीसे वो काम कर देवे उसका नाम अप्रत्याख्यानी क्रोध जानना अप्रत्याख्यानी मान दांतके खंभे जैसा होता है पत्थरका स्तंभ तो कभी झुकताही नहीं, लेकिन दांतका स्तंभ पानी वगेर उपाय करनेसें झुक सकता है वैसे अप्रत्याख्यानी मानवाला पुरुष सद्गुरुके उपदेशसें अथवा दक्ष पुरुषके समझानेस अपना अहंकार छोड देता है चाहे वैसा मान रखता हो, मगर वो मान एक वर्षसें ज्यादे मुदत तक नहीं रह सकता है अप्रत्याख्यानी मायावाला अनंतानुबंधी मायावालेसे कम मायावाला होता है, अपनी सहज मुलतबके लिये स्हामनेवालेको भारी नुकशान पहुंचे ऐसा कपट नहीं करता है. अप्रत्याख्यानी मायाको मेंढाके सींग जैसी कही है, वो वक्रता ज्या उपाय करनेसे मिट जाती है, त्यों यह मायावाला पुरुष कमती कपट करता है, और कितनेक काम कपट रहित भी करता है अप्रत्याख्यानी लोभ शहरकी गटरके कीचडके रंग समान होता है. ये रंग एकदम तो जाताही नहीं, मगर कोइ खार आदिके संयोग युक्त बडी भारी

महेनत करें तो उसका दाग जाता है. वैसेंही यह लोभ भी अनंतानुबंधी लोभसें कुच्छ कममें होता है. लोभके वास्ते किसीको भारी नुकशान नहीं करता है. ये अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभसें जीव तिर्यंचकी गतिमे जाता है. श्रावकपना नहीं पा सकता है. यह चारों कषाय जब जाते रहै तब जीव श्रावकपना या पांचवा गुणस्थानक पाता है.

अप्रत्याख्यानी क्रोधसें प्रत्याख्यानी क्रोध नरम होता है. उसको किसी जीवके उपर द्वेष हुवा हो तो भी चौमासी प्रतिक्रमण करनेके वक्त सब जीवोंको खमाता है. इस्सें पीछे किसी जीवके उपर द्वेष नहीं रहता है. रेतीमें जैसें लकीर खींची हो तो थोडे वक्तके बाद वो लुप्त हो जाती है तैसें ये क्रोध थोडे वक्तमें शांत हो जाता है. प्रत्याख्यानी मान लकडेके खंभे जैसा होता है. लकडेका खंभ दांतके खंभसें थोडी महेनत करनेपर भी झुक सकता है, तैसें ये मान भी थोडे वक्तमें शांत हो जाता है. प्रत्याख्यानी माया गायके मूत्रकी वक्रता समान होती है. चलते चलते गाय जैसे पेशाब करै और उसकी टेढी आकृति जमीन पर पड जाय वैसी प्रत्याख्यानी माया टेढी होती है, मगर जल्दी नाबूद हो जाती है. ये मायावाला पुरुष थोडे वक्तमें सरल हो जाता है, कठिन कपट उनसें होही सकता नहीं. अप्रत्याख्यानीसें सरल होता है. प्रत्याख्यानी लोभ गाडेकी कीलके दाग समान होता है. शहरकी गटरके कीचडके दागसें गाडेकी कीलका दाग थोडी महेनतसें चला जाता है; क्योंकि गटरका कीचड बहुत मुद्दत तक सडजानेसें ज्यादे चिकनाइवाला होता है. गाडेकी कीलके दाग समान ये लोभ सहजहीमें शांत होता है. प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभ जहां तक कायम होवै वहांतक साधुपना प्राप्त नहीं हो सकता है. यह कषायके परिणामसें जीव मनुष्यगतिमें जाता है; क्योंकि यह कषाय पतले है.

संजलका क्रोध, मान, माया और लोभ–ये चारों प्रख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभसें हलके होते है. संजलका क्रोध पानीमें कीहुइ लकीरके जैसा है. पानीमें लकीर करतेही बेमालूम होजाती है, वैसें किसी सबबके लिये गुस्सा हो जाय, मगर तुरंत शांत हो जावै. कोइ कठिन सबब मिलनेसें कठिनता धारण कर लेवै तो भी पाक्षिक प्रतिक्रमण किये बाद तो बिलकुल भी द्वेष नहीं रहेता है. ये क्रोधकी ज्यादमें ज्यादे उत्कृष्ट स्थिति पंद्रह दिनकी है. उस्से ज्यादे वक्त ये क्रोध कायम नहीं रह सकेगा.

यह क्रोधवालेके अतरगम विशेष क्रूरता नहीं होवे सजल्का मान नेतके स्तभ समान होता है जैसे वेतके स्तभेकों झुकानेमें देर नही लगती है, तैसेही मानदशा विशेष वक्त नहीं रह सकती है सजलकी माया भी वहुतही कम होती है. सहजहीमें कपट राहित हो जावे. वासकी छोल जैसे थोडी देरमें सीधी होजावे, तैसें ये कपट भी नहीं जैसा ही होनेसें नाश हो जाता है सजलका लोभ हलदीके रग समान होता है जैसें हल्दीका रग उडजानेमें देर नही लगती है, वैसेही यह लोभ दूर होनेमें देर नहीं लगती है. सजलका क्रोध, मान, माया और लोभ जहातक हो वहातक मोक्ष नही मिल सकता है यह सजलके कषाय जव जॉय तव मुक्तिकी माप्ति होय

उपर कहे गये चारों मकारके क्रोध, मान, माया और लोभ नाश हो जॉय तव मोक्ष मिलता है; वास्ते भवीजीवोंकों मुनासिव है कि इन्होंको दूर करनेके लिये उद्यम करना. यह ज्यौं ज्यौं कमती होते जावे त्यौं त्यो आत्मा शुद्ध होता जाता है. यहापर कोइ मश्न करेगा कि, सजलके कषाय तो पद्रह दिनही रहत है तो वाहुवलीजीकों सजलका मान वर्षदिनतक क्यौं रहा ? इसके सवधमे कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचद्राचार्यजीने स्वकृत योगशास्त्रम और यशसोमसूरिने कर्मग्रथके वालावबोधमें खुलासा किया है कि वालजीवोंको अपने कषाय कैसे है ? वो समझनेमे सुगम पडे वास्ते यो स्थिति कही है वस्तुत तो ऐसा समझना कि अति कठिन कषाय सो अनतानुवधी, उस्से मद हो सो अमत्याख्यानी, उस्से भी मद हो सो मत्याख्यानी, और उन्से भी मद हो सो सजलका कषाय समझना. मसन्नचद्रराजर्षि काउस्सग्ग ध्यानमें थे, उस वक्त ऐसे परिणाम विगडे हुये थे कि यदि उस वक्त मृत्यु हो जावे तो नरकमें जावे. सवव कि उनका उस वक्त अनतानुवधी क्रोध होने पर भी अतर्मुहूर्त तक ही रहा. यदि कालके उपर एकात लक्ष देवे तो वो अनतानुवधी क्रोध क्या कहा जाय ? फिर कोइ पुरुष समकितसें पतित हो जाता है उस वक्त अनतानुवधीका उदय होता है, फिर पीछा अतर्मुहूर्तम समकित पाता है, तव वो उदय दूर हट जाता है इस्में अनतानुवधी अतर्मुहूर्तही रहा यह कषायकों दूसरा कषाय नहीं कहा जाता है तात्पर्य यह कि कठिन कषाय होवे ओर कम मुद्दत तक रहे, तोभी अनतानुवधीही समझना उससें मद सो अमत्याख्यानी, उससें मद मत्याख्यानी, और उससें भी मद सजल्का समझना। कितनीक दफे स्थितिसें भी समझा जाता है, एकात नियम नही है वाहुवली-

जीकों वर्षादिनतक कषाय रहा मगर वो मंद कषाय था उनसे संज्वलका मानना. यह सोले कषाय हुवे.

अब नो नोकषाय कहते हैं. नोकषाय शब्द, देशनिषेधवाची है. नोकषाय यो नहीं कषाय—देशसें नहीं. कारण कि कषाय नहीं; मगर कषाय पैदा होनेके कारण हैं. इनके सेवनसें कषाय पैदा होने हैं. किसी मनुष्यकी हंसी-दिल्लगी करनेसें करनेवालेकों द्वेष पैदा होता है और वो मनुष्य अपनेपर द्वेष करे उनसे अपनेकों कषाय पैदा होवे; वास्ते वो कषायके कारण कहाते हैं. फिर मस्करी करके खुशी होवे और राग पैदा होवे तो वो भी कर्मबंधनकाही कारण है. जीवकों जहां तक हास्यमोहनी कर्म है वहांतक आत्माका शुद्ध स्वरूप प्रकट नहीं होता है; दुनियांमें भी मस्करीखोर कहाता है. वास्ते ज्यों बन सके त्यों हास्य करनेकी आदत छोडदेनी चाहियें. सर्वथा छोडदेना तो जब जीवकों केवलज्ञान पानेके लिये क्षपकश्रेणी मांड देवे तबही बन सकता है. रतिमोहनी सो पुद्गलिक पदार्थोंसे जो जो अनुकूलता मिल जाय उससे राजी होना. अरति सो प्रतिकूल पदार्थसें दिलगीर होना. भयमोहनी सो भयसें वेर वेर डरतेही रहना. मेरेसें उपवास होगा या नहीं? मेरेमें श्रावकपना, मुनिपना कैसे बन सकेगा? ऐसें डरता रहवे और धर्मकार्यमें वीर्य नहीं स्फुरावे: जो जो चीज नहीं की हुइ हो वो अभ्यासद्वारा बन जाती है; मगर डरनेसें—भयसें अभ्यास नहीं करे तो कोइ दिन न बन सकेगी. उसी तरहही संसारी कार्यमें भी जिनकों मोहनीका भय उदय हुवा है वो हरएक कार्यमें डरताही रहता है. यहांपर कोइ प्रश्न करेगा कि–'पापसें डरे उनका क्या खुलासा है?' उस विषयमें यह खुलासा है कि पापसें अवश्य डरतेही रहना चाहियें, मगर धर्ममें नहीं डरना. हिम्मत रखकर उद्यम करना, शरीरादिकमें रोग वगैरः हो तो शोचकर कार्य करना, शक्ति होनेपर भी डर कर बैठ रहवे उनसें कोइ वक्त भी धर्म नहीं सधाया जायगा. वास्ते भयमोहनीका ज्यों बन सके त्यों त्याग करना. शोकमोहनी सो कोइ अपना कुटुंबीक या मित्र बीमार हो जाय वो मर जाय तब शोकातुर होवे, रोवे, कूटे, अनेक प्रकारके विलाप करे उससे बहुत कर्मबंधन होता है. व्यापारमें नुकशान होवे या कोइ देवाला निकाल देवे और आपका धन जाय तब शोक करे. आपकी अनुकूलता मुजब मकान, नौकर, वाहन न मिलनेसें, या प्रतिकूल मिलनेसें भी शोक करे. इनमें निरको मोहनीकी रहा

जैसा जोर उस मुजब शोक होता है कितनेक उत्तम पुरुषोंका शोकमोहनी कम होवै तो शोचते है कि–"यह कुटुम्ब, शरीर, मकान वगेर, जो जो ससारी पदार्थ हैं, वे सब अथिर हैं अथिर पदार्थका तो नाश होनेकाही हो तो फिर मुझे किसलिये विकल्प करने चाहिये? जहातक पुन्योदय था वहातक सब पदार्थ स्थिर रहे, जब पापका उदय हुवा तब नाश हो गये, वास्ते किसलिये शोक करके कर्मबधने चाहिये? आत्मधर्मही मेरा है, दूसरी कोइ वस्तु मेरी नहीं है मात्र ससार मेरेसें नहीं छुटता है उससें मैं मेरा मरा करता हु और व्यवहारोचित वर्त्तन करता हु वस्तुधर्मसें वस्तु मात्र जड है और मैं चेतन हु" इस तरहका विचार करकें आप शोकसें मुक्त रहता है उनकों कर्मबधन भी नहीं होता है सपूर्ण शोकका नाश तो क्षपकश्रेणीमेंही होता है दुगछा सो दुर्गंधीवाली वस्तु देखकर मुँह बिगाड देना, तथा जो जो वस्तु अपनकों नापसद हो उनसें मुँह बिगाडना वो दुगछा कही जाती है अब जिन पुरुषोंने अपने आत्मधर्मकों जान–पहिचान लीआ है उनकों तो दुर्गंधि आनेसें कहते है कि ये पुद्गलके असेही धर्म हैं, अथवा ये पुद्गल असे धर्मके है उनमें मैं किस वास्ते मुँह बिगाडु? या जडपदार्थके उपर क्यों द्वेष करुं? यहापर कोइ कहेगा कि–तब क्या गदकीमें ही बैठ रहना? तो उसका जबाब यह है कि–गदकीके पुद्गल शरीरमें प्रवेश करनेसें–घुस जानेसें रोगोत्पत्ति होती है, वास्ते अव्वल तो आपके मकानमें खालकुवे, टट्टी वगैर गदकीकी चीजेंही न रक्खें और मोरी भी साफ रक्खें पानी वगैर उपरासमें लेवै तो पानी सूखकर निर्जीव जगोपर अलग अलग डाल देवै कि जो जलदी सूख जावें गदकीमें जीवकी उत्पत्ति होती है और उसके उपर पानी वगेर गिरनेसें वो जीवोंका नाश होता है, तो आत्मार्थी पुरुषोंका कीसी जीवका दुःख हो वैसा कामही नही करना, वास्ते असी गदकी धरम न रक्खै और जहा असी जगह हो वहा रहवे भी नहीं, लेकिन दुनियाकी अदर सभी जगह स्वच्छ नहीं होती है तब वैसी जगह देखनेमें आ जावें तो द्वेष न करै उनकों तो क्रमसें सर्वथा दुगछा मोहनीका नाश होता है और जीव अनेक प्रकारसे असी दुगछा कीये करते हैं उससें कर्मबाधकर आगें असेही कर्म भुक्तने पडेंगे वास्ते ज्यों बन सके त्यों दुगछाका त्याग करनाही मुनासीब है. स्त्रीवेद उनकों कहते हैं कि स्त्री पुरुषकी अभिलाषा करे, पुरुषवेद उसको कहते है कि पुरुष स्त्रीकी अभिलाषा करे, और नपुंसकवेद उसको कहा जाता है कि स्त्री

और पुरुष इन दोनुकी अभिलाषा करें. यह तीन वेद कहे जाते है. और यह वेद संसारका बीज है. उन्में सर्वथा कठिन वेदका उदय नपुंपकवेदवालेकों होता है. वो रात दिन विषय विकारमेंही चित्त रखता है. उनका विकार शांत होनेका सवबही नहीं, उस्सें इच्छाअें हुवेही करती है. नपुंपकसें स्त्रीकों विकार कम होता है और स्त्री करतें पुरुषकों विकार कमती होता है. अव यहां कोइ शंका करेगा कि-पुरुषकों स्त्रीके आगे अर्ज-प्रार्थना करते हुवे अपन अपनी आंखोंसें देखते हैं, मगर पुरुषके जितनी स्त्री, पुरुषकों प्रार्थना करती हुइ नजर नहीं आती, तो उसका खुलासा यह है कि स्त्री मुँहसे प्रत्यक्ष प्रार्थना नहीं करती है; लेकिन नेत्रकटाक्ष वगैरः वहुतसी चेष्टा करती है और उनके सवबसें पुरुषका चित्त विकारवंत नहीं होवे तौभी विकारी हो जाता है. और स्त्री मनमें कामविलास चाहती होय तौभी पुरुषके पास वहुतही आजीजी करवाती है; तथापि चित्तमें मलीनता रहती है, उस वास्ते स्त्रीमें सर्वज्ञजीने ज्यादा विकार कहा है. उन्में भी जो सती स्त्रीअें है-जिनकों स्वप्नमें भी परपुरुषकी इच्छा नहीं होती है. वै स्त्रीअें तो नमस्कार करनेही लायक हैं; कारन कि जगत् कामविषयमेंही पडा हुवा है और उनकी झपटसें गुणिपुरुष भी फँस जाते हैं. वास्ते उत्तम स्त्री होती हैं वोही अैसा शीलव्रत पालन कर सकती हैं. अैसे शीलशाली पुरुष भी अपनी स्त्रीके साथ, या तौ सुशील स्त्री अपने पतिके साथ कूत्तेकी तरह हमेशां भोगक्रीडाकी वांछना नहीं करते हैं. फकत ऋतुके समयमेंही अपनी इच्छा शांतिके लिये अनातुरतासें कामविलासका उपयोग करते हैं और कामसेवनके वक्त शोचते हैं कि-ज्ञानीमहाराजनें स्त्रीकी योनीमें वहुतसे जीवोंकी उत्पत्ति कही है. जैसें एक भुंगलीमें रूइ भरकर पीछे उसमें लोहेकी सलाइ खूव तपाकर घुसाड देवे तौ वो रूइ जल जाती है, वैसेही स्त्रीकी योनिमें पुरुषचिन्हके प्रवेशसें उन्में रहे हुवे जीवोंका नाश हो जाता है. उस्से ये वडी हिंसाका कारन है. फिर वही स्थानमें मूत्रादि दुर्गंध है, उसका एक छांटाभी लग गया हो तौ उस्कों मनुष्य धो डालते हैं, वैसी खराव दुर्गंधी है. वही स्थानकी क्रीडा करनी वो अज्ञानताकीही प्रवलता है. फिर-भोगसें शरीरकी स्थिति भी कितनी नरम-शिथिल हो जाती है ! अैसा मालूम होनेपर भी उन्सी काममें सुख मान लैना वोभी अज्ञानताकीही प्रवलता है. यहांपर कोइ कहैगा कि-ये सभी कारण अपनी और परस्त्रीमें वरोवरही होते हैं, तौ अपनी और पराइ स्त्रीमें

पापका क्या फेरफार है कि परस्त्रीका त्याग करनेके वास्ते सभी धर्मवाले पुकारते हैं ? ' उसका खुलासा यही है कि-पराइ स्त्रीका मालिक है वो तो अपनी स्त्रीकों दूसरेके साथ बदकाम करनेकी परवानगी नहीं देवै, उस्से उनकी स्त्री पतिकी चोरीसें बदकाम करे और उसके पतिका मालुम हो जाय तो बने वहातक उस स्त्रीकों जानसें मार डालेगा. और यदि जारपुरुष पकडा जायगा तो उनकों बेजान कर देगा. और कदाचित् स्त्री और जारपुरुषके उपर जोर न चल सकेगा तो गुस्सेके मारे खुद आप जान निकाल देगा. कभी नरम स्वभावका होगा तो मरेगा नही, लेकिन उनके दिलमें बडा रज-दु ख भरा रहेगा. रात और दिन उसीही दु खमें गुजारेगा इस्सें साफ मालूम होता है कि परस्त्री बडी भारी हिंसाका कारन है फिर बदचलनवाली स्त्रीओंकों अपना खाविंद दूसरे जारपुरुषोंके साथ खेलने न देगा तो वो स्त्री अपने पतिकों जानसें मारदेवें. अगर मार देती हैं वैसी बहुतसी बातें सुने-देखनेमें भी आती हैं, तो इस बदकामसें बडी जीव हिंसाओं होती हैं फिर परस्त्रीका मैं सेवन करताहु तो भी मैं सेवन करताहु ऐसा कहा भी नहीं जाता इस्सें जूठ बोलनेके सबबसें मृषावादकाभी दोष लगता है फिर परस्त्रीके उपर इच्छा होती है वो अत्यत विषयकी इच्छा वाली होती हैं उससेभी ज्यादे कर्मबधन होता है फिर अपनी स्त्री तो हमेंशा नजर आगेही होती है उसलिये सर्वदा भोगकी विचारणा नही होती और पराइ स्त्रीके लिये तो रात दिन विचारणाही हुवा करती है, कामधधा भी नहीं सूझ सकता और विकल्पही किये करता है वो विकल्प कर्मबधनकाही हेतु है विकल्पका पाप मनुष्य सामान्य समझते हैं, लेकिन विकल्प समान दूसरा ज्यादा पाप नहीं है वो पाप कितना बाधाजाता है सो ज्ञानीमहाराजही जानसकते हैं और उसीसेंही उन्होंने उसके समान दूसरा बडा पाप नहीं बतलाया. उन्हीकोंही बडा पाप-कठीन पाप कहा है और भी जितने जितने धर्मवाले हैं उन्ह सभीने भी परस्त्रीमें बहुत पाप दर्शाया है. ससारमें परिभ्रमण करनेका बीज स्त्रीभोग है. भोगेच्छाके लीये स्त्रीए पुरुषकी दासी बनकर जींदगी पूरी करती हैं इग्रेज लोगोंमें पुरुष स्त्रीका दासत्वपना करते हुवे नजर आते हैं. और जो अति कामी या परस्त्रीलपट होते हैं वैभी स्त्रीओंके दास बनते हैं, कामवासनाके लीये जेवर पहेननेकी और जेवरके लीये धन पैदा करनेकी उपाधि करनी पडती है ऐसे अनेक प्रकारकी विटबना कामके लीयेही ससारमें भुगतनी पडती ह

वास्ते ज्यौं बन सके त्यौं कामका अभिलाष छोड देना. संपूर्ण प्रकारसें नो अभिला-षका त्याग क्षपकश्रेणीमेंही होगा तभी पूर्णतत्त्व प्राप्त होगा. यह नौ नौकषाय और सोला कषाय मिलकर पचीश हुए. वो मात्र मोहनीकर्म है–याने ये कषाय होवें वहांतक पूर्ण चारित्र केवलज्ञानीका यथाख्यात वो नहीं आवे. वास्ते उनका त्याग करनेके लीये वहुतही उद्यम करना. ये प्रकृतियें जितनी जितनी कम होवेगी उतना उतना आत्मा विशुद्ध होवेगा–वही धर्म है. और ज्यौं ज्यों ये कषायोंकी वृद्धि होती जायगी त्यौं त्यौं कर्मबंध वढता जावेगा. और दुर्गतिके दुःख तथा जन्ममरणके दुःख भुक्तने पडेंगे. कोइ कहेगा कि–वै दुःख किसीने देखे नहीं है. तो कहेंगे कि–मनुष्यके दुःख देखते हो ? कि भंगी लोगोंकों रात दिन मैला उठाना पडता है और वैसा झूंठा वि-गडा हुवा खाना भी मिलता है. फिर कितनेक लोगोंकों पहेननेके लीये कपडे भी नहीं मिलते हैं. ठंड–धूपका दुःख भुक्तना पडता है. कितनेककों कोढरोग, जलोदर, वि-स्फोटक, दमा वगैरः रोग होते हैं. ऐसें अनेक रोगोंकी वेदनाओंका दुःख रात दिन सहन नहीं होता है तव चिल्लाते हैं–रोते हैं, तो ऐसे दुःख सख्त पापके योगसेंही प्राप्त हुवे हैं. ज्यादे पापसें नरकके दुःख होते हैं वो नास्तिकवादी विगरके सभी धर्मवाले मानते हैं. वास्ते शंका करनेकी जरूरत नहीं है. पापके फल तो अवश्य भुक्तनेही पडेंगे. वास्ते ज्यौं वनसके त्यों राग द्वेषकी परिणती कम करदेनी कि जिससें पाप कम वंधा जाय और अनुक्रमसें सव प्रकारपूर्वक राग द्वेषसें मुक्त हुवा जाय.

कोइ सख्स यहांपर प्रश्न करेगा कि 'देवकी गति संजलके कषायसें बंधी जाय तो सम्मक्दृष्टिकों अप्रत्याख्यानादिकका उदय तथा श्रावकको प्रत्याख्यानादि-कका उदय कहा है, तो किस प्रकारसें देवगति वांध सके ?' उसका उत्तर यही है कि जिस वक्त देवगतिका आयु बांधे उस वक्त संजलके कषायका उदय होता है, दूसरे कषायोंका गौणपना होता है. ऐसेही मिथ्यादृष्टिकों भी जानना. दर्शनमोहनीके तीन प्रकार है याने सम्यक्तमोहनी, मिश्रमोहनी और मिथ्यात्वमोहनी ये तीन है. उनमें पहेले मिथ्यात्वमोहनीका स्वरूप लिखते हैं. जिस जीवनें मिथ्यात्वमोहनी कर्म बांधा हुवा है, उसके प्रभावसें अठारह दूषणरहित श्री वीतराग देव है उनके ऊपर द्वेष भाव रखता है. (सातवे प्रश्नमें अठारह दूषण कह चुके है वहांसें देख लेना.) अठारह दूषण भरित देवकों देव मानता है. जो गुरु हिंसामें तत्पर, झूंठवोलनेवाले,

चोरीकाभी नियम नही, मैथुनमें अत्यासक्त, धन और स्त्री रखे, रातदिन तृष्णाभी घनी रहे, और धन वगैरः के लाभार्थ सेवकोंकों उपदेश दीया जावे जैसे निर्गुणीकों गुरु करके स्थापन करे, उन्कोंही तरणतारण गुरु मान लेवें. और जिन पुरुषने ये पाचों अव्रतका त्याग कीया है, पाचों महाव्रत अंगीकार कीये हैं, पाचों इंद्रियोंके तेइश विषय छोड दीये है, फक्त कामके लायक वस्त्र रखते हैं, आहारभी आपके वास्ते न करते है या करवाते हैं, और न अच्छे आहारकी अनुमोदना भी करते है फक्त गृहस्थने आपके घर जो रसोइ बनाइ हो, उनमेंसें थोडीसी वस्तु-भोजन पदार्थ लेते हैं, स्वादकी चाहना नहीं करते हैं, आत्माकों अच्छा लगे अैसें विचरते हैं, रात दिन शास्त्राभ्यास कर रहे है और विकथाका तो त्याग करदीया है अैसे महानुभव महात्मा पुरुषको गुरु नहीं मानता हैं और कठोर मिथ्यात्वके जोरसें अैसे पुरुषोंग दूषण न होनेपर भी दूषण आरोपण करता हे रातदिन अैसे गुणवंतकी निंदा करता है फिर अैसे पुरुषोंने जो धर्म प्ररुपण कीया है उनकों अधर्मही मानता हैं और दया मूलके नाशरुप हिंसाओं, अविनय, अज्ञानता, विषय तथा पुद्गलका पोषण है उसकों धर्म मानता है अगर तो जो दयामूल, विनयमूल, हिंसाका त्याग, असत्यका त्याग, चोरीका त्याग, स्त्रीसेवनका त्याग, पैसेका त्याग-ये रूप व्यवहार धर्म, तथा आपके आत्म स्वरूपमें रहकर रागद्वेषकी परिणतीसें मुक्त हो, सब प्रकारसें मोहका नाशकारक उद्यमरूप जो निश्चय धर्म उनकों अधर्म मानता है ये मिथ्यात्वमोहनी कर्मके जोरसें धन, स्त्री, पुत्र, परिवार, मकान, दुकान, कपडे, पात्र-बरतन वगैर पदार्थकों जीव अपना मानता है, और उस सबधी जीव विचित्र प्रकारका अहंकार ममकार करता है और पीछे नये कर्म उपार्जन करता हे ये मिथ्यात्वमोहनी जिन पुरुषसें दूर हो जाती हैं, उनकों ससारदावानलकें जैसा मालम होता है जैसें कोइ मनुष्य जंगलमें गया हो और वहा चारा ओरसें आग लग गइ हो तो उसमेंसे निकल जानेके लीये अनेक उद्यम करता है, तेसें यह जीव ससारमें रहा हुवा विचारता-शोचता है कि-यह धन कुटुंब सब पदार्थ नाशवत है, सयोगसें मिले है और वियोगसें जानेवाले हैं, पूर्व कृतकर्म सयोगसें जाते है और पूर्वकृतकर्म सयोगसें प्राप्त होते हैं उन्में मैं जो राग रखता हु उससें समय प्रतिसमय नूतन कर्म बधाते हैं और मेरा आत्मा मलीन हुवा जाता है अनादि कालसें ससारमे परिभ्रमण करता हु ये सही जड पदार्थोके उपर राग धरनेके सबबसेंही

करता हुं; लेकिन इस भवमें तो भवितव्यताके योगसें ये सब वस्तु पर हैं ऐसा विछानकर ये सारे पदार्थोंमें निरिच्छकता करकें सभी वस्तुका संयोग त्याग करनाही योग्य है. कब ये सब वस्तुका त्याग करके मैं मेरे आत्मधर्ममें प्रवर्त्तुं और कुच्छ अपने आत्माका साक्षात् ज्ञान प्रकट करुं. ऐसी दशा मिथ्यात्वमोहनीके जानेसें होती है. अब मिश्रमोहनीका स्वरूप लिखते हैं. इस मोहनीसें कुच्छ शुद्ध देवगुरु धर्मके ऊपरसें द्वेष दूरहुवा और अशुद्ध देवगुरु धर्मके ऊपरसें राग-प्रीति कम हुइ मालूम होवे. फिर पुद्गल भावके अंदर संपूर्ण आसक्त था सो उन्मेंसें मिथ्यात्वके पुदगल जानेसें आसक्त भाव कम होवें, उससें अपना आत्मधर्म प्रकट करनेकी कुच्छ मरजी होवै. मिथ्यात्वपनमैं तो कुलका धर्म करताथा; मगर वो मिथ्यात्वमोहनी चली गइ और मिश्रमोहनी हुइ, उसके प्रभावसें करकें अपना धर्म प्रकट करनेके लिये उद्योग करना शुरु करे. फिर ये मिश्रमोहनीका काल अंतर्मुहूर्त्तका है और उन अंतर्मुहूर्त्तमैं भी दो श्वासोश्वाससें नौ श्वासोश्वास तकका है, इस्सें ऐसा सुंदर भाव आत्म हितकारी होवे; लेकिन वो भाव प्राप्त हुवे पर भी अल्प समयके सबबसें अपनको जानना दुष्कर हो पडता है. ये मिश्रमोहनीके पुद्गल भी मलीन हैं, उससें सच्चा तत्त्व नहिं पहिचाना जाता है; इसके लिये ये भी दूर करनेके योग्य होनेसें उसकुं छोड देनेका उद्यम करना चाहियें. ये दोनूका (मिथ्यात्व और मिश्रका) अभाव हो जानेसें सम्यक्तमोहनी प्राप्त होवे, उस सम्यक्तमोहनीका स्वरूप कहते हैं. शुद्ध देव गुरु धर्मके ऊपर राग प्रकट होवै, झूंठे देव गुरु धर्मके ऊपर राग नहीं रहेवे, आत्मतत्त्व प्रकट करनेका कामी होवे, गुरुमहाराज और उत्तम श्रावकोंकी अच्छी तरहसें संगति करें, उन्के पाससें धर्मोपदेश सुनै, देव गुरुकी अच्छी तरहसें भक्ति करनेमै तत्पर होवे, जीव, अजीव, पुन्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नौ तत्त्वोंको जानै, और जानकर उनपर जैसें आगमोंमे कही है वैसी ही श्रद्धा रख्खै, ऐसा तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा रख्खै, केवल धर्ममय चित्त हो जावै और संसारमें पडा हुवा भी संसारी सुखकों दुःख रूप समझ लेवै.

यहांपर कोइ शंका करेगा कि—सम्यक्त्वमोहनी तो मोहनी कर्मका प्रभाव कहा है और यहां तो तुमने गुनवंतपनेका वर्णन कीया उसका सबब और समाधान क्या है सो बतलाइये?

यह शंकाका समाधान यही है कि—ये सम्यक्तमोहनीके प्रभावसें जीवादिक

पदार्थोंकी यथार्थ श्रद्धा होवें, लेकिन उन नौ तत्वका विस्तार पूर्वक जो सूक्ष्म ज्ञान है उसके भीतर सम्यक्तमोहनीवालेकी बुद्धि मोहको प्राप्त हो जाती है, यथार्थ अनुभवगम्य आत्मतत्त्व न कर शके–इस सबबसें आत्म स्वरूप धमडा देता है. वास्ते वो त्याग करने योग्य कही है मगर मिथ्यात्व और मिश्र ये दोनू मोहनी करतें इसमें (सम्यक्त मोहनीमें) धर्मरुचि वढती है, उसके लिये ये गुणोंका दर्शाव कीया है जैसें आखोंमे जब अवस्था या दोषप्रकोपके सबबसें रोशनी कम मालूम पडे–छाउ छा जावें–कमदेखा जावे, तब चस्मे लगानेसै पदार्थ पहिचाने जाते है, तो चस्मोंकी तारीफ ही करते है, लेकिन जिसको चस्मे लगानेकी जरूरत नहीं है–आख साफ और रोशनीदार और अच्छी तरहसें देख सक्ता है वो तो चस्मेकी तारीफ नहीं करेगाः क्यों कि वो जैसा देख सक्ता है वैसा चस्मे लगानेवालेभी साफ साफ नहीं देख सक्ते है और इसी सबबसेंही चस्मे लगानेवालेभी वस्तुतासें यही, इच्छा रखते हैं कि आखकी झाख दूर हो जावें, और चस्में न लगाने पडें तो अच्छा होवेंवैसेही जब तक मिथ्यात्वमोहनी है उसकी अपेक्षासें सम्यक्त–मोहनी अच्छी है, परतु सम्यक्तमोहनीभी मिथ्यात्वमोहनीके पुद्गल है, वास्ते ये सम्यक्तमोहनीके पुद्गल त्याग होवे तब जीवको क्षायकसम्यक्त होता है और तबही यथार्थ पूर्ण स्वरूप समझा जाता है, कुच्छभी शका नहीं रहेती है और सर्वज्ञ प्रभुनें सूक्ष्म ज्ञान शास्त्रकी अदर जो दर्शाया है वो सब ज्ञानीमहाराजके कथन मुजब सुलभतासें समझ सक्ता है और जिसको सम्यक्तमोहनीका जोर है उनको यथार्थतासें कुल् बातें नहीं समझी जायगी–कुच्छभी शका रहेगी, क्यों कि सम्यक्तमोहनीवालेसें मिश्रमोहनीवालेको ज्यादे शकाए पडे, और उन करतेभी मिथ्यात्वमोहनीवालेको तो बहुतही शकाये पडती है सब वस्तु विपरीतही समझनमें आती है–जो शुद्ध मार्ग होवे वो विपरीत–अशुद्धही मालूम होता है. कुच्छ कुच्छ मिथ्या पुद्गल हठते जाये, उतना उतना सहज कुच्छ सच्चा मालूम हो आवें, वास्ते हर एक प्रकारसें मिथ्यात्वमोहनी, मिश्रमोहनी ओर सम्यक्तमोहनी ये तीनूका नाश निमित्तका उद्यम करनाही योग्य है.

पूर्वोक्त तीनू मोहनीकी सत्ता, बध और उदयसें सपूर्ण प्रकारसें नाश हो सक्ता है या होता है, तब क्षायकसमकितकी प्राप्ति होती है फिर ये तीनू मोहनीका नाश होनेके साथही अनतानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभकाभी नाश हो जाता है–उसमे भी क्षायकसमकित प्रगट होता है और वो क्षायकसमकिती उसीही जन्ममें मोक्षको

प्राप्त करता है. कदाचित् सम्यक्त्व प्राप्तिके अनन्तर यदि दूसरी [illegible]—आयुकी. देवगति आयु बांध लिया हो तो दूसरी गतिमें जाय. और उसमें मनुष्यजन्म पाकर मोक्षमें जावे. कदाचित् सम्यक्त्वप्राप्ति बाद जो सम्यक्त्वीके [illegible] आगर [illegible] मनुष्यगतिमें पा-कर मोक्षमें जाता है; मगर इसमें ज्यादे भव नहीं करने पड़ते हैं [illegible] भवोंमें मोक्ष प्राप्त होता है. यह आत्मकल्याणकी पहचान [illegible] है.

फिर जिनको सम्यक्त्वमोहनीयका उदय नहीं हुआ है उनको मिथ्यात्वमोहनीयका उदय होता है; उनके उदयमें अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ आदि होते हैं. मिथ्यात्व [illegible] करता है. [illegible] ये सम्यक्त्वमोहनीयको भी मूढ़ता [illegible] होता है; लेकिन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं है. [illegible] निःशुद्धता होवे और आत्मकल्याणकार्य प्राप्त होवे तब मुक्ति हासिल होवे. यदि [illegible] सम्यक्त्व प्राप्त नहिं हुआ हो तो मुक्ति प्राप्त नहीं होती है. [illegible] स्थिति कायम रहेवे तो [illegible] [illegible] [illegible] है. और [illegible] [illegible] [illegible] भी [illegible] यांवे. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मनुष्यजन्मकी [illegible] है. [illegible] सम्यक्त्वका प्रभाव है. दर्शनमोहनीयको दूर करनेके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] त्यों इनका त्याग करना. ये [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आहारक पोट्लो [illegible] [illegible] [illegible]. इनका [illegible] त्याग करनेसे केवलज्ञान प्राप्त करता है. जब तक ये [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं होते हैं. और ये प्रकृतियोंमें [illegible] [illegible] पुनः [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और संसारमें प-रिभ्रमण करने लगता है. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]; वास्ते इनका त्याग करनाही उचित है. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इस लोकमें अंदर भी अपयश और परलोकमें भी दुःख होता है. जिन जिन वस्तुओंका धर्मशास्त्रमें निषेध किया है उन उन वस्तुओंका आदर करनेसे इस जन्ममें और आगे जन्ममें दुःखके सिवा और कुछ हाथ नहीं लगता है; वास्ते समभावसे पोट्लो [illegible] [illegible] क-रनेका उद्यम करनेमें तत्पर रहना चाहिये.

अब वेदनी कर्मका स्वरूप कहते हैं. वेदनीके दो प्रकार हैं—शाता वेदनी और अशाता वेदनी. याने सुख वेदना सो शाता वेदनी और दुःख वेदना सो अशाता वे-दनी कही जाती है. जिसने पूर्वभवके भीतर नीतिमार्ग अनुसार चलन रक्खा है.

सत्य भाषन किया है, दया पालन की ह, चोरीका त्याग कीया है परस्त्रीका त्याग और अपनी स्त्रीमें सतोष, किंवा त्याग किया है, किसी जीवको दु ख न होवे ऐसा वर्त्ताव रक्खा है, और धनकी तृष्णाको त्याग कर परोपकारमें वा सच्चे देव गुरुओंकी भक्तिमें द्रव्यका सदुपयोग किया है अर्थात् ऐसी पुण्यकरणी करनेसें शाता वेदनी कर्म बाधा होवे उनके प्रभावसे अपनी प्रकृतिके अनुकूल सुखके पदार्थ मिलते है और जिसने इन्सें विपरीत कृत्य किये हैं-जैसें कि जीवहिंसा करनी, झूठ बोलना, पराइ वस्तु उठा लेनेका जिसको डरही नहीं, कामभोगमें अत्यताशक्ति और उसीके प्रभावसें अपनी या पराइ स्त्रीका भी कुच्छ शोच विचार नहीं होनेसें बहुत कामाध हो गया होवे, याने अपनी बहेनी या लडकीके ऊपर भी बद निघाह करनेका जिसको शोच नहीं होवे, जिस स्त्रीके ऊपर नजर पड जावे उसीके साथ भोग करनेकी चाहना करे. मतलबमें सब स्त्रियोंके साथ कुछ योग नही बन सकता है तौ भी मनकी इच्छासें कर्म बाध लेता है कदाचित् इच्छित स्त्रीयामेंसें कइएक स्त्रीयोंका योग मिलभी जाता हे तो उन्मे भी बहोत लुब्ध होकर काम सेवन करता है नही सेवने योग्य स्थानपर चुवन प्रमुख भी कर लेवे और दूसराको ठगनेको लिये विश्वासघात करे उससे दूसरे मनुष्योंको दु ख होवे वैसे कृत्य करनेमे तत्पर रहेवे, शुद्ध देव गुरु धर्मकी हेलना-निंदा करे, खोटे मनुष्यकी प्रशसा करे, बुरे कामोंमें तत्पर रहेवे, अहकारी, कषायवत, अति क्रोधी और ऐसेही महा आरभकारी कृत्य तथा दुराचरण सेवन करनेसें अशाता वेदनी कर्म बाधता है उन्में भी एक दूसरेकी प्रकृतिमे तफावत रहता है बुरा काम दोनू मनुष्य समान करे तौभी एक सख्स मनुष्यको मार कर उसका प्राण निकाल देवे और दूसरा प्राण लेकर भी पीछे उस मृतक कलेवरके टुकडे टुकडे कर डाले और उस बाद तेलमें भूनकर छोड देवे इस तरह दुष्टतामें तफावत होती है और यही तफावतसे कर्म बाधनमें भी तफावत रहता है इस लिये समझना चाहियें कि जिसने दुष्ट कठिन प्रकृतिके सबळ योगसें कार्य किये ह उसको कठिन अशाता वेदनी कर्मबध होता है और भुक्तनेके वख्त भी कठिन वेदना भुक्तनी पडती है और जिसने मदतासें कर्मबध किया होव तो उसको मद वेदना भुक्तनी पडती है यह कर्मका नाश भुक्तनेसेंही होता है उसमें अज्ञानी लोग तो दुःख भुक्तते है तौ भी परमात्माको दोष देकर कहते है कि-'ह भगवान ' मैंने तेरा क्या बिगाडाथा

कि मुझे अैसा दुःख दिया ?' फिर कोइ कहते हैं कि–' अरे ! मुझसें अैसें दुःख सहन नहीं हो सकते हैं. ये दुःख कब दूर होगा ?' इत्यादि कहकर डॉकटर–हकीम–वैद्यके ऊपर गुस्सा करते हैं, या तो अपने घरके मनुष्य किंवा नौकर चाकरके ऊपर चिल्लाकर धूमधाम मचाते हैं. और रोग चिंतवनाके अरिष्ट फल प्राप्त होते हैं. इस तरह अनेक जीव गेरवाजबी विकल्प किये करते हैं, उस्सें जीव पुनः उन्सें भी ज्यादे कठिन कर्म बांधता है. और जो धर्मिष्ट जीव हैं वो तो दुःख आता है तब अपने कर्मका दोष निकाल कर शोचते है कि–' गत जन्मोंमे मेंनें अज्ञानतासें दुष्ट आचरण किये होंगे उस्सें वो कर्म मुझकों भुक्तनेही चाहियें. जेसे सरकारका गुन्हा किया हो और उसकी शिक्षा मिल चूकी हो तो वो सरकारके हुकम मुजब यदि शिक्षा न भुक्तेंगे तो सरकार ज्यादे शिक्षा करेगी, तेसें मैं विकल्प करुंगा और समभावसें अैसा दुःख न भुक्तुंगा तो फिर नये कर्म बंध जायेंगे, तो मेरी आत्मा ज्यादे मलीन होगी; वास्ते मुझकों जो जो दुःख प्राप्त हुवे हैं वोः दुःख समता भावसें भुक्तनेही चाहियें कि जिस्सें फिर अैसे कर्म न बंधे जाँय, अैसी वर्त्तना करनेकी आवश्यकता है.

फिर भावना भावे कि मैं तो चेतन हुं, अनंतज्ञान दर्शन चारित्रवंत मेरी आत्मा है; लेकिन जडकी संगतिसें मैनें नहीं करने लायक काम किये; मगर उस वक्त मुझकों मेरी आत्माका ज्ञान नहीं था. अब तो मैं जानता हुं कि मेरा जाननेका धर्म है वास्ते सुख दुःख आजावे उस्कुं जानना किंतु मुझकों दुःख होता है–पीडा होती है अैसे विकल्प करना यह मेरा धर्म नहीं है. अैसे विचार करकें समभावमें रहता है उसके तो पूर्वके बंधाये हुवे कर्मभी नष्ट हो जाते हैं और नये कर्म नाहि बंधे जाते हैं. फिर जो मुनिराज है वे तो अपने ज्ञान ध्यानमें तत्पर रहते हैं, उस्सें अपना स्वभाव छोडकर दुःखकी तर्फ उनका ध्यान नहीं जाने पाता है उससे किंचित्भी उस संबंधका विचार नहीं करना पडता है. जेसें कि कोइ मनुष्य भवाइ–नाटक देखनेको जावे, वहां खडे खडे अपने पैर दुखने लगें तोभी तमाशा देखनेमें ध्यान होनेके सबबसें पैरके दुखनेकी तर्फ ध्यान या लक्ष नहीं जा सकता है, वेसेंही मुनि महाराजभी अपने आत्म तत्त्वके ध्यानमें लीन हुवे होते हैं उस सबबसें दुःखवेदनामें उपयोग नहीं जा सकता है. अैसे पुरुष तो ध्यानके प्रभावसें अपने बंधे हुवे निकाचित कर्मकुं शिथिल कर डालते हैं और पीछेसें तुरत उन कर्मोंका नाश करकें मोक्ष प्राप्त करते हैं. इसलिये आत्मार्थिज–

नांसे तो ज्यों बढे त्यों समभावको बढानाही चाहियें-कि जिस्सें कर्म नाश होकर आत्माकी मुक्ति हो जाय, और तबही अन्याबाध सुखकी प्राप्ति होवें. इस मुजब वेदनी कर्मका स्वरुप समझ लेने योग्य है.

अब नाम कर्मका स्वरूप कहेंगे. नाम कर्मकी १०३ प्रकृतियें है और उनके नाम नीचे मुजब हैं-गतिनाम कर्म याने मनुष्य, तिर्यंच, नारकी और देवता इनचारों गतिमेंसें जिन गतिमें जानेका पूर्वजन्मके भीतर कर्म बाधा होवे उन गतिमेंही जावै १, दूसरा जातिनाम कर्म याने एकेंद्रि, बेरेंद्रि, तेरद्रि, चौरेंद्रि, पचेंद्रि, यह पाच जाति है, इनमेंसें जितनी इंद्रि प्राप्त करनेकी प्रकृति बाधी होवै उतनीही उन गतिमें पावे, २, तनुनामकर्म याने तनु-शरीर पाच प्रकारके हैं-उदारिक, वक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण इन पांचोंमेंसे उदारिक शरीर जो अपने हैं वो, और तिर्यचमेंभी उदारिक शरीरवाले होते है तथा देवता और नारकीको वेक्रिय शरीर होता है. पारेकी सदृश अलग अलग हो जानेपरभी पुनः एकत्र हो जैसाका वैसा बनजावे वो वेक्रिय कहा जाता है नारकीमें पेदा होतेही शरीरके टुकडे टुकडे हो कर फिर जुड जाते है. और परमाधामी दु.ख देनेके समयभी काटते व्हेरते हैं तोभी शरीर असल स्थितिवाला हो जाता है, मगर विनाश नहीं हो जाता है देवतायेंभी अपनी इच्छानुसार छोटा बडा शरीर करलेते हैं वोभी वैक्रिय शरीरका स्वभाव है आहारक शरीर तो अतिशय ज्ञानी कि जो चौंद पूर्वधर है उनकों यह शरीर करनेकी लब्धि होती ह वे किसी समयपर कुच्छ शका पडनेके सबबसें मुठी प्रमाण शरीर बनाकर शका निवृत्तिके लिये भगवंतके पास भेजत हैं और वो बहुतही अल्पकालमें जाकर पीछा आता है वो शरीर वैसे मुनि महाराजके सिवा किसिकोंभी प्राप्त नही होता है तैजस शरीर जो शरीरकी अदर आहारकों पाचन करता है ओर कार्मण शरीर वो अत्यत सूक्ष्म शरीरकी अदर रहता हैं जिस वक्त जीव इस गतिमेंसें मरण पा कर दूसरे स्थानक जाता है उस वक्त ये तैजस और कार्मण सग सग जाते हैं कर्मभी कार्मण शरीरमेंही रहते है उदारिक वैक्रिय शरीरकी साथ ये तैजस, कार्मण शरीर हम्मेशा रहते है. यह शरीर, नामकर्म जिस तरहका बांधा होवै वैसा प्राप्त होता है ४ उपाग नामकर्म याने उदारिक अगोपाग, वैक्रिय अगोपाग, और आहारक अगोपाग यह तीन शरीरके अगोपाग है वो जैसा बाधा होवे वैसे अगोपाग होते हैं ५ पद्रहबधन हैं, याने उदारिक उदारिक बधन, उ-

दारिक तैजस बंधन, उदारिक कार्मण बंधन, उदारिक तैजस कार्मण बंधन, वैक्रिय वैक्रिय बंधन, वैक्रिय तैजस बंधन, वैक्रिय कार्मण बंधन, वैक्रिय तैजस कार्मण बंधन, आहारक आहारक बंधन, आहारक तैजस बंधन, आहारक कार्मण बंधन, आहारक तैजस कार्मण बंधन, तैजस तैजस बंधन, कार्मण कार्मण बंधन और तैजस कार्मण बंधन—इस तरह पंद्रह बंधन हैं. वै पूर्वके बांधे हुवे कर्मके साथ नवीन कर्मका एकजीव पना करदेते हैं. जैसें मिट्टीका वरतन टूटा फटा होवै तौ चपडाके संयोगसें सावित हो जाता है वैसें पूर्वके कर्म संगाथ नवीन कर्मकों जोड देते हैं. ६ पांच संघातन वै पांचों शरीरके नाम मुवाफिक हैं. वै प्रकृति कर्मके दलियोंकों खींचकर कर्मकी नजदीक करते हैं और पीछे बंधन नाम कर्मकी प्रकृतियें ऊपर लिखी गइ है वै एकजीव कर देती हैं. अव छः संघयणके विषयमें खुलासा करते हैं. वज्रऋषभ नाराच संघयण याने शरीरकी हड्डीके सांधे अैसे होते है कि एक दूसरेके परस्पर मणिवंध पकडे गये होवै उसी तरह हड्डीके वंधके सांधे आगे होते है उसकों मर्कटवंधे कहते हैं. उसपर पाटा होवै और वीचमें वज्रमय खीली होवै—अैसे मजबूत सांधे होवैं उसकों वज्रऋषभनाराच संघयण कहते हैं. ये संघयणवाला शरीर वहुतही वलवान् होता है. तद्भव मुक्तगामी जीवकों अवश्य यह संघयण होता है. क्यों कि यह संघयण विगर क्षपकश्रेणी न कर सकै, और क्षपकश्रेणीके सिवा केवलज्ञान प्राप्त नहीं होवै. यहांपर कोइ शंकाशील शंका करेगा कि क्या यह संघयणवाला अवश्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है ? तौ उस विषयमें हम समाधानके लिये खुलासा करेंगे कि यही संघयण वालाही मुक्ति वरे अैसा नियम नही है; मगर ये संघयणवाला प्रभुकी आज्ञा मुजव सुकृत्य करेगा तौ मुक्ति पावैगा, और प्रभुकी आज्ञा विरुद्ध चलैगा तौ दुष्ट कृत्यके जोरसे यावत् सातवी नरकमें जायगा. सातवी नरक भी यह संघयण विगर प्राप्त नहीं हो सकती है; क्यौं कि संघयण वलवान् होवै तभी अतिशय वुरे या अच्छे काम करसकता है. और वुरेके परिणाममें नरक और अच्छेके परिणाममैं स्वर्गापवर्गकी प्राप्ति हो सकती है. दूसरा ऋषभनाराच संघयण है, वो वज्रमय खीलीसें रहित होता है, वाकी सव वज्रऋषभ सादृश कृति होती है. तीसरा नाराच संघयण है. उनके दो वाजु मर्कटवंध होता है; मगर वज्रमय खीली ओर पाटा यह नहीं होते हैं. चौथा अर्धनाराच संघयण है. उसमै एक वाजुपर मर्कटवंध होता है. पांचवा कीलक संघयण है.

उसमें दो सांधेके बीचमें खीली होती है छठा छेवट्ट संघयण है उसमें हड्डीके अग्रभाग एक दूसरेके साथ अडकर रहते है अभी यही सघयण है, लेकिन जिस वक्त श्री तीर्थकर प्रभु विचरते थे उस वक्तमें छउ सघयणवाले मनुष्य थे. जिसने जैसा पुण्य सचय किया हो वैसा सघयण प्राप्त होता है आधुनिक समय महाविदेह क्षेत्रमें ये छउ सघयणवाले मनुष्य विद्यमान हैं ७

सस्थान नाम कर्म उनके छ. भेद हैं. पहिला समचौरस सस्थान है, वो नाभिसें दोनू खभे तक डोरी नापकर वोही डोरी पद्मासन लगाकर बैठेहुवे सख्सके गोठन-घूटन तक नापनेसें समान याने नाभिसें खभे और नाभीसें पद्मासनवालेके घूटन तक भरनेसें दोनू बाजु बरोबर लबाइमें होवै तो उसकों समचौरस सस्थान कहा जाता है. इस सस्थानसें शरीर बहुत सुदर मालूम होता है. दूसरा न्यग्रोध सस्थान-वो सस्थानवालेके शरीरका उर्द्धभाग और अधोभाग बेहुदा होता है. इससें कम खुबसुरतीवत तीसरा सादी सस्थान होता है. उससे भी हलके दर्जेका चौथा वामनसस्थान होता है. पाचमा कुब्ज सस्थान कि जो बड़ा बेडोल होता है और छट्ठा हुडक सस्थान, वो सब सस्थानोंसें विपरीत लक्षणवाला होता है यह शरीरके सबधी सस्थान हैं पूर्वजन्मोंमें जैसा सस्थान नाम कर्म बाधा हो वैसाही शरीरका सस्थान प्राप्त होता है ८

अब वर्णनाम कर्म याने वर्ण पाच हैं-हरा, राता, पीला, श्याम और स्वेत-उज्वल-गौर ये पांचु वर्णमेंसें जिस वर्णका नाम कर्म बाधा हो वैसाही शरीरका रग होता है ९ गधनाम कर्म याने गध-सुगध और दुर्गंध ये दो हैं जिसने जैसे शुभाशुभ कर्म बांधा होवे वैसा शरीर अच्छे बुरे गधवाला होता है १० रसनाम कर्म याने रस पाच हैं-चरपरा, कडुक, खट्टा, मीठा और तूरा ये पाचमेंसें जिसने जैसा कर्म बाधा होवे उनकों वैसेही रसवाला शरीर प्राप्त होता है ११ स्पर्शनाम कर्म याने हलका, भारी, रूखा, स्निग्ध, ठढा, गरम, कोमल और कठोर-यह आठ स्पर्श है उनमेंसें जो नाम कर्म प्राप्त किया हो वही स्पर्श मुजब शरीरका स्पर्श होता है १२ आनुपूर्वी, नामकर्म याने मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी और नरकानुपूर्वी-यह चार हैं इनमेंसें जिस गतिके अदर जीव जानेवाला हो उस गतिमे वही गतिके आनुपूर्वी पुद्गल उसें ले जाते हैं ये आनुपूर्वीका उदय जब अजल-पग्ण आ पहुचे तब

होता है. १३ चलन गति नाम कर्म याने शुभ विहाय और अशुभ विहाय ये दो गति हैं, हाथी और वेहलके समान चाल चलै सो शुभविहाय, और ऊंट किंवा गदहेकी तरह चाल चलें सो अशुभ विहाय गति कही जाती है. इन दोमेंसे जिस गतिकी कर्म प्रकृतिका बंध हुवा होवे उसी प्रकृतिकीचाल प्राप्त होती है.

१४ त्रस नाम कर्म याने चलने हिलनेकी जैसी शक्ति उपार्जनकी हो वैसी प्राप्त होवे. वादरनाम कर्म याने दूसरे मनुष्य देख सकें वैसा शरीर प्राप्त करै. पर्याप्त नाम कर्मसें जीव पूर्ण पर्याप्ति बांध सकै. प्रत्येक नाम कर्मसें एकही शरीरमें एकही जीव होवै. स्थिर नाम कर्मसें शरीरकी हड्डी स्थिर होवै. शुभनाम कर्मसें नाभिके ऊपरका भाग-अंग जगत्में पूजनीक कहा जावै. सौभाग्यनाम कर्मसें जीव मात्रकों प्रिय लगे. सुस्वरनाम कर्मसें अवाज मीठा प्राप्त होवै. आदेय नाम कर्मसें हरकिसीकों वचन कहै वो मान्य करै-उनके वचनका कोइ अपमान न कर सकै. यशनाम कर्मसें जगतमें यशवाद प्राप्त करै-काइभी उनका अपयश न वोलै. स्थावरनाम कर्मसें जीव स्थावरपना बांधता है-जिस्सैं पृथिवी, अप, तेउ, वाउ और वनस्पतिपना प्राप्त करै. सूक्ष्म नाम कर्मसें जीव ऐसा शरीर बांधे किं उसकों कोइ भी न देख सकै. अपर्याप्तनाम कर्मसें पर्याप्ति पूर्ण किये विगर मरणके शरण होता है. साधारण नाम कर्मसें एक शरीरमें अनंत जीवोंको रहनेका होवै. अस्थिरनाम कर्मसें केश, कान, रुधिर, अस्थिर होवैं. अशुभनाम कर्मसें नाभिके नीचेका अंग अपूजनीक होवै. दुर्भाग्यनाम कर्मसें सब जीवोंकों अनिष्ट लगे. दुस्वरनाम कर्मसें सब जीवोंकों अनिष्ठ लगे. दुस्वरनाम कर्मसें कर्णकटु अवाजवाला होवै-उनका गाना किसीकोंभी पसंद नहीं आवै. अनादेयनाम कर्मके प्रभावसें किसीकोंभी सच्ची वात कह देवै तौभी दूसरे मनुष्यकों पतीज लायक मालूम न होवै-कुछभी बोले सो किसीकोंभी पसंद न पडे. अपयशनाम कर्मसें सब जगह अपयश पावै. पराघातनाम कर्म बांधा होवै उन्सें पर जीव बलवान् होवै तौभी वो जीवको मुख देखै कि भय पावै, उच्छ्वास नाम कर्मसें श्वासोच्छ्वास बराबर ले सके और उनमें कुछ कसर होवे उतनी अडचण-हरकत होवै. आतापनाम कर्मसें सूर्यबिंब समान तेज न सहन कर सके वैशा दिव्य तेजवंत होवै. उद्योत नामकर्मसें चंद्रमा तारेके समान शीतलस्वभावी और उद्योतकारक होवै. अगुरुलघुनाम कर्मसें बहुत भारी शरीर न होवै और न बहुत हलका होवै-मतलबमें जैसा चाहियें वैसाही

होवै निर्माण नाम कर्मसें शरीरके अवयव जहा चाहियें वहा कायम होवै उपघात नाम कर्मसें शरीरमें रसोली याने अर्बुद, प्रतिजीव्हा, चोरदत, खीली वगैर उपद्रव होवै और शरीरकी अदर पीडा होवै तीर्थंकरनाम कर्मसें तीर्थंकरकी पदवी पावै, असख्य देव जिनकी सेवामें हाजीर रहै, समवसरण प्रमुखकी रचना होवै, प्रभुका मुख देखनेसें आनद होवै, प्रभुका दियाहुवा उपदेश ग्रहण करै, बालजीवोंकों धर्म प्राप्तिका मुख्य कारण है, क्योंकि जो मनुष्य चमत्कारके रसिक है वे रत्नमय समवसरणमें प्रभुकों विराजमान हुने देखकर पहिलें तो उन्के दर्शनकी इच्छा उत्पन्न होवै, बाद देवता वगैरः देशना सुनते होवै मोह देखकर भगवानकी तर्फ विशेष प्रतीति पैदा होवै, वास्ते भगवानकी अमृतमय देशना सुन लेवे कि आसन्न भविजीव तुरत प्रतिबोध प्राप्त कर लेवै

इस मुजब नामकर्मकी १०३ प्रकृति हैं उनमेंसें कितनीक पुण्य उदयसें और कितनीक पापके उदयसे जैसी जैसी प्रकृति बाध ली हो उस मुजब जीवकों प्राप्त होती है उसमें भी अशुभ नामकर्मकी प्रकृति उदय होती है तब अज्ञानी जीव दिलगीर होते हैं और शुभ नामकर्मकी उदय होती हे तब खुश होते हैं, यो खुशी और दिलगीरी अशुभ कर्म बाधनेका स्थान है. ज्ञानवान् पुरुष अशुभ शुभ चाहे सो उदय होती है, तब उनमें खुशी या दिलगीर नही होते हैं वे यों मानते हैं कि 'जैसे पूर्वभवमें कर्म बाधे गये है वैसे उदय आये हैं तो उनमें मेरे राजी या दिलगीर होनेका सबब क्या है? कुछभी नहीं' औसा शोचकर आप समभावमें रहते है, उस्सें अनुक्रमसें विशुद्ध होकर कर्मसें मुक्त होते है और अरुपी गुण प्रकट करता है उसीसें सिद्धिकों प्राप्त करते हैं.

अब गोत्रकर्मका स्वरुप कहते हैं गोत्रकर्मके दो भेद हैं याने उचगोत्र और नीच गोत्र उचगोत्रके भी आठ प्रकार है कि जो पन्नवणाजी सूत्रमें बताये गये है याने उच जाति, उच कुल, सुदर स्वरुप, उत्तम बल, धनवतता, ठकुराइ-राज्यपद-बडा होदा शेठाइ वगैर. और विद्यानता-यह आठ वस्तुकी प्राप्ति उचगोत्रके प्रभावसें होती है और नीच गोत्रके प्रभावसें यही आठ वस्तु विपरीत रुपमें प्राप्त होती है कर्म भी समभावसें ज्ञानी पुरुष भुक्तते हैं और उनकों व्यय कर अगुरु लघु गुण पैदा करकें सिद्धमें रहते हैं

अब अंतराय कर्मका स्वरूप कहते हैं. अंतराय कर्मकी पांच प्रकृति हैं याने दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यांतराय—ये पांच हैं. उनमैंसें दानांतरायके प्रभावसें देने लायक वस्तु हाजिर है, लेनेवाला पात्रभी विद्यमान है, तौ भी दान नहीं दे सकै. लाभांतरायके उदयसें लाभकी प्राप्तिही न होवे. भोगांतरायके उदयसें भोग्य पदार्थ मोजूद होवें; तदपि उनका उपभोग न कर सकै. उपभोगांतरायके जोरसें उपभोग वस्तु जो वेर वेर भोग्यमें आवे वैसी प्राप्त हुवेपर भी शोक वगैरः आ पडनेसें उपभोग न कीया जावे. और वीर्यांतरायके जोरसें बल वीर्य प्राप्त न हो सकैं. या प्राप्त होवे; तदपि धर्मके काममें वीर्य स्फुरा सके नहीं. यह पांचो प्रकृतिका सर्वथा अंत केवलज्ञानकी प्राप्तिके समय हो सकता है, तौ भी थोडा थोडा नाश तो आगेभी होता है, उस्सें उतना काम हो सकता है.

अब अंतिम आयुकर्मका स्वरूप कहते हैं. मुख्यपनेसें मनुष्य, देव, तिर्यंच और नारकी—इन चार प्रकारके आयुमैंसें जिन गतिका आयु बांधा होवे उन गतिमें जीव जाता है.

इस प्रकारके आठों कर्म कीये जाते हैं उससें करकें जीव संसारमें परिभ्रमण करता है. जब ये आठों कर्मका नाश हो जावै तब सिद्ध भगवान् होता है. सिद्ध हुवे बाद पुनः संसारमें आगमन नहीं होता है याने जन्म जरा मरणका केवल अभाव होताहै.

५२ प्रश्नः—उक्त कथित आठों कर्म क्या क्या करनेसें जीव बांध सकता है?

उत्तरः—ये आठों कर्म बांधनेके बहुत कारण हैं; तौभी मुख्यतासें ५७ हेतु हैं सो इस मुजब हैंः—पांच मिथ्यात्व याने अभिग्रह मिथ्यात्व, अनभिग्रह, अभिनिवेशिक, संशयीक और अनाभोग—ये पांच हैं. उनमैंसें पहिलेके प्रभावसें, कुगुरु, कुदेव, कुधर्मका झूंठा हठ ग्रहण कीया गया है वो छोडता नहीं. मेरे बापदादे जो करते आये हैं वोही करुंगा. दूसरी तरहसें जो पुद्गलिक वस्तुकों मेरेपनसें अति आग्रह करके मान बैठा है वोभी मिथ्यात्व है. दूसरे अनभिग्रह मिथ्यात्वसें सुदेव, और कुदेव ये दोनूकों समानतासें मान लेवै; लेकिन गुणिकों गुणिपनेसें मान लैना और निर्गुणिकों छोड देना ये नहीं कर सकै. तीसरा अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके प्रभावसें सच्चे देव गुरु धर्मकों पहिचाने; मगर ममत्वके वशसें उन्होंका आदर न

करे, मगर हेलना करे. चौथा सशयीक मिथ्यात्वके जोरसें सर्वज्ञके वचनमें सशय करे और अनाभोग मिथ्यात्वके प्रभावसें धर्म कर्मकी कुछ भी खबर न होवे, जड जैसा मनुष्य होवे और धर्मकी बिल्कुल रुचि होवे नहीं. ये पाच मिथ्यात्वसें करक जीव कर्म बांधता है फिर बारह अव्रत याने पाच इंद्रिय और छठ्ठा मन यह छः और छ काय. उनमें पांच इंद्रियोंके और मनके विषयमें लुब्ध रहे. और पृथिवीकाय याने मिट्टी, निमक, धातु वगैर., अप्काय याने पानी, तेउकाय याने अग्नि, वाउकाय याने पवन, वनस्पतिकाय याने हरी पत्ती फूल फल वगैरः और त्रसकाय याने बेरेंद्रिय, तेरेंद्रिय, चौरेंद्रिय, पचेंद्रिय-उन्मेंभी पचेंद्रियवाले मनुष्य, तिर्यंच-पशु-गाय-भैंश-घोडा-बकरा-गीदड-हरिण वगैर', तथा पखी, और समुद्रके छोटे बडे मच्छ मघरमच्छ वगैर', बहुत प्रकारके साप आदि है, वो और देव तथा नारकी-यह चार जातिके पचेंद्रिय जीव है ये छःकायके जीवोंकी हिंसा करे उनसें जीव कर्म बाधता हैं. फिर पचीस कषाय (जो इस ग्रन्थके पचासवे प्रश्नके उत्तरमें मोहनी कर्मके स्वरूप मध्य चारित्रमोहनीकी पचीस प्रकृतिये कही गइ है वही पढकर ध्यानमें ले समजमें रखीये कि) उनके सेवनेसें जैसी जैसी कषायकी प्रकृति होती है वैसा वैसा कर्म बांधता है कर्म बाधनेका बीजही वो है, और तिव्र मन्द कषायके ही सबबसें कर्म बधे जाते हैं और पदर योग याने मनके चार वचनके चार और कायाके सात ऐसें १५ हैं उनमेंसें मनके चार योग कहते हैं सत्य मनयोग याने सचे विचार करना. असत्य मनयोग याने खोटे विचार करना सत्यासत्य मनयोग याने सचाहै मगर झूठाहै, जैसें कोइ एकाक्षिकों काना कहनेसें उनकों महा दुःख होता है. और दूसराभी जो जो छिद्र सचेहैं मगर प्रकट करनेसें उस जीवकों महा सताप होता है देखो ! ये सचा कहनेसें दुःख होता है, वास्ते ऐसा सत्य बोलनेसें असत्य कथनका कर्म बांधा जाता है. चोथा असत्यसत्य मनयोग याने जैसें कोइ स्त्री किसी समयके लिये पुरुषका पोशाक पहेनकर आइ होवे उनकों देख पहिचान ली, मगर दिलमें खियाल आया कि 'यदि इनकों स्त्री कहुगा तो इनका छुपा भेद सुल्ला

है तब भवकी नियमा होती है. वो मार्गानुसारीके गुण प्रकट नहीं हुवे है और उस गुणके अभावसें अन्याय प्रवृत्तिमें तौं कुशल रहे है; तदपि जैन अैसा नाम धारण करते हैं, तौ उससें भवकी नियमा नहीं होती है; लेकिन श्रावक नाम धारण करकें अन्यायकी प्रवृत्ति करै उससें जैनधर्मकी लघुता तौ होती है. तौ जिससें लघुता होती है याने जिन जैनोंके लिये लघुता होती है उनरों मुक्तिकी नियमा कैसें होवे ? यहां पर कोइ और भी शंका करेगा कि–'जैनकुलमें उत्पन्न होना सो तो पुण्य प्रभावसें कहा है; तथापि मुक्तिकी नियमा न हुइ ये क्या ?' इसके समाधानमें यही कहेंगे कि जैनकुलमें उत्पन्न होनेसें तो वडा फायदा है; क्यौं कि उद्यम करै तो यथार्थ आत्मज्ञान प्रकट करनेका साधन है और उद्यम करकें मिलावे नो आत्माकी अज्ञानता दूर हो जावे और मुक्ति पावे, या तौ मुक्तिकी नियमा भी होवे; परंतु वो जैनकुलमें जिस मुजव परमात्माने धर्मप्रवर्त्तना करनेकी आज्ञा दी है उस मुजव न करै, जो अन्यायादिकका निषेध करनेका कहा है वो भी दूर न करै और नाम मात्रसें श्रावकपना धारण कर लेवै तौ उससें मुक्तिकी नियमा कैसे होवै ? ये तौ गत जन्मांतरोंमें पुण्य उपार्जन कियाथा वोभी निकमा गुमा दिया; वास्ते प्रभुकी आज्ञा मुजव चलनेसें गुण होगा और जिनके अंगमें मार्गानुसारीके गुण आये हैं वो तौ तीसरे गुणठाणेका स्पर्श करकें चौथा गुणठाणा पावेगा; क्यौं कि कितनेक जीव जिनाज्ञा पालन कर सकते नहीं, लेकिन धर्म सत्य है अैसा मनमें जानते हैं और जैनधर्मपर राग है तौ यह भी परंपरासें करकें मुक्ति प्राप्त करनेका सवव है.

चौथा अविरति समकित गुणठाणा सो क्षायकभावसें पावे तौ अनंतानुवंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, समकित मोहनी, मिश्रमोहनी और मिथ्यात्वमोहनी–ये सात प्रकृति, सत्ता, वंध, उदय–यह तीन प्रकारसे भी नाश हो जाती है उनकों क्षायक समकित होता है, और जिसकौं क्षयोपशम समकित होवे उसकौं तौ ये सातों प्रकृति सत्तासें रहती है; मगर वंधमैंसें दूर हो जाती है. उस विषयमें यही खुलासा है कि तीन मोहनी हैं, उसमें वंध तो मिथ्यात्वमोहनीका है, मिश्र, समकितमोहनीका वंध नहीं है–सवव यह कि यह तीन नाम मिथ्यात्वमोहनीके विभाग पडनेसें होते हैं. जैसेंकि चावलोंके उपर तूस हैं सो चावलोंका ढकन है; परंतु तूस दूर हो जावे तौ भी तूसका अंश रहता है, वो निकल जाते हैं तब उसका नाम कुशकी (भूसा) कहा

जाता है और कुशकी निकल गये बाद भी चावलोकों पानीसें धोते हैं तब वह पानीका नाम चावलोंका धोवन कहा जाता है ऐसें नाम और स्वभावमें भी तफावत रहता है उसी मुजब मिथ्यात्वके पुद्गल हठ जाते है, तदपि कुशकीरूप पुद्गल रहते हैं उनका नाम मिश्रमोहनी कहा जाता है फिर वो जाती है तौभी सहज अंश रहती है उसका नाम समकितमोहनी है. यह तीनु प्रकृति मिथ्यात्वकी है उसस मिथ्यात्वका बंध है, सो क्षयोपशम समकितवालेकों दूर होता है अब उदयसें अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्वमोहनी और मिश्रमोहनीका नाश होता है, और समकितमोहनीका उदय रहता है तौभी ये समकितवालेकों मुक्तिकी नियमा है एक वक्त समकितका स्पर्श करकें कदापि त्याग दिया होवे तथापि पुनः प्राप्त करेगा और अंतमें मोक्ष सुख अनुभवेगा फिर उपशमभावका उपशम समकित होता है, वो उपशमभावका चौथा गुणठाणा पाता है वो उपशम समकितवालेकों सातों प्रकृति सत्तामें रही हैं, मगर उदय तथा बंधमें नहीं है. ये चौथे गुणस्थानकवालेकों समकितके ६७ बोल प्राप्त होते हैं [महोपाध्याय श्री यशविजयजीने समकितकी सज्झाय की है, उसमें उन बोलोंकी सविस्तर हकीकत है, वो पढकर समझ लेना] उनमेंसें पांच लक्षण यहा कहते है'—

पहिला उपशम लक्षण सो–अपराधीके संग भी रोषभाव न रक्खे, किसी मनुष्यने चाहे वैसा अपराध किया हो और उसीका कोइभी काम उनके हाथमें आया हो तौभी उनका काम अपना अपराधि है ऐसा जानकर न बिगाडे

दूसरा संवेग लक्षण सो–देव मनुष्य सुखके सुखकों सुख न जाने. संसारकों उपाधि जाने आत्मा जितना कषाय प्रकृतिसें मुक्त होवे और आत्माका गुण प्रगट होवे उतना सुख माने तथा केवल मुक्तिकी अभिलाषा रहे सो संवेग लक्षण है

निर्वेद सो–संसारमें रहा है, मगर संसारमेंसें निकलनेका अतिशय चित्त हुवा है, संसार कैदखाने समान लगता है कब य संसार उपाधि जंजालसें छोडदू और मेरे सहज स्वभावमें रहु ? ऐसी भावना रातदिन बनी रही है कोइ कहेगा कि–'ऐसे भाव है तथापि संसारमें क्यों पड रहा है ?' इसके उत्तरमें यही है कि पूर्वके भोगकर्म तीव्र बंधे होवे उस बंधनके सबब जीव छोड सकता नहीं छोड देवे तौभी निकाचित कर्म पीछे उदय आते है कर्मकी गति विचित्र है, मगर वो विचित्र कर्म

दूर करनेका उपाय तत्त्वरमण है. वो ज्यौं ज्यौं विशुद्ध होवे त्यौं त्यौं जडता नाश होती है.

चौथा अनुकंपा लक्षण सो—दुःखी जीवका दुःख दूर करनेका शक्ति मुजब उद्यम करै. शक्ति है तो दुःखीका दुःख दूर करनेमें लापरवाह न रहै. यह द्रव्यानुकंपा कही जाती है. और भावअनुकंपा सो धर्म रहित जीवकों अपनी ज्ञानशक्तिसें धर्मोपदेश करकें धर्मका संस्कारी करे. यहां कोइ शंका करेगा कि—१२ प्रश्नमें तो गुरुमुखसें धर्म श्रवण करना कहा है, तब क्या श्रावकके मुखसेंभी धर्मका उपदेश श्रवण करना? इसके समाधानमें यह खुलासा है कि—श्रावककों भावदया लक्षण यही है कि धर्मका संस्कारी करना; वास्ते मुनिमहाराजका योग न होवे तो वडील—वयोवृद्ध—तपोवृद्ध—ज्ञानवृद्ध श्रावक होवै सो धर्मका उपदेश सुनावे और दूसरे श्रावक श्राविकाए सुनें. श्रावककों धर्म श्रवण करानेका अधिकार श्री भगवतिजीमें, तथा धर्मरत्न प्रकरणमें है. और उपदेशमालामें तथा आवश्यककी चूर्णीमें भी कहा है. देखियें वंदिताके, भीतर भी यह गाथा मौजूद है:—'पडिसिद्धाणं करणे। किचाण म करणे पडिक्कमणं॥ असद्दहणे अतहा। विवरीय परूवणाअेय.' इस गाथाके अर्थमें अर्थदीपिकाके कर्त्ताने विस्तारसें वर्णन किया है. फिर श्री शांतिनाथजी महाराजके पूर्वभवोंमें पोषह लेकर शास्त्र सुनाया था अैसा अधिकार है. औरभी वहुत जगह पर यह बातकी प्रतीतिके पुरावे मौजूद हैं. वास्ते उचित है कि श्रावक अपनी शक्ति मुजव धर्मोपदेश करें और जीवकों हरएक रीतिसें धर्ममें जोडदेवे सो भावदयाका लक्षण है.

पांचवा आस्तिक्यता लक्षण सो—जिनराजने प्ररूपे हुवे आगमोंपर, पंचांगीपर आस्ता होवे और वोभी शंका रहित होवे; क्यौं कि जो जिनेश्वर है सो राग द्वेष रहित है उस्सें उन्होंकों कम ज्यादा कहनेकी जरूरत नहीं अैसा निर्धार किया है. फिर जो आगम है सो न्याय युक्त हैं. आगमके वचनोंमें किसी जगहपर शंका उत्पन्न होवै वैसा हैही नहीं. जो जो वाते हैं सो सो न्यायसें सिद्ध है. पुनः जो जो वस्तु आगममें कही गइ हैं उन करते अधिक विवेचनादिके साथ दर्शाइ हुइ कहीं अन्यशास्त्रोंमें नजर नहीं आती है. आत्माकों रागद्वेषसें मुक्त करना सो जैनशासनमें कहा है. वोही वेदांत, न्याय, सांख्य, वौध—ये सब दर्शनवाले कहते हैं; मगर जैनसें अधिक मोक्षसाधन दूसरे दर्शनोंमें मालूम नहीं होता है. पुनः सूक्ष्म आत्मस्वरूपकी वातें जितनी जैनमें वतलाइ गइ हैं उतनी दूसरे कोइभी दर्शनमें मालुम नहीं होती है. फिर निजस्वरूपमें जोडनेवाले

व्यवहारिक साधन भी जैनमें बताये हैं, उन्सें अधिक साधन दूसरे दर्शनोंमें मालूम नहीं होते हैं. और जैनकें साधनोंसें जल्दी राग द्वेषकी प्रकृति शांत होती है पुण्य पापके मानने वाले नास्तिक सिवा यवन भी हैं; मगर जैनसें ज्यादे मानने वाले कोइभी नहीं हैं जैनमें पुण्य पापके स्वरूप बहुतही अच्छी तरहसे दिखलाये गये हैं और मोक्ष साधनके उपाय जो जो दिखलाये है, वै वै सब दूसरे दर्शनसें जैनने अधिक दिखलाये हैं. उससें चित्तमें जैनदर्शन उपर अतिशय आस्ता हुइ है. फिर नास्तिकताका मत न्यारा पडता है. वो मत कुछ व्याजबी नहीं हैं. उस मतका कुछ स्वरूप बतलाना चाहता हु, वास्ते रायपसेणी सूत्रमें केशीगणधर महाराजनें परदेशी राजाकों समझाये हैं वो कथन नीचे मुजब सारांशरूप हैं.—

परदेशी राजाने प्रश्न किया कि–' आप कहेते हो कि–जीव और शरीर भिन्न है और जैसा करें वैसा भुक्ते, तो मेरा बाप नास्तिक मतवाला था, बहुत हिंसा वगैरः करताथा, जो मर गया है, वो नरकमें जाना चाहियें, और वैसाही हुवा होवे तो नरकके दुःख देखकर वो मुजे यहांपर आकर कहेता कि, मैंने पाप किये है, उसीसें नरकके दुःख सहन करता हु, वास्ते तु भी पाप न कर, धर्म कर कि जिस्से दुःख न भुक्तने पडे जो असा आकर कहे तो मै शरीर और जीवको अलग अलग मान लु ' यह सुनकर केशीमहाराजने कहा कि–' हे परदेशीराज ! तेरी सूर्यकांता नामक रानी है जो सब प्रकारके वस्त्राभूषण पहेनकर बैठी हो, उस वक्त कोइ तोफानी बदनिगाहवाला पुरुष उनकी साथ बदचलन चलावे और वो तु देख लेवै तो उसकु घर जाने दे या जानसें मार डालें ? ' परदेशीराजाने कहा–' उसको तो शूलीपें चढा दुं, अनेक विटंबना करु, उसकों घरपर कभी न जाने दु ' तब केशीमहाराजनें कहा कि–' जैसे तु उसका विनाश करे और घरपर न जाने दे, वैसे नरकमेंसें परमाधामी भी आने क्यों देवे ? और न आने देवे तो किसतरहसें आने पावे ? वहांही दुःख सहन किया करें ' फिर परदेशी राजानें दूसरा प्रश्न किया कि–' मेरे बापकी माता बहुत धर्मीष्ट थी, वो हमेशां पौषध प्रतिक्रमण किये करती थी, दान देती थी वो तुमारे कथन मुजब देवलोकमें जानी चाहियें, तो वो देवका सुख अनुभवती है तब यहां आकर मुजे क्यों धर्म करनेका नही कहेती हैं कि मै देवलोककी अंदर बहुत सुख भुक्तती हु उस वास्ते तु भी धर्म करनेसें वैसाही सुख प्राप्त करेगा, जो असा कहे तो मै सच्चा मान लु कि जीव भिन्न है और शरीर भी भिन्न है '

केशी महाराजनें कहा-' तुं स्नान मंजन कर सुंदर मूल्य वस्त्राभूषण पहेनकर पवित्र पूजाके उपकरण लेकर देव पूजनेके लिये चला जा रहा होवे उस वक्त कोइ मनुष्य कहे कि यह विष्टाके कमरेमें आओ, विश्राम ल्यो, खडे रहो, बैठो, सो जाओ, अैसा कहे तो तुं वहां जायगा ?'

परदेशीराजाने कहा—' जाना तो दूर रहा; मगर उसका कथन मात्रभी न सुनुं.' अैसा सुनकर केशी स्वामीने कहा-' इसी मुजब देवलोककी अंदर देवता पैदा होता है, वहां दिव्यसुख, दिव्यभोग-अतिशय सुंदर महा सुगंधमय है, उनमें लीन होता है, उसके साथ स्नेहग्रंथी बंधता है, और अत्रके सगेसंबंधीका स्नेह तूटता है; तथापि अत्र आनेका विचार करता है कि मैं दो घडी बाद जाउंगा: लेकिन वहां के आयुष लंबे होनेसें वहांकी दो घडी व्यतीत होनेमें अपने दो हजार वर्ष चले जाते इससें यहांके जो सगे होते हैं, उनका अल्प आयुष होनेके सबबसें कितने जन्म व्यतीत हो जाते हैं, कहो अब कैसें मिलाप होवे ? और यहां न आनेका दूसराभी सबब है कि-मानवक्षेत्रकी अंदर उदारिक शरीरके लियेसें निहारादिककी बदबु चारसो या पांचसो योजन तक उछलती है, वो बदबुके सबबसें सुगंधमय पदार्थोंमें निवास करनेवाले देव यहां नहीं आ सकते हैं, तो तुझे किस तरह तेरे बापकी माता यहां आ कर कुछ हाल कह सके ? यहां आनाही दुर्धर है.'

परदेशी राजाने प्रश्न किया कि-' मैंने एक दिन एक चोरको लोहकी मजबूत छिद्र रहित कोठी में घुसेड रक्खा था, पवन जा सके वैसाभी बारीक छिद्र नहीं था; तथापि कितनेक दिनोंके बाद वो कोठीको खोलकर देखा तो वो चोर मर गया मालूम हुवा. जब शरीरसें जीव अलग था तो उनका जीव किस रस्तेसें बहार निकल कर चला गया ? शरीर और जीव एकही है, वास्ते भिन्न कहना झूठा है.'

केशी गणधरने कहा—' सुन, एक बडे मकानमें भूमिगृह है उस भूमिगृहमें जाकर कोइ सख्स उनके सब बारी जाली वगैरः हवा आने जाने के मार्ग-छिद्र बंध कर पीछे ढोल बजावे तो ढोल बजानेका आवाज बहार आ सकता है या नहीं ?'

परदेशी राजाने कहा—' बेशक आ सकता है!' केशी महाराजने कहा-' जैसे सब छिद्र बंध करदेने परभी ढोल बजानेका आवाज बहार आ सकता है, तैसेंही सब छिद्र बंध करनेपरभी जीव चला जा सकता हैं.'

परदेशी राजानें फिर प्रश्न किया—' मैंने एक चोरकों लोहेकी कोठीमें पूरकर सब छिद्र बंध कर दियेथे, उससें वो मर गया, मगर जब वो कोठीकों खोलकर देखा तो उनके कलेवर में कीडे पडे हुवे नजर आये, तो वो कीडे किस तरह अंदर उत्पन्न हो सके ?'

केशी महाराजने कहा—' लोहेकों अग्निसें तपाकर लालचोळ बना देते हैं तब उसमें अग्नि दाखिल होता है कहिये, उसमें छिद्र तो नथे, तोभी क्यों कर अग्नि दाखिल हो सका ? जैसे लोहमें अग्नि दाखिल होते मालूम न हुवा वैसेंही अरुपी जीव कलेवरमें दाखिल हुवे, मालूम न हो सका '

परदेशी राजानें प्रश्न किया—' कोइ युवान, बुद्धिमान या निरोगी मनुष्य बाण छोडे उस मुजब रोगी, बाल्यावस्थावाला बाण छोड शकेगा ? मतलब यह कि वो नहीं छोड सकेगा. तुमारे कहने मुजब जीव तो वे दोनुमें है, मगर शरीरकी न्यूनता होनेसें वैसा तफावत मालूम होता है, वास्ते शरीर है सोही जीव है.

केशी महाराजने कहा–' कोइ युवान पुरुष है और बलवानभी है, मगर उनके पास पुरानी कावड है, तो वो कावडसें भार उठा सकेगा ? अर्थात् नहीं उठा सकेगा, क्यों कि कावड तूट जावे उसी तरह जीवके साथ शरीरका संबंध है, मगर शरीर निर्बल है, बाल्यावस्थावत है, तो उससें बाण छोडना क्यों हो सके ? मतलबमें नहीं छोड सकै. '

परदेशी राजानें फिर प्रश्न किया—'एक चोरकों मैंनें जीते हुवे तोल लिया और उस पीछे शस्त्र बिना उसका जान निकाल दे फिर तोल किया तो वजनमें कुछभी तफावत मालूम न हुवा वास्ते जीव जुदा होता तो तोल कम ज्यादा होता, मगर ऐसा न हुवा तो जीव शरीरसें जूदा है ऐसा संभव नहीं होता है '

केशी महाराजने कहा—' चमडेकी धमन खाली होवे उस वक्त उसका तोल कर लेवे और फिर उसमें पवन भरकर तोल करे तोभी तोलमें बिल्कुल तफावत नहीं होता है उसी मुजब जीव है उसमें वजन नहीं होता है, क्यों कि अरुपी है, वास्ते कम ज्यादा तोल हुवा मालूम नहीं हो सकता है.

परदेशी राजाने कहा—' मैंने एक पुरुषके शरीरमें सब जगह जीवकों देखा; मगर कहीं मालूम न हुवा, तो पीछे उसके टुकडे कीये और फिर जीवकों देखा तो

भी मालूम न हुवा, तो फिर बहुत बारीक टुकडे करके देख लिया मगर जीवका पता न मिला; वास्ते जीव जूदा नहीं है.'

केशीमहाराजने कहा—'कोइ पुरुषमंडली जंगलमें गइ और रसोइ बनानेके लिये वहां अग्नि पैदा करनेके वास्ते लकडेके बहुतसे टुकडे करके देखा; मगर अग्नि देखनेमें न आया, तब सब उदास हो बैठे. उनमेंसें एक बुद्धिशालीने कहा कि तुम सब न्हा धोकर देवपूजन करना शुरु करो, मैं अग्नि उत्पन्न करकें रसोइ तैयार कर लुंगा.' पीछे उन बुद्धिमानने जंगलकी अंदरसें अरणीका लकडा ढुंढ निकाला और उनके दो टुकडे करकें एक दूसरेके साथ घिसना शुरु किया तो फौरन अग्नि पैदा हुवा और उससें रसोइ पकाकर सबको भोजन कराया. उसी मुजब शरीरके टुकडे करनेसें जीव नजर नहीं आता है, जैसें बुद्धिमानने बुद्धिबलसें अग्नि पैदा किया; लेकिन लकडेके टुकडे करनेसें अवलमें अग्नि पैदा न हुवा और न नजर आया, उसी मुजब शरीरके टुकडे करनेसे जीव नजर नही आता है; लेकिन ज्ञानवंत पुरुष ज्ञानबलसें जीवको देख सकता है.'

परदेशी राजाने प्रश्न किया—'यह दृष्टांत बतलाये, मगर जब प्रत्यक्षपनेसें जीवको हाथोंमें पकडकर बतलाया जावे तब मैं सच्चा मानुं?'

केशी महाराजने कहा—'यह दरखतके पत्ते किस सबबसें हिलते हैं? कोइ देव हिलाता है?'

परदेशी राजानें कहा—'पवनसें हिलते है.'

तब केशी महाराजनें कहा—'पवनको तुं देख सकता है?'

परदेशी राजानें कहा—'मैं नहीं देख सकता हुं.'

तब केशी गुरुने कहा—'पवन देखनेमें नहीं आता है तो भी पवनही हिलाता है ऐसा ज्यों मान लेता है त्योंही जीव नजर नहीं आता; मगर लक्षणसें मालूम होता है और केवलज्ञानी महाराज प्रत्यक्ष देख सकते हैं—दूसरे नहीं देख सकते हैं.'

इस तरह युक्तिवाले प्रश्नोत्तर होनेसें परदेशी राजाने नास्तिक मत छोडकर जीव अजीवादि नो तत्त्वकी श्रद्धा करकें श्रावकके व्रत अंगिकार किये.

इस मुजब बहुत तरहसें नास्तिकवाद शास्त्रमें निराकरण किया हुवा नजर आता

है, उससें मधुमार्ग और आगमपर पूर्ण श्रद्धा-आस्ता हुइ है स्वप्नमें भी संशय नहीं होता वही आस्तिक्यता लक्षण ध्यानमें लैना

यह पांचों लक्षण सम्यक्त्व दृष्टिवालेकों होते है. उनकों शोचना और जो न होवे तों इन्होंकों प्रकट करनेके लिये योग्य उद्यम करना. मुख्य उद्यम यह है कि-हरएक धर्मकी बातें सुनकर आत्मामें विचार करना कि मेरेमें यह गुण नहीं है वास्ते प्रकट करनेका उद्यम करु परंतु सम्यक् दृष्टिकी धर्म सुनकर दूसरेकी तर्फ नजर न जावे कि अमुक निगुणि है वो तो जिन जिन पुरुषमें गुण होवे वो ग्रहण करे अन्य दर्शनकी भी अच्छी रीतभात होवे तो उसकी निंदा न करे. उसपर महोपाध्यायजीने कहा है कि-' दर्शन सकलके नय ग्रहे ' याने जो जो दर्शनवाले जो जो नयसें धर्म करते होवे वो वो नय विचारसें जान लेते हैं और आप अपने सातों नयके विचारमें रहते हैं फिर जैनदर्शनमें भी पंचमकालके प्रभावसें कदापि क्रिया फेरफार मालूम होवे, तो भी मध्यस्थ दृष्टि रखनी. लेकिन एकांत खींचातानमें नही पडना. योग्य जीव होवे और कदापि क्रिया उनके गच्छाचार मुजब करते हो अथवा दूसरे आप अपने गच्छकी रीति मुजब करते होय उसकी निंदा न करते हो तो अपन भी उनके साथ मध्यस्थ रहना, मगर खींचातान करनी नहीं खींचातानसें बहुत विकल्पमें पडनेका होता है और धर्म है सो निर्विकल्प दशाहीमें है, वास्ते जो जो काम करना उन उनमें निर्विकल्प दशा होवे वैसी क्रिया करनी सोबत करनी उनमें भी स्वगच्छी होवे और उनकी सोबत करनेसे विकल्प होता होवे, और परगच्छी होवे मगर उसकी सोबतसें निर्विकल्पदशा होती होवे तो उनकी सोबत करनी दुरस्त है. हरेक रीतसें राग द्वेषकी प्रकृति कम होवे वैसाही करना वाद विवाद करनेसें स्हामनेवालेकों गुण होवे अथवा जैनशासनका जय हो अैसा होवे तो करना, लेकिन नाहक कंठशोष होवे वेसा वाद करना वो वेमुनासिब है हरिभद्रसूरीजीने अष्टकजीमें अैसे वादका निषेध किया है, वास्ते जिसमें दूसरेकों या अपने आत्माकों गुण प्राप्त हो वैसा होवे तो वाद चर्चा या धर्मकथा करनी और ये गुणठाणेवाले युद्ध करें. आत्मधर्मका लाभ होवे उसीमेंही काल निर्गमन करे संसारमें रहा है, मगर सांसारिक सुखकों वेठ (बिगर पैसे और बिन मरजीकी मजदूरी.) रुप जानता है, लेकिन उसमें प्रसन्न नहीं होता है जो जो संसारि काम करता है उसमें शोचता है

कि यह कृत्य मेरे करने लायक नहीं है; मगर गत जन्ममै कर्म बांधे हुवे हैं उसीसें मैं इसीमें बंधा हुवा हुं, इस उपाधीसें नहीं निकला जाता है; लेकिन जब रागद्वेषकी प्रकृतिसें मुक्त होकर यह संसारकी जालमैसें निकलुंगा और मेरे देखने समझनेके स्वभावमैं चलुंगा वही मेरा कार्य है. अबी भी जो जो शुभ अशुभ कर्मके उदय होवै उसमै मेरें लीन होना वो मेरा स्वभाव नहीं है. मै जहां तक संसारमैं रहा हुं वहांतक मुझे मेरे स्वभावमें रहकर उदय आइ हुइ क्रिया करनी है. सहजहीमें समकितके प्रभावसेंही आप लीन नहीं होते हैं, पुद्गलका तमाशा देखते है और आप अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्रमैही मग्न हो रहे हैं. ये गुणमैही आनंद मानते हैं. संसारी-आनंद तौ अस्थिर है; वास्ते वो आनंदकी तो स्वप्नमेंभी इच्छा नहीं करते हैं अैसा समकितका प्रभाव है. यहांपर कोइ शंका करेगा कि-श्रेणिकराजा क्षायक समकितीथे; तथापि उन्होने कुछभी व्रत क्यों न किया ? संसारसें अैसी उदासीनता होनेपरभी क्यों व्रत न ग्रहण किये ? इसके समाधानमैं यही कहेंगे कि-श्रेणिकराजाने समकितकी प्राप्तिके पेस्तर नरकका आयु बांध लियाथा उसीसें नरकमें जानेवालेथे वैसी सबबसें त्यागभाव नहीं हुवा. मगर उन्होंके दिलमै तौ त्यागभाव बना हुवाही रहाथा और विरती तौ पांचवे गुणठाणेसें होती है; वास्ते कुछभी व्रत नहीं करनेसें समकितमें दूषण नहीं; लेकिन सब जीवकों अैसा नहीं होता है. क्यों कि मार्गानुसारीपना आता है वहांसेही विरतिके भावहो आते है. योग दृष्टिका स्वरूप कहा है, वहां पांचवी दृष्टि पाता है तब समकित पाता है और पहिलेसें चौथी दृष्टि तक मार्गानुसारीपना कहा है. उसमै पहिली दृष्टिमैही व्रत प्राप्त होवै अैसा कहा है; वास्ते बहुतसे जीवकों तौ यथाशक्ति विरतीके भाव होतेही है. किसी जीवकों अंतरायका उदय होवै तौ व्रतकी अंदर वीर्य स्फुरा न सकै और जिसकों वीर्यांतरायका क्षयोपशम हुवा है वै तौ वीर्य स्फुरा या करै-जो जो पर वस्तुका त्याग बन सके उतना करै और श्रावकके गुणठाणरूप व्रत तौ पांचवे गुणठाणमे करै.

पांचवा देशविरती गुणस्थानक जब प्रकट होवै तब अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभका नाश होता है. उन्होके साथ दूसरी प्रकृतिये भी उदय बंधसें नाश होती है, वो कर्मग्रंथ देखनेसे मामलू होगा. इस गुणस्थानपर देशसें अव्रतका नाश होता है, उसीसें समकित गुणस्थान करते भी विशेष करकें परभावकी इच्छा दूर हो जाती है. संसारसें भी ज्यादे उदास होते है. खान-पान-वस्त्र-धन-धान्यकी इच्छा

कम हो जाती है. मनमें तौ सयमके भाव वर्त्तते है, मगर पूर्वकर्मके जोरसें प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभका उदय रहा है उससें सयम नहीं ले सकता है, लेकिन हृदयमेंसें सयमकी भावना नाबूद नहीं हुइ ससारी काम करता है सो वेठरूप करता है और विरतीमें भी आनदादिक श्रावकने बहुतही सरताइ की है, वो वात उपासकदशा सूत्र देखोगे तो मालुम होवेगा अब श्रावक किस मुजब विरति पाले? उसका बयान करते है पहिले स्थूल प्राणातिपात व्रत लेवै, क्यों कि जो गृहस्थावासकी अदर आरभादिक कार्य किये विगर निर्वाह नहीं हो सकता है, उससें सर्वथा या समस्त प्रकारसें दया पालनी वो नहीं बन सकता है वहां श्रावकों सवा वसेकी दया मुनिकी अपेक्षासें कही है सपूर्ण दया पालनी सो वीस वसेकी दया है, वो त्रस- हिलते चलते जीव, स्थावर-पृथ्वि, अप, तेउ, वाउ, वनस्पति-ये त्रस और स्थावर दो प्रकारके जीव हैं उन सबकी दया पाले तब २० वसेकी दया पलती है, परतु स्थावर तौ खाने पीनेके काममें आते हैं उसीसे उन्होंकी दया नही पल सकती है, वास्ते दस वसे चले गये. पीछे दस वसे त्रसकी दयाके रहै उसकी अदरसें भी अग्नि वगैर' के आरभादि करनेसें त्रस जीवका नाश होता है उससें वो भी न पल सकै, वास्ते उनमेंसें भी पांच वसे चले गये उस बाद भी आरभके काम सिवा कोइ राजा प्रमुख है उनका गुन्हा किया है तौ अपराधीकी दया भी ससारमें रहेसें नही पल सकती है वास्ते पांचमैसें ढाइ चले जाते हैं, तब बाकीमें ढाइ रहै उसमें भी सापेक्ष हिंसाका त्याग नहीं होता है, जैसें कि शरीरमे जीव पडे है किंवा अपने स्वजन सज्जनादिकके शरीरमें जीव पडे है, अब वो जीवकों दूर करनेके लिये उद्यम करनाही पडता है. तब वो जीवोंका नाश हो जाता है, उससें वो दयाभी नहीं पली जाती है, तौ ढाइ मैसे सवा गया तौ सवा बाकीमें रहा याने अनारभ अपराधसें निरपेक्ष त्रस जीव मारनेका त्याग करता है उस मुजब पहिला व्रत धारण करे

दूसरा मृषावाद व्रत वो किसी उत्तम पुरुषसें सर्वथा मृषावादका त्याग होवै तौ वैसा करै और वैसा न बन सके तो पाच बडे झूठ कहे हैं उनका त्याग कर देवै. याने कन्यालीक-कन्याका विवाह जोडनेमें झूठ न बोलना, क्यों कि जो उल्टा सूधा समझाकरके सयोग जोड देवै उससें उनकों जन्मभर दुःख सहन करना पडे, वास्ते उस काममें झूठ बोलनेका त्याग करना गोवालीक याने गाय-भेंश-बेहलके काममें

झूंठ वोल अर्थात् किसी बहेलकी पांच कोश जानेकी ताकत है और दश कोश जा सकता है ऐसी प्रतीति देवै, उससें विचारेकों वो खरीदनेवाला पांच कोसके बदलेमें दस कोश चलाता है जिस्सें जानवरकों बडा दुःख होता है; वास्ते ऐसे संबंधमें झूंठ नहीं बोलना. भोमालीक याने जमीनके काममें झूंठ बोलनेका त्याग करना—मतलबमें जो दो तसू जमीनके बदलेमें ऐसी लडाइ होती है कि जिसके लिये हजारों रुपये कचहरी चडनेमें बरबाद किये जाते है; वास्ते उस संबंधमें बडा विकल्प होता है. ऐसा समझकर मृषा बोलना नहीं. थापणमोसा अर्थात् किसीने विश्वाससें अपने वहां कुच्छ चीज रखी होवै और जब मालधनी मंगनेकों आवे उस वक्त उस चीजका इन्कार करना कि 'तूने मेरे वहां कब चीज रख्खीथी ? क्या गले पडता है ? वाह !' ऐसा जवाब देना उसकों थापणमोसा कहा जाता है. उस विचारेकों वो रकम न मिलनेसें आजीवीकाका भंग होता है और उसी सबबसें बडाभारी दुःख होता है; वास्ते ऐसी बातमें झूंठ नहीं बोलना. झूंठी गवाह याने खोटी साक्षी पूरं, उनसें राजा दंड देवै, लोग गाली देवै और अपकीर्ति होवे, वास्ते ऐसे काममें झूंठ नहीं बोलना. ऐसी बातोंसें यह लोकमें धर्मिष्ट मनुष्यकी बहुत लघुता होती है और आते भवमें महान् दुःख भुक्तने पडते हैं. इस मुजब दूसरा व्रत अंगिकार करे.

अदत्तादान याने पराइ वस्तु किंचित्भी न लेनी, वोभी सर्वथा पालना चाहियें; लेकिन सर्वथा न पल सकै तो रस्तेमें किसीकों लुंट लैना किसीकी घर फोडकर चोरी करना, दूसरी कुंजी—चावी लगार माल निकाल लेना या किसेके खीसेकी—जेबकी अंदरसें कुछ निकाल लैना ऐसी चोरी अगर सरकारी दाणचोरी वगैरः का त्याग करना.

मैथुनव्रत अर्थात् स्त्रीसंभोग या पुरुषसंभोगका सर्वथा त्याग बन सकै तो करना और न बन सकं तो अपनी स्त्रीसें संतोष रखना और दूसरी स्त्रीओंके साथ विषय सेवनका त्याग करना.

परिग्रहव्रत अथात् जितना धन धान्य घर दुकान आभूषण स्त्री वगैरः होवै उतनेमैही संतोष रख्खै, और उनसें ज्यादा प्राप्त करनेका त्याग करे. या आपकों जितनी इच्छा होवै उतनी छूट रखकर उनसें ज्यादा न रखनेका नियम कर लेवै. ऐसा करनेसें तृष्णा शान्त होती है. तृष्णा शान्त होवे तो बुरे काम करनेकी जरूरत

नहीं रहती है और धर्मसाधन करनेकाभी वक्त ज्यादा मिलता है, उस्सें आणदजी वगैरः श्रावकने आपके पास जो धन-द्रव्य था उतनेसेंही संतोष किया था.

दिग्विरमणव्रत अर्थात् चारों दिशाओंमें तथा उर्द्ध, अधो-नीचे ऊपर जानेकी मर्यादा कर लेवें कि इतने योजन तक जाना येभी कब होता है कि अतिशय धन मिलानेकी, विविध पदार्थ देखनेकी, अनुभव करनेकी तृष्णा कम होती है तब बन सकता है फिर जितना योजन जानेका नियम किया है उस हदसें बहार जाकर हिंसा करनी, झूठ बोलना, चोरी करनी, मैथुन सेवना, व्यौपार करना, ये सब काम करनेका सर्वथा बंध हो जाता है, उस्सें यह व्रत बहुत लाभकारक है.

भोगोपभोग व्रत अर्थात् एक वेर भोगवे सो भोग-खान पानकी चीज, और बेरबेर भोगवें सो उपभोग याने दागीने वस्त्र स्त्री वगैरः वस्तु जगतकी अंदर हैं उन सबकी कुछ हमेशां जरुरत नहीं पडती है, क्यों कि जितनी वस्तुओंसें निर्वाह करना चाहें उतनी वस्तुओंसें हो सकता है. क्यौं कि उनका चित्ततो आत्मभावोंसें हुवा है फक्त संसारमें कारणसर रहा है, लेकिन उनमें लीनता नहीं है. वास्ते अपने खाने पीनें पहेनने ओढनेकी जितनी जरुरतकी चीजें होवें उतनीही रखकर वाकीकी चीजोंका त्याग कर देवें. वो चौदह नियममें आता है उनकी मर्यादा कर लेवें पुनः व्यौपार करनेमैंभी बहुत सावद्य व्यौपार जो पंद्रह कर्मादान याने बहुत पाप करना पडे उससें कर्मका आगमन होवें सो कर्मादान कहा जाता है. उन कर्मादानोंका बन सकें तो सर्वथा त्याग करना और न बन सकें तो निर्वाहके योग कर, मगर उनके सिवा न करें. वो पंदरह कर्मादान इस मुजब हैं:—

इगाली कर्म—अग्निके आरंभसें जो व्यौपार होवें सो-कुम्हारका निमाह, चूनेकी भट्ठीयें, हलवाइ, लुहार, रंगारे, अग्निसें चलनेवाले साचेसें काम करनेवाले, तथा कोलसे बनाके वेचनेवाले और दूसरे ऐसेही व्यौपार करनेवाले होवें वसा व्यापार बंध कर देवें

वन कर्मः—वृक्ष कटानेका धंदा, उसमें खेतीका काम, बाग बगीचे बनानेका कामका समावेश हो जाता है.

साडी कर्मः—गाडे रथ वगैरे बनाकर वेचनेका धंदा-रोजगार करें

भाडी कर्म.—गाडे, ऊंट, मकान वगैरः बनाकर भाडा पैदा करनेका व्यौपार करें.

फोडी कर्मः—जमीनें फोडनेका काम—उसमें त्रस जीवोंका नाश होता है.

दांतका व्यौपार—न करै; क्यौं कि हाथियोंके दांत निकलवानेमैं हाथीकों वडा दुःख होता है. पुनः वो दांतोकों काटकर उनके टुकडे वनानेके वास्ते पानीमें डालने पडते हैं उसमेंभी वहुत जीवोंकी हिंसा होती हैं.

लाखका व्यौपारः—उसमें वहुतसे जीवोंकी उत्पत्ति होती है वास्ते त्यागने योग्य है.

रसः—घी तेल गुड सक्कर निमक वगैरः नरम पदार्थके व्यौपारमें भी जीवहिंसा होती है.

केश व्यापारः—ऊंन वेचनेका और मनुष्य वेचनेका व्यौपार नहीं करना.

विष व्यौपारः—अफीम, वछनाग संमल वगैरः झेरी चीजोका तथा शस्त्र—तलवार भाला छुरी कटार आदि हैं जिनसें दूसरे जीवका प्राण नाश होवै वो व्यौपार नहीं करना.

यंत्र व्यौपारः—चक्की वगैरः यंत्र रखकर उससें काम कर देवै.

पीलन कर्मः—घाणी—तल एरंडी गंडे पीलनेकी किंवा कपास पीलनेका चरखा, रु वगैरः की गठडीयें वांधनेके सकंजे आदि कि जिस्सें वहुतसें जीवोंका नाश होता है उसका त्याग करना.

निर्लंछन कर्मः—लडका लडकीके कान नाकमैं छंद करावै, वहेलके वृषण कटावै, जानवरोंकों डाम देवै उसकों निर्लंछन कर्म कहा जाता है उसका त्याग करै, क्यौं कि इस्सें जीवोंकों वडा दुःख होता है.

अग्नि मारफत लाह्य लगाना—दव लगाना, खेतरोंकों और जंगलोंकों जला दैना उसमैभी वहुतसें जीवका सत्यानाश निकल जाता है; वास्ते त्याग दैना.

सर याने सरोवर तालाव कुंवे टांकेके भीतरसें पानी निकालकर खाली करनेका धंदा नहीं करना; क्यौं कि उससें पानीके जीवोंका निकंदन हो जाता है; वास्ते ये भी त्यागने योग्य है. मतलवमैं ऊपर कहे गये पंद्रह कर्मादानोंका त्याग कर देवै.

यह व्रतवाला वाइस अभक्षकाभी त्याग कर देवै. वे वाइस अभक्ष कौनसे है ?

पीपलके फल, पीपलीके फल, गूलरके फल, वडके फल, कुठुंवरके फल, मांस, मदिरा, मस्का, सहत, रात्रिभोजन, विदल याने मुंग उडद मठ चिने वगैरः के साथ छांश दुध दहीं खाना, शायद गरम किया जावै तौभी जोश आये वाद काममैं लैना, तौ अभक्षका वाद नहीं लगता है. गरम न किये हुवे दही वगैरः के साथ मुंग उडद

चिने आदिका सयोग होता है उससें त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होती है, वास्ते इसका त्याग करना सब जातिकी मिट्टी, सचित्त निमक, हिमालयमें जम जाता हुवा पानी-बरफ, ऑले, जहर, बैंगन कि जिसकी टोर्पीमे त्रसजीव रहते है, उसका नाश होनेके सबबसें उनका त्याग करनाही दुरस्त है, बहुबीज याने जिस फलके अदर एक दूसरे बीजके बीच अतर नही हैं वैसे फल, (अनारमे बहुतसे दाने होते है मगर एक एकसें अलग बीज रहते हैं-बीच परदह होता है. वास्ते वैसे फल बहुबीज नहीं गीने जाते हैं.) तुच्छ फल-बेर वगैर' कि जिसमे खानेका भाग कम और फैक देनेका भाग ज्यादा होवें वैसे फल, धूप दिखाये बिगरका आचार, गत दिनकी बनाइ हुइ रसोइ, अनजाने फल, अनतकाय (जो बीज भागनेसें समान दो टुकडे हो जावे वैसी वस्तु) या कदमूल-ये बाइस अभक्ष याने न खाने लायक चीजें हैं-उसका श्रावक अवश्य त्याग कर देवें इस मुजब भोगोपभोग व्रतकी मर्यादा करै, सबब कि जो पुद्गल भावकी वांछना नहीं है, लेकिन आत्मभावकीही वाछना है, उससें जो निभ सकै उनके सिवाकी चीजोंका त्याग कर देवै निर्वाहकी चीजोंका त्याग न करै, तौभी मतलब जितनीही छूट रक्खे

अनर्थ दड अर्थात् आपके वास्ते अथवा स्वजन कुटुबके वास्ते जो करना सो अर्थ; मगर उस सिवा करना सो अनर्थदड गिना जाता है

अपध्यान सो आर्त्तरौद्र ध्यान करना आर्त्तध्यान उसे कहते है कि-इष्ट वस्तुके सयोगका चिंतवन करना, वा अनिष्ट वस्तुके वियोगका चिंतवन करना, अग्रशोच याने भविष्यका चिंतवन करना, ओर रोगके वियोगका चिंतवन करना अथात् ' ऐसे रोग दूर रहो-मत आओ ' ऐसा शोचना रौद्रध्यान उसे कहते है कि-दुष्ट सकल्प करना. उसके चार प्रकार हैं अर्थात् हिंसानुबधी-हिंसा करनेका चिंतवन करना, मृषानुबधी-झूठ बोलनेका चिंतवन करना, चौर्यानुबधी-चोरी करनेका चिंतवन करना, परिग्रह रक्षणानुबधी-परिग्रहके रक्षणका चिंतवन करना ये चार प्रकारका रौद्रध्यान है ये रौद्र और प्रथम कहा गया सो आर्त्त यह दोनु छोड देनै ही लायक हैं

हिंसाप्रदान अर्थात् हिंसाके उपकरण तैयार कर रक्खे और मागे उसकों देवै

पापोपदेश याने पाप होवें वैसा बिनां प्रयोजनसें उपदेश देवै, जैसें कि किसकों कहे-तु मकान क्यों नहीं बनवाता है ? क्यों मकानकों नहीं रगवाता है ? चूल्हा क्यों

नहीं सुलगाता है ? कपडे क्यौं नहीं धुलाता है ? इस तरह अपने स्वजन कुटुंवके मनुष्य सिवा दूसरे मनुष्याकों कहा करै कि जिस्सें जीवहिंसा, झुंठ, चोरी वगैरः काम करै; वास्ते अैसा कहना छोड देवै.

प्रमादा चरित—अर्थात् दिनकों सो जाना. दस शेर पानीसें स्नान किया जावैं वैसा होवैं तौभी ज्यादा पानी ढोला करै. फुरसद है तौभी ज्ञानाभ्यासमैं आलस रख्खै. राजकथा-राजाओंके संबंधी कथा करै, देशकथा-देशावरोंकी कथा करै, स्त्री कथा-स्त्रीये संबंधी वातें करै, भक्त कथा-भोजन संबंधी वातें कहा करै, मगर अैसी कथाओमें अच्छि बुरी विचारणा दर्शानेसें किसी वक्त वहुत नुकशान होता है, जैसे कि राजा वगैरः कि वात करता होवै और वो वात राजाके कानपर जा पहुंचे तौ राजा दंड देवै; वास्ते श्रावक अैसी विकथायें न करै; क्यौं कि जो आत्माभावी है, अपने आत्मभावमैही रहता है, मात्र निरूपायसें संसारमै रहा है उसकों वैसी वातोंसें क्यां मुतलव है ? यदि फुरसद मिल जाय तौ अपना आत्मध्यान करै, वा शास्त्राभ्यास करै कि जिस्सें कल्यान होवै.

सामायिक व्रत—दो घडीका है, उसमै समता युक्त रहै, शास्त्राभ्यास करै, वा दो वक्त प्रतिक्रमण करै, और, उस व्रतमें जो जो पाप लगा होवै वो आलोये करै.

देशावगाशिक व्रत—अर्थात् चारों दिशाओंकी मर्यादा छठ्ठे व्रतमें की है, उसमैसें संकोच करै. वारव्रतकाभी संकोच करै. चौद नियमकाभी संकोच करै. ये संकोच करनेसें दिशावगासिक व्रत अलग करता है वो दो घडीसें लगा कर चार घडी, पहेर, दिवस, महीने तकका करै उस्से वाह्यका आरंभादिकका त्याग हो जाता है.

पोषध व्रत—अर्थात् पोसह उपवास व्रत हमेशां न वन सकै तो ठीक, नहीं तौ पर्वके दिन अवश्य करै कि जिस्से अहोरात्री संयम जैसी प्रवृति होवै, आत्मा समभावमै रहै, रात्रिमै भूमिसंथारासें सो रहेवै—इत्यादि करणोसें शायद संयम लेनेकाभी भाव हो आवै तौ अैसी आदतसें सुगमता प्राप्त होवै. पुनः अैसी करणोसें यहभी परीक्षा हो जाती है कि मेरेसे संयम पल सकता है या नहीं ? वास्ते महीनमै दो अष्टमी, दो-चतुर्दशि तथा पूर्णिमा अमावास्या किंवा दो अष्टमी दो चतुर्दशि और पंचमी इन पांच पर्वोंके रोज अवश्य चार या अष्टपहेरका पोषध करै, और वोभी अहार पौषध सर्वथा करै तौ असणं-पकाइ हुइ वस्तु, पाणं-पाणी, खाइमं-मिठाइ मेवा,

साइमं-तांबूल या औषध गुटिका चूर्ण वगैरः चारों आहारका त्याग करै. किंवा देशसें पौषध करै तो फासुक पानी सिवा तीन आहारका त्याग करै, वा आंबिल, नीवी, एकासन करै. खरतर गच्छवाले आहारका पौषध सर्वथाही करना चाहियें अैसा कहते हैं; मगर तत्त्वार्थकी टीकामें तथा श्रावक पन्नति सूत्रमें सामायिक सयुक्त देशसें आहार पौषध करनेका कहा हैं. तथा पचाशकजीमे पत्र ९, १० की अंदर आहार पौषधसें कहा है. दूसरा शरीरसत्कार पौषध तो सर्वथाही करना, याने आभूषण जेवर वगैरः की शोभा कुछभी न करतें मुनिके समान बन जावै. श्रावकपन्नतिमें तथा तत्त्वार्थ वगैरः बहुतसे ग्रथोंमें आभूषणका त्याग करकें पौषध करना कहा है यहांपर कोइ शका करेगा कि क्या सौभाग्यवती स्त्री अपने हाथकी चूडी वगडी कडे वगैरः सोनेकी चीजे उतारकर पौषध करै ? इसके समाधानमें यही वचन है कि सौभाग्यवती स्त्री अपने सौभाग्यके चिन्हरूप जो जेवर होवे उसका कभी त्याग न करै-सौभाग्यचिन्हरूप दागीने या चूडी वगडी तो वैधव्यदशा होवै तबही उतर सकती है वास्ते अैसी चीजे उतारनेकी जरुरतही नहीं है; लेकिन सौभाग्यचिन्हरूप दागीनेसें ज्यादे दागीने पहेनकर पौषध करनेकी मर्यादा नहीं है. परतु पुरुष तो सर्वथा आभूषण त्यागके पौषध करै. कितनेक धनाढ्य गृहस्थ सामायिक लेनेके लिये गुरुजीके पास जाय तब बडे आडबरसें जाय; मगर गुरुके पास जाकर सामायिक लेवे तब सब आभूषण उतारकर अपने खीजमतदारकों दे देवै और सामायिक पूर्ण हुवे बाद धारण कर लेवे-इस मुजब शरीरसत्कार पौषध करै ब्रह्मचर्य पौषधमें सर्वथा मैथुनका त्याग करना अर्थात् मनुष्य देव तिर्यंचादि जातिकी स्त्रीका स्पर्श मात्रभी न करै अव्यवहार पौषध अर्थात् सर्वथा प्रकारसें सावध प्रवृत्तिका त्याग करै याने हिंसा-झूठ-चोरी-मैथुन-परिग्रह ये पांचों सवधोंकी प्रवृत्ती सर्वथा प्रकारसें बध करै. हास्यादिककाभी त्याग करै. कुछभी पाप न लगे उस मुजब चारों प्रकारका त्याग करकें पौषध करै. और उसमें दो वक्त वस्त्रकी पडिलेहणा करै, त्रिकाळ अष्टस्तुतियोंसें देववदन करै, बाकीका वक्त स्वाध्याय ध्यानमें, काउस्सग्ग ध्यानमें या धर्मध्यानमें गुजारै. किंचित्‌भी प्रमाद विकथामें काल न गुजारै और हरप्रकारसें रागद्वेषकी प्रवृत्ती कम होवै वैसीही भावना भावै. ससारी भावनाका त्याग करै यहांपर कोइ शका करेगा कि भावना किस मुजब भावै ? तो उसका खुलासा अैसा है कि —

श्रावक चार भावनायें युक्त बना रहै अर्थात् मैत्रिभावना, प्रमोदभावना, मध्यस्थभावना और करुणाभावना इन चारोंमें सदैव लीन रहै. मैत्रिभावना उसें कहते हैं कि एकेंद्रिसें लगा कर पंचेंद्रि तकके सब जीवोंके ऊपर मित्र बुद्धि रक्खे; क्यों कि सत्तामें सब जीव समान हैं; परंतु कर्मके वश या भववसें अलग अलग जातिके होते हैं, वास्ते किसी जीवके ऊपर द्वेषभाव नहीं है. सब जीव सुखके अभिलाषि हैं, उसमें तमाम जीवोंकों सुखी करनेकी भावना–विचारणा अहोरात्र बनी रहै. अपनी शक्ति प्रमाणे सुख देवै, किसीके साथ वैर विरोध न रक्खे, एक पक्षी वैरसेंभी जीवकों बहोत भवतक दुःख भुक्तने पडते हैं; वास्ते किसीके साथ वैर न रखना. प्रमोदभावना उसें कहते हैं कि–मुनिमहाराज, साध्वी, श्रावक, श्राविकाकों देखनेंही हर्षित चित्त हो जावै. अैसे पुरुषके संयोगकी सदा इच्छा करै. किसी वक्तभी वियोग न होवै अैसीही भावना भावै. करुणाभावना उसें कहते हैं कि–सब जीवपर दयाभाव रक्खे. कोइ जीवकों दुःखी देखें उसकों सुखी करनेकी भावना रक्खे और सुखी करै, परंतु बेदरकार न रहे; क्यों कि दुःख दूर करनेकी शक्ति है वास्ते दरकार रक्खे. दया करनेमै अपने धर्मवाला या परधर्मवाला है अैसीभी विचारणा न रक्खे, कोइभी दुःखी हो उसें सुखी करनेकी बुद्धि रक्खे. मध्यस्थभावना उसें कहते हैं कि–पापिष्ट जीवपर भी रागद्वेष न करै. राग करनेसें आते जन्ममें पापिष्टका संयोग प्राप्त होवै उससें धर्ममें विघ्न आ पडे. द्वेष करें तो वैरभावसें संयोग मिले और दुःख होवें; वास्ते पापिष्ट जीवकों समुझा सकै अैसी शक्ति होवै तो समझा देवै और न समुझे तोभी उसकेपर द्वेषभाव न लावै,

पुनः बारह भावनायें है सो भावै. उसमें पहिली अनित्य भावना अर्थात् शरीर धन कुटुंब ये सब पदार्थ अनित्य–अस्थिर हैं. जहां तक ये वस्तु रहनेका संयोग बांधा है वहां तक रहेगा. ये वस्तु कायम रहनेकी नहीं है, तो अैसे अस्थिर पदार्थपर राग करना सो कर्मबंधनकाही कारण है. गत जन्मोंमें ये अनित्य पदार्थोंके ऊपर राग धारणा किया है उसीसें अनेक जन्म मरणके शरण हुवा. वास्ते हे चेतन! तुं सदैव नित्य है, तेरे स्वाभाविक गुणभी नित्य हैं, आत्माका सुखभी नित्य है, उसकों छांडकर ये अनित्य पुद्गलमें क्यों निमग्न होता है? जितने सांसारिक सुख हैं उसमै उनके साथही दुःख रहे हैं. फिर कालांतरमें नरकादि दुःख रहे हैं; वास्ते पुद्गलिक जडपदार्थका संयोग वियोगमै

तु तेरा स्वभाव छोडकर रागद्वेष करता है सो योग्य नहीं हैं जहांतक अनित्य पदार्थकी अदरसें रागद्वेप दूर नहीं हुवा है वहातक नित्य सुख प्राप्त होनेकाही नहीं वास्ते हे चेतन ! नित्य सुख प्राप्त होवे वेसा उद्यम कर इस मुजब अनित्य भावना भावै. दुसरी अशरण भावना इस तरह भाव कि–ससारमें कोइशरणभूत नहीं है जिन जिन कुटुवके वास्ते मै पाप करता हु वो मेरे अकेलेकुही भुक्तना पडेगा दुःख भुक्तनेके वक्त कोईभी दु'खसें छुडानेहार नही हैं इस जन्ममें रोगादिक उत्पन्न होता है सो मै अकेलाही भुक्तता हु, उस वक्त कोइ दु ख लेनेमें समर्थ नहीं होते हैं वैसेंही परजन्ममेंभी दु ख पडेंगे उस वक्त कोइ शरणभूत नहीं होवेगे, वास्ते हे चेतन ! तु अज्ञानतासें कुटुवके लिये अनेक पापारभ करता है वो वेमुनासिव है तु तेरे आत्मभावका विचार कर ज्यौं वन सके त्यौं जडभावका त्याग कर वडे राजाओं जैसेकोंभी दु खसें कोइ छुडानेवाला नहीं हैं नरककी अदर विचित्र दु ख भुक्तना पडेगा. ऐसा शोच करकें सव पदार्थ अनित्य है, लेकिन कोइ शरणभूत नही है. यौं निश्चयकर मोहमें दिगमूढ न हो तीसरी ससारभावना सो ससारमें सगे सबधी जो मिले है वे सब सार्थिही मिले हैं जिसकों तु मेरा है यौं मानता है वो तो उसका स्वार्थ पूरा होगा वहा तक प्यार रक्खेगा और जब स्वार्थ पूरा न होगा तब कोइभी तेरा होनेका नहीं तु मेरे मेरे करकें नाहक कर्मबधन करता है, परतु वो दुःख तेरेही भुक्तने पडेगे. ससारी सुख है सो भ्रमित सुख है, वस्तुतासें कुछभी सुख नहीं हैं सुख तो समभावमेंही है, वास्ते हे आत्मा ! मोह करना युक्त नही हैं एकत्वभावना इस तरह भावे कि–आत्मा अकेलाही आया है और अकेलाही जायगा कुटुवादिक कोइ सब नहीं आनेका है जडपदार्थपर मोह करता है वो सब दु खके साधन है जो जो दु'ख पडते है वो पर पदार्थके विषे तुने मेरापणा मान लिया उसके फल है वास्ते हे चेतन ! एक आत्मस्वरूपके स्वभावमें रहना वोही मेरा काम है, ऐसी भावना भावकर परवस्तु परसें मेरेपणेका राग दूर करे अन्यत्वभावना उसें कहते हैं कि–छउ द्रव्य याने धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकासास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, काल और जीवास्तिकाय यह छउ द्रव्यमें जीवद्रव्य जो मेरा आत्मा उसका स्वभाव चेतन लक्षण है. वो लक्षण यह दूसरे पाच द्रव्यमें नहीं है, वास्ते मेरेसें ये न्यारे है ये आकाशास्तिकाय द्रव्य है सो समस्त द्रव्यका भाजन है उसमें मै वास करता हु, मगर उनका

स्वभाव अवकाश देनेका है वो देता है; परंतु मै उससें न्यारा हुं. पुनः धर्मास्तिकाय है उसका जीव पुद्गल पदार्थ चलै उसें सहाय करनेका धर्म है सो करता है. जैसें मछलीयोंकों तिरनेकी शक्ति है मगर पांनी विगर न तिर सकती हैं, वैसे जीव पुद्गलकों चलनेकी शक्ति है; लेकिन उसकी सहायता विना न चल सके वास्ते उनका सहाय करनेका धर्म है सो करता है. परंतु मै ये धर्मास्तिकायसें भिन्न हुं. अधर्मास्तिकायका स्थिर रहनेवालेकों सहाय करनेका धर्म है वो करता है. उसमैंभी मेरा स्वभाव नहीं. कालका नइ वस्तुकों पुरानी करनेका स्वभाव है, उसमैभी मेरा स्वभाव नहीं. पुद्गलका जडस्वभाव है. सडना, पडना विध्वंसनताका स्वभाव है वास्ते ये भी मेरेसें भिन्न हैं वास्ते मै ये पांचों द्रव्यसें अलग स्वभाववंत हुं तौभी अनादिकाल मैंने अज्ञानतासें मेरापणा मान लिया उसे करकें अनेक जन्म मरणके दुःख सहन किये और मेरा स्वभाव भूल गया. इस भवमै भाग्योदयसें जैनधर्म मिला उससें मैंने वस्तु धर्म पहिचाना; वास्ते हे चेतन! अब तेरे ये द्रव्य अन्य समझकर उसमैं लीन न होना–इस मुजब भावै. अशुचिभावना इसे कहते हैं कि–यह शरीर मलमूत्रसें भरा हुवा है. यदि उपरसें चमडा मढा हुवा न होता तौ महा भयदायक मालूम होता. पुनः शरीरमेंसें मलमूत्र वहन होता है वो मै हमेशां देखता हुं. यह शरीरके नव द्वार खुले हुवेही हैं उनमैंसें दुर्गंध निकल रही है. स्त्रीके शरीरमै बारह छिद्र हैं उनमैंसेंभी रातादिन अपवित्र वस्तु निकलतीही रहती है. अैसे अशुचिमय शरीरमै प्यार करना सो केवल कर्मबंधनकारी कारण है और वो कर्मबंधसें अैसे अशुचिमय स्थानमै पैदा होना होता है अैसी अशुचि पिताका वीर्य और माताका रुधिर है और वोही शरीरोत्पत्तिका प्रथम बीज है. पीछेभी माता के शरीरमै दुर्गंधमय पुद्गल रहे हैं, उनमैंसें ग्रहण करके शरीर बढता है; वास्ते हे चेतन! अैसे अशुचि शरीरके वास्ते क्यौं मोह करता है! तुं तेरे आत्मिक सुखमै आनंद कर कि जिस्सें अैसा अशुचि शरीर प्राप्त करना न पडे अैसी भावना भावे. आश्रवभावना उसै कहते हैं कि–मेरा आत्मा चिदानंद मय है; लेकिन मिथ्यात्व अव्रत कषायके योगसें करके प्रवर्त्तता है उससें समय समयमै नये कर्म आते है उसीसें मेरा आत्मा मलीन हुवा जाता है. जितने जितने संसारी संबंध है उतने आश्रव आनेके कारण हैं. समय समयमै पुद्गलिक पदार्थपर राग करता है उससें कर्म बांधता है. कर्म बांधनेके बीजभूत रागद्वेषकी प्रकृति है वो प्रकृति होनेके

कारणभूत शरीर, पुत्र, स्त्री, धन, मकान, अहंकार ममकार ये पदार्थ हैं; वास्ते हे चेतन! ये तुझे करने लायक नही है. पुन. पुन यह मनुष्यजन्म मिलनेका नही है. भाग्योदयसें यह मनुष्यजन्म मिला है इस लिये ज्यों बन सकै त्यों आश्रवकी प्रकृति बंध कर दे जिस्सें कर्मबंध न होवे [यह मिथ्यादिकका विचार प्रश्न ९१ के जवाबमें है वास्ते वो पाठ देख लेना] संवरभावना याने जो समय समयमें कर्म आते है वो समभावसे रुक जाय वास्ते हे चेतन! तु समभावमें रहे. समभावकों आनेके ५७ सबब हैं उन ५७ के सेवनसें संवरभाव होवेगा- पांच समिति, तीन गुप्ति, बाइस परिसह, दस विध यतिधर्म, बारह भावना और पांच चारित्र यह ५७ के सेवनेसें आते हुवे कर्म रुक जाते है, वास्ते हे चेतन! तु संवरके कारण अंगिकार कर ले कि जिस्सें कर्म आ न सकें जब तक संवरभावना नहि करेगा तब तक आत्माका कार्य सिद्ध होनेका नहीं है, और भवभ्रमणाभी मिटनेकी नहीं, इस लिये हरप्रकारसें संवरभाव कर इस मुजब संवरभावना भावे निर्जराभावना इस तरह भावे कि--पूर्वके कर्मोंकी निर्जरा करनेकी भावे अकाम निर्जरा तो समय समयमें जो जो कार्य भुक्ते जाते हैं वो वो समयमें बनती है, मगर उसमें आत्मा निरावरण नही होता है, क्यों कि निरावरण आत्मा करनेकी इच्छा नही हे स्वपर उपयोग नहीं हैं परभावमें आसक्तता है उस्सें पीछे नये कर्म बंधेजाते है, वास्ते हे चेतन! तु कर्म क्षय करनेकों तत्पर हो, जो जो कर्म उदय होवे वो वो समभावसें भुक्त ले तो सकाम निर्जरा होवै. पुन' उदय नहीं हुवे है उनको क्षय करनेके वास्ते बारह प्रकारसें इच्छा रोधरूप समभाव युक्त तप कर कि उससें कर्मक्षय हो जावे अनशन सो नवकारसी, पोरसी, साढ पोरसी, पुरिमड्ढ, अवड्ढ, एकासणा, बेसणा, नीवी, आयबिल, उपवास, छट्ठ, अट्ठम, आदि तपश्चर्या करु कि उससें मेरे कर्मकी निर्जरा होवे और आत्मा निर्मल होवे उनोदरी तप अर्थात् खानेकों खुराक चाहिये उतना नहीं, मगर उससें कुछ कम खाना उसें उनोदरी तप कहा जाता है वस्त्राभूषण कम वापरे उसें वृत्तिसंक्षेप कहते हैं, वो मुनि अभिग्रह धारण करते हैं वैसे श्रावक चौदह नियम धारण करते है सो करना रसत्याग याने छउ विगयोंका त्याग करना, कायक्लेश अर्थात् शरीरकों कष्ट देना. मुनि लोच करते है. सूर्यका आतापना वगैर. लेते हैं, वो भावना भावे. संलीनता अर्थात् अंगोपांग संकोच कर सोवे इंद्रियें और कषायकों [illegible] रक्खे यह

छउं-बाह्य प्रकारके तप कहे जाते हैं. अब छ अभ्यंतर तपका संक्षेप स्वरूप कहते हैं. प्रायश्चित यानें जो जो दूषण लगे हैं उसका गुरुके आगे प्रायश्चित लेना. विनय अर्थात् देव गुरु ज्ञानका विनय करना और उन्होंका वयावच्च करना. सज्जजाय अर्थात् वांचना, पृच्छना, परावर्त्तना, अनुपेक्षा, धर्मकथा यह पांच प्रकारसें स्वाध्याय ध्यान करै. काउस्सग्ग यानें कायाको एक जगह रखकर हाथ पाउं हिलानेका बंधकर-स्थिर उपयोग करके जिनगुणग्राम अंतरंगमें करना; और ध्यान अर्थात् धर्मध्यान, शुक्लध्यावै-येह छ प्रकारके अभ्यंतर तप हैं; क्यों कि ये तप किसीके देखनेमें नहीं आते हैं जिस्सें आभ्यंतर कहे गये हैं. यह बारह प्रकारके तप समभावसें करुंगा तो मेरे पूर्वके किये हुवे कर्मकी निर्जरा हो जायगी ऐसी भावना भावे. लोकस्वरूप भावना यानी चौदह राजलोक हैं, उसमें उर्द्ध-उंचा, अधो-नीचा, तिच्छों-ये अपन रहते हैं वही ये तीन लोक रहे हैं उसमें सात राज हैं, उसके भीतर नारकीकेजीवको रहेनेका स्थानक है, और कितनेक जगह भुवनपति, व्यंतरके देव रहे हैं. तिर्च्छे लोकमें मनुष्य हैं, तथा तिर्यंच और व्यंतरके स्थान हैं. ऊपरके सातराजमें ज्योतिषि तथा विमानवासी देव रहते हैं. उनके ऊपर सिद्ध महाराज हैं और ऊनपर अलोक है. यह चौदराजलोक हैं. यह चौदराजलोक जैसें कोइ मनुष्य जामा पहेनकर दोनु हाथ दोनु बाजू कम्मरपर हाथ रखकर खडा रहा होवे उस आकृतिका चोडाइ लंबाइसें रहा है, और उसमें मेरा जीव अज्ञानपणेसें भ्रमण किये करता है वो अज्ञानताकेही फल हैं; वास्ते हे चेतन! अब कुछ ज्ञानदशा प्रगट करके परवस्तु परसे मोह छोड दे कि जिस्सें तेरा स्वाभाविक गुण प्रकट होवे और सिद्धमें निवास होवे. इत्यादि विस्तारवंत स्वरूप शास्त्रमें कहा गया है सो भावे. बोधबीज-समकित भावना अर्थात् जीव समकित नहीं पाया उससें अनेक जन्ममरण पाया. वस्तुको अवस्तुपणेसें मान ली. और अभी मनुष्य जन्म पाया है. वीतरागभाषित शास्त्रका योगभी मिला है; वास्ते वो गुरुमहाराजके द्वारा श्रवण करके यथार्थ वस्तुधर्म समझकर-तत्त्वातत्त्वका विचार कर, जैसा जो पदार्थ है उसकी श्रद्धा कर कि सहजसें जडपदार्थपर जो तेरा प्यार बंधा हुवा रहा है वो उतर जावे और सहजसें आत्मस्वभावमें प्रीति होवे. आत्माको आत्माकी रीतिसें जाने विगर अकेली व्यवहार-क्रिया जोवन वहोत वक्त की उससें पुद्गलिक सुख मिले; मगर आत्मिक सुख न मिला; वास्ते हे चेतन! अब औसर प्राप्त हुवा है इस लिये बोधबीज-समकित

प्राप्त कर कि जिस्स सब करणी गिनतीमे आवे और भवचक्रका भ्रमण दूर हो जावे, ऐसा यत्न कर प्रथम ज्यों बन सके त्यों धनकी उपाधी छोड दे. इस मुजब बोधिबीज भावना भावे बारहवी धर्म भावना इस तरह भावे कि वीतरागकथित धर्म मिलना दुर्लभ है रागीद्वेषीके कहे हुवे धर्मसें आत्मकार्य हुवाही नहीं और होनेकाभी नहीं. तीर्थंकर देव हैं सो रागद्वेष रहित है, उनके कहे हुवे धर्मसें वीतरागता जाहेर होती है, वास्ते ऐसे वीतरागके धर्मकी योगवाइ मिलनी मुश्कील है वो भाग्योदयसें मिली है तो अब प्रमाद छोडकर जिस यत्नस रागद्वषकी प्रकृति कमी होवे और आत्माका शुद्ध स्वरूप प्रकट होवे वैसा यत्न कर अव्वलमे ज्यों बन सके त्यो उपाधि छोड दे, धनकी विषयकी वाछना छोडकर निर्वाहके जितनी प्रवृत्ति कर कि तुजे अवकाशका वक्त हाथ लगे अवकाश मिले उस वक्त एकांतमे बैठकर सब उपाधियोंसें मनकों दूर करकें तेरे आत्माका विचार कर कि–'हे चेतन ! तेरा क्या स्वभाव है ? और रात दिन क्या प्रवृत्ति कर रहा है ? तु जडप्रवृत्ति करता है, वास्ते समय समयमे नये कर्म आते हैं और जो जो जडप्रवृत्ति है वो मेरी नही, मेरा तो जाननेका स्वभाव है, तो जो जो क्रिया पुद्गल सगसें होती है उससें मुजकों दु ख हुवा, सुख हुवा, ऐसे विचार किसलिये किये करता है ? तेरा सुख तो सहज स्वभाविक है कृत्रिम सुख हैं वो जाता रहेगा और स्वभाविक सुख प्रकट हुवा वो तो जानेका नही है. इत्यादि आत्माका तथा जडस्वरूपका विचार करेगा और उसमे स्थिर हो जावेगा तो आत्मामे अपूर्व ज्ञान प्रकट होयगा, और वो ज्ञानके प्रभावसें आत्माकों सुखका अनुभव होयगा। तो पीछे जडप्रवृत्तिपर हे चेतन ! तेरा राग है सो रहेनेका नहीं वास्ते हरएक प्रकारसें निरुपाधिवत हुआ जावे ऐसा उद्यम कर फिरसें यह जोगवाइ मिलनेकी नहीं है.' इस मुजब धर्म भावना भावे

यह बारह भावनाका स्वरूप नाम मात्रस मैने मेरी अल्पबुद्धि मुजब लिखा है, विस्तारसें पूर्वाचार्योंनें बहुत प्रकारसें लिखा है और वर्तमान कालमेंभी आत्मारामजी महाराज उर्फे विजयानदसूरी महाराजनें बहुत ग्रथ और भावनाओंकी रचना की (ग्रंथे वांचे) वो देखकर या सुनकर भावनाका दिल हो आवे उस लिये मैने लिखी है

श्रावक पौषधमे ऐसी भावनाए भावे ऐसी भावनाऐं भावे उस्सें धर्मध्यानमे (फेर) भी आ जावे, वास्ते पौषध करकें बन सके तो धर्मध्यान करे परतु वो शक्ति श्रावक

लेना न करै. तीर्थंकर अदत्त-परमात्माने जो जो आज्ञा दी है वो आज्ञासें विरुद्ध आचरण करना उसें तीर्थंकर अदत्त कहते हैं. वास्ते धर्मको सहायकारी आहार वस्त्र पात्र रहेनेका मकान आदि जो जो निर्दोष वस्तु याने आपने न करवाइ है न की है और न गृहस्थनें मुनिके लिये करवाइ है अपने लियेही बनाइ है. और वो वस्तु वर्त्तमानमै अभक्ष नहीं है उससें प्रभुजीनें लेनेकी आज्ञा की है वही वस्तु लेवै. इस मुजब चार तरहका अदत्तदान विरमणव्रत मुनि पालै.

मैथुन विरमणव्रत सो देवकी स्त्री, मनुष्यकी स्त्री, तीर्यंचकी स्त्री अर्थात् इन्होंकी कोइभी स्त्रीके साथ मैथुन सेवनेका और स्त्रीकों छूनेकाभी त्याग करै.

परिग्रह विरमण व्रत याने धन, धान्य, जमीन, मकान, राछरछीला, चांदी सुना, कुप्यधातु, मनुष्य, जानवर यह नौ प्रकारकु परिग्रहका जिसने त्याग किया है, कोडी मात्रभी जिसकों नहीं रखनी है, इस मुजब सब तरहका परिग्रह छोड देवै. मात्र शरीर ढांकनेके वास्ते वस्त्र पात्र सिवा कुछभी आहार आते दिनके लिये रख छोडनेका नहीं है. इस तरह कोइभी वस्तुकी इच्छा नहीं है उससें परिग्रहका त्याग करते हैं. परिग्रह पापकाही वीज है.

इस मुजब पांचों अव्रत, मन वचन कायासें करकें सेवे नहीं, सेवरावेभी नहीं और सेवै उसकों अनुमोदेभी नहीं. इस तरह पांच अव्रतका त्याग करकें पंच महाव्रत धरते हैं और सदाकाळ ज्ञानका अभ्यास कर रहे हैं. यत्किंचित्भी विकथा आलस निद्रामे वकत नहीं गुजारते है. ज्ञानका अभ्यास करते है. वोभी मान महत्त्वताके लिये नहीं लेकिन अपना आत्मस्वरूप प्रकट करनेके वास्तेही फकत उद्यम करते हैं. हमेशां भावना तो समभावकीही वनी हुइ रहती हैं. कोइभी पुद्गल भावमैं ममता नहीं हैं. निरंतर आतमभावना भावनेमैही मस्त रहे हैं. लेकिन पांच प्रमाद दूर नहीं हुवे हैं, उससें प्रमाद गुणठाणा कहा जाता हैं. सातवा अप्रमाद गुणठाणा है. यह गुणठाणेसें पांच प्रमादका नाश होता है. याने प्रमाद-मद-मदिरा तथा अष्टमद अर्थात् जातिकामद, कुलकामद, वलकामद, रुपकामद, अधिकारकामद, ठकुराइकामद, तपकामद, ज्ञानका मद यह आठ मद-गर्व हैं. विषय-पांच इंद्रीओंके तेइश विषय हैं. अर्थात् स्पर्शेंद्रि-शरीरके आठ विषय है. हलका, भारी, रुखा, स्निग्ध, कोमल, खरसठ-कररा, ठंडा, गरम ये आठ हैं. हलका सो हलका वस्त्र वगैरः चीज मिलै; मगर नापसंद होवै तो

दिलगीर, और पसद होवै तो खुश होना भारीमें भारी चीज मिलनेसें राजी या दिलगीर होना रुखी वस्तुकी प्राप्तिसें राजी या दिलगीर होना स्निग्ध पदार्थमेंभी राजी या दिलगीर होना. सुकोमल और असुकोमल, ठडा तथा गरम ये पदार्थ पसद-गीकी मुजब मिले तो राजी ओर नापसदगी मुजब मिलनेसें नाराजी होना, ये स्पर्शेंदियके विषय हैं रसेंद्रि-जीभ के पाच विषय है याने चरपरा, कटुक, कषायल, खट्टा और मीठा-ये पाच रस है खारा रस तो सब रसोंकी अदर होताही है इस लिये अलग नही बतलाया गया है यह पाचों रसमें जो जो रस मिला उसमे मुनिराज दिलगीर नही होते हैं जिस वक्त जो रस मिला वो समभावसें खाते हैं और यह पांचों रसोंके स्वादमें जो अनुकूल होवै उसकी अदर राग-प्रिती ओर प्रतिकूलमें द्वेष वो विषय कहा है घ्राणेंद्रिय-नाक उनके सुरभी गध और दुरभिगध ये दो विषय हैं. अच्छी सुगधीसें प्रीति और दुर्गंधिसें अप्रीति बतलानी चक्षुइद्रियके पांच विषय है अर्थात् सुरख, सफेद, पीला, हरा और काला ये पांच है उसमे जो रग अनुकूल होवै उसके मिलनेसें राग और प्रतिकूल मिलनेसें द्वेष करना सो विषय कहा जाता है श्रोत्र इद्रियके तीन विषय याने सचित्त शब्द अर्थात् स्त्री पुरुषका शब्द, अचित शब्द नगारे ढोल वगैर. का शब्द, और मिश्र शब्द-मृदगादिकका है, उसमें जिसका शब्द प्रिय होवे उसपर राग और अप्रियपर द्वेष करना सो विषय कहा जावै-इस तरह पाचों इद्रियोंके तेइस (२३) विषय है उसमेंसें जो अनुकूल मिले उसमे मुनि वो वस्तुका वस्तुधर्म जानते है और जिस वक्त जो मिला उससें अपने शरीरको आधार देते है, लेकिन उसमे यह अच्छा यह बुरा है ऐसा मान कर खुश नही होते है और दिल्गीरभी नहीं होते हैं मुनि महाराज तो आप खुद कर्मका क्षय करनेके वास्ते तत्पर हुए है आपके पास कुछभी पैसा तो रखतेंही नहीं है उससें खरीद करना हैही नही और आपके हाथमें आहारादिक बनाने भी नहीं हैं गृहस्थके वहासें जिस वक्त जो चीज मिल जावै उससेंही सतोष मान कर आनदमे रहते है, मगर खुशी या दिल्गीरी नहीं होते है इस तरह तेइस विषय त्याग कर दिये है, बारह कषाय थे सो तो चले गये है और चार जो सजलके रहे है वे भी पतले पड गये है चार विकथायेभी त्याग दी हैं निद्रा कि जिसका स्वरूप मोहनी कर्ममें कहा गया है वो निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला, और थिणद्धी ये तीनू नष्ट जानी है

इस तरह पांच प्रमादका नाश होनेसें अप्रमाद गुणठाणा कहा जाता हैं. यह गुणस्थानकमै आत्म विशुद्धि ज्यादे होती है. मगर छट्टे और सातवे गुणस्थानकका काल अंतर्मुहूर्त्तका है. सो फिर पिछे गिरकर छट्टे जाता है फिर सातवे आता है—ऐसे अध्यवसायमै फेरफार हुए करता है और गुणस्थानमैभी इसी सबबसें फेरफार होता रहता है. उसमैभी सातवे गुणठाणेका अंतर्मुहूर्त्त लघु है और छट्टेका अंतर्मुहूर्त्त वडा है, इस सबबसें इतना अंतर पडता है. पूरे आयुष् तकमै सातवे रहेका काल इकट्ठा कर लेवै तौ दो घडीमै कुछ कम जितना काल होता है; लेकिन इस्सें ज्यादा काल नहीं और छट्टेका बाकी सब काल होता है. यह अधिकार भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके २७२ पानेमै है. अप्रमाद गुणठाणेका ज्यादा अधिकार कर्मग्रंथसें समझ लैना. यह विशुद्ध भावका स्थानक है. इस गुणठाणेमै धर्म ध्यानकी अंदर ज्यादा काल व्यतीत होता है और वो धर्मध्यानके चार प्रकार है अर्थात् प्रथम पाद आज्ञाविचय याने परमात्माकी आज्ञाका ध्यान करे. परमात्माकी आज्ञा कैसी है? अविच्छिन्न है. फिर परमात्माके वचन कैसे हैं? निराबाध हैं! किसी प्रकारके दोष नहीं. आत्माकी सत्ता अनंत ज्ञानमय, अनंत दर्शनमय, अनंत चारित्रमय, अनंत तपमय और अनंत उपभोगमय है. ये आत्माकी सत्ता है वो स्वरूपमै रहना यह आज्ञा है. इस तरह प्रथम पादमैं ध्यान करे. दूसरे अपायविचय पादमैं ऐसा ध्यान करे कि जो अनंत ज्ञानमय आत्मा सो मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, योग यह चारों कारणोसें ढका गया है. वो यह जडमें जड जैसी प्रकृति कर रहा है; मगर चेतन! तेरा स्वभाव नहीं. धन स्त्री पुत्र परिवारकों देखकर मेरे मेरे कर रहा है, उनके संयोगसें राजी होता है और वियोगसें दिलगीर होता है. यह बुद्धि, अनादिके पुद्गलका संयोग बना हुवा है उनके प्रभावसें हुवा करती है; लेकिन चेतन! ये तेरे करने लायक नहीं है. आज तक तो अज्ञानता थी उस्सें मेरा क्या है? और पराया क्या है? वो ज्ञान न था. अब हे चेतन! भाग्योदयसें जैनशासन मिला है. जिसमै आत्माका स्वरूप अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतचारित्र, अनंतवीर्य. अजर, अमर, अलक्ष्य, अविनाशी, अशरीरी, अगम, अक्रोधी, अमानी, अलोभी, अमायी, अवेदी, अभेदी, अछेदी, अइंद्री, अनाहारी, अकामी, अविषयी, अगंधी, अवर्णी, अरसी, अस्पर्शी, अगोचर, अनूपम, न संज्ञी, न असंज्ञी, न अपर्याप्ता, न पर्याप्ता, न रागी, न द्वेषी, न बाल, न युवान, न वृद्ध, न स्त्री, न पुरुष,

न नपुषक, सच्चिदानंदमय, और महज सुखमय ऐसा आत्माका स्वरूप है; मगर पर सगके सववसें कुबुद्धि प्राप्त होनेसें जड वस्तुका रागी हो हे चेतन! तुने अनेक दुःख सहन किये. वर्तमान कालमेंभी चेतन! जो जो सुख मानता है वो सुख कथन मात्रही है चेतन! तु जो जो वस्तुके ससारी सुखकों सुख मानता है, मगर वो काम तपास कर देखेगा तो मालूम हो जायगा कि क्या क्या दुःख है? पुनः भवांतरमें नरकादिकके दुःख यह शरीरकी संगतीसें बहुत सहन किये हैं, वास्तें अब हे चेतन! तुं तेरा स्वरूप विचार कर तेरे आत्मिक सुखमें मग्न रहे, और पर सगसें कर्म बांधे जाते है सो शोच. तीसरा पाद विपाकविचय धर्मध्यान है उसमें शोच करे कि जीवनें पर सगसें आठ कर्म बांधे उनकी १५८ प्रकृतियें हैं (और उनका स्वरूप आठ कर्मके स्वरूपमें लिखा गया है वास्ते वहासें पढकर माहितगारी मिला लेवें) उसका बंध, जिस वक्त जैसे जैसे अध्यवसाय होवे, वैसे कर्मका बांधना. उसका उदय, नहीं हुवा है वहांतक रहेना सो सत्ता, पीछें उदय होवे तब सुख दुःख भुक्तनेमें आवे सो उदय कहा जावे यह बंध चार प्रकारका है याने प्रकृति बंध–कर्मका शुभाशुभ स्वभाव, स्थितिबंध–कर्म कितने काल तक भुक्तना पडेगा? उसका मान, रसबंध–कर्म तीव्र मंद जैसा भुक्तनेका होवे वैसा रस होवे, प्रदेश बंध–कर्मके दलका मिलना.- यह [illegible] जीव कर्म बांधता है तो जिस वक्त जो अध्यवसाय वर्तता हो वैसाही कर्म [illegible] है उसका उदयकाल प्राप्त होता है, तब दुःख भुक्तनें पडते हैं आत्माकी [illegible] अनत है, मगर कर्मके योगसें आच्छादित हो गइ है, वास्ते हे चेतन! जो [illegible] दुःख आते हैं उसमें तु रागद्वेष मत कर रागद्वेष करनेसेंही यह कर्म बांधे गये हैं और यह जन्म मरण रोगादिकके विचित्र दुःख भुक्तने पडते हैं इसलिये हे चेतन! जो जो कर्मविपाक उदय आये हैं वे वे कर्मके स्वभाव है वैसा बनता है. तेरा स्वभाव तो देखने जाननेका है सो जान ले, किंतु अज्ञानतासें अनादिकालका अभ्यास पडा है उससें मुझे दुःख होता है–पीडा होती है ऐसा करता है सो अब तु मत कर अब तो तु तेरे स्वरूपका विचार कर और समभावसें रहे यही तेरा धर्म है तु समभावसें रहेगा उससें रागद्वेषमय प्रकृति नहीं बनेगी, इस्सें सहजमें यह कर्म क्षय हो जायगा आज दिन तक तु तेरे स्वभावका नहीं जानता था अब तेरा स्वभाव तुने जान लिया है तौभी ये जडप्रकृतिमें किसलिये सपडाता है? ऐसा यह तीसरे पादमें

... ज्ञान मन्दिर, जयपुर

ध्यान करै. चौथा संस्थानविचय धर्मध्यान है–उसमें चौद राजलोकका स्वरुप शोचै. चौदह राजलोकमै जो जो पदार्थ जिस मुजब रहे हैं उसकों शोचै. षट् द्रव्य रहे है उनकाभी शोच करै. षट्द्रव्यका स्वरूप विचार लै, उस बाद आत्माके द्रव्य साथ दूसरे द्रव्यका स्वरूप विचारै कि जो जो गुण आत्मामें हैं वो दूसरे द्रव्यमै नहीं हैं, तो हे चेतन! किस सबबसें ये द्रव्यमें मेरापणा मानता है? अैसा शोच कर अपने स्वरूपमै लीन होता है. मन वचन कायाभी वही स्वरूपमें स्थिर हो जाता है. अनुभवज्ञान स्वाभाविकतासें प्रकट होता है. यह ज्ञान प्रकट होवै वो अनुभवज्ञानका सुख जानै. ये सुख किसीसें कहा नहीं जाता है. अपने आत्मतत्त्वमै एकाग्रता होनेसें आनंद होता है. वो आनंदका सुख ध्यानसें चलायमान होता है; तोभी कितनीक मुद्दत तक रहता है. वास्ते हे चेतन! तुं तेरे स्वाभाविक सुखमें मग्न रहेवे तो तेरे रहनेका स्थान लोकाग्रमै सिद्ध स्थान है वहां होगा. इत्यादि चतुर्थपादमै ध्यान करै. यह चारों पादमें स्वरूप विचार लिखा है वो चिंतवन रूप है, और ध्यान तो मन वचनकी एकाग्रतासें अपूर्वज्ञान स्वाभाविक होवें वही कहा जाता है. अैसा कहे उसका समझना कि ध्यानमै श्रुतज्ञानके बलसें प्रथम तो चिंतवन करै और पीछे स्वाभाविक होवै वास्ते चिंतवन करनेसेंही ध्यान होता है. इस मुजब सातवे गुणठाणेमै ध्यानादिककी अंदर वर्त्तन रख्खे.

आठवा अपूर्व–गुणस्थानक है. यह गुणठाणेमै आगे नहीं आये हुवे भाव प्राप्त होते हैं. यह गुणठाणा उपशम भावसें होता है. उनकी प्रकृति उपशम पाती है और क्षायकभावसें ये गुणठाणा होता है. वो सत्ता बंध उदयसें क्षय किये जाते हैं. क्षायक भाववाले तो चढकर केवलज्ञानही पाते है और उपशमवाला तो एकादशवे गुणठाणे तक् चढकर पीछे पड जाते हैं. पीछे पुनः क्षायकभाव प्रगटे ओर चडे वो पडै नहीं. ये आठवे गुणठाणे समकित मोहनीका उदय न होवें; सबब कि सातवे गुणठाणेके अंत तक उसका नाश हो जाता है तब यह गुणठाणा प्रगट होता है. ये गुणठाणेमें शुक्ल ध्यान प्रकट होता है; अव्वलमै तो शुक्लध्यानके बलसें विचार करता है; मगर पीछे स्वाभाविक ज्ञान प्रकट होता है, उससें करकै ध्यान करै. भेदज्ञान प्रकट कहैता है. यह गुणस्थानमै अनुभवज्ञान प्रकट होता है सो सूर्य उदय होनेके पेस्तर जैसे अरुणोदय हो उद्योत होता है, वैसे केवलज्ञान रूप उद्योत होनेका है उसका

अन्तलही प्रकाश होता है यह गुणठाणेमें केवल सहज ध्यान है कृत्रिम हठादिक ध्यान नहीं है ये गुणठाणेका सुख तथा ज्ञान जिसकों होता है वोही जाने महा अद्भुत विशुद्धि है ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनी, अंतराय ये कर्मउदय रहे हैं, मगर उनके रस नास होते जाते है मोहनीकर्मकी १३ प्रकृतिये रही हुइ होती है, लेकिन वे बहुतही रसरहित हो गइ होती है अति विशुद्ध अध्यवसाय हुवे है जड चेतनका केवल विभाग करते हुवे चले जाते है शुक्ल ध्यानका प्रथम पाद पृथकत्ववितर्क सप्रविचार नामक ध्यानमें ध्याते है

नवम अनुवृत्ति बादर गुणठाणा है. यह गुणठाणेमें अतिशय विशुद्ध अध्यवसाय होते हैं आठवेंके अंतमें हास्य, रति, अरति, भय, शोक, दुगंछा, यह छउ प्रकृतियोंका अंत हो जाता है. यह गुणठाणेमें ये छउ प्रकृतियोंका उदय नहीं है यहांपर शंका होगी कि आठवा गुणठाणा पाया वहा उसकी प्रकृत्तिथी उस विषयमें यह समाधान है कि लोककी रीतिके तो छट्ठे गुणठाणेसें निकल गये हैं, लेकिन आत्माके गुणस्वाभाविक प्रकट होते हैं वो देखकर हर्ष होता है, वो रुप हास्य तथा रति है. तथा अरति परभाव पर है भयभी अपने भाव चलायमान होवे उसका है शोकभी कर्मसें आत्मा मलीन हुवा उसका है दुगंछाभी स्वाभाविक परपरिणती की है यह पद् स्वाभाविक हैं. इसका ज्यादे विस्तारपूर्वक स्वरुप विचारसारकी टीकामें किया गया है यह नवम गुणस्थानकके अंतमें सज्वलन क्रोध, मान, माया, और स्त्रीवेद-पुरुषवेद-नपुंसकवेद-इन्होंका अंत होता है, तब दशम गुणस्थानक प्राप्त होता है

दशवा सूक्ष्मसंपराय नामक गुणस्थान है यह गुणस्थानमें सूक्ष्म लोभका उदय रहा है, सो अति विशुद्ध भावसें दशवेंके अंतमें उस लोभका क्षय हो जाता है अब जो उपशम भावसें श्रेणी मंड दी होवे वो एकादशवें गुणस्थानमें जावे, क्यों कि जो गुणस्थानक उपशम भावका है; क्षायक भावका गुणस्थान नहीं है, उससें क्षायक भाववाले बारहवे गुणस्थानमें जाते हैं

ग्यारहवा उपशांत मोह गुणस्थान है ये गुणस्थानमें मोहनी कर्मका उदय तो नहीं होता है, मगर सत्तासें रहता है, उसके जोरसें परिणाम पीछे हठ जाते है उस समय सें यह गुणठाणेसें चढते नहीं लेकिन गिरजाते है कदापि आयुष् आ रहा होवे और मरण आ जावे तो सर्वार्थ सिद्धि विमानमें जाता है वहासे मनुष्य गतिमें आ करकें मोक्ष प्राप्त करता है

बारहवा क्षीणमोह गुणठाणा है. यह गुणठाणेमें वीतरागपद प्राप्त होता है. यह गुणठाणेमें अभेदज्ञान है, एकत्ववितर्क अप्रविचार नामक ध्यान अभेद ज्ञान है उसका दूसरा पाद वर्त्तता है; उससें अति विशुद्ध भाव होता है. उसी सबबसें यह गुणठाणेके अंतमें ज्ञानावर्णी कर्मकी पांच प्रकृति, दर्शनावर्णीकी छः प्रकृति शेष रही हुइथीं, वो और अंतराय कर्मकी पांच प्रकृतिका उदय बंध सत्ता सब प्रकारसें नाश होकर तेरहवा गुणठाणा प्राप्त होता है.

तेरहवा सयोगी गुणठाणा है. यह गुणठाणेमें केवलज्ञान, केवल दर्शन प्रकट होता है. लोकालोकके ज्ञाता होते हैं, गया हुवा अनंतकाल और आनेवाला अनंतकाल है उसमें जो जो पदार्थ हो गये और होनेवाले हैं वो सबका ज्ञान है. कुछभी वस्तु ज्ञात होनेमें अज्ञात नहीं ऐसा संपूर्ण ज्ञान प्रकट होता है, तब तीर्थंकर महाराजजीकी वैमानिक, ज्योतिषी, भवनपति और व्यंतर यह चारों जातिके देवोंके इंद्र भक्ति करनेकों आते हैं, और समवसरणकी रचना करते हैं, उसमें प्रकट कोट–गढ चांदीका, दूसरा गढ सोन्नेका और तीसरा गढ रत्नका बनाते हैं. उस रत्नके गढ भीतर प्रभुका सिंहासन रत्नमय बनाते हैं. उसपर प्रभु बिराजमान होकर देवध्वनि पूरित देशना देते हैं. वो प्रभुका ऐसा प्रभाव है कि–चारों तर्फ वैठे हुवे लोग प्रभु अपने सन्मुखही हैं ऐसा देखते हैं–सबब यह कि तीनू दिशाओंमें प्रभुके प्रतिबिंब होते है. प्रभुके मस्तक पर अद्धर तीन छत्र रहते हैं. देवता चँवर वींजते हैं. प्रभुके पीछे तेजपुंजरूप भामंडल होता है, उसका तेज सूर्यसेंभी बारह गुना होता है. उपर अशोकवृक्ष होता है, उसकी ऐसी शीतल छांउं होती है कि वहां वैठे हुवे समस्त जीवोंका शोक संताप नाश होता है. आकाशमें दुंदभी बजे, उसमें ऐसी शब्दध्वनि होवै कि 'यही देवकों भजो.' फिर त्रिगढके चारों ओर जानु प्रमाण सुगंधित पंचवर्णी पुष्पोंकी वृष्टि देवोंकी तर्फसें होती है. इत्यादि रचना देव रचते हैं. वहां प्रभुजी बैठकर धर्मदेशना देते हैं, उस्सें ब[illegible] जीव प्रतिबोध पाते हैं; सबब कि केवलज्ञानद्वारा सब वस्तुकों जानते हैं. यावि किसीकों कोइ विषयमें कुछ शंका हो आवे तो वहभी जान लेते हैं उस्सें पृश्न [illegible] जरूरत नहीं रहती है. भगवान आपसेंही सब शंकाका समाधानरूप उत्तर [illegible] सबबसें किसीकों शंका नहीं रहती है. इस मुजब जबतक आयुष्य कायम पृथिवी पर फिरकर भव्य जीवोंकों प्रतिबोध करते हैं. इस प्रकार तेरहवे

गुणठाणमें वर्त्तते हैं इस गुणठाणमें चार अघाति कर्म रहे हुये होते हैं. अघाति कहनेका यही मतलब है कि आत्माके गुणोंको ये कर्म घात नहीं करते है. और गुण प्रकट करनेमें अटकायत नहीं करते है उससें अघाति कर्म कहा जाता है.

चतुर्दशवा अयोगी गुणठाणा है यह गुणठाणा जींदगीके अंतका अ-इ-उ-ऋ ऌ-यह पांच अक्षर बोलनेके वक्त जितना वक्त बाकी रहा होवै सब प्राप्त होता है. ये गुणठाणेमें योग यानी मन वचन और काया इन्होंका रोध होता है और चारों कर्म नाश हो जाते हैं तथा सब कर्मोंसें रहित होता है. चरम शरीरका त्याग होता है. एक समयमें सिद्धमें बिराजमान होते हैं वहां सदैव अवस्थित रहते हैं. फिर संसारमें आनेका नहीं रहता है, क्यौं कि संसारमें परिभ्रमणका कारणरूप कर्म है, उसका नाश होता है उससें पुनः जन्ममरण होताही नहीं. संपूर्ण आत्मिकसुख प्रगट हुवा है और पूर्ण सुखकों प्राप्त करते है

यहांपर कोइ शंका करेगा कि जो लोकके अंतमें जाते है वे अलोकमें क्यौं नहीं जाते है? इसकी समाधानीमें यह है कि अलोकमें धर्मास्तिकाय नहीं है. लोकके अंत तकही धर्मास्तिकाय है. जीव ओर पुद्‌गल धर्मास्तिकायकी सहायता बिगर नहीं चल सकते हैं उससें आगे नहीं जा सकते हैं यदि कहेगा कि यहांसें वहां तक जानेका क्या सबब है? उसका उत्तर यही है कि ऊर्द्ध जानेका स्वभावही है जिससे वहांही जाते हैं इस मुजब चौदह गुणस्थानरूप धर्म है उनमेंसे जितना बन सके उतना धर्म करे उसी मुजब शुद्ध होता है

५५ प्रश्न.—इस मुजबका धर्म जैनवालेही कर सकते है या दूसरेभी कोइ कर सके?

उत्तरः—बहुत करकें जैनवालेही कर सकते है; सबब कि—जिसका वस्तु धर्मका ज्ञान नहीं होता है, वहांतक वस्तुका वस्तुपणेसे मानना नहीं बन सकता है, उसीसें स्वभाव विभाव नहीं जाना जाता है. और विपरीत जानना क्योंकर मुक्ति होवे? किसी जीवको स्वाभाविक सहजहीमें वस्तु धर्मका ज्ञान होवे, तो आपके स्वभावमें रहकर परभावका त्याग कर देवे तो गुणस्थानमय धर्म प्राप्त होवे. जैसें कोइ मनुष्यका मार्गमें चलते चलते पाँव जमीनमें घुस जाय और उसमें द्रव्य प्राप्त होनेसें धनवान हो जाता है, वैसे स्वभाविक बोध हो जावे मगर या बाद जीवोंकाही ऐसा व।

आता है, वहुतसें जीवोंको ऐसा होना वहुतही मुश्किल है. पूरेपूरा उद्यम करनेसें तो वहुतसे मनुष्य द्रव्य पैदा करते हैं, तैसे जैनमार्गसें निकट मुक्ति है. अन्य भावसेंभी जैनधर्मकी मर्यादावत्, आत्मिकधर्म आजावे तभी मुक्ति पाते हैं.

५६ प्रश्नः—ऐसा समझकर जैनधर्मके उपर राग—प्यार रक्खे और दूसरे धर्मपर द्वेष रक्खे तो युक्त है या नहीं ?

उत्तरः—जिसने जैनधर्म पाया होवे उसकों मुनासिव है कि किसी धर्मके उपर वा किसी मनुष्यके उपर द्वेष न रक्खे; क्यों कि जैनाचार्योंने तो कहा है कि—' सकल दर्शनके नय ग्रहे, आप रहे निज भावेरे '—इसका परमार्थ यह है कि, जिनधर्मवालाओंने मार्ग दर्शाया है उसमें सारभूत क्या है ? वो सारभूत जिस पक्षसें होवै सो पक्ष जान लेवै और अच्छे पक्षकी व्याख्या करै, विरुद्ध पक्षकी और लक्ष न देवै. आप रहे निज भावे—यानी जैनशासनमें सप्त नयसें मार्गका निर्णय है वही भावमें स्थिर रहेवै; लेकिन किसी जीव पर द्वेष न करै. निंदा न करै—निंदा करनी संसारमैं दुरस्त नहीं है. और वादविवादमभी दूसरे जीवकों या अपने जीवकों लाभ—फायदा होवै ऐसी प्रतीति होवै तो वाद कर. मगर अपने अहंकार ममकार के लिये मत कर. अष्टकजीमें पत्र (५२) वारहवे अष्टकमे हारिभद्रसूरि महाराजनें धर्मविवाद करना कहा है; लेकिन शुष्कवाद—कंठशोषरूप—कुछभी फायदा न होवै वैसा वाद करनेका निषेध किया है. फिर जिसकों आत्मधर्म प्रकट करना है तो ज्यौं वन सकै त्यौं वे पुद्गल भावकी प्रवृत्तिसें मुक्त होनेका उद्यम कर रहे हैं. वे दूसरोंको पंचातमैं क्यौं पडे ? जिसकों व्यवहार करणी करनी है वै ऐसी करै कि जिसमें आत्म विशुद्धि होवै. और रागद्वेषकी परिणती कम होवै वैसा उद्यम करै. वैसे जीव किसीपर द्वेष रक्खेही नहीं, वो तो हम्मेशां भावदया कर रहते हैं. वास्ते आपको फुरसद मिले जब धर्मोपदेश देवै; उसमैंभी किसीके छिद्र जाहेर होवै वैसा न करै. लेकिन सुन्नेवालोंकों जिस प्रकार समता बढै उस प्रकार उपदेश देवै.

५७ प्रश्न'—अधर्मि जीवोंके ऊपर द्वेष करें किंवा नहीं करे?

उत्तर.—अधर्मि जीवोंके ऊपर मध्यस्थ रहेवें यानी रागभी न ल्यावें और द्वेषभी न करें राग करनेसें अधर्मकी प्रशंसा होवें तो आपकों कर्मबंधन होवै, और स्वप्रशंसा देखकर दूसरे जीव अधर्म सेवन करें तो उनका कारणीक बने और द्वेष करनेसें वो जीवके साथ वैर बंधन होवै तो वो कर्म भुक्तना पडे, वास्ते समभावसें रहेवे अधर्मकी प्रशंसा करनेसें श्रावककों भवभ्रमण करना पडा है वो कथा अर्थदीपिकामें छपी हुइ किताबके पत्र ७७ मे है. वास्ते अधर्मिका बहु मानभी न करें

५८ प्रश्न.—अन्य धर्मवाले धर्मकरणी करते है वो निष्फळ जाती है या नहीं?

उत्तर.—अन्य दर्शनीमेंभी कितनेक जीव केवल अपने आत्माकों कर्मसें मुक्त करनेके लिये जीवदया पालते हैं, असत्य नहीं बोलते हैं, चोरी नहीं करते है, मैथुन नहीं सेवते है, परिग्रह नहीं रखते हैं, क्रोध, मान, माया, लोभ पतले पडे हुवेकों ज्यादा पतले करनेका उद्यम करतेही रहते है फिर धर्मपर द्वेष नहीं ल्यावें येभी क्रमसें चढती दशाका निशान है जिस्सें हरीभद्रसूरी महाराजने योगदृष्टिसमुच्चयमें पातंजलीकों मार्गानुसारीमें गिन लिये है कितनेक जीव सत्य जैनधर्मपर द्वेष कर रहे हैं और अहंकार ममकार कर रहे है, हिंसा करकें धर्म मानते है ऐसे जो अन्य धर्मवाले होवें उनका कार्य सिद्ध कैसे होवे? रागद्वेष हैं सोही संसारका बीज है और वो तो रातदिन कर रहे है, तब उसका लाभ तो सब धर्मवाले कह गये ह कि संसार फळ—भवभ्रमणही मिलता है उनका दूसरा फल कहासें प्राप्त होवे?

५९ प्रश्न.—जैनमेंभी बहुतसे गच्छ है वे सभी शुद्ध हैं या नहीं?

उत्तर.—जैनमें शुद्ध आचार्य महाराजका गच्छ तो एक आचार्यका परिवार हो उनकों गच्छ कह गये है, उसी मुजब अलग अलग आचार्योंके परिवारकों अलग अलग गच्छ कहेवें तो उनमें कुछ एक दूसरेकों रटवाद नहीं है ऐसे जो जो गच्छ हैं उन सभीमें धर्मसाधन समान है—सभी मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले है कभी कुछ समझकी तफावतसे किसी किसी उत्सर्गमें

एक दूसरे आचार्यके विचारमैं तफावत आता हैं; तौभी एक दूसरेके ऊपर द्वेष नहीं होता है. दोनू मुक्तिके कामी हैं. उस्सें उनके पीछेकेभी आचार्य असा कहते है कि जिनभद्रक्षमाश्रमणजी यौं कहते हैं और सिद्धसेनदिवाकरजी यौं कहते हैं अैसें मध्यस्थ रहते हैं; लेकिन किसीकों ज्याद कम नही कहते है. वैसें अपनकोंभी मध्यस्थ रहना चाहीए. जैसे कि खरतरगच्छवाले सामायिकके आद्यमैं करेमिभंतेही कहते हैं और पीछे इरियावही पडिक्कमते हैं. इस मुजब आवश्यकजीकी टीकामें हरिभद्रसूरि महाराजने कहा है. और तपगच्छमैं प्रथम इरियावही पडिक्कमते हैं, उस पीछे करेमिभंते कहते हैं. इस विषयके बारेमैं श्रीमहानिसित्थसूत्रकी अंदर कहा है कि इरियावही कहे विगर कुछभी काम नहीं करना. इन आधार परसें तपगच्छवाले वैसेंही करते हैं. अब दोनू गच्छवाले दोनू शास्त्रकों कबूल करते हैं, तब दुरस्त है कि दोनू गच्छवालोंकों मध्यस्थ रहना चाहियें. जैसे पूर्वाचार्य दोनू आचार्यके दोनू मत दर्शाते है मगर किसीका निरादर नहीं करते है, तैसें अपनकौंभी कबूल करना चाहियें कि यह गच्छवाले इस ग्रंथके आधारसें क्रिया करते हैं, और ये गच्छवाले इस ग्रंथके आधारसें करते हैं. अैसा कहकर मध्यस्थ रहना. मगर एकके शास्त्रकों सच्चा और दूसरेके शास्त्रकों झूंठा कहकर रागद्वेषमें गिरना वो आत्माकों दुःखदायक है. जो प्रवृत्ति पूर्वाचार्यकी नहीं है तौ वो अपनी मतिकल्पनाकीही गिनी जाती है, और शास्त्रसेंभी विरुद्ध है. उसमैभी वो शांतपणेसें समझ सकै तौ समझाना चाहियें; लेकिन रागद्वेष करना तौ बेमुनासिब है. अपने आत्माकों गुण प्राप्त होवै वैसी प्रवृत्ति करनी; क्यौं कि ठाणांगजीमैं चौभंगी है कि–परगच्छी है और योग्य जीव है उसकों अपने गच्छके हठसें ज्ञान नहीं देते है वो भगवंतकी आज्ञाका उल्लंघन करते हैं. इस्से समझा जाता है कि जो गुणवंत होवै और परगच्छी होवै तौभी उनका अनादर नहीं करना; सबब कि गुणवंत होवै वो सम परिणतिवंत होते हैं, उसके साथ परिचय करनेसें गच्छकी तकरार आनेही नहीं पाती है. एक दूसरेकी भूल होवै सो सुधर जाती है; वास्ते गच्छका हठ करकै तकरारमैं

नहीं झुक जाना शास्त्र तर्फ दृष्टि देकर विचारना दोनू शास्त्रमें दो बातें अलग होवे वो कुछ दोनू ग्रहण होती नहीं और दोनूमेंसें एकभी बात असत्य होतीही नहीं, लेकिन वे दोनूके हेतु अलग अलग होते हैं, वो गीतार्थ जान सकते हैं. आधुनिक कालमें अैसे गीतार्थका वियोग है. भगवतीजीकी टीकामें अभयदेवसूरि महाराजभी गीतार्थका विरह कहते हैं, वास्ते अपनी अल्पमतिसें मुकरर नहीं हो सकता है इसलिये मध्यस्थ रहकर प्रवृत्ति करनी और जिस मुजब करनेसें हठ कदाग्रह न होवे उस मुजब चलना कि जिस्से आत्माकी परिणति न बिगडने पावे ठाणांगजीके चोथे ठाणेमें छपी हुइ प्रतके पत्र २८२ के दूसरे पृष्टमें इस मुजब लेख है कि —पुरुष चार प्रकारके हैं–१ साधुधर्म सो जिनाज्ञा उसकों छोड देवे, और गण–गच्छकी स्थिति यानी गच्छकी मर्यादा नहीं छोडता है. किसी आचार्यनें अैसी मर्यादा करी हे कि दूसरे गच्छके यति साधुकों सिद्धांत न देना. अब दूसरे गच्छके यतिकों श्रुत न देवे, न पढावे, वो धर्म जिनाज्ञा छोडता है, मगर गच्छकी स्थिति नहीं छोडता है जिनाज्ञा अैसी है कि–'जो योग्य होवें उन सभीकों श्रुत देनाही योग्य है.' यह पहेले पुरुषकी रीति है और दूसरा पुरुष गच्छकी आज्ञा छोडकर दूसरे गच्छके यतिकि जो योग्य होवे उसकों श्रुत देता है वो पुरुष जिनाज्ञारूप धर्म नही छोडता, मगर गच्छ स्थितिका उल्लघन करता है तीसरा पुरुष जो अयोग्य अन्य गच्छवाले यतिकों श्रुत देता है, वो पुरुष धर्म और गच्छ ये दोनूका उल्लघन करता है और चौथा पुरुष, दूसरेके शिष्य हैं, लेकिन वे श्रुत रखनेके योग्य है इस्सें अपने शिष्य बनाकर श्रुत देता है, वो पुरुष धर्म और स्थिति इन दोनूकी मर्यादा पालन करता है इस मुजब ठाणागजीमें अधिकार है उस पर लक्ष देकर कदाग्रहमें न गिरते स्हामनेवालेकों या अपने आत्माकों लाभ होवे सोही प्रवृत्ति करनी ये चौभगीमें अैसी शका होगी कि 'आचार्योने गच्छकी स्थिति कैसी बनाइ है?' उसके लिये उसी टीकामें कहा है कि–प्रभुके उपदेश रहित आज्ञा बधी गइ है सबब कि प्रभुका उपदेश समस्त योग्य जनोंकों मान देना अैसा

है. इस मुजब टीकामे है. फिर चौथे भांगेवालेके लिये गाथा रक्खी गइ है कि-ये पूजनीक है. उस्से विदित होता है कि ये गच्छकी खोटी रीति परसें चित्तकी रुचि कम हुइ मालूम होती है. तत्त्व केवली गम्य है.

६० प्रश्नः—इस कालमैं देव आता है या नहीं? न आनेके सबब परदेशी राजाके विवादमैं आगे कह बतलाये है, उसी वास्ते नहीं आ सकते हैं?

उत्तरः—चार कारणसें देवता आते हैं. यह अधिकार ठाणांगजीमैं चौथे ठाणेमैं छपी हुइ प्रतके पत्र २८६ के पहेले पृष्ठसें संबंध चला है. चार स्थानकमैं अभीका पैदा हुवा देवता देवलोकमैं रहा हुवा चाहता है और मनुष्यलोकमैं आनेके वास्ते समर्थ होता है यानी तुरतका उत्पन्न हुवा देवता देवलोकमै दिव्य काम भोगनेके विषे मूर्छित न हुवा होवै वो देव अनित्यता ध्यानमै लेकर यावत् अत्यंत आसक्त मन न हुवा होनेसें चिंतवन करता है कि-मेरे मनुष्य भव संबंधवाले आचार्य, प्रतिबोधक, वा उपाध्याय, सूत्रदाता, प्रवर्त्तक (जो साधुजनकों आचारमै प्रवर्त्तावै), वा स्थविर वा गणीगच्छके स्वामी, गणधर [गच्छके धरनेवाले], वा गणावच्छेदक [गच्छकी सार करनेवाले] ऐसे महाशय कि जिनके प्रभावसें यह प्रत्यक्ष देवसंपत्ति-देवताका शरीर तथा कांति प्राप्त हुइ. जन्मांतरमैं उपार्जन की हुइ पुण्यलक्ष्मी सन्मुख खडी हुइ; वास्ते मैं वहां जाउं और वो उपकारी भगवंतका वंदन करुं यावत् उन्होंकी सेवा करुं. यह पहिला सबब. दूसरा सबब यह होता है कि-तुरतका उत्पन्न हुवा देवता जबतक विषयमै अत्यंतासक्तिकों प्राप्त न हुवा होवै तब तक वो देवता चाहता है कि मेरे मनुष्यजन्म संबंधी माता पिता भार्या भाइ भगिनी पुत्र पुत्री हैं उनकों मिलनेके वास्ते वहां जाउं. उन्होंकी पास जाकर प्रकट हो खडा रहुं. वे सब मेरी दिव्य देव संबंधी विमान वगैरः की संपत्ति, रत्न प्रमुखका दिव्य देवकांति आदि प्राप्त हुइ है वो देखैं; यह दूसरा सबब है तीसरा सबब यह है कि-तुरंतका उत्पन्न हुवा देवता शोचता है कि मनुष्य भवमैं ज्ञानी श्रुतज्ञानादिक सहित हैं, वा बडे तपस्वि हैं, वा अति दुष्कर करणीके करनेवाले हैं उन्हकों वंदन निमित्त यावत् सेवा भक्ति निमित्त वहां जाउं. ये तीसरा कारण है. और

चोथा सबब यह है कि—नवीन उत्पन्न हुवा देव मनमें शोचता है कि—मेरे मनुष्य भवके मित्र स्नेही सहचारी या सगतिक—परिचयवन है उन्होंके साथ मनुष्यजन्ममें या उस वक्त परस्पर संकेत कीआथा या देवतामें संकेत किया था कि देवताकी अंदरसे प्रथम च्यवन हो मानवमें जावे तब उनकों प्रतिबोध देना, ये चार सबब हैं इस मुजब ठाणांगजीकी अंदर अधिकार है, वास्ते देव यहांपर नहीं आता है ऐसाभी एकांतसें न समझना चाहिये फिर वीरस्वामीके निर्वाण पश्चात् बहुतसे आचार्य महाराजकी सेवामें देवता आये हैं. देवकी मददसें श्रीसीमंधरस्वामीजीके पास शंकाकी समाधानीके स्वालोंके खुलासे मंगवाये हैं, लेकिन अत्यंत गुणवंत होवे उनकी सेवामें देव आता है हीरविजयसूरीजी तर्फके आचार्योंनें देवकी सहाय्यतासें शासनकी बहुतसी प्रभावना की है. फिर आनंदविमलसूरीके वक्तमें श्रावकने देवाराधन कियाथा और उस देवकों पुछाथा कि—' अभी युगप्रधान कौन हैं?' तब देवने युगप्रधानकी पहिचान होनेके लक्षण कह बतलाये थे उससें श्रावकने तजवीज की तो आनंदविमलसूरीजीकों युगप्रधान मुकरर कीये थे. यह अधिकार हीरविजयसूरीके रासमें है. वास्ते न आवे ऐसा निश्चय नहीं है (शेठ अनूपचंदजी लिखते हैं कि—) मुझेभी मुनिसुव्रतस्वामी जीके प्रभावसें कुछ अनुभव हुवा है फिर व्यवहार सूत्रकी भाष्यमें कहा है कि—किसी मुनिकों गुरुमहाराजका योग न होवे और प्रायश्चित लेना होवे तो अट्ठमका तप करके भरुचमें मुनिसुव्रतस्वामीजीका आराधन करना, उससें उन प्रभुके अधिष्ठायक आकर प्रायश्चित देवेंगे, सबब कि मुनिसुव्रतस्वामी जीनें और उन्हीके गणधरोंनें बहुतसें प्रायश्चित दीये हैं सो उन्ह अधिष्ठायक देवोंने सुने हुवे है उस सबबसें वे देवेंगे कदापि वे देव दूसरी गतिमें चले गये होवेंगे तो उन्हीके दूसरे अधिष्ठायक देव श्रीसीमंधरस्वामीजीसें पुछ करकेभी खुलासा देवेंग, इस्सेभी समझा जाता है कि देव यहां आते हैं यह अधिकार व्यवहारसूत्रकी भाष्यकी टीकावाली प्रत जो मेरे पास है उसमें पत्र २०६ के दूसरे पृष्ट में पहिला उद्देशाकी समाप्तिके भागमें है

११ प्रश्नः—सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और टीका यह पांचों अंग तुल्य माननेमें आते हैं और कोई नहींभी मानते है, तो उसमें व्याजबी क्या है?

उत्तरः—ये पांचों अंग समान मानने चाहियें; सबब कि सूत्रमें दश पूर्वधरके वचन तो सूत्र तुल्य कहे हैं. अब भद्रबाहुस्वामी चौदह पूर्वधर हुए, उन्होंने निर्युक्ति रची है, तो उसमें नफावतकी भावना ल्यानी वो अज्ञानता है. फिर समवायांग सूत्रमें असा पाठ पत्र २२८ में छपी हूइ प्रतमें है कि—'कप्पस्स समोसरणंणेयं'—इसका अर्थ किया गया है सो कल्पकी भाष्यसें समवसरणका अधिकार जान लेना. और छपी हुइ भगवतीजीमें पत्र ९१८ में कहा है वो सिद्धगंडिआसें जान लेना.

यहां पर कोइ शंका करेगा कि समवायांगजी तो गणधर महाराजने गुंथन किया है, और भाष्य पीछेसें रचा गया है, तैसेंही सिद्धगंडिआभी पीछेसें रचा गया है, तो उसमें वो अधिकार कहांसें आया? उसके उत्तरमें यह समाधान है कि जिस वक्त देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीनें शास्त्र लीखे उस वक्त ज्यादा लिखान न बढ जावे उनके लिये एक दूसरे शास्त्रकी भलामण की. जैसें कि भगवतीजीमें पन्नवणाजीकी और जीवाभिगमजी वगैरः की भलामण है. अब पन्नवणाजी शामाचार्य महाराजने बनाया है तो वो भलामण भगवतीजीमें कहांसें आवे? मगर लिखनेके वक्त एक बात ज्यादे जगह लिखनी न पडे उससें उपांग पयन्ना भाष्यकी ये भलामणें करकें संकोच किया. इसपरसें शोचनेका है कि देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीकों जो ज्ञान था उसमें सूत्रनिर्युक्ति भाष्य वगैरः यादीमें था सो लिखा. तब जो सूत्रमें और निर्युक्ति भाष्यमें शंका होती तो क्यों लिखते? उन्होंनें तो अपने पर परमोपकार बुद्धि लाकर सूत्रादि लिखाये. वास्ते इसमें कुछ शंका या फेरफार माननेका बेमुनासिब है. फिर आर्यसुरक्षितसूरीजीनें सूत्रका संक्षेप किया, वो अधिकार हरिभद्रसूरीजीकी रची हुइ आवश्यककी टीकामें है. वोभी मानवगणकों शंका हो आवेगी कि उन्मेंभी कुछ फेरफार किया होगा; लेकिन आर्यरक्षितसूरीजीके पाटपर दुर्बलीपुष्प हुवे. उनके वक्तमें गोष्ठामाहिल हुवे. उस समय देवताके द्वारा पुंछवा लिया था कि—'आर्यदुर्बलीपुष्प कहते हैं वो सच्चा है या गोष्ठामहिल कहते हैं वो सच्चा है?' श्रीसीमंधरस्वामी महाराजजीने देवताकों कहा कि—'आर्यदुर्बलीपुष्पका कथन सत्य है. गोष्ठामाहिल निन्हव है.' यह अधिकार उत्तराध्ययनजीकी टीकामें है. इससें सबूत होता है कि आर्यरक्षितसूरीके पाटपर आर्यदुर्बलीपुष्प हुवे है तो वे आर्यरक्षितसूरीके वचन

मानते थे, वै वचनोंकी प्रतीति श्रीसीमधरस्वामीजीने दी, तौ यह वार्त्ताभी सिद्ध हुइ. उस पीछे जिनभद्रगणीक्षमाश्रमणजी हुवे, उन्होंने भाष्य रचना की, और चूर्णी आचार्येने बनाइ. और उनमेंसें कितनीक टीका हरिभद्रसूरीजीने बनाइ वैसेंही दूसरे आचार्यकी बनाइ हुइभी उन्होंने प्रमाण रख्खी. उन हरिभद्रसूरीजीकों शासनदेवने १४४४ ग्रंथ रचनेका कहा अब शोचिये कि पाच अगमे विरुद्ध होता तो हरिभद्रसूरीजीकी श्रद्धाभी विरुद्ध ठहरती, तो शासनदेव रचनेका क्यों कहे? मगर शासनदेवने शुद्ध पुरुष जानकर हरिभद्रसूरीजीका मान्य किया–सच्चा माना तौ १४४४ ग्रथ रचनेके लिये कहा वास्ते ये पांच अग शासनदेवताने योग्य जान लिये थे, इस प्रमाणसें इसमें कुछभी विषमवाद गिनना नही और गिने तौ वो सख्स भगवतकी आज्ञाका लोपनेवालाही ठहरे. फिर अभयदेवसूरीजीने टीकायें बनाइ तौ उन्होंनेभी शासनदेवके कहनेसेंही टीकायें बनाइथी इस तरह बहुत प्रकारकी ये पांचों अगोंकों छाप है. फिर दूसरी तरह शोचो कि सूत्र तौ सूचकमात्र है और सबका खुलासा तो पचागीसेंही मिल सकता है. जो लोग पचागीकों नही मानते है वैभी गुप्त रीतिसें टीकायें देख कर शोचते हैं तभीही अर्थ हाथ लगता है, वास्ते पचांगी प्रमाण करनेसें यथार्थ बोध होता है

६२ प्रश्न.—उनसठवे प्रश्नमें कहा गया है कि–दश पूर्वधरके वचन प्रमाण करना ऐसा शास्त्रमें कहा है, और देवार्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी तौ दश पूर्वधरभी न थे तब वो कथन किस तरहसें प्रमाण कीआ जावे ?

उत्तरः—देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने कुछ नइ रचना नहीं की है गणधर महाराजकी पाट परपरामें जो पुरुष चले आये उनकी पाससें आपने धारणा कीथी उस मुजब लिखा, वास्ते उसमें कुछ पूर्वकी न्यूनताके बारेमें शंका ल्यानेकी जरूरतही नही है.

६३ प्रश्नः—बाह्य वा अभ्यतर तपश्चर्या करनेसें निर्जरा होवे कि पुण्य बधा जाता है?

उत्तर.—जो पुरुष स्वसत्ता परसत्ताका ज्ञान पा चुके है वे पुरुष शरीरकों जड करकें जानते हैं फिर जानते है कि जो जो कर्म उदीरणा करकें उदय होता है ओर समभावसें भुक्तनेसें नये कर्म बधाते नहीं पूर्वके बाधे हुवेभी एक कर्मके साथ दुसरेभी शिथिल कर्म रहे है तब समभाव आनेसे शिथिल कर्म तौ प्रदेशसें भुक्ते जाते है, तब जो पुरुष कर्म खपानेके लिये

उदीरणा करे उसको तो अवश्य समभावही होवै. वास्ते वो प्रदेश उदयके कर्मकी निर्जरा होती है. दूसरे कर्म जो निकाचित होवै वोभी शिथिल होवै, मात्र एक उत्कृष्ट स्थानवर्ति निकाचित कर्म है वो भुक्ते विगर अलग होते ही नहीं, और मध्यम स्थान वर्त्ति तो ज्ञानसहित तपसें नाश होती है. यह अधिकार विशेषावश्यमें है. तप करनेमें अशाताभी होवै तो उसकीभी निर्जरा होती हैं. फिर शुभ योग रहे है उसमें पुण्यभी बंधा जाता है; परंतु पुद्गलिक सुखकी इच्छा नहीं है उस्सें वो पुण्यभी मुक्तिको सहाय्यकारी होवै; लेकिन मुक्तिको रोकनेवाला नहीं है. वास्ते तपश्चर्या करनेसें मुख्य पणे निर्जराही होती है. निर्जराके बारह भेद वही तपके बारह भेद कहे हैं. फिर तिर्थंकर महाराजजी और दूसरे मुनि महाराजभी बहुत तपश्चर्या करके कर्मक्षय कर तद्भव मुक्तिमंदिरमें पधारे है, वास्ते जो तपश्चर्यासें पुण्यबंध हो अटक जाता तो वे पुरुषोंकोभी रुकावट होनी वो नहीं हुइ है, उस्से समझा जाता है कि निर्जराही मुख्यपणे होती है.

६४ प्रश्नः—आत्मतत्वका ज्ञान न होवै उसको तपश्चर्या करनेसें क्या लाभ होवै?

उत्तरः—आत्मज्ञान नही होता; मगर आत्मज्ञानी पुरुषकी निश्रासे रहकर वर्त्तते है वे पुरुषभी कर्म क्षय कर सकते हैं. जैसें कि मासतुस मुनिको एक चरणभी मुँहपर याद नहीं हो सकता था; मगर गुरुकी आज्ञामें रहकर एक चरणका अभ्यास जारी रख्खा तो केवलज्ञान प्राप्त हुवाः सबब कि गुरुमहाराज निश्चय–व्यवहार–उत्सर्ग–अपवाद–द्रव्य–भाव ये सभीके ज्ञाता है; वास्ते शिष्यको थोडा बोध होवै तोभी मुख्य मुख्य बाबत गुरु समझा देवे. उस्से उनके आत्माका कार्य सहजहीमें हो जाता है. दूसरे मनुष्य साथ वादविवाद न कर सके; मगर स्वात्माका काम कर सकता है; वास्ते ऐसे पुरुषका तप सफल है. गीतार्थ और गीतार्थकी निश्रा यह दो प्रकारका मार्गही कहा है.

६५ प्रश्नः—गीतार्थकी निश्रा नहीं और स्वच्छंदतासें करे उसको कुछ लाभ–फायदा होवै या नहीं

उत्तर.—भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ६९८ में चौभंगी है, उसमें कहा है कि- जो श्रुतसें करके रहित अज्ञानी बालतपस्वी गीतार्थ अनिश्रितदेश आराधक कहा है, फिर ज्ञाताजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ३४६ में मेघकुमारका अधिकार है मेघकुमारने पिछले हाथीके भवमें ससेकी दया कीथी उससें उस जगह कहा है कि संसारका अंत लाया विपाकसूत्रमें-सुखविपाकमें पत्र २६२ सें सुबाहु तथा सुबाहुकुमारके पिछले भवका अधिकार है उन्होंने मुनिकों प्रतिलाभे थे उस वक्त कुछ समकित नहीं था तथापि वहां कहा कि संसार परित किया उस्सें अंत आया; वास्ते गीतार्थकी अनिश्रासें मोक्षकी कामना युक्त धर्मकरणी करता है वोभी सफल होती है परंपरासें लाभ मिलता है, लेकिन अपने अहंकारके लिये गीतार्थकी निश्रा छोड देता है और दिलमें उन्माद करता है कि गुरु क्या करनेवाले हैं ? गुरु जो करनेका कहेंगे वो तो मैं करता हु ऐसे अभिप्रायसें करनेवालेकों तो फायदा होनेका संभव नहीं है. गुरुकी योगवाइ नहीं मिलती तोभी चित्तकी भावना वर्त्तती है कि-कब मुझे गुरुका योग मिलेगा ? फिर मिलनेसें उन्होंकी आज्ञा मुजब चलुगा-ऐसे जीवकों लाभ होता है इस वृत्ति सिवायके अहंकारी मुमुक्षुकों लाभ नहीं मगर नुकसान तो बेशक होता है.

९६ प्रश्न—यह लोकके उपर लोककी वांछना रहगइ है और तप वगेरे करे उसकों लाभ किस प्रकार होवे ? फिर उपदेशमालाकी गाथा ३९५ में कहा है कि अज्ञानी तप करें वो निष्फल होवे वास्ते उसका क्या खुलासा है ?

उत्तर —मुख्य वृत्तिसें यह लोक परलोककी वांछासे तपश्चर्या वगैर करनेसें संसार घटाते; मगर प्रथम तो यह लोककी वांछासें करे, तथापि उत्तम पुरुषकी संगति होवे तो उससें किसीकोंभीलाभ होता है जैसे कि संप्रतिराजाके जीवने पिछले भवमें आजीवीकाके वास्ते संयम ग्रहण कीया था; तोभी वो काल कर (मरन के शरन होकर) के राजा हुवा. यहाभी आर्यसुहस्तिसूरिजीको देखकरके जातिस्मरण ज्ञान हुवा और समकित पाया इत्यादि बहुतसे गुण हुवे यह अधिकार परिशिष्टपर्वणिमें पत्र २७७ की अदर छपी हुइ कितावमें है वास्ते एकांत येभी निश्चय नहीं है, लेकिन ज्यों घने त्यों यह

लोककी और परलोककी वांछना कम होवें वहांउद्यम करना दुरस्त है. मगर कितनेक जीव लालचमें करते होवें उसका तपश्चर्यादिकका उद्यम छुडाना नहीं. उनकों उपदेश देकर यह लोक परलोककी वांछना छुडा देनी चाहिये जैसें कि उपाश्रयमें बतासे श्रीफलकी प्रभावना होती है.–अब वो लेनेकों आया, लेकिन वंदनेकी दूर है और दरम्यान धर्मश्रवण किया, वो अच्छा लगा और रुचि हुइ. तो पीछे आत्माका हितभी होवे; वास्ते धर्मकरणी करनेमें किसीकों रुकावट नहीं करनी. और बन सके तो परभावकी जो वांछना है वो छुडा देनी ये अच्छा है. हरिभद्रसूरिजी अष्टकजीके आठवें अष्टकमें मेरा पास जो प्रत है उसके पत्र; ४१ में लिखते है–कि–जो ये लोक परलोककी वांछनासें तप करना है: मगर अरिहंतजीके भक्तिफलसें मुजकों लाभ मिलेगा ऐसी भावना है. उसमें अरिहंतजीके ऊपर राग है वो परंपरासें जोडनेवाला है–इस मुजब लाये है. फीर पंचाशकजीमेंभी इसी मुजब पत्र १९४ में तपका अधिकार है, उसमेंभी यह बात परंपरासें लाभकारक बतलाइ गइ है. फिर नंदीजीकी टीकामें (छपी हुइ प्रतके पत्र २४१ में.) सबसें कम गृहस्थलिंगसें सिद्ध और अन्यलिंगसें असंख्यात गुणे सिद्ध होवें, उससें साधुलिंगसें जन के वे असंख्यात गुणे सिद्ध होवें. फिर सिद्ध पंचाशिकामें एक समयमें गृहस्थलिंगमें चार सिद्धि प्राप्त करनेका कहा है: और अन्य तापसलिंग दश सिद्धि प्राप्त करनेका कहा हैं. अब शोच लयो कि गृहस्थलिंगमें श्रावक सम्यग्दृष्टि सब आगये तोभी चार सिद्धि प्राप्त करते है. और तापस्यादिकको कुछ समकित मुद्दल शुरूसेंही नहीं, परभी दश सिद्धि प्राप्त करे. इसका सबब इतनाही है कि जो समकित दृष्टि श्रावकनें आत्माका और परका स्वरुप और संसार अस्थिर जान लिया है; लेकिन पूर्व कर्मके योगसें संसारमेंसे नहीं निकल सकता है, इस सबबसें विशेष विशुद्ध न होनेके लिये कम जन सिद्धिकों प्राप्त करते हैं. तापस वगैरःका अज्ञानतासेंभी वैराग्य प्राप्ति होनेसें संसार छोड दिया; मगर यथार्थ बोध नहीं हुवा उससें अन्यदर्शनमें पड रहे है; तोभी भवितव्यताके जोरसे सहजसें खोटे दर्शनका मार्ग

देखनेसें वो खोटा मालूम हुवा, और जो वस्तु सर्वज्ञ महाराजजीनें जैसी बताइ है वैसी दिलमें सची मालम हुइ उससे खोटी वस्तुके ऊपरसें दिल हट गया सचे पदार्थ जो नव तत्त्व वे ज्यों हैं त्योंही उपयोगमें आये, देवका स्वरूप उपयोगमें आया उसी मुजब ध्यानादिकमें कुशल हुवे, द्रव्यसें संसार खोटा जान कर त्याग कर दियाथा वो अब भावसेंही खोटा समझनेमें आया अपने आत्मिक सहज भावमें रहना वही प्रिय हुवा–इस मुजब ध्यान करना सुगम पडा, उससें गृहस्थसें अन्य लिंग प्यादे सिद्ध होते हैं तापसोंनें अज्ञानपनेसें संसार न त्याग किया होता तो गृहस्थकी तरहसें उनकोंभी मुश्केली उठानी पडती इसपरसें ख्याल करनेका है कि अन्य लिंगमेंभी त्यागभावसें गुण होता है, तो जैनकी तपश्चर्याका अभ्यास है वै अनुक्रमसें क्यों गुनको न जोड दे ? वास्ते धर्मकी अभिलाषा है वही गुणदायक है, मगर कितनेक ऐसी क्रिया करकें अहंकार करै कि अपन तो बराबरही करते हैं, बहुत पढकर क्या करना है ? थोडेही ज्ञानसें बस है फिर कोइ समझाता है कि ज्ञानाभ्यासका उद्यम करनेका कहता हे पर ज्ञानाभ्यास नहीं करता हैं प्रभुकी आज्ञा आराधनेकी बुद्धि नहीं–जो जो वस्तुकों बोध नहीं है उसकों मीलानेकी इच्छा नहीं–फक्त जनरंजनार्थके लियेही करता है–उनके वास्ते तो उपदेश मालामें कहा हे उसीही तरह तप निष्फल होवै. यह लोककी वांछावाले बहुत करकें देवलोकादिक मिलनेसें देवके सुखोंका अभिलाष है उसमें लुब्ध हो जावे उससें धर्म करना दुर्लभ हो पडे वास्ते ज्या बन सके त्यों वांछा तो कम करनी, लेकिन त्यागभावसें विमुख नहीं बनाना निकट साधन तो प्रभु आज्ञासें चलना और वोभी ज्ञान सहित चलना कदाचित् ऐसा न बन सके तो ज्ञानसहित आज्ञा सहित करनेकी अभिलाषा रखकर चले वही उत्तम पुरुषका काम है, जैनकी जो जो क्रियाए है उनका अभ्यास करनेसें शुद्ध होता है, उस लिये पंचाशकके पत्र ८ वेमें सामायिकका अंदर उनके अतिचारमेंभी ऐसा कहा है कि मन स्थिर है वो अभ्यास करनेसें स्थिर होना है, वास्ते अच्छा अभ्यास करना और ज्ञानाराधनामें लक्ष र-

रखना जो जो प्रभु आज्ञाकी बहार होता है यानी आज्ञा विरुद्ध होता है उसके वास्ते ऐसी भावना रखनी कि—जो भगवंतजीकी आज्ञा है उस मुजब कब चलुंगा ? ऐसे भाववालेको कार्यसिद्धि समीप है.

१७ प्रश्नः—यात्रा करनेके लिये तीर्थोमें जाना उससें क्या फायदा—लाभ है ? जहां अपन रहेते है वहांभी भगवंतजी तो होतेही है तो तीर्थभूमिकी जात्रा करनेसें क्या विशेषता है ?

उत्तरः—यात्रा जानेका लाभ, समकित निर्मळ होता है ऐसा आवश्यक निर्युक्तिमें भद्रबाहुस्वामी कि जो चौदह पूर्वधर थे उन्होंने कहा है. (वो ग्रन हाजिर न होनेसें पत्रांक नहीं दिया गया है.) फिर उपदेशमालामें धर्मदास गणि महाराजनें २३६ वी गाथामें कहा है कि—श्रावक भगवंतके पांचों कल्याणककी जगह यात्रा करनेकों जावें. अब जानेसें क्या फायदा होता है ? उसका खियाल करो कि—घरके आगे व्यौपारकी, संसारकी, कुटुंबकी, ऐसी अनेक पीडाये—उपाधिये होती है उनके विकल्प करकें धर्मसाधन पूर्णतासें नहीं हो सकता है; लेकिन गाँव घर छोडकर तीर्थयात्राकों जावें जब वे सभी दूर हो जाते हैं, सोबतमें सब धर्मीष्ट भ्रातायें होते है उससें बुद्धिभी शुद्ध होती है और शास्त्रका ज्ञान होता है. फिर मार्गमे गाँव आवें वहांभी कितनेक उत्तम मुनि महाराज तथा श्रावकोंका योग मिलें, उनकी पाससेंभी नवीन ज्ञान प्राप्त होवें. और तीर्थोमेंभी वैसेही उत्तम पुरुषोंकी भेट होवें, उन्होंके समीप रहनेसेंभी ज्ञानका बोध होवै तथा वैराग्य हो आवें—यही लाभ होते है. यहां पर कोइ प्रश्न करेगा कि—घर घरभी ऐसे पुरुषोंकी भेट हो सकती है. तो उसके उत्तरमें यही खुलासा है कि घरपर ऐसा पुरुष कभी कभी आ जावें तो लाभ होता है मगर तीर्थस्थलमें वैसे उत्तम महात्मा बहुत प्राप्त हो सकते हैं, वास्ते ज्यादे लाभ होता है. और तीर्थस्थलमें तीर्थंकर महाराज, गणधर महाराज तथा मुनि महाराज जहां जहां निर्वाण पद पाये है वहां वहां; जानेसें वे महान् पुरुष याद आते हैं और उन्होंके गुणानुवादका गान किया जाता है, उससें बुद्धिकी शुद्धि होती है. फिर वे महान् पुरुष जिस प्रकारसे गुणवंत हुवे वो मार्गपर वहन करनेकी

अभिलाषा होती है और संसारसे उदासीनता होवै तथा आत्मतत्व खोज करनेकी इच्छा होती है परभाव रमण दूर होवे, अपने आत्माका गुण प्रकट करनेका उद्यम लभ्य होवे जैसी जैसी विशुद्धि होवे वैसा वैसा उद्यम करै अतिशय विशुद्धिवाले जन पहाडमै गुफाओं हैं वहा एकातमे बैठकर अपने आत्माकी जडके विभाग करै भेदज्ञान करैं धर्मध्यान शुक्लध्यानादिक ध्यावैं और बडा लाभ उपार्जन करैं औरभी बुद्धि शुद्ध होनेका सबब है कि—उत्तम पुरुषोंके अगमै जो पुद्गल [रजकण–परमाणु] इकट्ठे हुवे है वे बहुत उत्तमही एकत्र हुवे है जैसें कि क्षपकश्रेणि माडनेकी इच्छा होवे तो वज्ररुषभनाराच संघयण चाहिये–उस संघयण बिगर उत्तम ध्यान न कर सकै तव पुद्गलकीभी सहायता चाहियें तथा उत्तम पुरुष यानी जिसकी मुक्ति होनेकी है अैसे पुरुषके शरीरमै जो ध्यानमै वृद्धि होवे वैसे पुद्गल एकत्र हुवे है, वे पुरुष तीर्थस्थलमे निर्वाण प्राप्त हुवे है उससें वहा वै पुद्गल निखरे हुवे है, वास्ते वहा अच्छे पुद्गलोंका बहुत बडा हिस्सा होता है वो अपनमे दाखिल होता है. यदि बहुतसा काल हो गया है, तदपि वें सब उत्तम पुद्गल कुछ नाश नहीं हो जाते है, उससें तीर्थस्थलपर भाग्यवत जीवकों श्रेष्ठ पुद्गलोंका स्पर्श होता है और उससे बुद्धि शुद्ध होती है उनमेंभी जिस पुरुषकों विशेष अच्छे पुद्गलोंका स्पर्श होता है उनकी विशेषतामें बुद्धि विशुद्ध होती है कवचित् भाग्यहीन कों अच्छे पुद्गलोंकी स्पर्शना नहीभी होती है, बुरे पुद्गलोंकाही स्पर्श होता है वा उनके कर्मकी विचित्रता है, परतु मुख्यता तो वहां अच्छे पुद्गलों कीही है, उसी लिये क्रमसें ज्यादे लाभ होनेकाही कारण तीर्थयात्रा है अपने गाँवमें जिन चित्र होवे, मगर ये कारण सभी नहीं प्राप्त होते हैं वास्ते शास्त्रकारोंने यात्रा जानेमें लाभ बतलाया है उसी सबबसें यात्रा करके अैसा साधन साध्य करै कि जिससे बहुतही फायदा होवे

६८ प्रश्न —सामायिक पौषध और प्रतिक्रमणके अन्दर आभूषण रक्खे जाँय या नहीं?

उत्तर —पचाशकजीमें सामायिक व्रताधिकार पत्र १८ वे मे है, वहा आभूषण उतार डालनेका कहा है, और पोषधाधिकार पत्र १९–२० मेभी आभू

पण उतार डालनेकी आज्ञा दी है. फिर भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ९७७ में शंखजीका अधिकार है, वहांभी आभूपण उतारकर पौपध लिया है. फिर दूसरी तरह भी समझनेका है कि समायिक संयुक्त जो पौपध करता है उसमें आहारका पौपध देशसें तथा सर्वसें है, और शरीर सत्कारादिक पौपध सर्वथा करनेका कहा है तो फिर आभूपण क्योंकर रख्खे जॉय? फिर तत्त्वार्थमेंभी पत्र २४३ में आभूपण पहरकर सामायिक पौपध करना योग्य नहीं ऐसा कहा है. सौभाग्यवती स्त्रीयें जो अहिवातन–सधवाचिन्ह रुप शृंगार पहरती हैं और किसी समयभी जो शृंगार परित्याग करने योग्यही नहीं वैसे भूपण रख्खे जावें; मगर उस शिवायके भूपण स्त्रीयेंभी पौपधादिकमें त्याग कर देवें ऐसी आज्ञा है.

६९ प्रश्नः—कोइ मुनी संयमसें भ्रष्ट हुवे हैं वे प्रवृत्ति नहीं कर सकते; मगर शुद्ध प्ररुपणा करते हैं तो उनके मुखसें धर्म श्रवण करना या नहीं?

उत्तरः—शुद्ध प्ररुपक गुण उपदेशमालामें वहुत प्रशंसनीय कहा है. ऐसे पुरुषोंको शास्त्रमें संवेगपक्षी कहे हैं. शुद्ध प्ररुपकपणा प्राप्त होना वडा कठिन है, और जिनकों वो गुण प्राप्त हुवा होवे तो उन्की पास धर्म श्रवण करना चाहियें. उन्होंका विनयभी करना उचित है. कितनेक कहते है कि जैसे तैसेके पास जावें सही मगर उन्कों वंदना न करें. ऐसा कहना अयोग्य है; सवव कि जिनके पास श्रवण करना है और ज्ञान लैना है, तो वेशक वंदनाभी करनी चाहियें. और वंदना करनी योग्य नहीं तो श्रवण करनाभी योग्य नहीं. लेकिन संवेगपक्षीकी मुख्य परीक्षा इतनीही है कि दूसरे त्यागी पुरुष हैं, अच्छी तरहसें संयम पालन करते हैं वो पुरुषकी निंदा नहि करेंगे, मगर उनका वहु मान करेंगे, उनको सेवा भक्तिकी प्रेरणा करेंगे; क्यौ कि आपसें संयम पलता नहीं, मगर समकितगुण आपमें रहा है, उस्से वे अपने आपके दूषणकी निंदा करेंगे. और आपसें अधिक संयम पालते हैं उन्का अवश्य वहुमान करेंगे. गुणवंतका ऐसा स्वाभाविक धर्म है, और ऐसे पुरुष हैं वे श्रावककों सेवा करनेही योग्य हैं. वर्तमान समयमें वकुशकुशल संयमभी है; वास्ते अल्प दूषण देखकर

मुनिपणेको निषेधनेमें बडा भारी दूषण होता है, इसलिये शुद्ध प्ररूपक पर बहुत लक्ष रखना गुणीकी निंदा हावे तो फिर दूसरे मनतरे गुणिका योग मिलना दुर्लभ हो जावे निर्गुणिकी साथ राग-प्रीति हो जावे तो गुणिजनपर द्वेष हो आवे, तो पुन धर्मकी प्राप्ति दुर्लभ हो जाती है वास्ते अपने आपके आत्माकी हिफाजत रखकर शुद्ध प्ररूपणा करते हैं तो वे अवश्य सेवा करनेके लायक हैं

७० प्रश्न —साधुजी महाराजके पास कोइ शख्स दीक्षा लेनेको आवे तो उन शख्सके माता पिताकी आज्ञा मिल चुकी है या नहीं असा निश्चय कर पीछे दीक्षा देवे या उस विनाभी देवे ?

उत्तरः—माता पिताकी आज्ञा मिल चुके बाद दीक्षा लेनेकी मर्यादा है, मगर वो मर्यादा अष्टकजीमें हरिभद्रसूरि महाराजने दर्शाइ हैं उनका रहस्य निम्न लख मुजब है.—

दीक्षा लेनेवाला अपने मा बापको समझाकर आज्ञा मांगे, और माबाप आज्ञा देवे वो उत्तम है, लेकिन मातादिक आज्ञा न देवे तो आप खुद, साधुका वेश पहरकर घरमें रहवे और रजा मांगे. असे कितनेक दिन घरमें रहवे तथापि रजा न मिले तो उस पीछेसें घरमेंसें चल धरे और गुरुके पास जाकर संयम अंगीकार कर लेवे इस विषयमें वहा असाभी तर्क किया है कि—'इस तरह घरसें चला जाय तब घरमे रहे हुवे मातातातादिक दु खी होवे उनका दोष दीक्षा लेनेवालको लगे ?' इसका जवाब असा दीया है कि—किसीके माता पिता रोगी है और वे किसी गांवका जाते होवे तथा इस वख्त उनका पुत्रभी साथ होवे और उस मुसाफरी दरम्यान बडी भारी बीमारी प्राप्त हो जानेमें पुत्र औषध लेनेको कहीं चला जाय और कदाचित पीछेसें माता पितादिमेंसें किसीका मरण हो जावे तो उसका दोष पुत्रको नहीं लगता है इसी तरह माता पितादिकको समजानेपरभी आज्ञा न देवे, तो वो दीक्षा लेनेवालेको दोष नहीं लगता है जैसे पुत्र औषधी लेनेको गया और पीछेसें मातादि मरण पावे तो उसको दोष नहीं, वैसेंही वो पुत्रभी जान कि मैं दीक्षा लेकर और ज्ञानवंत होकर पीछे माता पिताके मनोगत अज्ञानजनित रोग मिटनेका बोध करुंगा असी भावनासें जावे और पीछेसे मातापितादिकका मरण हो जावे तो उनको दोष नहीं होता है असा अधिकार अष्टकजीके पर

९२ मे पच्चीसवे अष्टकजीमें है. वैसेही पंचवस्तुमेंभी दीक्षाका अधिकार बहुत लिखा गया है, वहांभी बहुतसे तर्क किये है कि-'मातापिता वृद्ध हैं और पुत्र दीक्षा लेवे तौ उस पुत्रके दयाके परिणाम किस तरह कायम रहे?' उनका जवाव अैसा दिया है कि दीक्षा लेनेवालेको जगतमै जितने जीव है वे सबके साथ अनंताकाल व्यतीत हुवा, उससे मातापिताका संबंध हुवा है, तब एक मातापिताकी दया पालन करे कि भवोभवके मातापिताकी दया पालन करे? उनके चित्तमें तौ चौदहराजलोकके जीवकी दया है, उनमै मातापिताकीभी दया करनेकों तैयार है; लेकिन उसके कहने मुजब वे नहीं करते है तौ फिर किस तरहसें दया पालन करे? नहीं तो उसके भाव तौ दयाकेही हैं. अैसे अैसे कितनेक प्रश्न कहे हैं वो पहेले हिस्सेमैही पांच वस्तुयें हैं. (वो मत हाजिर न होनेसें पत्रांक नहीं लिखा है.) यह अधिकार तर्फ निगाह करनेसें गुरुकों मातापितादिक दीक्षा लेनेवालेकों रजा देवै तभीही दीक्षा देवै अैसा संभव नहीं है. लेकिन दीक्षा लेनेवालेकी परीक्षा तो वेशक करनी चाहियें. उसके वारेमै पंचाशकजीके पत्र ३२ मैं दीक्षा लेनेवाला समवसरणकी रचना करे वहां प्रथम जगह शुद्ध करनेके लिये काजा निकाले, पीछे गंधोदकसें छंटकाव करे, पीछे समवसरणमें प्रभुजीकी स्थापना करे, तथा पर्षदाकीभी समवसरणमेही रचना करे. पीछे दीक्षा लेनेवालेकी आंख पर पाटा वांधकर हाथोंमे पुष्प देवे, वे पुष्प तीन दफै समवसरणमें डाल देवै उसमैसें एक दफैभी पुष्प अंदर गिरे तौ दीक्षा देवै और तीनू दफें पुष्प वहार-समवसरणकी मर्यादा के वहार गिर जावे तो दीक्षा न देवै. अैसा अधिकार पंचाशकजीके पत्र ३४ मे हैं, तथा पत्र ११७ मे दूसरा अधिकार है-उनमै दीक्षा लेनेवाला श्रावककी पडिमा वहन करे; सवव कि पडिमा वहन की होवे तौ उनकों दीक्षा पालनी कुछ मुश्किल नहीं पडती. फिर इसमै काल विलंव होवे उसके वास्ते गुरूकी निगाहमे आवे तौ छः महिने तक अपने साथ फिरावे, उस पीछे योग्य मालूम होवे तौ दीक्षा देवै. और जीव विशेष योग्य होवे तो तरत शिष्यकों दीक्षा देवै, अैसीभी प्रणालिका है; वास्ते दीक्षा देनेका काम गरूकी आधीनतामै है. गुरुमहाराजकों जैसें योग्य लगै वैसें कर लेवै. मगर श्रावक विना विचारसें दीक्षा देनेवालेकी निंदा करै तौ वो उससें महा दूषण उपार्जन करता है. गुरुनिंदाका वडा भारी दूषण है. गुरुकी भक्ति करनेमै सहज

गुरुके शरीरकी मलीनता लगनेसें अग रहित जीव हुवे हैं यह अधिकार वासुपूज्यजीके चरित्रमें है. वास्ते जैसें बन सके तैसें गुरुमहाराजका अवर्णवाद नही बोलना गुरु- लाभालाभ देखकर काम कर लेवें, वो अपनी समझमे नहीं आ सकता है

७१ प्रश्न'—श्रावक प्रतिक्रमण करता है वे हरएक वस्तुओंके क्या क्या हेतु हैं ?

उत्तरः—प्रतिक्रमणहेतुगर्भित ग्रथ कि जो जयचद्रसूरीजी कृत है, उनके और क्षमाकल्याण मुनीने हेतु दर्शाए हैं उनके आधारसें लिखता हु कि—गुरुमहाराज होवें तो गुरु समीपमें प्रतिक्रमण करना, और न होवें तो स्थापनाचार्यजीकी समक्ष करना. वे स्थापना दश प्रकारसें कही है उनमेंसें जिस स्थापनाका योग मिल जावे उसकी स्थापना करकें नवकार मत्रका उच्चार करें, क्या कि नवकार मागलिकरूप है सब प्रकारके मांगलमें नवकार मुख्य मगल है, वास्ते प्रथम नवकार पढकर पीछे पचिंदियका पाठ पढें सबब कि पचिंदियमें आचार्यमहाराजके गुणोंका वर्णन है वैसे आचार्यकी स्थापना की है, इस हेतुसें पढें. बाद इरियावही पडिक्कमें, क्यों कि हरएक धर्मकरणी शुद्ध होकर करनी चाहियें उस इरियावहीमें पापकी आलोयणा होनेसें शुद्ध हो सकता है फिर जो पाप आलोयणासें शुद्ध न होवे वो कायोत्सर्गसें शुद्ध होवे उस वास्ते काउस्सग्ग करनेका है, मगर वो काउस्सग्गके आगार रखने चाहिये,उस वास्ते तस्सउत्तरी अन्नत्थउससीएण कहेना. पीछे एक लोगस्सका काउस्सग्ग करना उसका सबब यही है कि एक लोगस्समें चदेसुनिम्मलयरा तक पचीस श्वासोश्वास होते हैं वे नही गिने जावे, वास्ते लोगस्स गिननेसें प्रभुका ध्यान होवे और वो वक्तभी पूर्ण हो सके काउस्सग्ग पूर्ण कर पीछे पूर्ण लोगस्स कहेना उसका सबब कि सामायिकके अदर प्रथम देववदना करनी चाहियें वो लोगस्समें हो जाती है. बाद मुहपत्ति पडिलेहनेका आदेश गुरुके पाससें माग लें और मुहपत्ति पडिलेहवे. उसका सबब कि गुरुकों वदना करनमें पचाग एकठे होवें, उसमें किसी जीवकी विराधना हो जावे वास्ते मुहपत्ति पडिलेहनी कि जिस्से जीव होवे सो दूर हो जावे—उस वास्ते मुहपत्ति पडिलेहवें बाद सामायिक सन्दिसाहु ? यानी . . .

आदेश दो. पीछे गुरुजी आदेश देवें. फिर दूसरी दफे गुरुजीको कहेवें कि सामायिक ठाउं ? तब गुरु आदेश देवें. पश्चात् मंगलार्थ नवकार पढकर इच्छकारी भगवन् पसाय करी सामायिक दंडक उच्चरावोजी, पीछे गुरुजी उच्चरावें. गुरुके पास व्रतका उच्चार करना उससे गुरुका विनय होता है, पीछे गुरु न होवे तो श्रावकमें जो वृद्ध—ज्ञानवृद्ध होवें वो करेमिभंतेका पाठ उच्चरावै. अब सामायिक लेनेकी तथा प्रतिक्रमण करनेकी रीति खडे खडेही है. बैठे बैठे हुवे प्रतिक्रमण करनेका प्रायश्चित एक आंबिलका श्राद्धजितकल्पमें कहा है: वास्ते शक्ति होवें वहां तक बैठे हुवे प्रतिक्रमण करना योग्य नहीं है. फजरका प्रतिक्रमणभी खडे खडेही करनेका है. पडिक्कमणाहेतुगर्भित देखोगे तो मालूम होगा कि सामायिक लिये बाद खमासमण देकर बेसणेसंदिसाहु ? यानी मैं बैठुं ? तब गुरु आदेश देते है. उस पीछे पुनः खमासमण देकर बेसणेठाउं ? यानी आदेश होनेसें बैठता हुं. इससेंभी साबीत होता है कि बैठे हुवे प्रतिक्रमण करनेका होता तो अैसा आदेश लेनेकी कुछभी जरुरत न रहती; लेकिन खडा रहाथा उस्से बैठनेकी रजा मांगनी पडी. अब बैठकर सज्झाय ध्यान करना, उस वास्ते सज्झाय संदिसाहु ? यानी सज्झाय करुं ? गुरु कहेवे कि करो. तब फिर ज्यादा विनय बतलानेके लिये कहे के 'करुं ?' तब फिर गुरु कहेवे उस बाद तीन नवकार पढकर सज्झाय ध्यान करना. नवकार पढनेका मतलब यही है कि हरएक कार्य मांगलिक पाठ सहित करना दुरस्त है. अब जिसको प्रतिक्रमण करना हो तो वो प्रतिक्रमणमें छट्ठा पच्चख्खाणका अंतिम आवश्यक आता है उस वक्त प्रत्याख्यानका काल—वक्त व्यतीत हो गया होता है. वास्ते मुहपत्तिका आदेश मांगकर मुहपत्ति पडिलेहवे और शरीरकी उस्से शुद्धि कर लेवे. मुहपत्ति पडिलेहनेकी वक्त खमासमण दे आदेश मांगकर मुहपत्ति पडिलेहवे अैसा सेनप्रश्नमें कहा है. पीछे द्वादश वंदन करें; क्यौं कि पच्चख्खाण गुरुके पास करना है वास्ते उन्होंका विनय करनाही मुनासिब है, वो विनय करके गुरुमुखसें पच्चख्खाण करें. बाद चार थुइ सहित देववंदन करें; सबब कि हरेक कार्यमें प्रथम देववंदन करनाही चाहियें. देववंदनमें प्रथम स्तुति अरिहंतजीकी भक्तिकी पढें,

दूसरी स्तुतिमें समस्त अरिहतजीकी भक्ति होती है, तीसरी स्तुतिमें ज्ञानकी स्तुति होती है, और चौथी स्तुतिमें समकित दृष्टि देव शासनरक्षक है उनकी यादीके निमित्त पढे–इस मुजब चार स्तुतिका हेतु हैं. नमुथ्थुण पढकर चार खमासमण देकर चार पुरुषका वन्दन करते हैं यानी प्रथम भगवान् हुवे ये भगवंत तथा किसी जगह धर्माचार्यजिनके द्वारा धर्म प्राप्त हुवा है उनकोंभी भगवान् वदनमें वदना करनी वास्ते भगवानकों वदना करनेके वख्त भगवान् वा धर्माचार्यको उपयोगमें लेवे. आचार्य तथा उपाध्याय और साधु ये चारोंको वदना करै. पीछें इच्छकारी भगवन् पसाय करी समस्त श्रावकों वदना करूं? श्रावककों वदनके निमित्त पडिक्कमणाहेतुगभितमें तथा धर्मसंग्रहमें तथा ज्ञानविमलसूरीकी बनाइ हुइ प्रतिक्रमणविधिकीसझायमेंभी हैं, जो सझायमालाकी बुकके पत्र २०४ में है और प्रवृत्तिभी कितनेक ठोर पर है इस मुजब वदना कर रहे बाद देवसी पडिक्कमणे ठाउं? यानी अब देवसी प्रतिक्रमण शुरु करता हुं. दिनके पापका सामान्यपणेसें मिच्छामिदुक्कड देना. देवसिअदुचितिअ कहे बाद करेमिभंते कहनेसें प्रथम आवश्यक शुरु हुवा पहेला सामायिक आवश्यक कहा जाता है, ऐसा वारवार कहनेकी मतलब इतनीही है कि प्रतिक्रमण करना सो समता पारिणाममें रहकरके करना. पुन पुन करेमिभंते कहनेमें समताकी वृद्धि होती है बाद देवसि अइयारोरओ कहकर तस्सउत्तरी पढ पीछे आठ गाथाका काउस्सग करना उसका सबब यह है कि आगे पाप ओलोचना है जो काउस्सगमें रहकर याद कर लेनी हैं, इस वास्ते कायोत्सर्ग करना पीछे लोगस्स कहना यह दूसरा आवश्यक है चोविसथ्था नामक यह आवश्यकमें चोविश जिनेश्वरजीके गुणग्राम करनेके हैं बाद मुहपत्ति पडिलेहके तत्पश्चात् गुरुके आगे पाप ओलचना है वास्ते उन गुरुकों वदना करनी चाहियें। वास्ते द्वादशावर्त वदन करना. यह तीसरा आवश्यक है पीछे देवसी ओलोउं कहकर सामान्य प्रकारसें ओलोचनारूप देवसि अइयारोकओ कहकर गमणागमण अठारह पापस्थानक आलोय लेवै बाद आदि [illegible] मारमयें मगधं नवकार

कहकर समभावकी वृद्धि निमित्त करेमिभंते और सामान्य आलोचनारूप देवसि अइआरोकओ कहकर विस्तारसे पाप आलोयणके वास्ते वंदितु कहवै. यह चौथा आवश्यक है. समता परिणाममें स्थिरतायुक्त वंदितु कहना और जो जो अतिचार आये उनके दूषण लगे होवें तो उनकी निंदा करे. महान् वैराग्यभाव लयाकर पापको आलोय लेवै. वंदितु पूर्ण हुए बाद जैसें राजाके आगे अर्ज किये बाद नमन करनाही योग्य है, तैसे पाप ओलये बाद गुरुजीको नमन करनाही लाजिम है; वास्ते वंदन कर अभुट्ठिओ अभ्यंतर खमाना दुरस्त है. उसमें जो गुरुजीको खमाये बाद पाप आलोचना शुद्ध न होवे वो काउस्सग्गसें शुद्ध होवै वास्ते काउस्सग्ग करना. गुरुवंदना करकें समस्त जीवोंको खमानेके लिये आयरिय उवजझाये कह कर समभावकी वृद्धिके वास्ते करेमिभंते कहेवै, बाद जोमेदेवसिओ अइआरोकओ कहकर पाप निंदकें काउस्सग्गके आगारादिक हितार्थ तस्सउत्तरी पढकर चारित्राचारकी विशुद्धिके लिये दो लोगस्सका काउस्सग्ग करना, यह पांचवा आवश्यक है. काउस्सग्ग पूर्ण हुवे बाद प्रभुस्तवनाके निमित्त प्रकट लोगस्स कहेना. सव्वलोए कहकर समकित शुद्धि होनेके वास्ते एक लोगस्सका काउस्सग्ग करना. बाद पुष्करवरदी कहकर ज्ञानकी शुद्धिके वास्ते एक लोगस्सका काउस्सग्ग करना. यहांपर कोइ शंका करेगा कि—चारित्र शुद्धिका काउस्सग्ग दो लोगस्सका क्यों है ? उसके समाधानमें यही जवाब है कि चारित्राचारमें ज्यादे दूषण लगते है वास्ते ज्ञानी माहाराजने दो लोगस्सका काउसग्ग कहा है. तदनन्तर सिद्धाणंबुद्धाणं कहकर श्रुतदेवता आराधनके वास्ते एक नवकारका काउस्सग्ग करना, उसका सबब यही है कि श्रुतज्ञानसें समस्त धर्म मालूम होते है और अमलमै लिये जाते है. तो श्रुतदेवकी साहाता मिलनेसें श्रुतधर्मकी वृद्धि होवै. मल्लवादिजीको कोइभी गुरूका योग नही था; मगर श्रुतदेवका आराधन किया था उस्सें श्रुतदेव प्रसन्न हुवे और बौद्धकी साथ जय मिलाया. बौद्धलोगोंको देश वहार निकाल दिये, वास्ते श्रुतदेवताका काउस्सग्ग करके स्तुति कहनी. तत्पश्चात्

क्षेत्रदेव आराधनार्थ एक नवकारका काउस्सग्ग करना, सबब कि जिसके क्षेत्रम रहना उस क्षेत्रका देव प्रतिकूल होवे तो धर्माराधनम विघ्न हो वे वा ते निर्विघ्नतासें धर्माराधन होनेके लिये अेक काउस्सग्ग और स्तुति करना चाहिये यह अधिकार आवश्यकसूत्रकी काउस्सग्ग निर्युक्तिमें कहा है फिर भत्तपच्चक्खाणपयन्नामें कहा है कि-मुनि संथारा करे उस वक्त कुल सत्र क्षेत्रदेवताका काउस्सग्ग करे, सबब कि अनशन करनेवाले मुनिको कोइ देव उपसर्ग न करे उसी मुजब यहांपरभी ज्ञानदर्शनचारित्रद्वारा मोक्षमार्ग साधक पुरुषके दुरित हरनेके लिये कहना है, सो अैसे मुनिकी भक्ति है, वास्ते करनेके योग्य है बाद मंगलार्थ नवकार पढ मुहपत्ति पडिलेहवे, और छठ्ठा आवश्यकमें पच्चक्खाण करना है उस वास्ते गुरुको वंदना करे अवसर हो जानेके सबबसें पच्चक्खाण प्रथम करालिया गया है उस्सें पुनः नहीं करना मगर छउ आवश्यककी संख्या बतानेकी मर्यादा है छउ आवश्यक पूर्ण हुए उसकी प्रसन्नता प्रदर्शित करनेके लिये देवकी स्तुतिरुप नमोस्तु वर्धमानाय, नमुथ्थुण स्तवन कहना बाद १७० जिन वंदनरूप वरकनक केहवे स्त्रीयोंको उक्त पाठ पढनेकी मना है वास्ते वे संसारदावाकी स्तुति पढे तदनन्तर भगवन् प्रमुख वंदन कर अढाइद्वीपके समस्त मुनियोंको नमन करनेके वास्ते अढ्ढाइज्जेसु कहकर उस बाद कुछ दिवस संबंधी पाप रह गया होवे उनके लिये देवसिप्रायश्चितका चार लोगस्सका काउस्सग्ग करना पीछे लोगस्स कह कर सज्झायका आदेश लेकर सज्झाय ध्यान करना यहांतकके हेतु यहां बतलाये गये है वो दाखेल किये गये है

राइपडिक्कमणेमें प्रथम कुसुमिण दुसुमिण उड्डावणिय राइय पायच्छितविसोहणत्थका चार लोगस्सका काउस्सग्ग करना शुरु होता है. उनका हेतु यही है कि स्वप्न संबंधी दोष निवारणके वास्ते करना अगर जो निद्रामें-स्वप्नमें चतुर्थव्रत-ब्रह्मचर्यादिकमें दूषण लग गया होवे तो १०८ श्वासोश्वासका काउस्सग्ग करनेका फरमान है, वास्ते सागरवरगंभीरा तक लोगस्स पाठका काउस्सग्गमें उपयोग करना. बाद भरहेसरकी सज्झाय कहेवे-क्यों कि उत्तम पुरुषके नाम-स्मरण होवे बाद एक लोगस्सका काउस्सग्ग चारित्रविशुद्धिके वास्ते रात्रिमें कचित् दूषण लगे होवे उस वास्ते करना बाद

दर्शनविशुद्धि निमित्त एक लोगस्सका तथा ज्ञानकी विशुद्धि निमित्त अष्ट गाथाओंका काउस्सग्ग करना और उसमें जिस व्रतमें दूषण लगा होवे उसको याद करना. यह काउस्सग्ग वंदित्तु कहनेके अव्वल करनेके आते है उसका सबब इतनाही है कि प्रथम यह क्रिया होवे तो निद्रा ज्यादे मुक्त हो जावे और उससे पाप पूर्णपणेसे ओलोये जावे; वास्ते राइप्रतिक्रमणमे पेस्तर आते हैं. वंदितु बाद कायोत्सर्ग करना है उसमें तप सम्बंधी भावना भावे कि—हे चेतन ! तुं तपश्चर्या कर. भगवंतश्रीजीने छमासी तप करके बहुतसे कर्मनाश कीए हैं वैसे तुंभी छमासी तप कर. वो न बन सके तो एक उपवास उससें कम कर. योंभी न बन सके तो दो या तीन उपवास कम कर, ऐसे उनतीस उपवास कम करने तक भावना भावे. तदनंतर पांचमासी, चौमासी, त्रिमासी, द्विमासी, एकमासी तपकी उक्त संकल्प मुजब न्यूनोपवास करते करते जो बन सके उसकी भावना भावे. पुनः हे चेतन ! ऐसाभी न बन सके तो चौतीसभक्त अगर बत्तीस, अठ्ठाइस, छव्वीस और चोवीस भक्तका त्याग कर. और ऐसाभी न हो सके तो दो दो भक्त कम करते करते अंतमे चोथभक्त तकभी त्याग कर. और येभी न हो सके तो आयंबिल, नीवी, एकासना, बेसना, पुरिमड्ढ, साढपोरिसि, पोरिसि, नौकारसी—मतलबमें जो यथाशक्ति बन सके वो तप कर; मगर बिगर पच्चखाणसें मत रहा कर. ऐसा चिंतवन करें. तदनंतर काउस्सग्ग पूर्ण कर प्रकट लोगस्स कहकर मुहपत्ति पडिलेहवे. वंदन कर तीर्थवंदना करके पच्चख्खाण कर लेकर विशाललोचनका पाठ प्रमोदार्थ पढकर चार स्तुतिसें देववंदना करनी. पीछे भगवान् प्रमुखको वंदन कर अड्ढाइज्जेसु खामे. यदि पोषध पेस्तर लिया होवे तो बहुवेल प्रमुखका आदेश लेवे. इस मुजब हेतु मेरी समजमें आये हुवे है सो लिखे हैं. क्षमा माँगनेके वक्त हाथ नीचे रखकर खामनेका हेतु यही है कि गुरुके चरन पर रखता हुं ऐसा संकल्प सिद्ध करना. स्थापना करनेके वक्त हाथ स्थापनाजीके स्हामने रखते है उस्का हेतु यही है कि ये स्थापनाचार्यजीकी स्थापना करता हुं. वंदना करनेके वक्त मुँहपत्तिको दोनू हाथोंकी दशों अंगुलियें लगाकर मस्तकसें स्पर्श करना; क्यौं कि गुरुके चरनकी धूरी सिरपर चढाता हुं ऐसा बतलानेका है वास्ते वैसे करना चाहियें. ये सभी विनयकी निशानी है, और वीतरागदेवका धर्म विनयमय है; वास्ते ज्यौं बन सके त्यौं बडेका विनय करनाही उचित है. विनयसें करके ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी वृद्धि होती है.

७२ प्रश्न—प्रतिक्रमण कौनसे वक्त करना मुनासिब है ?

उत्तर —दोनु प्रतिक्रमण संध्यामेंही करने चाहियें यानी संध्याका प्रतिक्रमण (देवसि) अर्द्ध सूर्य व्हार होय उस वक्त वंदितु कहना चाहियें उस करते मोडा अगर जल्दी करनेका प्रायश्चित ज्ञानविमलसूरीजीकी बनाइ हुइ स्वाध्यायमें कहा है कदाचित् किसी सबबके लिये अपवादसें ऐसीभी आज्ञा है कि–देवसि प्रतिक्रमण जल्दी करलेने की आवश्यकताही होवें तो दुपहरके बारह बजे बाद और मोडा करें तो रात्रिके बारह बजे तक किया जावें ओर राइ प्रतिक्रमण जल्दी करना हो तो रात्रिके बारह बजे पेस्तर किया जावें इस मुजब प्रतिक्रमणहेतुगर्भितम कहा है. उसका सबब यही है कि कुछ जरूरी कार्यमें फँस गया होवें और बिल्कुल वक्त न मिल सका हो तो प्रतिक्रमण करनेका नियम भंग न हो जावें उस लिये ये फरमान किया गया है क्यों कि जीवकी ऐसीही आदत होती हैं कि एक दिन कामका क्रम छोड दिया जावें तो फिर हम्मेशा वैसाही प्रमाद हो जाता है वास्ते अपवादसें यह समयका फरमान किया गया है, लेकिन बनते तक मुकरीर वक्तपरही करना योग्य है कुछभी उपाय समय हाथ करनेका न रहा होवें तभी अपवादका फरमान उपयोगमें लेना चाहिये, क्योंकि हरिभद्रसूरीजीने कहा है कि–समयपर खेती करनेसें सफल होती है, मगर वे मोसममें करे तो निष्फलता हाथ आती है. वास्ते अकालमें क्रिया करनेसेंभी वैसीही निष्फलता मिलती है, इस लिये जो जो धर्मक्रिया करना हो वो मुकरीर किये गये वक्तमें करें कि जिस्से फल प्राप्त होवें

७३ प्रश्न—प्रतिक्रमणके भीतर षट् आवश्यक है उसमें कौनसे कौनसे आचारकी शुद्धि होती है ?

उत्तरः—सामायिक आवश्यक वा प्रतिक्रमण आवश्यक और काउस्सग्ग आवश्यकसें चारित्राचारकी विशुद्धि होती है, क्योंकि सामायिक लेनेसें सावद्य यानी पाप उसका त्याग होता है उससें चारित्रकी विशुद्धि होती है प्रतिक्रमण पापकी निन्दा गर्हा करानेसें अतिचारकी विशुद्धि होती है उससें चारित्रकी

विशुद्धि होती है. काउस्सग्ग करनेसें कायाका वोसिराना होता है, एक आत्माकी अंदर उपयोग स्थापित होता है उस्सें समभाव वृद्धि पाता है. नशुके गुणमें एकाग्रता होती है वही चारित्र हैः वास्ते चारित्राचारकी शुद्धि होती है. चउविसथ्था यानी लोगस्ससें दर्शनाचारकी विशुद्धि होती है. पच्चख्खाण आवश्यकसें तपाचारकी विशुद्धि होती है और वंदन आवश्यकसें ज्ञानाचारकी विशुद्धि होती है; सबब कि गुरुजीका विनय करना ये ज्ञानका आचार है और छउं आवश्यकमें वीर्य स्फुरायमान करना है वास्ते विर्याचारकी शुद्धि होती है. हम्मेशां संसारमें वीर्य स्फरायमान कर रहा है वो बलवीर्य है. धर्ममें वीर्य श्रावककों स्फुरायमान करनाहे वो श्रावककों बालपंडित वीर्य कहा है और मुनि आराधकपणेसें प्रवर्त्तते हैं वे पंडित वीर्य है. इस मुजब छउं आवश्यकसें पांचों आचारकी विशुद्धि होती है.

७४ प्रश्नः—ज्ञान पढनेसें वा श्रवण करनेसें अगर वांचनेसें क्या लाभ होता है ?

उत्तरः—ज्ञान दो प्रकारका है यानी एक बाह्य और दूसरा आभ्यंतर. उसमें जो बाह्य ज्ञान वो संसारके व्यौपार रोजगार धन पैदा करना, कला कौशल्यता, विपयसेवन इत्यादि बाबतका जो ज्ञान है वो आत्माका हित करनेवाला नहीं है; मगर भवभ्रमणा बढानेका कारणभूत है. और स्वर्ग नरकका स्वरूप जानना उस्सें वस्तुबोध होता है, तथा उत्तम पुरुषोंके चरित्र श्रवण करना और श्रावक, मुनिके बाह्यके व्रताधिकार जानना वोभी बाह्य ज्ञान है; मगर अंतरमे गुण होनेका कारणभूत है; क्यौं कि उत्तम पुरुषोंने जो जो मार्गसें अंतरंग ज्ञान मिलाकर आत्मा निर्मल किया वैसें करनेका आलंबन है, और अंतरंगविशुद्धिके कारण है. बाह्यसें त्याग हुइ भइ वस्तुका अभ्यास पढनेसें उनके पर इच्छा नहीं जाती है. ये सुज्ञजनके अनुभव गम्य है. ऐसा होनेसें उन चीजोंके संबंधी विकल्प नाश हो जावे हैं, तो आत्माकी निर्विकल्पदशा जाग्रत होती है. फिर व्रतोंसें संसार संबंध छूट जाता है, तो उस संबंधी कारण नाश हो जाते हैं, उस्सें उनके विकल्पभी नाश होते हैं. पुनः हिंसा असत्य भाषण प्रमुखका त्याग होता

है, तब किसी जीवके साथ क्लेश विकल्पभी नही होवे, वास्ते ये बाह्यनासें व्रतादिक अच्छी तरहसें पालन करे तो ऐसे अतरग गुणका कारण होवे अब दूसरा अतरङ्गान उससें आत्मा क्या पदार्थ है? यह शरीर मालूम होता ह वह क्या पदार्थ है? ये शरीरादिककी माप्ति काहेसें होती है? ये वर्त्तना होती है वो स्वाभाविक हे या विभाविक है? आत्मा नित्य है या अनित्य है? छउ द्रव्यके भावके क्या धर्म हैं? छउ द्रव्यके क्या क्या गुणपर्याय हे? निश्चय स्वरुप क्या है? व्यवहार स्वरूप क्या है? और विभाविक आनद वो क्या? इत्यादि स्वपर स्वरूपका बोध यह बोध होनेस होवे बाद एकातमे बैठकर अपने आत्मस्वरूपमे स्थिर चित्तकर बाग्मवृत्ति उद्योग हठाकर एक आत्मध्यानमे लीनता करे पेस्तर श्रुतज्ञानके जोरसें अपने आत्माके द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव शोचे कि द्रव्यसें आत्मा द्रव्य एक पदार्थ है द्रव्य किसका कहवे? जिनका तीनों कालमे विनाश नहा जो विनाशी द्रव्य है वो उपचरित द्रव्य है फिर द्रव्य किसको कहेवे? गुणपर्यायसें युक्त सो द्रव्य कहा जाव वो आत्मद्रव्य क्षेत्रसें असख्यात प्रदेशमय है सूक्ष्मजतुमें सूक्ष्मजतु जितने क्षेत्रमे रहते है सो जुगलियोंके तीन गाउ प्रमाण शरीर ह, उसमें उन प्रमाणमें विस्तारयुक्त रहते है पुन केवलज्ञानी महाराज केवलिसमुद्घात करते है तब कुल चौदह राजलोकमें आत्म प्रदेश फेलाते है, तब अखिललोक प्रमाणसें क्षेत्र है कालसें अनादिका । है वो काइ दिन अत होनेका नहीं, उससें अनत है भावस अन ।, अनतदर्शन, अनतचारित्र, अनतवीर्य, अव्याबाधसुखमय, अगम, अगोचर, अलक्ष्य यह यादि अनतगुण वो आत्माका भाव है असा भाव जानकर आत्मा परभावमेंस चित्त हठाकर भावे कि-धन कुटुबादिक जो पदार्थ है वे मेरे नहीं है. तथा शरीर है वोभी मेरा नहीं है, सबब कि जो मेरी वस्तु है वो नाश नहीं होती, मेरेसें अलग नहीं होवे और यह शरीर तो नाश होता है मेरय–आ इसका स्वभाव अलग है ये शरीर सो पुद्गल पदार्थ है, पुद्गलजीव अ क्षेत्र, काल, भाव न्यारे है पुद्गल द्रव्य मो परमाणु है और । विचारमें पर-

माणु मिलकर जो पदार्थ हुवा है उनकों स्कंध कहा जाता है, उनका ये शरीर बना है. ऐसेही स्कंध बिखरकर पीछे परमाणु हो जाते हैं. फिर इसमै जडता स्वभाव है उससें मेरे द्रव्य और शरीरके द्रव्य न्यारे हैं. पुनः क्षेत्र जितना वडा शरीर वा स्कंध है उतना क्षेत्र अवकाश कररहते हैं. परमाणु है सो एक आकाश प्रदेश अवगाहकर रहते हैं; वास्ते आत्मा और पुद्गलका क्षेत्र भिन्न है. कालसें परमाणु अनादि अनंत है, शरीरादि स्कंधसादि सांत है. यानी आदिभी है और अंतभी है. भावसें अचेतन यानी जडभाव वर्ण गंध रस स्पर्शमय है तो भावसेंभी आत्माके गुणसें शरीर जो पुद्गल द्रव्य उसका भाव भिन्न है. इस तरह पुद्गल द्रव्यका स्वरूप जानता है. आप जडभावसें भिन्न होता है. ऐसेही चारों निक्षेपसें शोचै. नामसें जीव वा आत्मा ऐसा नाम है. जीव और स्थापना निक्षेपा सो जीव ऐसे अक्षर लिखना, वा मूर्ति बनानी. द्रव्य निक्षेपा सो असंख्यात प्रदेशमय–ये तीन निक्षेपे तो व्यवहार हैं. भाव निक्षेपेसें आत्माका अरुपि स्वरूप, अव्याबाधस्वरूप, अक्षयस्वरूप, सभी वस्तु जानने देखनेका स्वभाव ऐसा आत्माका स्वभाव जानता है. जो जो पुद्गलदशाकी प्रवृत्ति मनका चिंतवन बन रहा है वो मेरे स्वभावका नहीं. ऐसा निश्चय होनेसें जो जो जडप्रवृत्ति उसकेपर उदासीन वृत्ति होवै. यहांपर कोइ शंका करेगा कि–'उदासीन वृत्ति और वैराग्य भिन्न है?' इसके समाधानमै यही उत्तर है कि शास्त्रमै वैराग्य किसकों कहते है? जो परवस्तुपर भाव जाता है उनकों पीछे हठाकर अपने मनकों दूर हठा लेता है, उसकों उदासीन वृत्ति होवै तो कुछ चिंतवन नहीं करना पडता है; क्यौं कि जो जो वस्तुसें उदासवृत्ति हुइ है उसके पर दिल नही जाने पाता है वास्ते भिन्न है. ऐसे विचार कर आत्मस्वरूप अनुभवगम्य है उससे सहजसेंही उसकी वाह्यदशापर चित्तप्रवृत्ति नही जाती है. मात्र अपने स्वरूपमै मग्न होती है, सुख दुःख समान मानता है, वोहकी वोही वस्तु मानताही नहीं. सुख दुःख भुक्तनेकी तौ चित्तवृत्ति होतीही है; क्यौं कि ने स्वभावमैंही मग्न हो रहे हैं. विषयकी तौ स्वप्नमैभी इच्छा नहीं. ये

स्तुक
नुभ
तो
संबंध
विकल्प

फर्मसयोग यह शरीरमें रहा है उसके आधारसें चाहियें वो निरवद्य चीज औसरपर मिल गइ तौभी आनद है और न मिलगइ तौभी आनद है जैसें कि ऋषभदेवजीकों वर्षदिन तलक शुद्धमान आहार न मिला तौभी उनकों विकल्प न था और समभावसें वक्त व्यतीत किया वैसेंही उदासीन वृत्तिवत होते हैं वो तो अपने स्वरूपकों अपनी वस्तु मानते हैं, उन्में जितनी कसर है उतनी उतनी पुद्गलभावकी प्रवृत्ति करते हैं, मगर उनमें कोइभी परभावकी इच्छा नहीं होती, अगर हो आवे तो वहासें वैराग्य लाकर मनकों पीछा लोटाते हैं यों करनेसें ज्यादे विशुद्धि होती है तब उस वस्तुपरसें उदासिनता भाव होता है पुनः अपनकों कितनी हद प्राप्त हुइ है वो देखनेके वास्ते परमात्माने सप्त नयसें स्वरूप बतला दिया है और सप्त नयके ज्ञानसें बाह्यप्रवृत्तिका अतरग वृत्तिका ज्ञान होता है उससे अपना स्वरूप शोचता है उनमेंभी अपना स्वरूप भासन होता है वो अनुयोगद्वार सूत्रकी छपी हुइ प्रतके पत्र ६२८-१२८-४१ मे हैं वहांसें देख लेना. यहांपर मात्र उनके नाम लिखता हु सप्त नय-नैगमनय, सग्रहनय, व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढनय, एवभूतनय, ये सप्तनय हैं उसमे एक एक नयका विषय विशुद्ध है नैगमसें सग्रह, सग्रहसें व्यवहार, व्यवहारसें ऋजुसूत्र, ऋजुसूत्रसें शब्द, शब्दसें समभीरूढ और उस्से एवभूतनय है, सो पूर्ण वस्तुको माननेवाला है, तैसें आत्माकी प्रवृत्ति सपूर्ण गुण प्रकट होवें तब एवभूतनय धर्म मानै वहांतक जो जो आपकी कसर है उससें मुक्त हो आत्माका शुद्ध स्वरूप प्राप्त करनेकी भावना भावे ज्यों ज्यों अतरगमें स्थिरता करनेका अभ्यास करे त्यों त्यों क्षयोपशमभाव वृद्धि होवे और ज्ञान विशुद्धि होवे, नवतत्वका स्वरूप शोचे उसमें त्याग करने और आदरनेके योग्य पदार्थका स्वरूप विचारे. आठों कर्मका विचार करे उनके सत्ता बध उदय उदिरणाका स्वरूप शोचे.नौ अनुयोगसें आत्माका स्वरूप शोचे सतपय-आत्मपद है वो हयात है, वो कृत्रम नहीं है द्रव्य प्रमाणमें शोचे कि जीव अनत हैं वे सत्तामें तुल्य है अपने अपने स्वभावसें न्यारे हैं क्षेत्र विचारमें जहां

तक शरीरमें रहा है वहां तक शरीर प्रमाणसें है. जब शरीरसें न्यारा होता है तब जो अवगाहना होवे उस मुजब - उसका तीजा हिस्सा संकोचन कर सिद्धमें रहता है, उस मुजब आकाश प्रदेशकी स्पर्शा कुछ अधिक है. कालसें अनादिकालका है और जो जो सिद्धि पाता है तब संसारका अंत होता है ओर हम्मेशां सिद्धमें रहता है, अभवि जीव अनादि अनंत संसारमेंही रहता है. अंतरंगसें शोचते मालूम होता है कि जीवका अजीव होनेका नहीं. और पुद्गल संगमें रहा है वहां तलक पुद्गलके रुप अनेक बनते हैं; मगर वस्तुपणेसें रुप बदल जाता नहीं. भाग–हिस्से शोचनेसें समस्त जीव अनंत है, उसके अनंतवे हिस्से में हुं. भाव विचारनेसें पांच भाव है, उसमे उदयिक भावके इक्कीस भेद हैं, सो कर्मसंयोगसें है उसके नामः—अज्ञानपणा है जिस्से अपने आत्मा स्वरुपसें भूलपर जो पुद्गलिक पदार्थपर मेरेपणेका ममत्वभाव बन गया है, ये पहेला भेद. दूसरा भेद असिद्धता–सो आत्मा सत्तासें सिद्ध स्वभाव है सो अवराने के सबबसें असिद्धता हुइ है, तीसरा भेद जो असमयपणा–आत्म स्वभावमे समभावमय रहना सो छोडकर विषयादिकके अंदर राग द्वेषकी परिणती हुइ उस्सें धन शरीरमें, कुटुंबादिकमें मूर्छितपणा बन गया है सो छउं लेश्या के छ भेद उसमे प्रथम कृष्णलेश्या कही जाती है. नील-लेश्या सो कर्म संयोगसें बुरे परिणामका होना; जैसे कि छउं लेश्यावाले जामनके फल खानेकों गये, उसमै कृष्णलेश्या वालेनें कहा कि ये वृक्ष काट डालो ओर पीछे उनके फल खाओ. अैसे दुष्ट परिणाम सो कृष्णलेश्या वालेने कहा कि इस दरख्तकी डालीयें काट डालो. अैसे परिणाम होवै वो नीललेश्या. कापोतलेश्यावालेनें कहा कि जिन जिन डालीपै जामन लगे हुवे हैं उन उन डालियोंकों काट डालो. अैसा शोचै सो कापोतले-श्या. तेजोलेश्यावालेने कहा कि डालियें काटनेकी कुछ जरूरत नहीं, फकत जामन लग हुवे होवै वही पतली डाली नोच ल्यो, सो तेजोलेशा पद्मलेश्यावालेने कहा कि फकत जामन जामन चुन ल्यो–अैसे परिणाम होवै सो पद्मलेश्या. और शुक्ललेश्यावालेने कहा कि जामन पककर नीचे

गिर गये है उनकोंही बीनकर खाओ. झाडको छुनेकीभी क्या जरूरत है? अैसे परिणाम होवे सो शुक्कलेश्या इस मुजब छउ जातके परिणाम कर्म सयोगसें होते है सो छउ भेद कषाय सो क्रोध-मान-माया-लोभ चारों गति सो मनुष्य, देव, तिर्यंच और नारकी तीनवेद सो-पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुसकवेद. और मिथ्यात्व सो विपरीत बुद्धि-स्वरुपकों भूलकर विपरीत परसुखमें लीनता ये इकीस भेद कर्म उदयसें बनते हैं अैसा मानकर जो जो वस्तु अपनी मान चित्त वदला देता है और ये स्वरुपकों परस्वरूप जाने इस रीतिसे ये भाव शोचे-विचारे दूसरा मणामिकभाव उसके तीन भेद है-भव्यपणा, अभव्यपणा और जीवितव्यपणा ई तीनभेदमे जीवितव्यपणा है तथा भव्यपणा अभव्यपणाके प्रणाम विचारे और जो हाथ लगे सो भावे तीसरे उपशम भावके दो भेद है-उपशम चारित्र सो उपशम श्रेणिमें प्राप्त होवे तथा उपशम भावका समकित उस श्रेणिमेभी होवे और उस विनाभी होवे सो है या नहीं वो विचारे क्षायक भाव, उसके नौ भेद है सो क्षायक समकित, यथाख्यात चारित्र, केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनतदान, अनतलाभ, अनतभोग, अनतउपभोग और अनतवीर्य ये नौ भेद क्षायकभावके हैं सो प्राप्त करनेका भावे क्षयोपशमभावके अठारह भेद है सो चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीनें दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, क्षयोपशमसमकित, देशविरती और सर्व विरती-यह अठारह भेदमैसें जो जो भाव क्षयोपशमभावसें प्राप्त होते हैं सो क्षायकभावसें करनेका भावे ये भाव विचारके अल्प बहुत्व विचारे कि आत्मा पंदरह भेदस सिद्धि प्राप्त करता है उसमें कौनसें भेदसें बहुतसे जीव सिद्धि प्राप्त करते हैं? वो आगमसें जान लेवे कि मुनिपणेसें १०८ अेक समयमें सिद्धि प्राप्त करते है दूसरे सब लिंगसें कमसिद्धि प्राप्त करते हैं, वास्ते मुनिपणेमें भवर्तनेका भावे मुनिभावमे जो जो कसर-न्यूनता है वो प्राप्त करनेका भावे. सम भावकी वृद्धि करे फिर षट स्थानकों ध्यानमै लेवे अर्थात् प्रथम स्थानक चेतन लक्षण सो ध्यानमें लेवे कि आत्मा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, तप, उपयोग ये छउ लक्षणमय है दूसरा स्थानक यही है कि-आत्मा

नित्य है, अविनाशि है. जन्म मरण पुद्गल संयोगसें बनता है वो मेरा स्वभाव नहीं है. तीसरा स्थानक शोचे कि—आत्मा अपने स्वभावका कर्त्ता है और कर्म संयोगसें पुद्गलिक भावका कर्त्ता बन गया है, वहांसें उपयोग बदल डाले. चौथा स्थानक भोक्तापणा शोचे कि निश्चयनयसें अपने स्वभावका भोगी है, परभावका भोगीपणा पर संयोगसें है. पांचवा स्थानक ध्यानमे लेवे परमपदका विचार करे कि आत्माका पद और सिद्धका परमपद समान है, कर्मके संयोगसें भेद पड गया है, वो भेदसें रहित आपका परमपद है. उस मुजब रहनेका भावे. छट्टे स्थानकमे शोचे कि ये परमपद प्राप्त होनेके कारण संयम और ज्ञान ये दो हैं; वास्ते दोनू वस्तुओंमें वर्त्तना करे. इस तरह भावनाओं भावनेका ज्ञान सो ज्ञान श्रवण करनेसें होता है और ऐसे भावसें स्वाभाविक अनुभव ज्ञान प्रकट हुवे बाद ज्यौं ज्यौं स्वभावकी अंदर स्थिर होवे त्यौं त्यौं आत्माकी निर्मलता अनुभव ज्ञानकी वृद्धि और निज तत्व प्रकट होवे; वास्ते हर हमेशां सुंदर भावनाओंका उद्यम करना. पुनः हेमाचार्यजीने ध्यानकी बहुतसी रीतियें योगशास्त्रमे बतला दीहै, वहांसें देखकर ये उद्यम विशेष प्रकारसें करना. अंतिम उद्यम यही है वास्ते आत्मार्थि पुरुष जो जो निवृत्तिका वक्त हाथ लगे वो वो वक्त पर ध्यानका अभ्यास करे यही श्रेय है.

७५ प्रश्नः—किसी गच्छवाले कहते हैं कि छउं पर्व और कल्याणक दिवस सिवा पौषध नहि करना उसके संबंधमे सत्य क्या है ?

उत्तरः—ये बात न्यायसें और शास्त्रसें विरुद्ध मालूम होती है; सबब कि परमात्मा श्रीका तौ यही उपदेश है कि—'समय मात्र प्रमाद नहि करना.' वो उपदेश आत्मार्थि जनोंके दिलमै रमण कर रहा है. हर हम्मेशां भावना तौ अप्रमादकीही वर्त्तती हैं; मगर कर्मके संयोगसें—पूर्व कर्मके जोरसें उन प्रकारकी विशुद्धि नहीं हो सकती है उस्सें संयम अंगीकार नहीं करते तौ भी पर्वके दिन पौषध तौ अवश्य करते हैं, और पर्वके दिन सिवा दूसरे दिनोंमैभी वक्त हाथ लगै तौ वो वक्त प्रमादमै क्यौं गुजारें ? उस दिनभी अवश्य पौषध व्रत धारण करे. शास्त्रमै तौ

जहा जहां अधिकार होवे वहां वहां पर्वके दिनकाही होता है, सबब कि गृहस्थ ससारके प्रबधमें फसा हुवाही होता है यदि फसा हुवा न होता तो सयमही अगीकार करता' लेकिन फसा हुवा होनेकेही सववसें सयम अंगीकार नहीं करता है, उस वास्ते हम्मेशा न वन सके वोही हेतुसें पर्व दिन अवश्य पौंषध करे. इसी लिये तिथियोंका दर्शाव किया है अैसा आशय तत्वार्थके पत्र २४३ मे है कि–"सर्पौंपधोपवासकोत्रयपक्षयोरष्ट-म्यादि तिथिमभिगृह्य निर्श्चित्य धुव्यान्यतमांचोते प्रतिपदादि! तिथि मनेन-वान्वासु तिथिषु अनियम दर्शयति नावश्यतयान्यासु कर्तव्यः" इस मुजब तत्वार्थकी टीकामें है–यानी अष्टमी प्रमुखके दिन अवश्य (पौंपध) करना-वास्ते अष्टमीदर्शाइ है, और दूसरी प्रतिपदादितिथिके दिन अवश्य कर्तव्य नहीं इस्सें कुछ निपेध किया है अैसा नाहि कहा जाता है–मतलबमे अव-काश मिले तो वेशक पौंषध और तिथियेंमेंभी करे. अगर जो शख्स इस बातका निपेध करते है उनका तो इलाजही क्या है–उनकी बुद्धिकीही वि-चित्रता है आत्मार्थियोंको तो जिस वक्त मोका हाथ लगे उसी वक्त धर्म प्रवर्ति करनी वही श्रेय है पुन' प्रतिक्रमणेमेंभी तपचिंतवनका काउ-स्सग्ग आता है उस्में छ मासी तपसें न्यूनक्रमसें चिंतवन किया जाता है. वोभी तिथि विगरके दिनोंमें चिंतवन नहीं करना चाहियें; सबब कि उप वास आहार पोपध है और पर्व तिथि विगरके दिनोंमें नहीं करना है तो चिंतवन किस वास्ते करना चाहियें? लेकिन ज्ञानीका मार्ग तो हर हम्मेशा धर्मकरणीकाही है. ज्ञानीयोंनें शास्त्रकी अदर तप चिंतवन करनेका कहा है तप चिंतवनका अधिकार योगशास्त्रमें तथा प्रवचनसारोध्धारकी छपी हुइ किताबके पृष्ट ३७ में है इस सिवाभी बहुतसें शास्त्रोंमें है, वास्ते वक्त मिल जावे उसी वक्त पोपध करना यही दुरस्त है पुन वहीं प्रवचन सारोद्धारके पत्र ४० में अनागत तप पचख्खाणका स्वरूप कहा है कि–अगात पर्यूपणादिक पर्वके दिन किसी सबबके लिये तप बन सके वैसा योग नहीं है तो उस्से पीछेसें करे. या तो अतित तप यानी पेस्तरभी करे तोभी कुछ हरकत नहीं. इस अधिकारसें समझा जाता है, कि पर्वके पेश्तर

या पीछेभी तप करै तो कुछ हरकत नहीं है. तप है सो आहार पोषध है वास्ते पर्वके दिन सिवाभी पोषध करनेमे कोइ नुकशान नहीं किन्तु लाभही है. फिर ये पक्षवाले यौंभी कहते है कि—'हम्मेशां उपवासका पच्चखाण करना; मगर ज्यादे एकदम पच्चख्खाण करना नहि. ये बातभी शास्त्रसें भिन्नता धराती है; सबब कि येही तप चिंतवनमें जितने भक्तका अभी एकदम पच्चख्खाण किये जाते है उतनेही भक्तका चिंतवन है. दूसरा चिंतवन दूसरी तरहसें है. फिर पच्चख्खाण भाष्यमें और प्रवचनसारोद्धार आदि बहुतसी जगे पच्चख्खाणके अधिकार है, वहां चोथ भक्तादि पच्चख्खाण करनेके कहे है. ये आदि शब्दसें उपवाससें अधिक पच्चख्खाण सिद्ध होते है. वास्ते अधिक पच्चख्खाण चोवीस भक्त तक करनेमें हरकत नहीं है, और जो हरकत होवे तो ये चिंतवन जूंठा हो जाता है. क्यौं कि बन सके वहां रुक जानेका कहा है और वहां तक ही चिंतवन करनेका कहा है. पीछे काउस्सग्ग पूर्ण करकें पच्चख्खाण करनेका है; वास्ते बन सकै उतनाही पच्चख्खाण करना वही रीति अच्छी है.

७६ प्रश्नः—पजुसणमें कल्पसूत्र ही वांचना ऐसी परंपरा प्रचलित है उसका क्या सबब है?

उत्तरः—कल्पसूत्रमे मुख्यत्वतासें साधुका आचार है, वो वर्ष वर्ष दिन पर सुननेमै आवै तो समस्त मुनि महाराजोंका उपयोग जागृत रहवे. फिर जबसें सभाकी अंदर बंचाया जाता है तबसें श्रावक प्रमुखको प्रभुके अद्भुत चरित्र यानी कठिन तपश्चर्या, कठिन आचार, कठिन दुःख ग्रसित होने परभी अपने उपशांतपणेमै रहे हुवे, कठिन दुःख देनेवाले परभी समताभाव—किंचित्भी द्वेष नहीं, अतिशय ज्ञानशक्ति ऐसी दशा श्रवण करनेसें प्रभुपर आस्तिकता वृद्धि होवे; क्यौं कि पुरुषको देव मानै उनके आश्चर्यकारक चारित्र सुननेसें अवश्य रागकी वृद्धि होवे और भगवान् गणधर मुनिमहाराजादिक ऊपर राग बढे और आज्ञा आराधे वही सम्यक्त्व निर्मल होनेका सबब है. ऐसे सबबसें उपकारी पुरुषोने हम्मेश कल्पसूत्र वांचनेका रीवाज रख्खा मालूम होता है.

७७ प्रश्न'—अजनशलाका कौन कर शके ?

उत्तरः—प्रभुकी अजनशलाका आचार्य महाराज करें- अैसी षोडशजीमें हरिभद्रसूरीजीने कहा है और दूसरे भी प्रतिष्ठाकल्पोंमें मुख्यपणेसें वैसाही कहा है. फिर कुलप्रभसूरीजीके शिष्य नरेश्वरसूरीजीने समाचारी रची है उसमें आचार्य करै सो सूरिमत्रसें करे और आचार्यके अभावमे उपाध्यायादिक वर्द्धमान विद्यासें करें अैसी रीति है एक प्रतिष्ठा कल्पकी पुरानी प्रत मैने देखीथी उसमे श्रावक करे अैसाभी कहा है, और वो मत्रभी अलग बताया है अब यहांपर कोइ शका करेगा कि–' हीरविजयसूरिजीने हीर-प्रश्नमे श्रावक प्रतिष्ठित प्रतिमाजीकों अपूजनीय कही है उसका क्या सबब ?' इसके समाधानमें यही है कि अैसी प्रतिष्ठित हुइ प्रतिमाजी मुनिके वासक्षेपसें पूजनीय होती है. उस्सें जाना जाता है कि जिस प्रतिष्ठा कल्पमे श्रावकका मत्र बतलाया है उसका यही सबब होगा कि आचार्य, उपाध्याय जीका योग न बने अैसा होवे और प्रभुभक्ति करनेकी जरुरत है तो खुद श्रावक प्रतिष्ठा कर लेवें और जब आचार्यजी वगैर'का योग मिल जावे तव उन्होंकी पाससें वासक्षेप करा लेवे. इस तरह वो वार्त्ता वजूद भरी मालूम होती है कोइ कोइ कहते है कि आचार्यजी वासक्षेप करैही नहीं, श्रावकही करै, मगर ये अयोग्य वार्त्ता है, सबब कि त्रेसठ शलाक पुरुषके चरित्रमें कपिल केवलीजीनें प्रतिष्ठा की है उसके पीछेभी बहुतसें आचार्योंने की है ये वार्त्ता विश्वविदित है; वास्ते मुख्य वृत्तिसें तो छत्तीस गुण युक्त विराजित आचार्य महाराजही योग्य है

७८ प्रश्नः—इस कालमें धर्मसाधन करनेवालोंमें कितनेक दु खी मालूम होते हैं और अधर्मिजन सुखी दृष्टिगोचर होते है उसका सबब क्या ?

उत्तर —अधर्मि जीव हैं उनकों पिछले जन्मकी प्राय. अधर्मकी सज्ञा चली आती है उस्सें अधर्मकी बुद्धि होती है, पिछले जन्ममे अधर्म सेवन किया है, वो कुछ मनुष्यमेंसें बहुत करके मनुष्य नहीं होवे. अधर्मि प्राय' नरक तिर्यचमें जावे, तब उन भवके पाप नरक तिर्यचमें भुक्तकर मनुष्य होवे तब उसकों कितनेक दु.ख कमती होते है, लेकिन वो सुख पानेसें फिरकें

पापकर्म करता है उस्सें नरक तिर्यंचकी दुर्गति पावै. वहां दुःख भुक्ते अैसें जीवोंको मनुष्य भवमै सुख है, वेभी आगत कालमै दुःखके हेतु है; वास्ते अधर्मिकों सुखी देखकर मनमै सुख शोचनेकी जरुरत नहीं हैं और धर्मिष्ट जीव तौ मनुष्य किंवा देवगतिमैसें आता है, वहां धर्म तो किया हुवा है; मगर कितनेक हिंसादिक पाप किये होवैं वे यहां भुक्तता है उस्सें दुःखी मालूम होता है; लेकिन वो जीवकों धर्मके परिणाम है उससें वो समभावसें भुक्तता है उसी सववसें वो निर्जरा करकें अति विशुद्ध होकर मुक्ति वा सद्गति पाता है; वास्तें गुणीकों देखनेमै दुःख है सो सुखका हेतु है और निर्गुणिका सुख है सो उसकों दुःखका हेतु है. अैसा जनकर धर्ममै प्रवर्त्तना तथा दुःख आनेसें समभाव रखना वही आत्माको हितकारी है.

७९ प्रश्नः—श्रावक आराधक होवै तौ कितने जन्ममै सिद्धि प्राप्त करै ?

उत्तरः—आयुरपच्चखाण पयन्नामै कहा है कि संथारा कर सव वस्तु वोसीराके सव जीवके साथ खमतखामणे करकें आराधना किये वाद काल करै तौ उत्कृष्टे सात भव होवै. इस्से अधिक भव नहीं होवै; वास्ते अवश्य आराधक होनेकी भावना हम्मेशां करना और आराधना करनेका अंत वक्तमै उद्यम करना.

८० प्रश्नः—भगवंतजी विचरै तव मार्गमै क्या क्या वस्तुयें साथ होती हैं ?

उत्तरः—उवाइजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ५९ मै नीचे लिखी हुइ वस्तुयें आकाशमै साथ चलती हैं:—

धर्मचक्र आगे चलता है, मस्तकपर तीन छत्र साथ चलते हैं, दोनु तर्फ चम्मर धरे हुएही रहते हैं, सिंहासन पादपीठ सहितं साथ चलता है, और धर्मध्वज आगे चलता है. ये वस्तुयें साथ चलती हैं. तथा चौतीस अतिशय और पेंतीस वाणीके गुणोंसें विराजमान होते हैं. पुनः देवभी साथ वहुत रहते हैं. इस तरहसें विचरते हैं.

८१ प्रश्नः—गर्भमै जीव उत्पन्न होता है वो किस प्रकार उत्पन्न होता है ? और बढता है सो किसतरह वढता है ?

उत्तर—इस बातका अधिकार तन्दुलविआली पयन्नेमें है, वो गुरुवातमेंही चला है स्त्रीकी नाभिके नीचे दो नाडीयें है उनकी आकृति नाडी सहित कमल फूलके सदृश होती है उसके नीचे स्त्रीकी योनि है जीव उत्पन्न होनेका स्थान अधोमुख कमलके आकार होता है नीचे आम्रकी मजरी जैसी मासकी मजरीयें है वे ऋतुकालके वख्त खिलनेसें तब रक्तश्राव होता है, उसका नाम ऋतु कहाता है. वो ऋतु आये बाद पुरुषके सयोगसें वीर्य श्रवता है वो वीर्य तथा स्त्रीका रुधिर ये दोनुका अधोमुख कमलमें सयोग मिलता है तब उसमे जीव उत्पन्न होता है वो जीव प्रथम समयमें वीर्य तथा रुधिरका आहार करता है तदनतर काल दरकाल व्यतीत होनेसें बढता है सात दिन तक चावलके जल समान होता है, बाद सात दिनमें पानीके बुदबुदेकी समान होता है तत्पश्चात् सात दिनके बाद मास पेशी वत् एक मासमे आम्रमज्जासादृश होता है दूसरे महिनेमे विशेष बढकर मजबूत पशी-ग्रथीवत् होता है. तीसरे महिने उस्सेंभी ज्यादे बढता है और माताकों दोहले-मनोरथ उत्पन्न कराता है पुन्यवत गर्भ होवे तो अच्छे धर्मके काम करने-करवानेकी तथा अच्छे पदार्थ खाने पीनेकी इच्छायें होती हैं और पापिष्ट गर्भ होता है तो अधर्म और अयोग्य वस्तुयें खाने पीनेकी इच्छायें उत्पन्न कराता है चौथे महिने गर्भ बढनेसें माताके अगोपागभी बढते है पाचवे महिने गर्भके पिंडमेसें पाच अकुर फटते है यानी दोनु हाथ, दो पाँव और एक मस्तक ये पाच वस्तुयें होती हैं. यह देखकर अज्ञानी जीव कहते है कि पाचवे महिने गर्भमे जीव सचरता है, लेकिन ऐसे अज्ञजनोंकों सोचना चाहियें कि पाच महिने तक जीव कहां रहा था ? जीव न था तो आकृति कैसें हुइ और किस सबबसें गर्भ बढता था ? वास्ते जीव तो अव्वलसेंही उत्पन्न होता है और उस पाछे उपर बतलाये मुजब बढता है छट्ठे महिने पित्त और रुधिर उपजता है. सातवे महिने सातसो नाडियें, पाचसो मांस स्थान और नौ बडी धमनी नाडीयें ये तैयार होते है आठवे महिनेमें सब अगोपांगकी पूर्णता बनती है यह अधिकार भगवान् श्री वीरस्वामीजीने कहा कि तुम्हे गुरुभक्त गौतमस्वा-

मीजीने पुंछा कि—" भगवान्! गर्भमें रहा जीव निहार करता है? या नहीं ? " भगवंतश्रीने कहा " नहीं. " तब फिर प्रश्न किया कि—"कवल आहार करता है ? " तवभी प्रभुश्रीने कहा " नहीं. " रोम आहार आदि करता है वो माताकी रसहरकी–रसवाहिनी नाडी कि जो नाभिके नीचे होती हे सो गर्भके बालककी नाभिके साथ लगी हुइ रहती है, उस द्वारा बालककों आहार मिलता है और सब शरीरमें फैलता है. माताके रुधिरका भाग उत्पत्तिके वक्त यदि ज्याद होवे तो पुत्री होती है और पिताके वीर्यका हिस्सा ज्यादे होता है तो पुत्र होता है; लेकिन रुधिर और वीर्य दोनु समान होवे तो नपुंसक पैदा होता है. बालकके शरीरमें मांस, लोही, मस्तककी अंदरका भेजा ये माताके रक्तसेंही होता है. इस लिये ये माताके अंग कहे हैं, और हड्डियें, हड्डिके अंदरकी मिंजी तथा रोम ये पिताके वीर्यसें उत्पन्न होते हैं; वास्ते ये पिताके अंग कहे हैं. इस मुजब उन ग्रंथमें बहुतसा स्वरूप दर्शाया है तथा योगशास्त्रमें हेमाचार्यजीने ओर भवभावना ग्रंथ कि जो मल्लधारी हेमचंद्र आचार्यका किया हुवा है उसमेंभी बहुत विस्तार पूर्वक विवेचन है सो वहांसें देख लेना.

८२ प्रश्नः—वासुदेव नरकमें जाता है उस्का सबब क्या ?

उत्तरः—वासुदेव पुद्गलिक सुखका नियाणा करता है, उससें संयम धर्मकी आराधना नहीं हो सकती है. कृष्णवासुदेवनें श्री नेमिनाथजीसें पूंछा कि—' मुजकों दीक्षा लेनेका दिल क्यों नहीं होता है ? ' तब भगवंतश्रीने फरमाया कि—' पिछले भवमें तुने नियाणा किया है वास्ते इस भवमें संयम उदय नहीं आयगा; मगर तुं नरकसें निकलकर तीर्थंकर हो मोक्षमें जायगा.' इस मुजब अंतगडदशांगजीकी लिखी हुइ प्रतके पत्र २२ मे अधिकार है. वासुदेवहिंडमेंभी पांच भव कहे हैं. तत्त्व केवली गम्य है.

८३ प्रश्नः—पिंडस्थ ध्यान किस प्रकार करना ?

उत्तरः—योग्यशास्त्रमें हेमाचार्यजीनें बहुत प्रकारसें बतलाया है उनमेंसें दो रीतें लिखता हुं. अरिहंतजीका ' अ ' नाभिके विषे सिद्ध महाराजकी ' सि ' मस्तकके विषे, आचार्यजीका ' आ ' मुखपर, उपाध्यायजीका ' उ ' हृद-

यमें और साधुजीका 'सा' कठमें स्थापन करना इस तरह पांचो हुर्फ स्थापन कर एकाग्रतासे उन्होंका ध्यान करना ये १०८ वक्त ध्यान करना. उससे एक चोथभक्तका फल मिलता है. दूसरी तरहसें पत्र १८८ मे चिंतन करनेका कहा है सो पिंडस्थ ध्यान है वो पिंडस्थ ध्यानकी पाच प्रकारसें धारणा कही हैं पृथिवी, अग्नि, वायु, वारुणी और तत्त्वभु ये पाच धारणा करनी यानी प्रथम जितना तीर्छालोक है वैसा क्षीरसमुद्र ध्यावें मतलब कि चोरों तर्फ जल है ऐसा ध्यावे और वो जलके बीच जम्बुद्वीप है उतना सुवर्णका सहस्र दलमय कमल चिंतवे, वो कमलके बीचमें सुवर्णमय मेरुपर्वत कणिकारूप चिंतवै, वो कणिकाके ऊपर श्वेत सिंहासनपर अष्टकर्म छेदन करनेकों उद्यमवत ऐसा मैं वहा बेठाहु ऐसा चिंतवे इस प्रकार एकाग्रतासें चितवन करै सो पृथिवी धारणा कही जाती है पीछे अपना नाभि कमलमें सोला पाखडीका कमल चिंतवे ये सोला पांखडीके कमलकी मध्य कर्णिकाके मध्यभागमें महामत्र सिद्धचक्र बीज 'अर्हं' एसा मत्र स्मरण करें बाद कमलकी सोला पाखडीयोंपें अ, आ, इ, ई, उ, ऊ ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः एक एक एकस्व स्थापन कर उन्होंका स्मरण करें पीछे 'अर्हं' ऐसा महामत्र बिंदुकला सहित रेफ एसा अक्षर है, वो रेफ अक्षरमेंसें थोडा थोडा बहार निकलता हुवा धुम्रशिखा-धुम्र चिंतवे ओर उसीका स्मरण करे पीछे धुम्र निकलती हुइ अग्निकी चिनगीका समूह निकलता हुवा ध्यावे. पीछे अग्निकी ज्वाला दिशि विदिशि आकाश व्यापित महाज्वाला स्मर लेवै और ज्वालाके समूहसें अष्टकर्मरूप अधोमुख कमल कि जो अष्ट पाखडीयोंका है उसकी हरएक पापडीपै एक एक कर्म स्थापन करके उनके रहनेका स्थान हृदयकमल उसकों जला देवे यानी इस मत्रके ध्यानसें ध्यानरूप सबल अग्नि प्राप्त हुइ है वै अग्नि दहन करती है उससें ये कर्म जलते हैं ऐसा ध्यावै तदनतर देहसें बहार दूर प्रकाशवत अग्निनिकोण है उस्का ध्यावै वो त्रिकोणके तीनू कोनेमें एक एक स्वस्तिक स्मरण कर वो त्रिकोण अग्निरेफ स्मरण करके पीछे अतशरीरमें महामत्रसें उत्पन्न हुवा जो अग्नि वो अ-

गिकी ज्वाला जाज्वल्यमान है उस्में देह और अष्टदल कर्म, स्थापित किये गये कर्मको जलाकर खाक कर देवें, जिस्में आत्मा शांत होवे ऐसा ध्यावे, वो अग्निधारणा कहलाती है. अब वायुका स्मरण करे यानी वायु कैसा है ? तीन भुवन–स्वर्ग–मृत्यु–पाताल्को पूरित कर रहा है, पर्वतकों भी उन्मूलन करता है, समुद्रकोंभी क्षोभ करता है, मर्यादा मुक्त कराता है. ऐसा अति प्रचंड वायुसें करके अंगकी धारणासें देह तथा अष्ट कर्म रूप कमलको जलाकर खाक किया है, उस भस्मको ध्यानरूप वायुसें उडाये पीछे वायु स्मरण शांत कर देवे. ये वायु धारणा कहलाती है. बाद जल धारणाकों अमृत रूपिणी अति बहुल वरसंत वृष्टि करती हुइ मेघमाला परिपूर्ण आकाशमें स्मरण करे. वो कलाबिंदु सहित वरुणांकित मंडल वारुण बीज स्मरण करे. बाद वरुणबीजसें पैदा हुवे अमृतरूप जल प्रवाहसें आकाश भर देवे, अग्निधारणासें अग्निपूरसें देह तथा कर्म जल गये है उनकी भस्मको ध्यानरूप जलकी दृष्टिसें प्रक्षालन करना सो वारुणीसें स्मरण करे. ये वारुणी धारणा कहलाती है. अब पांचवी तत्त्व धारणा सो सप्त धातुसें रहित, निष्कलंक, निर्मल, चंद्रबिंब समान उज्वल ऐसा सर्वज्ञ सब वस्तुके ज्ञाता उन समान अपने आत्मापनको भावे बहुत तेज मय अज्ञानतिमिरसें रहित मणिमय सिंहासनपर बैठे हुवे देव दानव गांधर्व सिद्ध चारणादिकसें सेवित अनेक अतिशय करके शोभायमान सब कर्मोसें करके रहित, सहजसरूपी, परस्वरूपसें रहित, स्वभाव महिमा-निधान ऐसा आतमा अपने शरीरके बीच पुरुषाकारसें स्मरण करे, वो, तत्त्वभु धारणा कहलाती है. ये पिंडस्थ ध्यान योगीश्वर ध्याते है. उसमें अपने स्वरूपमे लीन होनेसें मुक्तिके सुखका अनुभव करते है. पुनः वही ध्यानके प्रभावसें योगीश्वरको दुष्ट विद्या, उच्चाटन, मारण, स्थंभन आदिसें पीडा नहीं होवै. शाकिनी, डाकिनी, लाकिनी, काकिनी, क्षुद्रयोगिनी, भूत, प्रेत, पिशाचादिक भी योगीश्वरोका असह्य तेज मालूम होनेसें तुरंत भग जाते है. मदोन्मत्त गजेंद्र, व्याघ्र, सिंह, शरभ, अष्टापद, दृष्टिविष सर्प कि जो बहुतही भयंकर होते हैं वे सभी योगीश्वरको उपद्रव नहीं कर सकते

है, इतनाही नहीं मगर देखनेही स्थमित हो, जाते है वा पलायन कर जाते है अैसा पिंडस्थ ध्यानका महिमा है और उस ध्यानसें अंतमै निज सुखकी प्राप्ति होती है.

८४ प्रश्न —पदस्थ ध्यान किस तरहसें करना ?

उत्तर'—योगशास्त्रके अष्टम प्रकाशके पत्र१९२ मैं उस ध्यानकी रीति बतलाइ है—यानी नाभि कंदमैं सोला पाखडीका कमल है वो दर पांखडार्पै आगे बत लाये गये सोला स्वर क्रमसें स्थापन कर चित्तकी एकाग्रतासें चिंतवन करै पीछे हृदय कमलमै एक चोवीस पाखडीका कमल चिंतवन करकें उसमे कर्णिका चिंतन कर और दर पाखडीपर 'क' से लगाकर 'भ' तकके चोवीस व्यंजन, स्थापन कर कर्णिकामें 'म' स्थापन करै और पीछे उन्का ध्यान धरै बाद मुखस्थान अष्टदल कमल चिंतन करकें दर पांखडीपर य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ये आठ व्यंजन स्थापन कर चिंतवन करै. इस तरह तीनू कमलके ध्यानमै एकाग्रता कर लेवै ये ध्यानमय रहनेसें सब शास्त्रके पारगामी होवै-त्रिकालज्ञानी होवे ये आदि बहुतसें फल बतलाये हैं. दूसरी तरह नवकार मंत्रका ध्यान करना सौ भी पदस्थ ध्यान कहा है उसके ध्यानसें भी खासी वगैर बडे १६ रोग नाश वचनसिद्धि प्रमुख होवै हलुवे कर्मोंकी गति पावें, और परमानंद सुख प्राप्त होवै पुन' प्रकारांतरसें कहा है कि अष्टदल उज्वल कमल चिंतवन करकें कर्णिकामैं मध्य महान् पवित्र मुक्तिसुखदाता आद्यपद सत्याक्षर मंत्र 'नमो अरिहंताण' चिंतवै पूर्व दिशा दलमै 'नमो सिद्धाण' चिंतवै, दक्षिण दलमै 'नमो आयरियाण' चिंतवै पश्चिम दलमै 'नमो उवझ्झायाण' चिंतन करै. उत्तर दलमै 'नमोलोअे सव्वसाहूण' तथा आग्नि कोण दलमै 'एसोपचनमुक्कारो' नैऋतकोणमें 'सव्वपावप्पणासणो' वायव्यकोण दलमैं 'मगलाणच सव्वेसिं' और इशानकोण दलमैं 'पढम हवइमगल' चिंतवन करै इस तरह नवपदका ध्यान करना और मन वचन कायाकी एकाग्रता करनी इससे महान फलकी प्राप्ति होवै पुन' प्रकारांतरसें अष्टदल उज्वल कमल मुख मध्य स्थापै और दर दलपर अ, क, च,

ट, न, प, य, श, ये क्रमसें अक्षर स्थापन कर स्मरण करैं. पीछे ॐ नमो 'अरिहंताणं' ये अष्टाक्षर अनुक्रमसें स्मरण कर लेवें. बाद ये कमलकी केसरामै सोला स्वर कि जो आगे बताये है उन्होंका स्मरण करैं. पीछे सुखसें संचरता, कांतिमंडलमें रहता निष्कलंक उज्वल चंद्रबिंब समान मायाबीज ह्रीँ कार मंत्रका स्मरण करैं. तदनंतर उन पांखडीयों के बीच फिरता, आकाशमंडळमें संचरता, मनोमल विनासता हुवा, अमृत श्रवता हुवा तालुमार्गसें जानेवाला, भ्रममध्य हुल्लासित हुवा, जाज्वल्यमान् त्रिलोक्य विभुत्व " रक्षक अचिंत्य महिमाका देनेहारा अद्भुत आश्चर्यकारी चंद्र सूर्यके तेजको जीतनेहारा योतिमय साक्षात् तेजरूप अति पवित्र निःपाप–ये मंत्र एक चित्तसें–मन वचन कायाकी एकाग्रतासें ध्यावै तो जो पाप कर्म किये होवै वे सभीका नाश हो जावै और श्रुतज्ञान सकल वचनमय शब्द ब्रह्म प्रकट होवै. इस तरहसें निश्चल मन कर छ महीने तक अभ्यास करनेसें मुंहमेंसें धुम्रशिखा निकलती हुइ मालूम होवै और उस्सें भी ज्यादा एक वर्षतक अभ्यास करनेसें मुंहमैसें अग्नि ज्वाला निकलती हुइ नजर आवै. और उनसेंभी ज्यादे अभ्यास शुरु रखवे तो सर्वज्ञका मुखकमल दृष्टिगोचर होवैं. और उनसें भी आगे अभ्यास करै तो अष्टकर्म रहित कल्याण महात्म्य आनंदरुप समग्र अतिशय संयुक्त प्रभामंडल नजर आवे साक्षात् प्रकट सर्वज्ञ वीतराग देवको देखे. पश्चात् निश्चय मन होवै, मनका व्यौपार जीतकर परमेश्वरके स्वरुपकी अंदर एकाग्र मन करकें संसाररुप भयंकर वनकों छोड कर सिद्धिमंदिर-मुक्तिमंदिरमें पहुंच जावै. प्रकारांतरसें योगीश्वर मंत्राधिराज हकारकों उपर और नीचे रेफ संयुक्त कलाबिंदु सहित अनाहत नाद संयुक्त अर्हं कनक सुवर्णका कमलमै रहा निष्कलंक चंद्रबिंब समान निर्मल, अति उज्वल, चपल, आकाशमै फिरता, दशोदिशाओंमै व्यापित, मुखकमलमै प्रवेश करता हुवा, परस्पर भटकता, नेत्रमध्ये स्फुरता, ललाट मध्य रहता, तालु मार्गसें निकलता, अति बहुल शरीरकों आनंद परमनिर्भर सुख उत्पन्न करता, अमृतरस श्रवता हुवा, अति उज्वलपणेसें चंद्रमंडलके साथ स्पर्द्धा करता हुवा और ज्योति शरीरमै स्फुरकर आका-

शमंडलमें सचरता शिर श्री मोक्षलक्ष्मीपु एक भावना श्रीके सब अवयव सं-
पूर्ण कुभक करके यानी श्वासोश्वास स्थिर कर एकाग्रतासें इस मुजब ध्या
न करे, उस्सें साक्षात् तत्वकों प्राप्त करे दूसरेभी बहुत प्रकारसें ध्यान
आठवे प्रकाशमे है. वो देखकर ध्यानमें लेना

८५ प्रश्न'—रूपस्थ ध्यान किस तरहसें करना ?

उत्तर'—योगशास्त्रमें नवम प्रकाशके अदर यह ध्यानका ब्यौरा है, उनमेंसे किंचित् मात्र यहा लिख बतलाता हु अव्वलमे भगवत समोवसरणमें विराजमान है उन्होंका ध्यान धरना. वे कैसे है ? मोक्षलक्ष्मी जिनके सन्मुख है, अष्ट-कर्मके विनाश करनेहारे, अन्य जीवोंकों अभयदानके देनेवारे, निष्कलक, अति उज्वल चद्रबिंब समान, तीन छत्र मस्तकपर धारण किये हुवे हैं, उल्लासवत चकचकित भामडलसें करके सूर्यका तेजभी न्यून मालूम होता है, देवदुदुभी, भैरी, मृदग, आदि अनेक वाजीत्रके शब्दसें कर किन्नर गाध र्वादिकके गीत देवागना-अप्सरा के नृत्य, और देवेंद्रादिककी सेवा इत्यादि ऋद्धिसें सयुक्त, अशोकवृक्ष युक्त शोभित सिंहासनपर विराजित हुवे हैं. और चामर डुल रहे हैं, देवदानव दैत्य गांधर्वादि नमन कर रहे हैं, मदार पारिजातक हरीचदन कल्पवृक्षादि दिव्यवृक्षोंके पुष्पोंसें सुगाधि त हुआ समवसरण, उस समवसरणके कोटमें मृग, बाघ, सिंह, सांप, हाथी, घोडे आदि तिर्यंच शातपणेसें स्थित हैं, एक दूसरेका वैरभाव प्रभुके अतिशय प्रतापसें शांत हो गया है ऐसे अनेक अतिशय सयुक्त वीतराग भगवानकों केवली महाराजभी वदना कर रहे हैं—ऐसे सर्व जीवकों पूजनीय परमेष्ठी भगवत अरिहत वीतरागका स्वरुप देखकर-मनमें रमण कर ध्यान करे और वे प्रभुके गुणोंमें एकाग्रता करे उसकों रूपस्थ ध्यान कहा जाता है दूसरी तरहभी किया जाता है सो भी कहता हु—राग, द्वेष, मद, मत्सर, क्रोध, मान, माया, लोभ, अहकारादिक महा मोहके विकार-सें अकलकित है, शात है, काति तैजसें करके चकचकित है, मनहर महा सौभाग्यसें करक संयुक्त है, समस्त १०८ लक्षणास युक्त, अन्यदर्शनसें अगम्य योगमुद्रा महात्म्य है, आखोंकों अमंद रहुन आश्चर्यकारी आनद

परम आनंदका हेतु है. इंद्रियोंको जीतकर मन काबुमै रख निर्मल चित्तसें और द्रष्टिका मेषोन्मेषसें दूर रखकर श्री वीतरागजीका प्रतिमाका रूप ध्यावै उसको रूपस्थ ध्यान कहते हैं.

ऐसे अतिशय अभ्याससें योगीश्वर तन्मयपणा वीतराग प्रतिमापणा पावै. अपना सर्वज्ञपणा देख सकै. निश्चयतासें जो भगवंत सर्वज्ञ वीतराग सो मैंही हुं असें एक मनसें तन्मयता वीतरागपणा पाया तुं सर्ववेदी सर्वज्ञ मानकर ये वीतरागका ध्यान करनेसें वीतराग होकर मुक्ति प्राप्त करेगा. और रागी देवका ध्यान करनेसें क्षोभण उच्चाटनादिक कर्मका करनेवाला होवेगा. अज्ञानतासें यानी वस्तु धर्मको यथार्थ पढे विना जो ध्यान करैगा सो असत ध्यान गिना जावेगा और प्रयास निष्फळ होवैगा वास्ते यथार्थ वस्तुके कथन करनेवाले वीतराग देव उन्होंकी आज्ञा मुजब ध्यान करना चाहियें. इत्यादि वहुतसें ध्यानके स्वरूप योगशास्त्रमै हे वो देखकर ध्यानमै लैंना.

८१ प्रश्नः—रूपातीत ध्यान किस तरह होता है ?

उत्तरः—योग्य शास्त्रके पत्र २०४ मै इस ध्यानके वारे मै कहा है कि—अमूर्ति चिदानंद स्वरूप नित्य अव्यय निरंजन निराकार शुद्ध परमात्माका ध्यान करना सोही रूपातीत ध्यान कहा जाता है. इस मुजब योगीश्वर निराकार स्वरूप अवलंबन करता हुवा—निराकार ध्यान करता हुवा ग्राह ग्राहक वर्जित निराकारपणा पावै. (जो कुछ पुद्गलिक इच्छासें जप ध्यान किया जावै उसें ग्राह ग्राहक कहा जाता है; और मनको तावे करकें जप ध्यान द्वारा किसी देवका आराधन किया जावै उसें ग्राहक कहते हैं.) उससें रहित जो योगीश्वर—पर स्वरूपसें रहित और निराकार परमात्म स्वरूप चिंतवन करता हुवा ऐक्य निराकारपणा पावै. मनको और परमात्माको जो समरस करै वैसें भावको एकीकरण कहते हैं, वही आत्मा परमात्माके अंदर एक करकें लय करादेता है, इस प्रकारसें योगीश्वर इंद्रियोंको जीत मन वश करकें तत्त्व अव्यय स्वरूप निरंजन निराकार चिंतवता हुवा निरंजनपणा पावै. यह ध्यान अनुभव ज्ञानके जोरसें होता है. ज्यौं ज्यौं आत्मा स्व स्वरूपमै लीन होता जावै त्यौं त्यौं विशेष विशुद्धिसें अपूर्वज्ञान प्राप्त होनेसें विशेष अनुभव होवै. ये ध्यान कृत्रिम नहीं है इससें इसका विस्तार

अल्पतासे बतलाया गया है

८७ प्रश्न —जैनमें समाधी चढानेका मार्ग है या नहीं ?

उत्तर—योगशास्त्रमें बहुत विस्तारसें समाधि चढानेका लेख है और कपुरचंदजीके स्वरोदयमेंभी समाधी संबंधी बहुत रचनायें कही गई है तथा दूसरे ग्रंथोंमेंभी बहुतसी जगहपर इसका बयान है आजकलभी इसके अभ्यासी हैं.

८८ प्रश्न—कितनेक जैनधर्मि नामधारी तेरापंथी श्वेतांबरी कहते हैं कि-भगवतीजीमें पत्र ६१३ की अंदर असंजमीको दान देनेसें केवल पाप होनेका कहा है, वास्ते दान न देना वो दुरूस्त है या नहीं ?

उत्तर—जैनमार्गकी शैली स्याद्वाद है, उस शैलीके ज्ञानकी ठीक ठीक माहेती मिलाये विना जो सरस एकांतमार्ग ग्रहण करता है उसके हाथमें सूत्रका परमार्थ नहीं आता है सूत्रमें जितने वचन हैं वे अपेक्षित हैं, वो अपेक्षा गुरुद्वारा ज्ञान लेनेसें होती है; लेकिन गुरुके सिवा अपनी स्वच्छंदतासें अर्थ करें उसके हाथमें परमारर्थ किस प्रकार आ सके ? सूत्रके अर्थ निर्युक्तिकारने-भाष्यकारनें-टीकाकारनें कहे है, उसपरसें या वे अर्थ गुरु मुखसें धारण करे तब प्रभुके अभिप्रायका ज्ञान होवे मगर पुर्वधर पुरुष अर्थ कर गये हैं उनसें विपरीत-दूसराही अर्थ स्वयंपंडितशेखर बनकें करलेवें ओर वैसे मंडुकबुद्धिवाले (अल्पमति) पंथ चलावें और उस कुपथको प्रमाण कर लेवें तब तो उनकी अज्ञानताके आगे लाजवाबी हैं—निरूपाय है. प्रभुजीने वर्षीदान दीये हैं वे दानके लेनेवाले असंयमी थे, यदि दानमार्गका निषेधही होता तो प्रभुजी क्यों दान देते ? प्रभुजी सम्यक् दृष्टिवंत और तीन ज्ञानके ज्ञाताथे उन्होंने जो जानबूझकर-गुण समझकर-कार्य किया है वो कार्य (दानधर्म) सबी गृहस्थोंको करनाही मुनासिब हैं ज्ञाताजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ८५४ में मल्लिनाथजीने दान दिया था उसका अधिकार है और उन्हींके पिता कुंभराजानेभी चारों प्रकारके आहारका दान दिया है उसकाभी वर्णन पत्र ८५५ में है जो दान देनेसें केवल नुकशानही होता तो मल्लीनाथजीही निषेध करते; मगर निषेध नहीं किया है पुन कृष्ण वासुदेवनें थावचाकुमार दीक्षा

लेनेकों तैयार हुवे तब सारी द्वारिकावासी प्रजामें उद्घोषणा कराइ-थाली पिटवाइथी कि-" जो कोइ जन दीक्षा लेवेंगा उसके पिछले कुटुंबकी मैं प्रतिपालना करूंगा. " असें आशयका अधिकार ज्ञाताजीके पत्र ५४६ मै है. उस्सें विचार करो कि पिछले लोक संयमी नहीं थे मगर असंयमी ही थे, तौभी उन्होंके संरक्षणमें लाभ समझ कर वो काम किया था; वास्ते वो काम दूसरोंकोंभी हितकारक है. फिर तीर्थंकर महाराजभी जहां पारणा करते है. वहांभी साढे बारह करोड सोनैयों-अशरफियोंकी दृष्टि होती है-जैसे कि पूरणशेठके वहां श्री वीरस्वामिने पारणा किया तो वो कुछ समकिति न था तौभी वहां सोनैयोंकी दृष्टि हुइथी और वो लेनेहारा असंयमी ही था. और इसी तरह मुनियोंकाभी महिमा करनेके लिये सम्यक्दृष्टि देवेता असीही भक्ति करते हैं; मगर ये सम्यक्दृष्टिके किये हुवे असे कृत्य प्रभुने निषेधे नहीं, तो उस्से सबुत होता है कि ये कृत्य गृहस्थोंके आचरने योग्यही है. पुनः रायपसेणी सूत्रमै परदेशी राजाकों केशि गणधर महाराजाने धर्म पाये पीछे कहा है कि-'हे परदेशी! तुं रमणिक होकर पीछे अरमाणिक मत होना.' उस वक्त परदेशी राजाने कहा कि-'मैं मेरी ऋद्धिके चार हिस्से करूंगा उनमेंसें एक हिस्सा दान-शालामै दउंगा.' यह अधिकार रायपसेणी सूत्रकी छपी हुइ प्रतके मूल पाठ पत्र २८० मै है. इस्सेंभी खुल्ला मालूम होता है कि दान देना ये सुदेकी बात है. हां, दानका निषेध है वो मात्र कुपात्रकों सुपात्र बुद्धिसें देना उसकाही है. बाकी अनुकंपासें दुःखी जानकर देना तथा शासन प्रभावनासें देना उनका किसी ठोर निषेध-मना नहीं है. आगमकी परुपणा गुरु मुखसें धारण करकें करनेसेंही बरोबर समझा जावै. पुनः आत्माका दानगुण तो स्वाभाविक है; मगर जहां तक दानांतराय होवै वहां तक वस्तु बराबर नही समझी जाती है-दान नहीं देना असाही दिलमैं विचार आवै. पुनः जहां जहां तीर्थंकर महाराज वा आचार्य महाराज समोसरे हैं असी बधाइ देनेवालोंकों बहुत प्रकारसें प्रीतिदान दीए है उनमैंसें एक अधिकार लिखता हुंः-चित्रसारथीनें केशि महाराज समोसरे

तब बधाइ ल्यानेवाले वनपालक (जगल खातेका अमलदार) कों दान दिया था ये अधिकार रायपसेणीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र २३२ में है वहासें दरकार हो तो देख लिजीयें. यदि दानमें लाभ न होता तो सम्यक्दृष्टि क्यों दान देवें? उसमें प्रभु भक्तिके भावका उत्साह है वास्ते भारी लाभ है उस्सें दान दीये है 'ये दानमें धर्म नहीं'–ऐसा कथन करै उसकों शोचना चाहियें कि–भगवतकों वदन करनेके लिये जानेके वख्त काममें लिये जाता रथका नाम मूल पाठमें बहुतसी जगेपर 'धर्म-रथ' ऐसा कहा गया है और ज्ञाताजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र १४९ में वही वार्त्ता है वास्ते हरएक वस्तु सब शास्त्रोंका विचार करकें ग्रहण करनी चाहियें दानके बारेमें ऐसा कहते है कि–' असयमीकों दान देवै उस्सें वो पुष्ट हावै और आरभ करै उसकी हिंसा लगै वास्ते नहीं देना.' ऐसा कहनेवालेकों समझना चाहियें कि–तेरापथी अपने गुरुकों दान देते हैं, और चलकर जायेंगे उसमें पावके नीचे कितनेक त्रसजीव तथा पेटमें आहारके योगसें कृमि आदि पैदा होंगे और निहार–दस्त करेंगे उस वक्त वे नाश होंगें तो ये सब हिंसा लगेगी तथा वडीनीत करेंगे उस विष्टामें जीवोत्पत्ति होगी और फिर नाश हो जायगी उसकीभी हिंसा लगेगी, वास्ते तुमारे गुरुओंकोंभी आहार नहीं देना चाहियें लेकिन जरा गौरसें शोचो कि शुद्ध सयमी मुनिमहाराज अपना आत्मसाधन करते है वही अपने देखनेका है पर दूसरा विचार लेनेकी कुछ जरुरत नहीं मात्र आहार पाणीके आधारसें सुखपूर्वक धर्मसाधन होगा उसी तरह दु खी जीवकों दान देनेस आहार सबधीके सकल्प विकल्परूप उस्का दु ख दूर होगा और उसको सतोष होगा वही लाभ शोध कर दान देनेका है अपन कुछ दुष्ट काम करनेके वास्ते आहार नहीं देते है, उस्सें वो दूषण अपनकों नहीं लगता है फिर तेरापथी लोगाकों धर्मोपदेश करते हैं और वो उपदेश सुनकर अज्ञानपणेसें तपस्या करता है सो तपस्या करनेसें देवलोकमें वा मनुष्यमें उत्पन्न हो पुद्गलिक सुख भुक्तेगा वो पापभी धर्मोपदेशककोंही लगना चाहियें, वो कभी ऐसा कहै कि

उन्हको तो धर्मापदेश देना है उस्सें वो पाप नहीं लगता है, तो हम कहते है कि दान देनेवालेकोंभी स्हामनेवालेकी भूखका दुःख दूर करना है—दूसरा विचार नहीं. जीव छुडानेवालेकों जीवकों मरता हुवा बचानेकी चाहन है— अभयदान करनेका भाव है, दूसरा भाव नहीं है; वास्ते करुणामात्रका लाभ है. वो पीछेसें क्या करेगा? उसका दोष अभयदान देनेवालेकों नहीं लगता है. हरएकवस्तुमे भाव बलवान् है.गुरुवंदन करनेहै. वंदन करनेकों जाते है उनमेंभी मार्गमें—उठने बैठनेमे हिंसा होभी जावे; मगर वंदनके लाभार्थ करते हैं उस लिये वो शोचना युक्त नहीं. तैसेही दान देनेमें भाव बलवान है. पुनः भगवंतजीनें सब दानोंमें अभयदान बलवंत कहा है. ये अधिकार सुयगडांगजीकी प्रतके पत्र २१८ मे मूल पाठकी अंदर है और उसका अर्थ टीकाकारने पत्र ३२० में विस्तारसें किया है, उसमे वसंतपुरके राजाकी कथाभी है, उनका सार यही है कि—राजाकी रानीने चोरकों गर्दन मारनेसें देहांत शिक्षासें छुडाया है और चोर बच गया है. इसपरसें शोचो कि जीव बच जाय और पीछे वो जीव हिंसा करै उनका पाप यदि आता होता तो अभयदानकी भगवंत प्रशंसाही नहीं करते. जीवकों कोइ मारता होवै तो बचाना. और कोइ भूखसें मरता हो तो उस्कों खाना खिलाकर तृप्त करना वो अभयदान है. इस लिये शोचना चाहियें; सबब कि स्याद्वाद मार्ग ध्यानमें लैना. सूयगडांगजीके दूसरे श्रुत स्कंध---पंचम अध्यायमें छपी हुइ प्रतके पत्र ८७२ वे आलावेमें कहा है कि—' कोइ खुदग अैसा कहे कि एकेंद्रियसें लगाकर पंचेंद्रिय तकके जीव-का विनास होनेका समान पाप है, या एकांत समान पाप नहीं है. अैसा कहवै तो अनाचार. (ये दोनू बोल एकांतसें बोलनेमें अनाचार कहा है). अब इसके शब्दका कुच्छ दूसरा अर्थ निकलनेका नहीं; मगर प्रभुजीने गणधर महाराजजीका परमार्थ दर्शाया है वही पाठ परंपरासें चला आया है उसी आधारसें पूर्व पुरुषोंनेभी अर्थ भरे हुवे होवै उससें अर्थ पाते हैं.— इसका खुलासा टीकाकारने किया है. वहां देखनेसें मालूम हो जायगा. फिर पत्र ८७३ की अंदर आलावा है उसमें कहा है किः—

आधाकर्मा आहार करनेसें कर्मसें करके लिप्त हो जाय अैसा एकातमें कहना, अगर तो आधाकर्मी आहार करनेसें अलिप्त रहता हैं अैसाभी न कहना चाहियें-ये बातें एकातसें बोले उससें अनाचार कहा जाता है इसपर गोचेनानि जो भगवतीजीके पाठके आधारसें दानका निषेध है, मगर टीकाकारने पाठके अर्थमें साफ साफ लिखा है ओर दूसरे स्थानकी गाथा रखी है कि-अनुकपा दान जिनेश्वरजीने नहि निषेध किया है-अैसा स्पष्टार्थ है उसी मुजब पूर्व पुरुषके अभिप्रायसें तो दानका निषेध किसी जगहपर नहीं है सूयगडागजीके शिरोलिखित पत्रका अर्थभी टीकाकारके खुलासेसें आ जायगा वैसाही अर्थ अपनकोंभी ग्रहण करना चाहियें जो अर्थ, सूयगडागजीके पाठका मुँहसेंही प्रमाण सिवा कहा करै तो वो सच्चा क्यों माना जाय ? आधार क्या है ? और जिस जीवका मिथ्यात्व दूर न हुवा हो वो कल्पित अर्थ मान लेगा; मगर जिस जीवका थोडा थोडा क्षयाउपशम हुवा होगा वो तो महा पुरुषके किये हुवे अर्थ मुजबही प्रमाण करेगा वास्ते आत्मार्थियों रीतसर कहना और वो न समझ सके तो फठशोप न करना वही श्रेष्ठ है पुन वैं लोग आचारागजीमें हिसा निषेधका पाठ बताते हैं, लेकिन वो पाठ सब मुनिमहाराज सर्वथा हिसा त्यागीका है. आचारागजीमेंभी पत्र २०४ में (छपी हुइ प्रतमें) जो आश्रवके सबब वही सबरके होते हैं, और जो सबरके सबब हैं वही आश्रवके होते हैं इसमें परिणाम विशेपकी मुख्यता दर्शाइ है वैसें हरकिसीमें परिणाम विशेप विचार लेना फिर ठाणागजीके पत्र ५६१ की अदर (छपी हुइ में) दशम स्थानागमें दश प्रकारके दान बतलाये हैं, उसमें अनुकपादान अभयदान कहा है, और अधर्मदान अलग बतलाया है

फिर केवल अधर्ममें तुमारे विचार मुजब अनुकपादान होता तो अधर्मदानमेंही उसका समास होजाता, अलग बतलानेकी फिर जरूरतही क्याथी ? परतु अनुकपादान और अभयदान अधर्ममें न होनेसें अलग दर्शाया गया है वास्ते जिस मुजब भगवत आप खुद दान देते हैं उसी मुजब श्रावकके अभगद्वार कहे हैं कि श्रावक शक्ति मुवाफिक दान देवै सम्यक्त्वदृष्टिके सडसठ बोल कहे हैं-उसीके भीतर चोथा अनुकपा लक्षण कहा गया है, द्रव्यसें दुःखीयों दान देकर सुखी करै, और भावसें धर्म प्राप्त करवा के धर्मसें सुखी करै ये लक्षण होनेपरभी क्यों दान नहीं देवै ? अवश्य समकित दृष्टिवाला दान देवेही देवै सुपात्रकों कुपात्र

वुद्धिसें देना वो महान् दोपरूप है और वैसेही कुपात्रकों सुपात्र बुद्धिसें देना वोभी महान् दोप है. जिस सववके लिये देना वो भाव विचार कर देना उसमें दोप नहीं है. उपाशकदशांगजीमें सगदाल पुत्रने गोशालेकों दीया हैं वहां कहा है–तेरे तप संयमसें करके नहीं देता हुं; लेकिन वीरप्रभुके गुणग्राम करता है वास्ते देता हुं. अव गोशाला मिथ्याद्रष्टी था तोभी प्रभुगुणग्रामका पक्षकारक समझकर दीआ सो लाभही है. फिर वंदित्तु सूत्रकी गाथा २३ में अंतपदके भीतर कहा है कि 'असइपोसं च वज्जां' पापीकों पोपन करनेमें अतिचार है; मगर इसका अर्थ किया है कि व्यापारके निमित्त अैसे जीवोंका पोषन करै–वेचै–पैसा कमा लेवै उस वावतका अतिचार है. अनुकंपासें करकें पोपन करनेका अतिचार नहीं है. हेमाचार्यजीनेभी इसी मुजव अर्थ किया है. इन सव वोताका सारांश इतनाही है कि वहुतसें ग्रंथोंमें ये वात है; वास्ते अैसे मनुष्यकी वार्त्ता कमशक्तिवालोंकों नहीं सुनी चाहिये. महान् आचार्य हो गये हैं उनके वचनोपर लक्ष देना जिस्सें आत्माका हित होवै. औंर शक्त्यानुसार दानभी देना यही उत्तम मार्ग है.

८९ प्रश्नः—अैसे जैनमें वहुतसे मत हैं, क्या उन लोंगोंकों आत्माका डर नहीं होगा?

उत्तरः—कितनेक जीव डर रखनेवाले होवै; मगर पूर्वकर्मकी प्रेरणासें उलटा अर्थही सच्चा मालूम पडे इस्से विचारे क्या करैं? फिर कितनेक लोगोंकी वुद्धिही मंद होती है उस्सें जो मतमें पडे हैं उसी मुजव चलते है–या वातें करते हैं–ये सव कर्मकी गति है. अपनभी जैनी नाम कहेलाकर जैनमार्ग क्या है उसकाभी चाहिये उतना ज्ञान नहीं मिला लेते हैं. फिर संसारकों असार जानते हैं; तदापि उसका त्याग नहीं करते हैं, वोभी अपने कर्मकीही गति है. और तमाम जीव कर्मकेही आधीन हैं. वास्ते जीवके उपर द्वेष न रखकर केवल अपने आत्माकी परिणती सुधर जाय वैसा उद्यम करना. ज्यौं वन सके त्यौं संसारकी उपाधी कम करनी. अपनी आजीविका थोडे विकल्पसें चलती होवै; तथापि जियादे धन मिलालेनेकी–खर्च करनेकी लालचके लिये उपाधी करनी वो लायक नहीं है. उपाधी ज्यौं वने त्यौं छोडकर रातदिन ज्ञानाभ्यास करना और उस ज्ञानसें आत्माका स्वरूप देखना. दो घडी एकांतमें बैठकर आत्माका

विचार करना यही श्रेयकर्त्ता है आत्माकी परिणती बिगड बैठे ऐसे वादविवादमें व्यर्थ समय न व्यतीत करना, यही हमारी शिक्षा है

९० प्रश्न.—आत्म प्रदेश हिलते रहनेका अधिकार आचारांगजीमें छपी हुइ टीकाके पत्र १०३ में है उसका सबब क्या है?

उत्तर.—आचारांगजीमें कर्णोदकवत् उद्वर्त्तना कररहे हैं ये बात सत्य मत्लक्ष समजी जाती है कि शरीरके सब भागोंमें नस हिल रही है वे पीछी जीव रहित शरीर हो जाय तब कुछभी नहीं हिलती, उससे समजा जाता है कि आत्म प्रदेशके चलायमानपणेसेंही हिलती है इस सूत्रमें लोकप्रकाशमेंभी अधिकार है

९१ प्रश्न —मुनी कखामोहनी कर्म बांधे यह अधिकार कहा—किस ग्रन्थमे है?

उत्तर.—श्री भगवतीजीकी छपी हुइ टीकाके भीतर और बालावोधमेंभी पत्र ७० में हैं, तेरह प्रकारके अंतर कहे हैं उस सबबसे लिये मुनी शंका करै तो कखामोहनी बांधे, वास्तेजिन वचनोमें शंका नहा करनी कखा शब्दसें मिथ्यातमोहिनी कही है, इस लिये ज्यों वन सकें त्यों परमात्माके वचन पर दृढ विश्वास रखना

९२ प्रश्न.—भुवनपति बगैर नीचेके देवता देवलोकमें जावें या नही?

उत्तर —भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पाने २५६ में चमरेंद्र गया था ऐसा अधिकार है, लेकिन उसमें इतना विशेष है कि अरिहंतजीका, अरिहंतजीकी मूर्तिका या साधुजीका शरण लेकर जाय तो जा सकता है, उस बिगर नहीं जा सकता

९३ प्रश्न —तामली तापसने साठ हजार वर्षतक तपस्या की वो मुफतमें गइ कहते है उसका क्या मायना है?

उत्तर —भगवतीजीके पत्र २३२ में तामली तापसका अधिकार है वहा अल्प फल कहा है, मगर कुछभी न मिला ऐसा नहीं कहा है फिर इशानेंद्र हुआ तोभी अल्प फल कहा है वो मुनीकी अपेक्षामें कहा है, सबब कि ऐसी तपस्या समकित युक्त जो होती तो बहुतही निर्जरा होती, लेकिन वो न हुइ उस अपेक्षासें अल्प फल कहा है ऋद्धि तो बहुतसी प्राप्त

है, फिर स्थानकभी ऐसा पाया है कि समकित प्राप्त किया.

९४ प्रश्नः—तुंगीया नगरीके श्रावकका अधिकार कहां है?

उत्तरः—भगवतीजीकी प्रतके पत्र १९१ में अधिकार श्रवन प्रमुखके फलका अधिकार है वहां तुंगीआ नगरीके श्रावकका स्वरूप है.

९५ प्रश्नः—अभवी कहांतक पढ सके?

उत्तरः—नंदीसूत्रकी छपी हुइ प्रतमें पत्र २०९ में साडे नौ पूर्व तक पढ सके, ऐसा कहा है; मगर श्रद्धा न होनेके सबबसें आत्माका कार्य सिद्ध नहीं होवे.

९६ प्रश्नः—श्रावकके व्रत लिये बिगर दूसरे फुटकर नियम करनेकी मर्यादा है या नहीं?

उत्तरः—भगवतीजीकी अंदर पत्र ४६१ में अधिकार है. वहां कहा है कि मूल गुन पच्चख्खानीसें उत्तरगुन पच्चख्खानी असंख्याते हैं; मगर तीर्यचभी श्रावकके व्रत लेते हैं, उस्से असंख्यात गुने कहे हैं. टीकाकारने विशेषतासें कहा है कि सहत, मख्खन, मांस, मदिराका नियम करै वोभी उत्तरगुन पच्चख्खानी कहा जाता है, इस तरह वहां अधिकार है.

९७ प्रश्नः—छठे आरेमें जो जीव होवेंगे उन्होंका कितना आयुष्य? और वै समकिती या मिथ्यात्वी?

उत्तरः—छठे आरेके जीवोंका आयुष्य १६ सें २० वर्ष तकका कहा है. बहुत करकें समकित रहित वहां रहेवेंगे वगैरः सब अधिकार भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ४७९ में है सो वहांसें देख लेना.

९८ प्रश्नः—पांच इंद्रियोंमें कामी इंद्रि कौनसी और भोगी कौनसी?

उत्तरः—श्रोत्र, चक्षु ये दो इंद्रियें कामी और स्पर्श, रसेंद्री तथा घ्राण ये भोग इंद्रियें हैं; सबब कि ये इंद्रिसें भोगनेसें सुख है—इसका सविस्तर अधिकार भगवतीजीकी प्रतके ४८७ पत्रमें है.

९९ प्रश्नः—श्रावक संथारा करै तब सर्वथा पांचों व्रत अंगीकार करै?

उत्तरः—वरुननाग नटुवेने सर्वथा प्राणातिपात्त प्रमुखका त्याग किया है. ये अधिकार भगवतीजीके पत्र ५६० में है, वास्ते कर सके ऐसा मालूम होता है.

१०० प्रश्नः—श्रावक रात्रिपोषह करै तब दिया रख्खे या नहीं?

उत्तर'—श्रावक पोषहमें दिया न रख्खे, सबब कि श्रावक प्रतिक्रमण करता है तब दो घडीकी सामायिक है, उसमें काउस्सग्ग करता है तबभी आगार रख्खा गया है कि दिया—विजलीकी उजेइ आ जाय तो वस्त्र ओढ लेना तो कायोत्सर्ग भग न होवै, इस लिये आगार है. अब शोचो कि अकस्मात् कोइ दिया वगैर ल्यावे तो कपडा ओढ लेना, तब रख्खा क्यु जाय? यहांपर शका होगा कि उजेइ यानी उजाला उसमें किस- वास्ते वस्त्र ओढना? उसका असा समझना कि उजेइ है सो अग्निकायके जीव हैं, उनका अपना स्पर्श लगनेसें वे जीव विनाश पाते हैं ये अधिकार समय सुदरजी के प्रश्नमें हैं फिर महानिसिथ सूत्रजीमें चौथे अध्यायकी अदर पत्र पांचवेंमें सुमतिनागीलका अधिकार चला है, उसमेंभी एक मुनिराजने विजलीका प्रकाश हुवा तब वस्त्र न ओढा, उसीसें वहां कहा है कि अग्निकायके जीवोंकी विराधना हुइ, उस्सेंभी अग्निकाय सिद्ध होते हैं फिर भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ५१८ में अग्नि सुलगानेहारा महा आरंभी या बुझानेवाला महा आरंभी? वहां आग सुलगानेवाला महा आरंभी कहा है—वगैर. अधिकार चला है, उस पीछे प्रश्न हुवा कि जैसें अचेतन अग्निकाय प्रकाश करता है वैसें अचित्त पुद्गलकी असी प्रभा होवे या नहीं? तब भगवंतजीने फुरमाया कि—जब मुनि तेजोलेश्या किसीके पीछे छोडता है तब वे अचित्त पुद्गलका प्रकाश होता है इसमेंभी समझा जाता है कि अग्निकी प्रभा सचित्त कही. फिर मुनि पख्खी अतिचारमें तथा श्रावक पख्खी अतिचारमेंभी उजेइ आलोयते हैं पुन' श्राद्धजितकल्पमें उजेइका प्रायश्चित कहा है वृहत्कल्पमेंभी जहां दिव्यका उद्योत हो वहां किसी सबबके मारे एक दो रोज रहै, मगर विशेष रहै तो प्रायश्चित लगे, असा कहा है पुन टीकामें सविस्तर अधिकार है कि अनसण किया हो तो दीपक रख्खे असे सबबके वास्ते दीपक रखनेकी मर्यादा है, लेकिन सबबके सिवा निषेध है तो फिर पोषहमें श्रावक पढनेके वास्ते रख्खे वो तो असभव है, सबब कि 'सपणोइग्र सारभो' असा पाठ है, वास्ते ज्यों रात्रिकों साधु दीपक नहीं रख्खे त्यों श्रावकभी रात्रीमें

दीपक न रक्खे, ऐसी हमारी समझ है. उजेहके वास्ते कपडा ओढनेका अधिकार वृंदारुवृत्तिमें पत्र २८ के भीतर है, फिर सेनप्रश्नके अंदर प्रश्न १८ में पत्र ६४ के अंदरभी दीपककी उजेहका प्रश्न है. उसमेंभी कायुस्सग्गनिर्युक्तिकी गवाह है. ये कुछ हकीकत देखनेसें दिया रखना बेमुनासीब मालूम होता है.

१०१ प्रश्नः—श्रावक जिनमंदिरका द्रव्य व्याजु रख सकता है? और पूजनके कार्यमें उनका व्यय करै तो कुच्छ हर्ज है?

उत्तरः—अभिके वक्तमें श्रावकोंको जिनमंदिरके कर्मचारी जबरदस्तीसें व्याजु देते है; मगर श्राद्धविधिके पत्र १०१ के अंदर श्रावकको जेवर रखकरभी धीरधार करनेकी मना फुरमाइ गइ है; सबब कि श्रावक कम व्याजसें लेवै और जियादे व्याज पैदा कर लेवे, वो फायदा देवद्रव्यके अंदरसें हांसिल किया. फिर श्राद्धविधिमें सागर शेठकी कथा है, उसमेंभी फक्त जिनमंदिरके मनुष्यको पैसेके बदलेमें अनाज दीआ था. उसमें एक रुपैकी ८० कांगुनी होवे उसमेंसे फक्त १००० कांगुनीका लाभ हांसिल हुवा था उसमें कितना संसारमें भ्रमण किया? वो कथा जब पढोगे तो बेशक हृदय भेदा जायगा; क्यौं कि इतने लाभकी एवजीमें क्या क्या दुःख उठाने पडे हैं! वास्ते श्रावकको संकटमें डालनेवाले रुपै देनेवालेही है. फिर जिस वक्त श्रावक पैसा लेता है उस वक्त तो अच्छी हालत होती है, लेकिन जब मुफ्लीन हालत हो जाय तब बडी फजीती होती है सबके सब दिन एक समान नहीं रहते है. जब दिन पलट जाय और खानेकेभी फाके पडनेका वक्त आ जाय तब शेठीयोंका लहेना यदि होवे, तो अव्वलमें आपका लहेना वसूल करलेते है. यदि आपका लहेना न होवे तोभी आपसे एकधर्मी होनेके सबबसें शरमके मारे उसपर जियादे तकाजा नहीं किया जाता है. वरसें दूसरेका कर्जह वसूल हो जाता है; मगर जिनमंदिरका कर्जह युंही रह जाता है. इससें मंदिरका द्रव्य जावै और लेने वालेको बहुत भवभ्रमण करना पडे. देवद्रव्य भक्षणके फल बहुतसें शास्त्रोंमे लिखा है. उपदेशपदमें हरिभद्रसूरीजीने

कोइ देवद्रव्य खाता हो उसकी सभाल न रक्खे, तो उस श्रावकके लिये कितने कटुफल बतलाये है और खानेवालेके भवभ्रमणका तो पारही नहीं पुन श्रावकोंमें पैसे धीरनेका रिवाज होवै तो खुद गोठियेभी पैसे उठा जाते है और अभीके वक्तमें तो इसी तरह होनेस जगे जगे ओं स्वाहा कर जानेके बनाव बनते हुवे मालुम होते है इस्से बहुतही देवद्रव्यका नाश हुवा है, सो सब भाइयोंके जानमेंही है. फिर पटीगनकी टीकाम इतने तक कहा है कि देवद्रव्य बढानेके वास्ते बहुत मूल्य देकरके भी मंदिरकी चीज लेवे है और खुद वापरते है उनको नरकगामी जीव कहे है, वास्ते देवद्रव्यसे तो ज्यौं बन सके त्यौं दूरही रहना

फिर जिनपूजन करनेमभी सब उपकरण शक्तिवालेका तो अपने घरसेही लानेका फरमान है आरसिया वगैर पदार्थभी श्रावक खुद अपनी पदरका या देके बना लेवै जो जियादे धनवान है सो ऐसी वस्तुअ बना रक्खावे साधारन धनपात्र ऐसी चीजें न बना सके तोभी केसर–चदन–पुष्प वगैर तो हरगीज वपरासमें न लेवै वो चीजें तो घरके पैसोंकीही लेवे, क्यों कि मंदिरके द्रव्यमेसे लयाइ हुइ ऐसी चीजें काममें लेनेसे लाभ नहीं होता है आत्म प्रबोधमें कथा है कि–' एक समकितीका पीछले जन्ममें देवद्रव्यसें नुकसान हुवा है, उससें ये जन्मम ऐसा नियम किया है कि मैं मंदिरमें लाये जलसेंभी हाथ न धोउंगा ' फिर श्राद्धविधिमेंभी कथा है कि–एक लक्ष्मीबाइने देवद्रव्य बढानेके लिये बहुतसें उत्सव कियेथे, उसमें मंदिरके उपगरण वपरासम लिये, यदि उसका नकराभी दिया, तोभी कुछ नकरा कम पडनेसे भवरस भोगावराय बाधा जिस्से दूसरे जन्ममें जन्म लिया जबसेंही पियरमें शोक पडने लगे, और सादी हुवे पीछे सासरेमें बहुत शोक पडने लगे पीछे मुनि मिले तब पुछा कि–'महाराज ! मेरे जन्म भरसेंही शोक पडताही मालम होता है उसका सबब क्या ? ' पीछे गुरुजीने कहा–पूर्व जन्ममें मंदिरके उपगरण कम नकरा देकर वपरासम लियेथे उसका ये फल है ' सोचो कि कम नकरेके लिये ऐसा हुवा तो मुफतमें मंदिरकी चीजें घर काममें ल्याकर वपरासमें लेवे तब तो फिर नुकसानीका कहनाही क्या ? वास्ते मंदिरकी या साधारनकी, ज्ञानद्रव्यकी चीजोंसे बहुत दूर रहना और कोइभी अंशमें अपने घर कार्यमें न आवे ऐसा खुब खियाल रखना, ये द्रव्यकी न्यायसे वृद्धि करनेमें

तत्पर रहना, और पूजन सेवनमें पदरके पैसेसेंही चित्त प्रफुल्लित रहता है वास्ते सुंदर शुद्ध द्रव्य घरसेंही लेकर वापरना.

साकेतपुर नगरमें सागरशेठ नामक श्रावक रहताथा उसकों धर्मी जानकर दूसरे श्रावकोंनें मंदिरका द्रव्य सुंपरद किया और कहा कि–'इन द्रव्यमेंसें मंदिरके काम करनेवाले शिलवट, सूत्रधार, मजुदूरकों उनकी मिहनतके पैसे चुकाते रहना.' वो द्रव्य सागरशेठके हाथ आनेसें लोभमें पडा, उससें वो सुतार वगैरःकों नकद पैसें न देतें उसकी एवजीमें अनाज गुड कपडा वगैरः देने लगा. उनमेंसें एक रुपेकी ८० कांगुनी होती है. इस तरह १००० कांगुनी उनने पैदा की और वो पैसा अपने घरमें रख्खी. उससें महा पाप उपार्जन किया और विगर आलोचे मरकर वो समुद्रमें जलमनुष्य हुवा. वो जलमनुष्यकों इंदगोली होती है. वो इंदगोली जो मनुष्य पास रखकर समुद्रमेंसें रत्न निकालनेकों जावे तो वो नही डूबता है. उससें समुद्रके उपकंठनिवासि वनियोंने सागरशेठके जीव जलमनुष्यकों पकडकर चक्कीके नीचे दबा रख्खा. छः महीने बाद चक्कीके नीचे दबाकर मर गया और तीसरी नरककों गया. वहां नारकीके दुःख भुक्तकर आयुष्य पूर्ण हुवे बाद पांचसो धनुषके शरीरका मच्छ हुवा. वहां मलेच्छोंने पकडकर अंगोपांग काट डाले उससें मरकर चौथी नरकमें गया. वहांसें निकलकर एक एक भवके अंतरसें पांचवी, छठ्ठी, सातवी नरकमें दो दो वख्त जा आया. असें नरकके परमाधामीकी वेदना क्षेत्रवेदना सहन कर पीछे फिर तीर्यचके भव करकें एक हजार कूत्तेके भव भुक्ते, और दूसरेभी एक हजार भव नीचे मुजब लेने पडे.

सूवरके, बकरेके, घेटके, मस्सेके, हिरनके, साबरके, शियालके, बील्लीके, चूहेके, घूसके, छिपकलीके, पटलागोहके, सांपके, बिच्छूके, विष्टाकेकीडेके, शंखके, सीपके, जोकके, कीडेके, पतंगीएके, मच्छरके, कछुआके, गदहेके, भेंसकें, व्हेलके, ऊंटके, खच्चरके, घोडेके, और हथ्थीके असें एक एक जातीमें १०००, हजार भव किये. फिर पृथिवीकाय, अपकाय, तेउ, वाउ, वनस्पतीकाय वगैरःमें लाखों भव भ्रमणकर किसी ठौर शस्त्र अस्त्रके प्रहार सहन किये, वडी वडी पीडायें भुक्ति, और वहुत हैरान हुवा. बाद देवद्रव्य भक्षणका पाप वहुत क्षय होनेसें वसंतपुर नगरमें कोटीध्वज वसुदत्तशेठकी वसुमतिके कुखमें पुत्रपणेसें उत्पन्न हुवा. वो सागरशेठका जीव गर्भमें

आया जबसेंही वसुदेवशेठका द्रव्य नाश होने लगा. जिसदिन जन्म हुवा उसदिन वसुदेव मर गया. पाचवे वर्ष उसकी मा मर गइ लोगाने उसका निपुनिया नाम रख्खा. दरिद्रि रंककी तरहसें वडा हुवा. एक वक्त उसकों बुरी हालतमें उसके मामुने देखा तो वो अपने घर ले गया. उसमें उसी रातमें उस निपुन्नियेके पाउके सबबसें चोरोंने घर लुट लिया. वहासें वो दूसरी जगहपर गया. वो जहा जावे वहां उसकों चोर लुट लेवे या आग लगें और आपत्ति पावे हरकोइ विपत्ति उसकों आ भेटे. ऐसी स्थिति देखकर कोइ उसकों राखा नहीं रहने देवे, ओर लोग निंदे कि ये तो जलती उपाधि है. ऐसी अनेक तरहकी लोगनिंदा होन लगी वो सुनकर उसका मन उद्वेगतावत हुवा उस सबबके मारे वो परदेशको चला गया. ताम्रलिप्त नगरमें रहने लगा. वहां विनयधरशेठ रहता था उसके घर चाकर वन कर रहा मगर रहा उसी रोज उस शेठके घरमें आग लगी, उसके लिये उसकों बावले कुत्तेकी तरह हकाल दिया. तब पश्चाताप करता-शोचने लगा और पुर्वका किया हुवा निंदनीय कर्मको निंदने लगा. जो जो कर्म स्ववशपणेसें करता है वो कर्म उदय आवे तव परवशपणेसें भुक्तने पडते हैं. ऐसें निंदा करता हुआ वहासें दूसरी जगहपर गया, और चलता चलता दरियाके किनारेपर पहुचा. उसरोज धनवान नामक शेठ जहाजपर सवार होकर धन उपार्जनार्थे विदेशकों जानेवालाथा, उसीका नौकर वनकर उनके साथ जहाजमें बैठ गया. जब जहाज रवाने होकर कुशलता पूर्वक दूसरे द्वीपकों पहुच चुका, तब निपुन्निया शोचने लगा कि-यह बडी आश्चर्यकी बात है कि मैं जहाजमें सवार हुआ तौभी जहाज न भागा! न डूब गया!! ऐसा शोचता है उतनेमें तो दुष्ट दैवने दडसें करके जहाजकों भग्न कर डाला निपुन्निया समुद्रमें डूबा किंतु वहां पाटीआ हाथ आ जानेमें उसके सहारे सहारे किनारे पहुचा और बच गया वहार निकलकर नजदीकके गाँवमें वहाके ठाकुरके वहां नौकर वन रहा. तो उस जगे धाड पडी निपुन्नीएकों ठाकुरका लडका समझकर चोर-धाडुलोग पकडकें ले गये और उसकों अपने रहनेकी जगहपर रख्खा वहां दूसरे पल्लीपतीने चढाइकर उन धाडपाडुओंकी पल्लीका नाश कर डाला. ऐसा होनेसें धाडपाडुओंने निपुन्नियेकों वहांसे मार हकाल दिया तो वेलके वृक्ष नीचे जा बैठा और वेलका फल गिरनेसें सिरमें चोट लगी, तो वहांसें भागकर हजाराह जगहपर भटका. जहां जावे वहां चोरका, पानीका, आगका, परसैन्यका

और मरनका ऐसे अैसे उपद्रव होतेही रहे. उसी सबबसें कहीं ठहरने न पाया. भयीने मार हैरान किया. अैसे कष्ट उठाते उठाते एक अटवीमें जा पहुंचा. वहां सेलक नामक यक्ष कि जो बडा चमत्कारिक था, उसका उसने एकाग्रचित्तसें आराधन कर, अपना समस्त दुःखभी निवेदन किया, और एकीस रोजका छठ्ठा पूरा हुवा तो यक्ष प्रसन्न हो कहेने लगा—अय भोले आदमी! हर सायंकालके वक्त मेरे अगाडी सुन्नेके हजार चंद्रयुक्त बडा सुशोभित मोर नाच करेगा, उस मोरके निरंतर पर खीरते रहेंगे, वे पर लेकर मौज करना.' अैसा सुनकर निपुन्निया हर्षवंत हुआ, और हरहमेशां सुन्नेकेपर लेकर मौजमें रहने लगा. जब नौसो पर इकठ्ठे हुए तब सो सोचने लगा—'इस घोर जंगलमें कहां तक पडा रहुं? मोरके पर मुठ्ठीये भर भरके नोच लुं के बेडा पार हो जाय और चलेजानेकाभी मोका हाथ आ जाय.' दुष्टदैवकी प्रेरणासें उसने युंही किया, तो मोर उडकर सारे इकठे किये पर लेकर चलता हुवा. निपुन्निया बहुत शोचने लगा—'धिःकार है मेरे बदनसीबकों, जो मूर्खता करके सतावी की तो मिलाइ हुइ चीजभी चली गइ.' सच है कि देवकी आज्ञा उल्लंघन करनेसें बेशक निष्फलता प्राप्त होती है. निपुन्निया आया था वैसाका वैसाही चला और जंगलमें भटकने लगा. वहां एक उपकारी मुनीराजका मिलाप हुवा तो नमस्कार कर उसने महाराजके आगे सारा हाल कहकर पिछले जन्मका वृत्तान्त पूछा. मुनीमहाराजने कहा—'हजार कांगुनी देवद्रव्यमेंसें खाइ है उसी पापके मारे तूने यह जन्ममें और दूसरे जन्मोंमें दुःख पाया है.' अैसा कहकर सारा पूर्वके जन्मोंका हाल सुनाया. और पीछे देवद्रव्य भक्षणके पापसें निवृत्त होनेका उपायभी कहा कि—'हजार कांगुनी खाइ है, उससे जियादा धन दे देना, देवद्रव्यका रक्षण करना, और देवद्रव्यकी वृद्धि करनी, उससें दुष्टकर्म दूर हो जायगा. सब जीवोंकों भोगलक्ष्मीसुखका लाभ होवे.' अैसा सुनकर उसने नियम लिया कि उससें हजार गुना द्रव्य देवद्रव्यमें दउंगा. और वस्त्र आहारादिमेंसें जो धन बचेगा वोभी देवद्रव्यमें दे दुंगा. थोडाभी द्रव्य मे पास न रखुंगा. अैसा मुनीराजके पाससें नियम लिया और शुद्ध श्रावकधर्म अंगीकार किया. उस पीछे जो जो व्यापार किया उसमें द्रव्य पैदा किया. उससें गत जन्ममें हजार कांगुनी खाइथी उसके बदलेमें दश लाख कांगुनी देवद्रव्यमें दी. तब देवद्रव्यके ऋणसें मुक्त हुवा और उसीसें बहुत उसने धन पैदा किया. पीछे अपना व्याज बढाने लगा और

ग्रुतसा धन पैदा किया सो खोराकी पोषाकी करतें बचा सो कुल्ल देवद्रव्यमेंही दे दिया इसमुजब बहुत देवद्रव्यकी वृद्धि की इन वृद्धि करनेके पुन्यसें तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया. समय हाथ आनेसें दीक्षा अंगीकार करके गीतारथ हुवे धर्मदेशनादिकसें, देवभक्तिके अतिशयसें करके जिनभक्तिका पहिला स्थानक आराध कर तीर्थंकर नामकर्म निकाचित करके कालधर्म पा सवार्थसिद्धिमें पहुचे, वहासें चवीके महाविदेहक्षेत्रमें तीर्थंकर पदवी भुक्तकर सिद्धि पावेंगे. इस तरहकी कथा श्राद्धविधिमें पत्र १०१ सें १०३ तक है

अब साधारन द्रव्य और ज्ञानद्रव्यपर कथा कहते हैं. भोगपुर नगरके अंदर धनवा नामक शेठ था वो चोवीश कोडी सोनैयेका मालिक था उसकी धारती स्त्रीने पुत्रकी जोडीकों जन्म दिया एकका नाम करमसार और दूसरेका नाम पुन्यसार था एक वक्त पिताने निमित्तियेसें पूछा कि–'ये पुत्र कैसे निकलेंगे?' निमित्तिया कहने लगा–कर्मसार जडप्रकृतिवाला निर्बुद्धि होगा, और विपरीत बुद्धिसें करके घरका सब धन गुमा बैठेगा नया धन पैदा न कर सकेगा बहुत काल तक बडी दरिद्रतासे चाकरी कर दुःख उठायगा और पुन्यसारभी है उसीके जैसाही, मगर व्योपारमें विचक्षण निकलेगा दोनूकों वृद्धावस्थामें धन पुत्रादिकका सुख मिलेगा.' तदनंतर दक्ष पिताने उन दोनूकों चतुर उपाध्यायके पास विद्या पढनके लिये रक्खे. पुन्यसार सुखपूर्वक सब विद्या पढा, लेकिन कर्मसार बहुत मिहनत करनेपरभी एक अक्षर नहीं शीख सका बिलकुल पशुतुल्यही रहा, उससें उपाध्यायनेभी पढाना मोकूफ किया जब दोनू उमर लायक हुवे तब धनवानोंकी लडकियोंके साथ उसीके पिताने सादी करवादी ओर दोनूकों बारह बारह कोडी सोनैये बाटकर अलग कर दिये उस पीछे मात तात दीक्षा लेकर देवलोकवासि हुवे

अब कर्मसारने सज्जन लोगोंकी मना तर्फ वेपरकारी बतलाते हुवे व्योपार किया, अपनी बुद्धिके मारे धनकी हानी हुइ और थोडेही दिनोंमें पिताकी दी हुइ दौलत बरबाद कर डाली

पुन्यसारका जो दोलत मिलीथी उसकों चोर लुट ले गये दोनू दरिद्री बन बैठे स्वजनोंने उन दरिद्रीओकों छोड दिये औरतेंभी भूखे मरती हुइ उनकों छोड छोडकर पियरमें जा रही धनके सिवा गुणिजनभी निर्गुणि हो जाता है. अपने स-

बेधीजनभी चाकरके गिसाल्भी निर्धन संबंधीको नहीं गिनते हैं. और धनवंतमें थोडीसी चतुराइ होवे तो उसे चतुर कहते हैं. मगर वे दोनू भाइ तो निर्धन होनेसें उन्होंको निर्बुद्धि निर्भागी कहकर बुलाने लगे, तब उन्होंने व्यापकेमां विदेशका रस्ता पकडा और वहां जाकर अलग अलग रहना दुरुस्त मान लिया. कर्मसार किसी धनवानके वहां और उपायके अभावसें नौकर बन रहा. वो शेठ जूठा बोलनेहारा, अदत्तका लेनेहारा और चाकरोंके पगार भी वक्तसर न देनेहारा होनेसें कर्मसारको खानेपीनेकी बडी तकलीफ उठानी पडी. पुण्यसारने तकलीफ उठाकरकेंभी कुच्छ धन पैदा किया पर छुपा रक्खा तो धूर्तोंने छल करकें, धन उठा लिया. इसतरह बहुत जगहपर चाकरी करकें, धातुर्वादीसें खान खोदकर रसायन सिद्ध किये, रोहणाचलपर रत्न लेनेकोंभी गया. मंत्रसाधना कर रुद्रवती वगैरः जडी लेनेका महा पराक्रमभी ११–१२ दफै करकें धन प्राप्त किया; मगर वो हाथ न रहा. कर्मसारकोंभी धन मिलकर फिर चला गया. दैव विपरीत होनेसें मिहनत व्यर्थ जाती है. उस पीछे दोनू भाइ उदास–निरास हो जहाजपर स्वारी कर रत्नद्वीपमें जा पहुंचे. दोनूने सांचल्य रत्नद्वीपकी देवी जानकर मरण अंगीकार करकेंभी उन देवीका आराधन करना शुरु किया. जब आठ उपवास हुवे तब देवी प्रकट होकर कर्मसारसें कहने लगी–'तेरे भाग्यमें धन नहीं है; वास्ते ये काम छोडदे.' ऐसा सुनकर कर्मसारने आराधना बंध की. पुण्यसारने एकीस रोज तक आराधना शुरुही रक्खी उससें देवीने प्रसन्न हो उसकों एक चिंतामणि रत्न बक्षा. वो देखकर कर्मसार पश्चात्ताप करने लगा. तब पुण्यसारने कहा–'खेद मत कर. इस रत्नसें तेराभी काम फतेह होगा.' ऐसा सुनेसें कर्मसार खुश हुवा और दोनू भाइ प्रीतिपूर्वक जहाजपर स्वार हुवे. पूर्णिमाकी रात्री होनेसें पूर्णचंद्र उदय हुवाथा, तब कर्मसार बोला–'भाइ! तेरे पास रत्न है उसका तेज विशेष है या चंद्रका? वो अपन देख लेवे.' ऐसा सुन पुन्यसारनेभी पूर्वकर्मकी प्रेरणासें रत्न निकालकर हाथमें रक्ख जहाजके किनारेपर बैठ चंद्र, चिंतामणीके तेजका मुकाबला करने लगा. अभाग्यवशसें रत्न समुद्रमें गिर पडा. मनोरथ निष्फल हुवे. दोनू भाइ जैसी हालतसें विदेश गयेथे वैसीही हालतसें दुःख पाते हुवे अपने वतन जा पहुंचे. वहां ज्ञानी गुरुका मिलाप हुवा, उन्हीके चरनमें शिर झुकाकर पीछे पूर्वभव वृत्तान्त पूछने लगे. ज्ञानी महाराजने कहा–'चंद्रपुर नगरमे जिनदत्त और जिनदास

ऐसे दो श्रावक परमअरिहंतजीके भक्त थे एक वखत सब श्रावकोंने मिलकर बहुतसा ज्ञानद्रव्य और साधारणद्रव्य उन दोनु श्रावकोंको एक एक द्रव्य समालनेके वास्ते दिया और वे दोनु अच्छी तरहसे समाल रखने लगे जिनदासने अपने लिये पोथी पुस्तक लिखायाथा और अपने पास दूसरे द्रव्यका अभाव था जिससे शोचा कि मेरी पोथी लीखी गइ हे जोभी ज्ञानकाही लिखाना है ऐसा शोचकर ज्ञानद्रव्यमेंसें बारह दाम लेखकको दिये जिनदत्तने साधारण द्रव्यमेंसें अपने घर बहुतसे प्रयोजनके कार्यनिमित्त दूसरे द्रव्यके अभावसें अपने काममें व्यय कर डाला यों दोनु श्रावक द्रव्यका विपरीततासें व्यय करनेके सबबसें मर कर पहेली नरकमें गये नरकमेंसें निकलकर सर्प हुवे वहासे मरकर दूसरी नरकमें गये वहासें निकलकर गीधपखी हुवे वहासे मरकर तीसरी नरकमें गये. एक एक दो भवके अंतर सातों नरककी सफर की एकेंद्रि, बेइंद्री, तेइंद्री, चौरिंद्रि, पचेंद्री, तीर्यचके बारह बारह हजार भव करके बारबार दुःख भुक्तकर बहुतसे कर्म क्षीण हुवे बाद वा दुष्टकर्मके लियेसें उन दोनूको बारह हजार भव बारह दामकी एवजीम दुःखपूर्वक भुक्तने पडे फिर इस भवमें बारह क्रोड सोनैये गुमा दिये हर वक्त बहुतसी तदबीरसें धन पैदा किया; मगर वो नाश हो गया. दूसरेके घरकी चाकरी कर दुःख भुक्तना पडा कर्मसारके जीवने ज्ञानद्रव्यका भक्षण किया उससे निर्बुद्धि हुवा—बुद्धिभ्रष्ट हुआ और बहुसा दुःख उठाया पुण्यसारने साधारण द्रव्यके भक्षणसें बेर बेर धन गुमाया ' इस तरह मुनीमहाराजके मुँहसे पूर्वभवका चरित्र सुनकर दोनु भाइने श्रावकधर्म अंगीकार किया और प्रायश्चितके बदलेम बारह हजार दाम ज्ञानद्रव्यमें और साधारण द्रव्यमें देवेंगे ऐसा नियम ग्रहण कर लिया तत्पश्चात् दोनु भाइयोंने पूर्वकर्म क्षय हो जानेसें बहुतसा धन पैदा किया साधारण द्रव्य तथा ज्ञानद्रव्य बारह गुना दिया. और बारह बारह क्रोड सोनैयेके मालिक होकर अच्छे श्रावक हुवे अच्छी तरहसें ज्ञानद्रव्य और साधारण द्रव्यका रक्षण किया और इच्छा युक्त ज्ञानद्रव्य, साधारण द्रव्यकी वृद्धि की. श्रावकका धर्म प्रशंसनीय पनेसें आराधकर दीक्षा ले मुक्तिमे पहुचे यह कथा सुनकर ज्ञानद्रव्य, देवद्रव्यकी तरह श्रावकको नही कल्पे ऐसा ख्याल ध्यानमें रखना साधारण द्रव्यभी संघका दिया हुवा काम आसक्ता है आपके हाथसें न ले लेना मगरोंभी सात क्षेत्रके कार्यमें व्यय करना दुरुस्त है, लेकिन याचकोंको देना नादुरुस्त है.

ज्ञान संबंधी द्रव्य या कागज वगैरः साधुको दिया हो उनको श्रावक अपने काममें न लेवै. अपने घरका पुस्तकभी उस द्रव्यमेंसें न लिखवावे. गुरुकी आज्ञा विगर गुरुके लहियेके पाससेंभी न लिखवा लेना चाहियें. थोडासा जीनेके खातिर प्रमाणसें अधिक कठोर पाप जानकर विवेकीजनको थोडासाभी देवद्रव्य किंवा ज्ञानद्रव्य व्यय नहीं करना. वो ज्ञानद्रव्य और साधारणद्रव्य या देवद्रव्य देनेका कहा हो तो देनेमें विलंब न करना. तुरत देनेसें जियादा लाभ होवे और विलंब करनेसें कदाचित् दुष्ट भाग्योदयसें सब धन नाश हो जाय या मरण हो जाय और देना रह जाय तो भला श्रावकभी दुर्गतिको पावै. उसपर कथा कहते हैं:—

महापुर नगरके अंदर धनवान् ऋषभदत्त शेठ था, और वो परम अर्हत्का भक्त था. वो पर्वके दिन जिनालयमें गया, मगर उस वक्त उसके पास नकद पैसे न थे उस सबबसें उधारसें मंदिरका द्रव्य लेकर प्रभुको चडाया. लेकिन वो द्रव्य तुरंत वापिस न दे दियां; क्यों कि दूसरे कार्यमें व्यग्रचित्त था उससें देना रह गया. कितनेक दिन बीत चुके बाद धाडपाडुओंने धाड पाडकर उसका कुल धन लूंट ले उस शेठको जानसें मार चल दियाँ. शेठ मर कर उसी नगरमें निर्दय दरिद्री भैंसेवाले वीहीस्तीके वहां भैंसा हुवा. वो हमेशां पानीकी पखाले उठाया फिरताथा. नंदी नीची जमीनमें थी और शहेर बडी उंची जमीनमें था, उससें उतना ढाल चडकर रातदिन भार उठाया करताथा. वीहीस्ती निर्दयतासें चमडेकी साटका मार देताथा वो और भूख प्यासभी सहन करताथा. इस तरह रातदिन ऐसा दुःख उठाया करताथा, उस अरसेमें जिनमंदिरका कोट नया बनताथा उसमें चुना वगैरःमें पानी डालनेके वास्ते वही भैंसा मारफत पानी लाया जाताथा. उस मंदिरमें श्रावकलोग पूजा करतेथे, उसें देखकर उन भैंसेको जातिस्मरण ज्ञान हुवा, उससें पिछले जन्मका स्वरूप समझनेमें आया. मंदिरका द्रव्य देना रह जानेसें मैं भैंसा हुवा हुं. ऐसा समझमें आनेसें वो भैंसेने वहांसें एक कदमभी न उठाया. दरम्यान एक ज्ञानी गुरु आ पहुंचे, उन्होंने उन भैंसेका पूर्वजन्म वृत्तान्त जाहिर किया. उससे उन शेठके पुत्रने एक हजार गुना द्रव्य देवद्रव्यके देवेमें वसूल करवा दिया. भैंसेके मालिकको पैसे देकर भैंसेको छुडा लिया. पीछेसें उन भैंसेनें अनशन किया और अनशन आराधकर देवलोकमें देवपना प्राप्त किया. और क्रमसें मोक्षमें जायगा. यह कथा सुनकर

मंदिरके, साधारणके अंदर जो देनेका कहा हो वो तुरत दे देना मन्दिरके उपगरण उजमणेमें या उत्सवादिकमें उपयोगमें ले उसका पूरापूरा भाडा-किराया-नकरा न देनेसें लक्ष्मीवतीकी तरह महा हानि होती है. वो कथा इसतरह है कि —

लक्ष्मीवती बाइ महान् ऋद्धिवंत थी और धर्मवंतीभी थी वो बाइ देवद्रव्य बढानेके लिये उद्यापनादिक पुण्यकार्यके बहुत आडंबर किया करतीथी लेकिन जो मंदिरके उपगरण लेतीथी उसका नकरा कुछ कम देकर उन उपगरणोंका उपयोग करतीथी. और जन्मभर ऐसाही श्रावकधर्म उत्साहपूर्वक आराधन करके आयु क्षय होनेसें देवलोकमें गइ मगर हीनबुद्धिस करके नकरा कम दियाथा उससें हीनजातीकी देवांगना हुइ अनुक्रमसें वहासें देवायु पूर्ण कर धनवंत श्रेष्ठिके शेठके वहां पुत्रीपणेसें उत्पन्न हुइ. जबसें वो माताके गर्भमें आइ तबसें यानी श्रीमतोत्सवम परचक्रका भय उत्पन्न हुवा उससें उत्सव बराबर न हो सका फिर जन्मोत्सवादिकके अंदरभी राजाके बडा शोक पडा उसस उसके पिताने भारी भारी आडंबर कियाथा सब निष्फल हुवा फिर मणि रत्न सुवर्णादिकके गहने करवाये, मगर चोरोंका भय बढ जानेसें उनका वो उपभोग न कर सकी पुनः भोजन वस्त्रादिकका उपयोग करनेकाभी वख्त न आ सका, क्यों कि पूर्वकर्मके संयोगसें शोक आ पडा इस तरह कोइभी कार्यमें उत्सव पूरा न हो सका तब उसके पिताने पुत्रीके विवाहके वख्त बडा भारी ठठारा किया, मगर जब लग्नका दिन नजदीक आ पहुचा तब उसकी मा मर गइ, उसीसें लग्नभी उत्साह रहित हुवा बाद सासरेमें गइ, वहाभी पूर्वकी माफिक नये नये भय शोक उत्पन्न हुवे, उससें सासरेमेंभी मनोवांछित भोगसुख प्राप्त न हुवा तो बाइने बडी उदासी युक्त संवेग पाकर केवलज्ञानी महाराजसें पूछा, तबज्ञानी फुरमाये कि-'तूने पिछले जन्ममें उद्यापनके अंदर मंदिरके लिये हुवे उपगरणोंका नकरा कम दिया और बहुतसा आडंबर दिखलाया, उससें ये दुष्ट कर्म भोग अंतराय उपार्जन किया ' ऐसा उपदेश सुनकर उन्होंने दीक्षा ली और क्रमश मुक्तिमहेलमें पहुचकर शाश्वतसुख प्राप्त किये इस मुजबकी कथा श्राद्धविधिके पत्र ११० में है वास्ते हरएक उपगरण अपने घरके रखने चाहियें, और कदाचित् मंदिरके लेने पडे तो उन्होंका पूरापूरा नकरा देकर उपयोगमें लेवे

मंदिरमें दीपक कर वो दीपक घरपर लाकर घरके काममें उसका उपयोग न

करना. अगर मंदिरके दीपकसें कागजभी न पढना. रुपैभी न परख लैना. और मंदिरमें धूप कर उस किये हुवे अंगारेकोंभी घरपर लाकर उपयोगमें न लैना. उसपर श्राद्धविधिमें कथा नीचे मुजब हैः—

इंद्रपुर नगरमें देवसेन नामक व्यापारी था, उसके वहां धनसेन नामका ऊंटवाला चाकर था. उस चाकरके वहांसें हरहमेशां एक सांढनी देवसेनके मकानपर आया करती थी. धनसेन बहुतभी मारपीट कर घर पर छोड आता था तोंभी वो पीछी आये विगर नहीं रहती थी. सांढनी पर देवसेनका, और देवसेनपर सांढनीका बहुत प्यार मालूम होताथा. दरम्यान कोइ ज्ञानी महाराज आकर समोसरे तो उन्हें देवसेनने सांढनी और आपके बीच प्यार था उसका खुलासा पूँछा. ज्ञानीने फुरमाया कि, वो सांढनी तेरी पूर्वभवकी माता है. उनने गतजन्ममें प्रभुके अगाडी दीपक कर पीछे वो दीपक घरकाममें लियाथा, और फिर प्रभुके आगे धूप किये हुवे धूपधानेमेंसें अंगारे लेकर घरपर ला चूल्हेमें आग सुलगाइथी. उस कर्मसें सांढनी हुइ है. और पूर्वके स्नेह संबंधसें तुम दोनूके बीच स्नेहभाव बना रहता है. इस मुजब कहकर फिर कहा कि–मंदिरके चंदनसें तिलकभी अपने भालमें न करना. और मंदिर तरफसें लाये गये जलसें हाथभी न धोना. देव संबंधी शेषभी (प्रसाद) न लैना. देवकी झालरभी 'गुरुके आगे न बजानी चाहियें.' इस तरह श्राद्धविधि पत्र १०८ में लेख है. और पत्र ८० में लेख है कि कच्ची पुष्पकली न छेदनी चाहियें. मालीभी कच्ची कली नहीं नोच लेता है, तो अपनकों कच्ची कली तोडकर चडानी वो कैसें योग्य होय? वास्ते कच्ची कलीयें चडानी उचित नहीं.

१०२ प्रश्नः—गृहमंदिरमें नैवेद्य–फल–अक्षत वगैरः रखते हैं उसका क्या करना?

उत्तरः—गृहमंदिरमें जो चीज भगवानके आगे रक्खी जावें वो बडे मंदिरमें भेजवा देनी चाहियें. फिर नेवेद्य माली वगैरःको दिया जाता है उसके बदलेमें माली फूल देवे तो दूसरेको कहकर बडे मंदिरमें चडावै और कह देवै कि ये मेरे पैसेके फूल नहीं है. नेवेद्यके बदलेमें आये हैं वही हैं. गृहमंदिरमें अपने पदरके पैसेसें भक्ति करनी, ये अधिकार श्राद्धविधिमें पत्र ११२ मे है और वहां उसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या है.

१०३ प्रश्नः—सचित्त, अचित्त, मिश्र क्या क्या समझना?

उत्तर —श्राद्धविधिके अंदर पत्र ९२ के अंदर नीचे मुजब लेख है —

सचित्त वो सब जातीके धान्य, जीरा, अजवायन, सोंफ, सोये, राइ, खस-खस (पोस्तके बीज), सब जातीके फल पत्र, लूण, खारी, राता खारा, सिंधानोंन, खानाके अंदरसे निकला हुवा कालानमक, (बनावटी कालानमक अचित्त है) खारीमिट्टी, हिरमजी, हरे दतवन है अब मिश्र कहे है वो इसमुजब है कि—पानीसें भीगोये हुवे चिने, या गेहु वगैर धान्य और चिने, अरहर वगैर की दाल पानीमें भीगोइ हुइ हो उससेंभी कुच्छ छोत-छिलका रहजाय उससें मिश्र कहते हैं भुन डाला गया धान्य, और जोभी रेतीमें भुना हुवा हो तो अचित्त हो जाता है या तो निमक वगेरे क्षार लगाकर भुनागया हो तो अचित्त हो जाता है, मगर रेती बिगर भुनगये चिने वगैर' मिश्र कहा जाय भुने हुवे तिल, पहोंक, चिनेके फल आगपर रखव शेके हुवे, शेकी हुइ फली, व्हालपापडी-बाफ दी हुइ, ये मिश्र, और ककडी वगैरः फकेकों हींग वगैर सें वघारके तैयार किया व्यजन मिश्र, कच्चे आममें निमक दिया गया हो, मगर जहातक नरमाश न हुइ हो वहातक मिश्र हैं. बीज सहित पक गये हुवे फलभी मिश्रकी गिनतीमें हैं. और बीज गुटली अलग हुवे बाद दो घडी पीछे अचित्तमें गिनना होती है तिलपापडी बनी उसी दिन मिश्रमें गिनी जाती है मालवेमें और महाराष्ट्रमें ज्यादा गुड डालकर बनाइ जाती है तो उन देशोंमें उसी दिन अचित्त हो जाती है वृक्षसें तुरत उखाडकर लिया गया गोंद या नारेलका पानी, आमका रस, शेलडी वगैर वनस्पतिका रस, घानीमेंसें तुरतका निकालागया तेल, और अलसी, अरडीका तेल, या बीज निकाले हुवे नारेल, सिंगोडे, सुपारी, फल वगैर' और पका या बहुत मर्दन किया हुवा, बनी निकालके दुरुस्त किया हुवा जीरा अजवायन वगैर एक मुहूर्त तक मिश्र समझ लेना, पीछे अचित होता है पानी और कच्चे फल, कच्चे धान्य, खरा नोंन, वगैर अग्नि पानीके कठीन शस्त्र लगे बिगर अचित नहीं होते है, क्यों कि भगवतीजीमें कहा है कि-वज्रमय पाषाणके खरलमें वज्रके दस्तेसें निमक वगैर को इक्कीस दफे पीस डाले तोभी कितनेक जीवको शस्त्रका स्पर्शभी नहीं हो सकता है! वास्ते अग्नि पानीके स्पर्श बिदून अचित्त नहीं होता है अब अचित्त क्या उसका खुलासा करते है —

सो योजन पानीके मार्गद्वारा जहाज-बोटमें आइ हुइ चीज अचित्त हो जाती

है. किरायता, हर्र, छोहारा, छोटी द्राक्ष, बडी द्राक्ष, खजूर, मिरी, पीपर, जायफल, बादाम, अखरोट, नीमजे, जरगो, पिस्ते, कबाबचीनी ये अचित्त है. फिटकरी जैसा सुफेद सिंधानोंन, सज्जी, भट्टीमें पकाया गया नोंन वगैरः बनावटी क्षार, शोधी हुइ मीट्टी, इलायची, लोंग, जायपत्री, सूकी मोथ, कोकुन वगैरः पके हुवे केले, उबाले गये शिंघोडे, सोपारी वगैरः ये अचित्त होते हैं. और आदि शब्दसें हरताल, मनशिल, पींपर, खजूर, द्राक्ष, हर्र येभी सो सो योजन जलमार्ग वहन किये बाद अचित्त हो जाते हैं; लेकिन उपयोगमें लेने लायक नहीं होते हैं. इस मुजब श्राद्धविधिमें है. फिर दूसरे काल, पत्र ५५ में हैं वो निम्न लेख मुजब हैः—

सॉवन और भादो मासमें चार दिन मिश्र.

काती, मिगशर और पोषमें तीन दिन मिश्र.

अधहन और फागुनमें चार पहेर मिश्र.

चेत, वैशाख, जेठ मासमें तीन पहेर मिश्र.

इतना काल व्यतीत हुवे बाद अचित्त होते हैं. छाना हुवा आटा दो घडी बाद अचित्त होता है. छाना हुवा आटाभी वर्ण, गंध, रस बदल देवै तो अभक्ष होता है. चातुर्मास [वर्षाकाल] में पंद्रह दिन, और शियालेमें एक महिना आटा रखनेकी मर्यादा है. बाद ग्रहण करने लायक नहीं रहता है. पक्वान्न वगैरःका काल वर्षाकालमें पंदरह दिन, उन्हालेमें बीश दिन, और शियालेमें एक महिना काम लगें, पीछे ग्रहण करना बेमुनासिब है. तौंभी ये कालके पेस्तर कभी वर्ण—गंध—रस—स्पर्श बदला हुवा मालूम पडे तो ग्रहण करना अयोग्य है. दहीं दो दिनके उपरांतका न खाना, कच्चा दूध या दहीं या छांसके साथ द्विदल खानेसें बेइंद्रीय जीव पैदा होते हैं; वास्ते वो न खाना. गइ रातका बचा हुवा भोज्य पदार्थ, गीला हो गया हुवा पदार्थ वगैरः चीज दूसरे दिन खाने लायक नहीं रहै, ऐसा प्रभुका फरमान है. ३ तीन दफै उछाला देने तकका उबाला गया पानी वर्षाकालमें तीन पहेर, और उन्हालेमें पांच पहेर तक अचित्त रहवे, पीछे सचित्त होता है. वास्ते पीछे पीने योग्य नहीं रहता है. ऐसा श्राद्धविधिमें लेख है.

१०४ प्रश्नः—बकुश कुशील दो नियंठे—ये कालमें कहे है. उसमें कुशील तो भगवतीजीके पचीशवे शतकमें मूल गुनस्थानकके अंदर प्रतिसेवी कहे हैं. जब मूल गुनमें दूषण लगै तब संयम गुणठाणा कैसे रह सकै?

उत्तरः—हरीभद्रसूरी महाराजने आवश्यककी टीका की है उसमें कहा है कि–मूल गुण प्रतिसेवीकों सजलके कषायसें होवे और वो अतिक्रम व्यतीक्रम, अतिचार ये तीना भागे तक होवै. अनाचार नहीं होवै, उससें समझा जाता है कि ओलोयकर पडीक्रमीकें शुद्ध होवै अनाचार सेवीकों सजलके कषाय शिवा दूसरे कषाय वर्त्तते हैं, तब गुणस्थान जावे

१०५ प्रश्नः—अठारह भाव दिशा किस प्रकार हैं ?

उत्तर —आचारांगजीमें पत्र ९ के अंदर [छपी हुइ प्रतमें] है १ समुर्छीम मनुष्य, २ कर्मभूमिके मनुष्य, ३ अकर्मभूमिके मनुष्य, ४ अंतरद्वीपके मनुष्य, ५ वेइंद्री, ६ तेरेंद्री, ७ चौरेंद्री, ८ पचेंद्री, ९ पृथ्विकाय, १० अपकाय, ११ तेउकाय, १२ वायुकाय, १३ वनस्पतिकाय सो मूलबीज, १४ स्कंध बीज, १५ पर्वबीज, १६ अग्रबीज, १७ देवता और नारकी ये अठारह भावदिशा कही, उसका सबब कि जीव उतनी (१८) जगहमें संसारमें भ्रमण करता है, वास्ते आप शोचे कि–में कौनसी दिशासें आया ? यानी कौनसी गतिमेंसें आया हु ? आदि शोचे और संसारसें विमुख होवै

१०६ प्रश्न —नौ प्रकारसे पुण्य बांधे वो किस ग्रंथमें लेख है.

उत्तर.—ठाणांगजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ५१४ में नौ प्रकारसें पुण्य बांधनेके कहे हैं —

१ अन्नपुण्य यानी अन्न देनेसें होता है

२ पाणपुण्य यानी पानी देनेसें होता है

३ वस्त्रपुण्य यानी वस्त्र देनेसे होता है.

४ शयनपुण्य यानी मुनिकों संथारा देनेसे होवै

५ लेणपुण्य यानी मुनिकों उतरनेका स्थल देनेसें होवै.

६ मनपुण्य यानी मन शुभ प्रवर्त्तनेसें होवै

७ वचनपुण्य यानी गुणी पुरुषके गुण गानेसे होवै

८ कायपुण्य यानी कायासें देवगुरुकी भक्ति करनेसें पुण्य बांधा जाता है

९ नमस्कारपुण्य यानी देवगुरु स्वामी भाइकों नमस्कार करनेसे होता है

इस तरह नौ प्रकार हैं. यहांपर किसीकों शंका हो आयगी कि–'जिनप्रतिमाकी पूजा कौनसे प्रकारमें आ समा गइ?' उसका खुलासा यह है कि–मनवचन कयासे करके भक्ति करनी उसीमेंही जिनपूजाका समावेश हो गया है; क्यौं कि किसी जीवकों दुःख न देना और सर्व जीवोंकों सुख करना या देवगुरु उपकारीकी भक्ति करनी इसमें त्रिकरणकी शुद्धतासें पुण्य बंधाता है. इसीसेही जिनपूजा वगैरःका समावेश होहि जाता है.

१०७ प्रश्नः—व्याख्यान करनेके योग्य कौन है?

उत्तरः—आचारांगजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र १९५ में सोलह वचन समझनेवाला हो वही उपदेश देनेके योग्य होता है. वै सोलह वचन नीचे मुजब हैः—

१ एक वचनः—वृक्ष, घट, पट, नर, सुर, ये संस्कृत है, रुख्खो, घडो, पडो, नरो, सुरो ये प्राकृत है. जो जो एक वचन हो सो उसकों ध्यानमें रख्खै.

२ द्वी वचनः—वृक्षौ, घटौ, पटौ, सुरौ ये संस्कृतमें है और रुख्खा, घडा, पडा, नरा, सुरा ये प्राकृतमें है–उसकों जाने.

३ वहु वचनः—वृक्षा घटा, पटा, नरा, सुरा ये संस्कृत भाषामें और रुख्खा, घडा, पडा, नरा, सुरा, ये प्राकृतभाषामें है वोभी समझै.

४ स्त्री लिंग शब्द.

५ पुरुष लिंग शब्द.

६ नपुंसक लिंग के शब्द.

७ अध्यात्म वचन सो अंतरंग वचन.

८ उपनीत वचन सो प्रशंसाकारी वचन.

९ अपनीत वचन सो परनिंदाके वचन.

१० उपनीत अपनीत वचन सो पहेली प्रशंसा और पीछे निंदा होवै.

११ अपनीत उपनीत वचन सो पहेली निंदा और पीछे प्रशंसा करनी.

१२ अतित वचन सो गुजरे हुवे समयका वचन जैसें गतकालमें अनंत तीर्थंकर हुवेथे.

१३ वर्त्तमान वचन सो चलते हुवे समयकी व्याख्या.

१४ अनागत वचन सो भविष्यकाल वचन, जैसे कल अैसा करेंगे–आते कालमें तीर्थंकर होवेंगे

१५ प्रत्यक्षवचन सो इसने मुझकों कहा है.

१६ परोक्षवचन सो भगवतजी कह गये हैं

यहरूपके सोला वचन समझे वो शुद्ध उपदेश दे सके ये ज्ञान बिगर शुद्ध परुपणा नहीं बन सकती है

१०८ प्रश्न —सिद्ध भगवान् कौनसें अनतमें हैं ?

उत्तरः—समकितविचार गर्भित महावीरस्वामीके स्तवन [छपे हुवे दूसरे भागमें पत्र ७४९] के अदर दूसरे शास्त्रकी गाथा रख्खी है, उसमें अभवी चौथें अनतमें, पडवाइ पांचवे अनतमें और सिद्धादि आठवे अनतमें कहे हैं. मतांतरमें सिद्ध पांचवे अनतमें हैं अैसां कहा है मगर विज्यानदसूरी महाराजके कहनेमें था कि आठवे अनतमें समझना सुगम पडता है. दिगबरके शास्त्रमेंभी आठवें अनतमें सिद्ध हैं.

१०९ प्रश्न—पौषध कब लैना ? और उसका काल किस तरह है ?

उत्तर —श्राद्धविधिमें फकत दिनके चार पहेरका समय–काल कहा है. और अहोरात्रिके पौषधका आठ पहरका काल कहा है पौषध लेनेका विधि पत्र २४९ में बतलाइ है, सो प्रथम पौषध लेकर पीछे राइप्रतिक्रमण पडिलेहन करनी इसतरह है. और इसीतरह करनेसेंही चार पहरका काल पूर्ण हो सकता है और मौडा लेवे और मौडा पारे वो बात पाठमें नहीं हैं, वास्ते सूर्योदयके पेस्तर पौषध लैना वही योग्य है. और पंचाशकजीमें पौषध पारकर पूजा कर पीछे पौषध लनेकी मर्यादा बतलाइ है मगर वो प्रतिमाधर श्रावकके सनबधमें है सबब कि पडिमाधरकों पीछली पडिमा सहित है. वास्ते वो पडिमा समालनी उसें वो विधि बतलाइ है पडिमाधर शिवाके श्रावकके वास्ते तो श्राद्धविधिमें कहा है उसी तरहसें है

११० प्रश्न—पौषधकी अदर वर्षाकालमें श्रावक जमीनपर सथारा करे या पाटके उपर ?

उत्तरः—वर्षाकालमें तो पाट परही सथारा करना कहा है विचार रत्नाकर ग्रथ

जो कीर्तिविजयजी महाराजका बनाया हुवा है उसमें आवश्यककी चूर्णीका पाठ लिखा है. वहां काष्ट आसनके आदेश लेनेका कहा है. उसी तरह श्राद्धविधिमेंभी कहा है. फिर श्रावकके वास्ते पाट पटले कराकर उपाश्रयके अंदर श्रावकही कराकर तैयार रखवे ऐसाभी अधिकार श्राद्धविधिमें है. फिर हुंडीपत्र करकें प्रश्नरुप ग्रंथ है उसमें वर्षाकालमें पाट पटले न काममें लेवै उसें पासत्था कहा है.

१११ प्रश्नः—साधुजी पुस्तक रखें या नहीं?

उत्तरः—इस कालमें साधुजी पुस्तक रखवें ये अधिकार तत्त्वार्थके पत्र २८९ में है, उसमें बतलाया है कि दुषमकालमें धारणाकी खामीके लिये आज्ञा की है. वास्ते पुस्तक रखनेमें कुछ हरकत नही है; लेकिन शिष्य अच्छे न हो तोभी [कु शिष्यकों] वो पुस्तक देकर जाना और वो बेच देवै सो योग्य नहीं. ये पुस्तक संघके रुपसें लीया है, उससें पुस्तकपर मालिकी संघकी रखनी कि जिस्सें बिगाडा न हो सके. शिष्यकों पढनेके लिये जरुरत हो तो श्रावक उसें देवें; मगर बेच खावे वैसे शिष्य हो तो श्रावक उसे पुस्तक न देवै. इस तरह साधुजीकों पुस्तकके संबंध रखना चाहियें.

११२ प्रश्नः—देवता और देवीके संग काम भोग किस तरह होवै?

उत्तरः—भुवनपति-व्यंतर-योतिषि और सुधर्म, इसान देवलोक तकके देवताकों तो मनुष्यकी तरह भोग हैं. और सन्तकुमार, माहेंद्र देवलोकवालोंकों मात्र स्पर्श करनेका है. ब्रह्म, लांतक देवलोकवालोंकों रुप देखे उतनाही काम है. शुक्र, सहस्रारके देवोंकों शब्द सुननेका विषय है. आनत, प्राणत, आरण, अच्युत इन चार देवलोकवालोंकों एक दूसरेके मन मिलापका विषय है. दूसरे देवलोकपर स्त्री नहीं है, उससें वहांसे दिलमें चाहत करै और स्त्रीभी वैसीही चाहत करै उस्सें संतोष होवै; सबब कि ज्यौं ज्यौं दूसरे देवलोकसें उपर चडते जाय त्यौं त्यौं दिव्यकामना कमी हो जाती है और बारहवे देवलोकके पीछे नव ग्रैवेयक या पांच अनुत्तर विमानके देवोंकों तो बिलकुल कामकी इच्छाही नही है. यह अधिकार पन्नवणाजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ७७८ में है.

११३ प्रश्न—देवता मनुष्यके साथ भोग करे और मूल स्वरूपमें आवे ?

उत्तर—पन्नवणाजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ६२९ में तेजस शरीरकी अवगाहना अंगुलके असंख्यात भागकी कही है उसका कारण यही है कि पूर्वभव संबंधी मनुष्यकी स्त्रीके उपर गाढ अनुराग हो तो देवता देवलोकसें आकर स्त्रीसंग करता है और भोग करते मरजाय तो उसी स्त्रीके उदरमें तुरत पैदा होवे इसतरहका अधिकार है इससे समझनेमें आता है कि मूल शरीरसें आ सके तो तेजस शरीरकी अवगाहना अंगुलके असंख्यात भागकी हो और भोगकी बातभी उसीमेंही है

११४ प्रश्नः—चंद्रमा पूर्णिमाके बाद थोडा थोडा ढकाया हुवा चला जाता है और शुकल पक्षकी प्रतिपदासें खुलता हुवा चला आता है उसका क्या सबब ?

उत्तरः—जीवाभिगमसूत्रमें (छपी हुइ प्रतके पत्र ७७९ में) यह अधिकार है और वहा कहाहै कि-नित्य राहु और पर्वराहु ऐसे दो प्रकारके राहुके विमान है उसमें नित्यराहु है सो चंद्रके विमानसें नीचे है, और उसकी गति ऐसी है कि वदि १ सें चंद्रविमानके नीचे थोडा थोडा आयेजाता है और चंद्रमा उससें ढकाहुवा चलाजाता है अमावसके रोज पूर्ण प्रकारसें नीचे आजानेसे चंद्रमा तमाम उसके नीचे ढंकजाता है तो चंद्र मालूमही न हो सकता है और शुदि प्रतिपदासें हमेशा नित्य राहु दूर हठता चलाजाता है सो पूर्णिमाके दिन बिलकुल हठजानेसें पूर्ण चंद्र प्रतीत होता है पर्व राहु कोइ वखत नीचे आता है तब ग्रहण हुवा कहाजाता है ग्रहणके वखत भोजन नही करना ऐसा श्राद्धविधिमें कहा है वो निमित्त अच्छा नहीं है वास्ते भोजनकी मना की है.

११५ प्रश्न—आचार्य पंचमहाव्रत रहित होवे तो वो आचार्य कहे जावे या नहीं ?

उत्तर—पंचमहाव्रत रहित आचार्य होवेही नहीं पंचमहाव्रत रहितको आचार्य पदवी देनेकी किसी जगह रजा नहीं व्यवहारसूत्रमें मूल पत्र २७ के अंदर ऐसा कहाहै कि—जो बहु श्रुत होनेपरभी मृषा बोले, उत्सूत्र बोले, पापकर्म करीके आजीविका निभावे उसको आचार्यकी, उपाध्यायकी और प्रवर्त्तक स्थविर-गणि आदिकी पदवी न देनी जावजीवतक

नहीं दैनी चाहिये-ऐसी मर्यादा है. फिर पंचमहाव्रत रहितकों साधुभी न कहाजावे तो आचार्य होनेकी वातही कैसी ?

११६ प्रश्नः—ऐसे गुनवंत आचार्य न हो तो क्या करना ?

उत्तरः—वहुतसें गुणि पुरूष क्रिया उद्धार कर शुद्ध रीतिसें आप प्रवर्त्तते हैं. जैसेंकि सर्वदेवसूरिमहाराज चैत्यमार्गी थे उन्होंने क्रिया उद्धार करकें शुद्ध मार्ग प्रवर्त्ताया फिर आनंदविमलसूरि महाराजके वक्तमेंभी मार्ग शिथिल पडाथा तो उन्होंने क्रिया उद्धार करके शुद्ध मार्ग चलाया फिर व्यवहारसूत्रमें ऐसाभी कहाहै कि जो आचार्य पदवीके योग्य पुरूष न हो तो गच्छके साधुमेंसें जहांतक योग्य आचार्य न प्राप्त हो वहांतक उसकोंही आचार्य स्थापन कर मार्ग चलाना. जब योग्य पुरूष हाथ लगै तव उसकों आचार्य पदवी देवै. उस वक्त जो घो पाटधारी साधु न उठे तो उसकों गच्छ वहार कर दैना. ऐसा अधिकार व्यवहारसूत्रके पत्र ३१ में है; वास्ते गुणवंतकों आचार्य पदवी दैनी. अवीभी संवत १९४२ के काती वदि पंचमीके रोज मुनिमहाराज श्री आत्मारामजी महाराजकों श्री सिद्धाचलजीके उपर वहुत देशके श्रावक साधुओंने मिल एकमता करकें गुणवंत जानकरें उन्होंको सूरिपद दिया गयाथा. (मैंभी वहां हाजिर था.) पचीश हजार जैनी इकठे हुवेथे और मुख्य मुख्य शहेरोंके विद्वान् श्रावकवर्गभी हाजिर था. उस वक्त आत्मारामजीकों विज्यानंदसूरि महाराज अैसे नामसें आचार्य पदपर नियत किये गयेथे. इसतरह लायक पुरुष मिल जावै तो आचार्यपद देकर पीछे साधुमंडल विहार करै-अैसा; व्यवहारसूत्रका फरमान है. वास्ते समस्त साधुसमुदायमेंसें जो पुरुष उत्तम-त्यागी, विरागी, ज्ञानवान् हो उन्कों आचार्य वनाकर उन्हके हुकम मुवाफिक चलना चाहियें. इस पंचमकालमें शुद्ध परंपरा चल सके वो तो दुष्कर है. श्री महानिशीथसूत्रमें युगप्रधान स्वामी होनेका अधिकार चला है वहांभी कहा है कि युगप्रधानस्वामी शुद्ध मार्ग चलावेंगे-और मेरी आज्ञाका हायमानपणा टाल देंगे फिर युगप्रधान स्वामी निर्वाण पहुंचे वाद मेरी आज्ञाका हायमानपणा होयगा. इस मुजब

कहा है. वास्ते जिस वक्त जो उत्तम पुरुष विद्यमान हो उन्को आचार्य पदवी देकर मार्ग चलाया रख्खे क्यों कि इक्कीश हजार वर्ष तक शासन जयवंत रहेवेगा असा मेरा समझना है

११७ प्रश्नः—एक परमाणमें कितने वर्ण होवे ?

उत्तर.—एक परमाणुमें एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श होते हैं असा कथन अनुयोगद्वारसूत्रकी छपी हुई प्रतके पत्र २७० में है पर्यायके पलटनेसें पांच वर्णका होता है, क्यों कि सत्ताके विषें पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, और आठ स्पर्श रहे हैं ये द्वादशनायरनयचक्रमें कहा है वास्ते सत्तामें होवें उसमें पुनरावृत्तिमें पांचों वर्णमेंसें एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श होवें सो पर्यायके पलटनेसें होते है.

११८ प्रश्न —गौतमपडघा तप करते हैं और चंदनबालाका अट्ठम करते हैं और जतीजीको व्होंराते है सो क्या करना ?

उत्तरः—गच्छाचार पयन्नाके बालावबोधमें कुगच्छके लक्षनमें कहा है कि विम तारनेके लिये लोगोंके पाससें इसतरहके तप करवाकर पैसा लेते हैं वो कुगच्छ है.

११९ प्रश्न—एक स्थितिस्थानकमें अध्यवसाय स्थानक कितने होवे ?

उत्तर—कम्मपयडीमें ५२ गाथेकी टीकामें असंख्यात अध्यवसाय कहे हुवे हैं—तीव्र—तीव्रतर—मंद—मंदतर आदि होवें

१२० प्रश्नः—जो गतिका आयुष बांधा हो वो कायम रहेवे कि फार फार हो सके ?

उत्तरः—भगवतीजीकी टीकामें अपवर्त्तनका अधिकार चला है वहां कहा है कि सातवी नरकका आयु बांधा है, मगर अध्यवसायके फेरफारसें छठ्ठ नरक कमी जास्ती हो सकती हैं. जैसे कृष्णमहाराज—वासुदेवने सातवी नरकका आयु बांधाथा, वो अठारह हजार मुनिके पद वंदनसें तीसरी नरकका हो गया इसी तरह चारों गतिमें फेरफार होवे, मगर इतना विशेष है कि देवलोकका बदलकर मनुष्यका न होसके, और नरकका बदलकर दूसरी गतिकाभी न होसके जो गतिहो उसीमेंही फेरफार हो सकता है

१२१ प्रश्न —वर्त्तमानकालमें आयुष कितना होवे ?

उत्तरः—जंबुद्वीप पन्नतिमें तो मुख्य वृत्तिसें १२० वर्षका कहाहै. और वहुतसे जीवोंका उतनाही आयु होता है. और नजरभी आताहै. क्वचित इस मर्यादासें विशेष आयुभी सुननेमें आता है ते इश उदयके यंत्रमें पहेले उदयमें अंतिम-युगप्रधान स्वामीका १२८ वर्षका आयु कहा है. उससे मालूम होताहै कि किसि किसि पुरुषका आयु १२० सेंभी विशेष वर्षका होता है. यह वात शतावधानी शा. रायचंद रवजीभाइए भद्रबाहु संहिता देखीथी उसमें उन्होंके कथनसें ऐसा था कि धन लग्नमें जिसका जन्म हो और उसमें चौथे मिनराशिका गुरू हो, ग्यारहवेमें तुलका शनि हो शुक्र हो और वो अपने योग्य अंशोंसे करके वलवान् हो, और आठवेमें कोइ ग्रह न हो, शनी और शुक्रकी दशामें जन्म हो तो २१० वर्षका उस जन्मकुंडलीवालेका आयु होवे. इससे सावित होता है कि कोइ जीवका विशेष आयुभी होता है और शास्त्रभी साक्षी देते हैं. फिर आवश्यककी वाइस हजारी टीकामें आर्यरक्षितसूरि महाराजने इंद्रका हाथ देखा, उसमें दोसो तीनसो वर्षतकका हाल देखकर—कहकर कहा कि 'यह तो इंद्र है.' वास्ते विशेष आयु हो तो कुछ विरुद्ध नहीं है. परमात्माके वचन कितनेक वहुत जीव आश्रित हैं. कितनेक जीव अपेक्षित हैं वो गुरु परंपरासें परंपरागत ज्ञानवाले पुरूष जानते है. सो वर्त्तमानकालमें परंपराका यथार्थ ज्ञान नहीं रहा है. आत्मार्थी पुरूषकों परंपरागत ज्ञान जाननेवाले गुरूका योग नहीं मिलता है. शास्त्रमे जों टीकाकारोंने ज्ञान दर्शायाहो वही जान सकते है. दूसरा क्या इलाज है ? ये पंचमकालका प्रभाव है. वास्ते दो शास्त्रमें भिन्न भिन्न अधिकार देखर श्रद्धाभ्रष्ट न होजाना. उन दोनुंके आशय खोजनेकी मिहनत करनी योग्य है. यों करनेसें किसी शास्त्रके अंदरसे या किसी पंडित द्वारा खुलासा मिल जायगा.

१२२ प्रश्नः—शुद्ध अशुद्ध क्षायक समकितके भेद किस ग्रंथमें किस जगह वतलाये है ?

उत्तरः—तत्वार्थकी टीकामें पत्र २० के अंदर या नवपद प्रकरणकी टीकामें केवलज्ञानी महाराजका शुद्ध क्षायक समकित कहा है, और छद्मस्थका—श्रेणिकादिकका अशुद्ध कहा है.

१२३ प्रश्न'—चार अनुयोग हैं उन्में निश्चय कौनसा और व्यवहार कौनसा ?

उत्तरः—आगमसार और नयचक्र तथा द्रव्यगुणपर्यायके रासमें चरणकरण अनुयोग, गणितानुयोग, धर्मकथा अनुयोग ये तीन व्यवहारमें कहे हैं और फकत द्रव्यानुयोग सो निश्चयमें कहा है और आचारांगजीकी शिलागाचार्यकृत टीकामें तो चरणकरण अनुयोगकों निश्चयमें कहा है और दूसरे तीन योग व्यवहारमें गिने हैं अब इन दोनुकी मतलब अपेक्षित समझी जा सकती है. आचारागजीका कहना है कि द्रव्यानुयोगसें स्वपरका ज्ञान हुवा, मगर परका त्यागना वो चरणकरण अनुयोगसें है. वो परवृत्ति छोड देवै तभीही आत्म प्रवृत्ति होवे, और वही आत्मधर्म है वास्ते ये सिद्ध निश्चय है फिर आगमसार वगैर'का कथन है कि द्रव्यानुयोगका जानपना नहीं किया है और द्रव्य चारित्र पालतों है, तो वो स्वपरका ज्ञान नहीं उस्सें आत्मा निर्मल क्यों कर होगा ? वास्ते द्रव्यानुयोगका ज्ञान होनेसें स्वपरका धर्म जान सकता है उसीसें वो निश्चय है, ऐसा अपेक्षासें है. बाकी वस्तुपनेसें तो अध पगू अलग अलग काम करनेकी इच्छा करे वो सफल नहीं हो सके जैसें कि पगू आखसें देखता है कि आग लगती है; मगर पॉव नहीं उससें वो चल सकता नहीं उसलिये वोभी आगमें जलवलके खाक हो जाता है. ओर अधा आग लगी देख नहीं सकता है उससें उसके पॉंव तो हैं मगर चलनेका उसके दिलमें नहीं आसकता उसीस वोभी जलवलके भस्म हो जाता है, वैसे अकेला ज्ञानवाला पंगू जैसा है. जैसें पगू, अधकों कहेवै कि आग लगी है वास्ते तु मुझे यहासें उठा ले तो मैं तुझे भागनेका रस्ता बताउ कि जिस्सें अपन दोनू बच जावे. ऐसा करे तो दोनू बचै इसतरह द्रव्यानुयोग और चरणकरण अनुयोग इन दोनुका योग मिल जानेसें शिघ्र मुक्ति फल मिल जाय

१२४ प्रश्न—नौकारशीका काल सूर्यादयसें दो घडी ? या हथेलीकी रेखा मालम हुवे बाद दो घडी ?

उत्तर—धर्मसंग्रहग्रथ कि जो मानविजयजीका बनाया हुवा है, ओर यशोविजयजी

उपाध्यायजीने उसका संशोधन किया है. उसमें कहा है कि चौविहारवाला शामके वक्त जब पिछला दो घडी दिन होवे तब चौविहार कर लेवे और प्रातःकालमें नोकारसी सूर्योदयसें दो घडी वाद करे. कदाचित् ऐसा योग न बनसके तो नोकारसी न करे; लेकिन सूर्यका धूप देखे विगर दंतधावन करे तो रात्रिभोजनके नियम भंग होनेका दोष लगे. इसपरसें समझ लेनेका है कि सूर्यका धूप मालूम होवे वहांतक तो नोकारसीका काल होताही नहीं, तो फिर सूर्योदयसेंही दो घडी सावित होचुकी. फिर शेन प्रश्नमें पत्र ८६ के अंदर प्रश्न ९१ वेमें लेख है कि सूर्योदयसें दो घडी कही हैं. और उसपर योगशास्त्रकी गवाह दी है. फिर उसी मुजब प्रवचन सारोद्धारकी टीकामें और पंचाशकजीकी टीकामें तथा श्राद्धविधिमेंभी सूर्योदयसें दो घडी पूर्ण हुवे वाद नोकारसी व्रत पूर्ण होवे ऐसा अर्थ मालूम होता है; वास्ते नोकारसी करके जल्दी दतवन करना सो दुरस्त नहीं.

१२५ प्रश्नः—प्रभुजीको वस्त्र पहनानेका अधिकार शास्त्रमें आता है और नहीं पहनाते हैं उसका क्या सबब है ?

उत्तरः—शेन प्रश्नमें इस विषयका प्रश्न २४ पत्र १७ में है कि जिनबिंबको वस्त्र पहनाना; परंतु प्रधान वस्त्र—आंगी प्रमुख आभरणकी तरह उचित करना दुरस्त है; मगर मस्तकपर रखना योग्य नही—इस मुजबका खुलासा है. इससें समझाजाता है कि कितनेक वर्षोसें प्रवृत्ति बंध होगइ है; लेकिन आंगी प्रमुखमें वपरास होती है. फिर शास्त्रमें किसी आचार्यने बंध किये एसा अधिकार मालूम नहीं होता है.

१२६ प्रश्नः—देवताको अवधिज्ञान कहांतकका होवे ?

उत्तरः—सौधर्म और इशान देवलोकके देवताओंको नीचा—पहेली रत्नप्रभा नरकतक होता है. सनत्कुमार और माहेंद्रके देवताओंको दूसरी शर्कप्रभा नरकतक होता हैं. ब्रह्म और लांतकके देवोंको (नीचा) तीसरी वालुप्रभा नरकतक होता है. शुक्र और सहस्रारके देवोंको नीचा—चौथी पंकप्रभा नरकतक होता है. आणत और प्राणत देवलोकके देवोंको पांचवी धूम-

प्रभातकका अवधिज्ञान होता है आरण और अच्युत देवलोकके देवोंको ६ तमप्रभा नरकतक होता है और पहेलेसें लेकर छठे ग्रैवेयकके देवोंको-भी धूमप्रभातकका ज्ञान होता है, लेकिन वो बारहमे देवलोकके देवोंसें विशुद्ध विशुद्ध देखै ७-८-९ ग्रैवेयकके देव सातवी तमतमा नरकतक देखें अनुत्तर विमानके देव भिन्न चौद राजलोक देखें यानी चौद राजलोकमें कुछ न्यून देखें वे देव तीर्छो असख्यात द्वीप समुद्रतक देखे, मगर उचा अपने विमानकी ध्वजा तलक देखे भुवनपति व्यंतरदेवोंमें अर्द्ध सागरोपममें कुछ कम आयुवालेकों तीर्छा सख्यात योजनका ज्ञान होवे. अर्द्ध सागरोपमसें उपरके आयुवालेकों तीर्छा असख्यात योजनका ज्ञान होवे दस हजार वर्षका आयु होवे उसें पचीस योजनका ज्ञान होय असख्यात वर्षके आयुवालोंको असख्यात योजनका तीर्छा ज्ञान होता है. इस मुजब नदीसूत्रजीकी टीकामें पत्र १७८ (छपी हुइ मतके अदर) में और आवश्यकजी मतमें कहा है

१२७ प्रश्न'—तीर्थंकरजी कोनसे आरेमें होवे ? और कौनसे आरेमें सिद्धि वरें ?

उत्तर'—छपीहुइ नदीसूत्रजीकी मतके पत्र २०८ में कहाहै कि ऋषभदेवजी अवसर्पिणी कालके तीसरे आरेमें तीन वर्ष साढेआठ महीने बाकी थे उस वख्त मोक्ष पधारेथे. और दूसरे सभी तीर्थंकरजी चौथे आरेमें हुवे. अंतिम प्रभु महावीरस्वामीजी चौथे आरेके तीन वर्ष साढेआठ महीने बाकी थे उस वख्त निर्वाणपद पा चुकेथे त्योंही आती चौवीसीमें तीसरे आरेके तीन वर्ष साढेआठ महिने व्यतीत हुवे बाद तीर्थंकरजीका जन्म होगा और तीसरे आरेमें तेइस तीर्थंकरजी होवेंगे चौथे आरेमें चौइसवे तीर्थंकरजीका जन्म होगा और निर्वाणभी होगा और दूसरे सामान्य केवली दूसरे आरेके जन्मे हुवे तीसरे आरेमें केवलज्ञान पावे सो वर्त्तमानकालमें, चौथे आरेके जन्मे हुवे पाचवे आरेमें केवलज्ञान पाये यह मर्यादा है

१२८ प्रश्न'—मनुष्य गर्भजकी सख्या कितनी कही है ? और सामान्य मनुष्यकी कितनी ?

उत्तर —अनुयोगद्वार सूत्रजीकी टीकाके पत्र ४८८ में मनुष्य गर्भजकी सख्या छः

वर्गसें जितनी रकम होवै उतनी कही है. उस वर्गकी समझ ऐसी है कि एकका वर्ग होता नहीं, उस्से दोका वर्ग चार होवै ये पहिला वर्ग. चारका वर्ग सोला होवै ये दूसरा वर्ग. सोलाका वर्ग २५६ होवै ये तीसरा वर्ग. २५६ का वर्ग ६५५३६ होवै ये चौथा वर्ग. इसका पांचवा वर्ग करनेसें ४२९४९६७२९६ होवै. ये पांचवा वैका वर्ग करनेसें १८४४६७४४०७३७० ९५५१६१६ होवै ये छठ्ठा वर्ग. इसके साथ पांचवे वर्गकी अंदरका वर्ग करनेसें ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ संख्या होवै. इतनी संख्यासें उत्कृष्टपदसें गर्भज मनुष्य कहे हैं. और उत्कृष्टपदसें समूर्छिम गर्भज एकत्र गिननेसें असंख्यात कहे हैं. ये मनुष्य अढाइ द्वीपमें मिलकर होवैं.

१२९ प्रश्नः— अढाइ द्वीप किसतरह कहे हैं ?

उत्तरः—अपने निवास करते है सो जंबूद्वीप है. उनकों वीचसें नापो तो लाख योजनका होवै. ये गोलाकार है. इसके चोगिर्द लवण समुद्र है वो दो लाख योजनका है. उसके पीछे धातकी खंड नामक द्वीप है वो चार लाख योजनके विस्तारका है. उस्में मनुष्य हैं. उसके चोगिर्द आठ लाख योजनका कालोदधि समुद्र है. उस पीछे सोला लाख योजनका पुष्करावर्त्त द्वीप है—उसमें अर्द्ध विभाग मनुष्यकी वस्तीवाला है. इस सवबसें अढाइ द्वीप है. अढाइ द्वीपके सिवा मानवकी वस्तीही नहीं, उस्सें दूसरेकी गिनती लक्षमें लेने योग्य नहीं—आगे असंख्यात द्वीप समुद्र मनुष्यकी वस्ती विगरके है.

१३० प्रश्नः—जिन मंदिरमें दीपक खुल्ले रख्खेजाते हैं सो योग्य है या नहीं ?

उत्तरः—इकीस प्रकारकी पूजामें सकलचंदजी उपाध्यायजीने लालटेनमें दीपक रखनेका कहा है. फिर भद्रवाहुकृत पूजाप्रकरणमेंभी कहा है कि दीपक इस तरकीवसें रखना कि प्रभुजीकों गरमी न लगै. जैसें अपनकों गरमी लगती है वैसाही समझकर प्रभुजीकों दीपककी गरमी न लगे उस तरह रखकर दीपक पूजा करनी. गृहस्थ अपने मकानमेंभी खुल्ले दीपक नहीं रखते है और जिनमंदिरमें खुल्ले रख्खे तो अन्यदर्शनीभी कहने लगें कि—

' श्रावकलोग देवके आगे तो दीपक खुल्ला रखते है और मकानमें ढके, हुवे रखते हैं ये क्या ? यहभी लघुताका कारण है फिर पचाशकजीमें कहाहै कि जिनपूजनमें जितनी यतना होवै उतनी करनी-उसमें प्रमाद नहीं करना इसपरसे किसीके दिलमें आयगा कि क्या बिल्कुल दीपक करनाही नहीं ? पानी पुष्प नहीं चडाना ये समझना भूलभरित है सबब कि स्थावरकी हिंसाका कुछ श्रावकके त्याग नहीं-त्रसकी हिंसाका त्याग हैं. पुन' प्रमाद करे तो त्रसकी हिंसा होवे और प्रमाद छोडदेवे तो प्रभु भक्तिमें त्रसजीवकी हिंसा नहीं होवे स्थावर विगर तो भक्तिही नहीं बन सकती. फिर श्रावककों अष्टद्रव्यसें भक्ति करनी महा निशिथजीमें और आवश्यकसूत्रजी वगैर'में योग्य कही है, वास्ते विस्तारयुक्त भक्ति करे तो बहुत लाभ उपार्जन करे-जिस्सें प्रमाद छोडकर भक्ति करनी.

१३१ प्रश्नः—मंदिरके खात मुहूर्त्त करनेकी जगह देखनेकी रीति जैनोंकी और अन्य दर्शनियोंकी समान है या अलग है ?

उत्तरः—विक्रम राजाके वक्तमें कालीदास पंडित हुवाथा उसने ज्योतिर्विदाभरण नामके ज्योतिषशास्त्रका ग्रंथ बनाया है और उसकी टीका जैनाचार्यने कि है उसमें जैनकी रीति अलग बतलाइ है उसी मुजब आरंभसिद्धिनामक जैन ग्रंथभी है पुन. ज्योतिर्विदाभरणमें प्रतिष्ठाके नक्षत्रोंमेंभी जैनोंके नक्षत्र अलग बतलाये हैं (इसपरसें ढुंढीए लोगोंकोंभी खियाल करना चाहियें कि अन्यदर्शनीभी दो हजार वर्ष करीब पर जैन चैत्य सिद्ध करते है)

१३२ प्रश्नः—सामायिकमें घडी रखते हैं वो आज्ञा है ?

उत्तर'—वृन्दारुवृत्तिमें घडी रखनेकी कही है और उसमें नीशीथजीकी चूर्णीकी गवाह दी है

१३३ प्रश्न.—श्रावककों चरवला और मुहपत्ती रखनेकी मर्यादा शास्त्रसमत है ?

उत्तर.—यशोविजयजीकृत आवश्यकका बालावबोध है उसमें, और अनुयोगद्वारजीकी छपी हुइ टीकाके पत्र ७८ में वो समती है फिर श्राद्धविधि निश्चय ग्रंथमें अचलगच्छकी चर्चामेंभी अच्छीतरहसें वो बात स्थापित की है.

ज्ञान–श्रुतज्ञान है. क्यौं कि केवलज्ञान पानेके पेस्तर क्षपकश्रेणी मांडते हैं उसमें प्रथम श्रुतज्ञानसें चिंतन करते हैं उससें अपूर्वभाव प्रकट होते हैं, और स्वाभाविक ज्ञान होता है; वास्ते ये सव होनेका कारण श्रुतज्ञान है. और वो श्रुतज्ञान ज्ञानावर्णी कर्मके क्षयोपशमसें होता है. ज्ञानावर्णी कर्मका क्षयोपशम ज्ञान पढनेसें–पढानेसें–पाठ करनेसें–ज्ञानवानका–पुस्तकका–ज्ञानके उपकरणोंका विनय करनेसें या पुस्तक लिखवानेसें या विद्याशालाअें खोलनेसें और श्रावकोंको पढानेसें तन मन धनकी जैसी शक्ति हो उस मुजव खुदकों और दूसरोंकों ज्ञानकी वृद्धि होसकै वैसी प्रवर्त्तना करनी, उस्सें ज्ञानावर्णी कर्मका क्षयोपशम होवै और ज्ञान प्रकटै. जिसकी धन संवंधी ताकत हो तो धन ज्ञानमें व्यय करै. जिसकी शरीर संवंधी ताकत हो तो शरीरसें ज्ञानकी संभाल रख्खे. जितनी जितनी वने उतनी शरीरसें सेवा भक्ति करै. जो जो ज्ञान संवंधीके कामकी मिहनत करनेकी हो सो करै. फिर मनकी शक्तिवाले यानी पढेले होवै सो दूसरोंकों पढावे. दृष्टांत युक्तिसें करकें ज्यौं समझसकै त्यौं समझानेका उद्यम करै; मगर स्वार्थही किया न करै. ये लक्षण ज्ञान निकट होनेके हैं; वास्ते नजदीकमें ज्ञान होनेवाले तो इस तरहसें वर्त्तन रख्खै यानी ज्ञानके काममें जरुर पैसा व्यय करै. लेकिन जिनकों ज्ञान प्रकट होना दूर है वै जीव तो विचित्र काम करते हैं. कितनोंकों तो मैने समझाये हैं उन्होंने मुझकों जवाव दिया कि शास्त्र तो वहुत है, उन्हकों इस दुनियांमें पढने –वांचनेवालाभी कौन है? वहुतभी पुस्तकें सड फट पसारीके दुकानकी पुडियां होनेका संस्कार पाते हैं. फिर कोइ कहते है कि हमकों कुछ पढते आता नहीं तो पुस्तकोंकों हम क्या करे? ऐसे अज्ञानताके ज़ोरसें अनेक तरहके जवाव देते हैं. फिर शासनमें कितनेक कारभारी होते हैं उनके तावेमें पैसे होते हैं, वो पैसे इकठे कर वढायेजाते हैं; मगर उन पैसेके अंदरसें ज्ञानके काममें खर्चते नहीं. व्याज उपार्जन कर रकम वढायेजाते हैं. कोइ ज्ञानमें खर्चनेकी प्रेरणा करै तौभी आपकों ज्ञानावर्णी कर्मका उदय है उसके प्रभावसें उत्साहयुक्त पिराये पैसेभी ज्ञानमें नहीं खरचते हैं और

कारण सिवा जीव ज्ञानावर्णी कर्म बांधता है. उस जीवपरभी ज्ञानवानकों तो करुणा ल्यानी चाहिये, मगर द्वेष नही ल्याना, क्योंकि वो जीव क्या करे? कर्मराजा मार्ग दवै नहीं और इस भवमें तो समकित विगर बुद्धिवान गिनाये हैं, लेकिन उसकी भवितव्यता ऐसीही है कि आते भवमें ज्ञान विशेष आच्छादन होजानेका है उस्से उन विचारकी बुद्धि ऐसी होती है फिर ज्ञानवंतोंने ऐसोंकों समझाने चाहिये मगर भाय कितनेक कारभारी धनवान होने उस्से उनको कहनेकों जाय तो उलटा ज्यादे द्वेष प्राप्त होवें इससें ज्ञानवानकोंभी मौन होकर बैठना पडता है अब पैसेके देनेवाले मनुष्य तो ज्ञानमें खर्चनेकों देते हैं, तथापि वो पैसे न खर्चनेसें उन्हका विश्वास उठजाता है. फिर एसी खबर पढनेसें जो पसेके खर्चनेवाले होते हैं वैभी ज्ञानके काममें खर्चते नहीं–और कहते है कि ज्ञानके पैसे हम देते हैं सो गोल्कमें गुम होजाते हैं ऐसे अनेक कारण मिलजानेसें ज्ञानमें पैसे खर्चनेके बंध होगये हैं, मगर लाइल्लाज है तथापि आत्मार्थीओंकों तो सातों क्षेत्र है उनमें छउ क्षेत्रकों पहिचान करानेवाला ज्ञान है वास्ते ज्ञान जेसा कोइभी क्षेत्र नहीं है मरणके समयभी जीव लख्खो रुपै मान प्रतिष्ठाके वारे शुभ काममें व्यय करते हैं, मगर ज्ञानमें व्यय नहीं करते है, यु आत्मार्थीकों न करना आत्मार्थीयोंकों तो ज्यादे भाग ज्ञानमें व्यय करना, सबबकि दूसरे क्षेत्रमें कितनेक आत्मार्थ और कितनेक मानके खातिरभी खर्चते है, उस्से वे काम तो चलतेही रहते हैं, उसमें हरकत नहीं और ये ज्ञानक्षेत्रमें तो बडी अडचण है कि ज्ञानके पुराने भंडार है, उसमेंसें कितनेक भंडार ऐसे शेठिये या साधुवोंके अख्त्यारमें हैं कि कोइ कुछ वाचनेकेलिये भत मगे तो एक पत्रभी नहीं देते हैं. पुस्तक सडजाते है; मगर उस पुस्तकसें किसीका उपकार होनेवाला नहीं फिर कितनेक भाग्यशालीओंके हाथोंमें भंडार हैं तो वो पुस्तक आत्मार्थीओंके उपयोगमें आता है; लेकिन कुछ चीजकी कालस्थिति है वास्ते पुस्तकोंकोंभी विशेष वक्त होनेके सबबसें उन्हका नाश होनेका संभव है. तब जो नये लिखाये जाते होंवे तो अगाडी पिछाडी तयार होतेही रहें और ऐसा

न होवै तो अवी जो शास्त्रोंके नाम कायम हैं; लेकिन वो पुस्तक मिलतेंही नहीं, या तो कितनेक अपूर्ण पुस्तक हैं, और कितनेक पुस्तकोंकों दीमग लग जानेसें निकम्मे होपडे हैं अगर जीर्ण होगये हैं ऐसा हुवा है. फिर वैसा जास्ती जास्ती हुवा करे तो अखीरमें क्या हाल होय सो आपही शोच लीजीयें. फिर ऐसाभी कोइ स्थल नहीं है कि सवी पुस्तक एकही जगह मिलजावें. ऐसी पुस्तकोंकी दशा हुइ है; वास्ते आत्मार्थीओंकों तो ज्यों वनसके त्यों ज्ञानमें खर्चकर सवी पुस्तक एकही जगहसें प्राप्त होय ऐसा करना चाहियें. ये काम वडे धनवानोंका है, अगर तो विशेप मनुष्य मिलकर करै, या तो ज्ञानद्रव्य होय उनमेंसें करै. लेकिन यह विचार जिनकों निकट ज्ञानि होगा उनकोंही मालुम होयगा, दूसरोंका तो उधर ध्यानही नहीं जायगा. मुझकों तो मेरे भाग्योदयसें मैं दस वर्षका हुवा जवही सें ज्ञानमें पैसा व्यय करनेकी वुद्धि ऐसी हुइ कि जितने पैसे ज्ञानमें खर्चुं उतने दूसरे काममें खर्चनेका चितही न होवै; मगर ऐसी वुद्धि होनेसें मेरे गांवमें कोइ पढानेवालेका योगही नहीं. मुनिमहाराजका आगमनभी नहीं और पढेहुवे श्रावक प्रेरणा करनेवालेभी मिले नहीं; तोभी नाम मात्र कुछ जैनधर्मका ज्ञान प्राप्त हुवा, वो सवी फल ज्ञान पर प्रेम होनेकाही है.

फिर इंग्रेजलोग परदेशी हैं, धर्मभी भिन्न है तोभी इस देशके लोगोंकों कला-हुन्नर शिखलानेके वास्ते हजारां रुपै खर्चते हैं तो उससें उन्ह लोगोंकों कितना क्षयोपशम हुवा है कि अनेक प्रकारकी विगर देखी हुइ कलाओं ढुंढ निकालकर नइ वस्तु अनेक हाथ हुइ है-होती जाती है और जिसका कृत्य समझमेंभी नही आ सकता है. इतनी वुद्धि मिलनेका कारण येंही है कि ज्ञानका उत्तेजन करनेमें अत्युत्साह है. इसपरसें शोचनेका है कि संसारी ज्ञानके उत्साहसें इतना लाभ मिलता है तो वीतरागके ज्ञानकी वृद्धि करनेसें कितना लाभ होवै ? वास्ते आत्माका हित करनेके लिये, अपने लडकेकों और दूसरेकों हित होय उस वास्ते जैनशास्त्र पढाना. जैनशास्त्र पढनेसें सव काममें वुद्धि वढेगी और पढानेवालेकों लाभ

होगा फिर पुस्तक बिगडते होवें तो उसकी सभाल रखनी जैनके तमाम शास्त्र अमरपट्ट पावें ऐसा करना चाहियें पजावसें आत्मारामजी महाराज गुजरातमें आये और शास्त्र थे सो देखे और वो देखकरकें ज्ञान मिलाकर समस्त देशोंका उन्होंनें उपकार किया. यवनके मुल्कमभी उन साहबने जैनधर्म प्रसिद्ध किया और जैनका बहुत मान्य करवाया उसमें निमित्त कारण शास्त्र थे तो ऐसा हुवा. न होते तो वैसा न हो सकता अपनकों पढते-वाचते न आता होवें तो कुछ हर्ज नहीं पुस्तक होगा तो वाचनेसें बहुतसे पुरुषोंकों लाभ होगा.

१३६ प्रश्न'—नातरे-गाधर्वविवाह करनेका रीवाज हिंदुवोंमें न होनेसें स्त्रीए बालहत्या करती हैं तो वैधव्य हुवे पीछे दूसरा पती करनेका रीवाज हो तो अच्छा कि नहीं ?

उत्तर'—दूसरा पती करना सो तद्दन शास्त्र विरुद्ध है फिर तुम बालहत्या होती है उसलिये विधवाविवाह शुरु होनेसें वो हत्या रुकजाना मानतेहो, लेकिन मेरे एक सेसनजज्जके साथ गुफतगो हुइथी जब मेंनें पुछाथा कि—' आपके हजूर खूनके मुकदमे आते हैं उसमें स्त्रीओंकी खटपटके खून बाबत जियादे मुकदमे आते है ? या उस सिवाके जियादा आते है ? ' उन्होंने जवाब दियाथा कि—' स्त्रीओंकी खटपटके खून सबबी जियादे मुकद्मे आते है ' फिर मेंनें दूसरा सवाल किया कि—'जिसकी ज्ञातीमें नातरे होते है उसमें स्त्रीआकेलिये विशेष खून होते है या नातरे विगरकी ज्ञातीमें विशेष खून होते है ? ' जवाब मिला कि—' नातरेवाली ज्ञातीमें स्त्रीके सबबी विशेष खून होते है ' अब इसपरसें सोचनेका है कि—स्त्रीओं जैसी निर्दय जाति दूसरी नहीं है शास्त्रमें एक कथा वाचीथी जिसमें—एक राजा दशहरेके दिन मातासों नमन करनेकेलिये गयाथा, वहां माताने आशिर्वाद दिया कि ' स्त्री जैसी छाती (कठोर) होना ' राजाकों वो वचन नापसद होनेसें राजाने मातासें पूछा कि—'ऐसी आशीष क्यों दी?' माताने कहा—'स्त्री जैसी कठोर छाती पुरुषकी नहीं होती है उससें ऐसी कठोर छाती होनेका आशिर्वाद दिया—उसका मतलब यही है कि—तु हुकम

कर कि जो अपनी औरतका शिर काटकर ल्यावै उसकों मैं आधा राज्य दुंगा. पीछे आशीपका मायना पूरा पूरा मिलजायगा.' राजानें वैसाही किया; मगर किसी पुरुषने अपनी स्त्रीका शिर काटकर हाजिर न किया. दूसरी दफै ढंढेरा फिराया कि–' जो औरत अपने खाविंदका शिर काट लावै उसकों आधा राज्य दियाजायगा.' वो सुनकर वहुतसी स्त्रीयें अपने खाविंदके शिर काटकाटकर लेआइ. राजाके दिलमें खियाल हुवा कि स्त्रीके समान कोइ क्रूर नहीं. इस कथापरसें समझनेका हैं कि स्त्रीकों नातरेकी छूट्टी दीजावै तो ऐसी क्रूरता अमलमें लेवै. पुरुषकों पाणीग्रहण करनेकी (दूसरी दफै) छूट्टी है, तोभी क्रूरता अमलमें नहीं लेवै और स्त्री निर्दयता तुरत अमलमें लेवै; वास्ते नातरेकी छूट्टी नहीं दी है. क्यौं कि आपके खाविंदका खून करनेमें या करानेमें अपना लाभ तपासती है कि जन्मभर पहनने–ओढनेका और खानेपीनेका सुख चलाजायगा और वैधव्यपना भुक्तना पडेगा उस्से बने वहांतक खून न करै. और नातरेकी छूट्टी होवै तो खाविंद मरजायगा तो मैं नातरा करलुंगी–दूसरा खसम कर वैठुंगी–यानी आपके सौभाग्य सुखमें न्यूनता होनेकी नहीं उस्सें धणीकों मारडालनेमें नहीं डरै–और वडे लोगोंकाभी खून करै. फिर वालहत्या तो कमती होती नहीं; क्यौं कि अभी नातरे नहीं करते हैं तोभी वर न मिलनेसें कितनीक ज्ञातीमें कन्याअें वडी उमरतक कुंवारीही रहती हैं. और नातरे होवै तो उसकी एवजीमें उतनी कन्याका विशेषपणा होवै, वै वडी होवै तव वदचलनवालीही होवै उस्से गर्भपात करै. मेरे सुननेमें आयाहै कि अभी इंग्लॉडमें कुंवारी कन्याये वहुत हैं और वै वालहत्याअें करती हैं. त्यौंही यहांपरभी इज्जतदार उच्चकोमके अंदर नातरे न होनेसें अच्छा है, नहींतो वाल–हत्या और वडोंके खून ये दोनुं जारी रहैं; वास्ते पूर्व पुरुषोंने जो रीवाज रक्खा है वोही अच्छा–वहेतरी है. कोइ ऐसा सवाल करेगा कि ब्राह्मणोमें पेस्तर नातरे होतेथे, तो उस विषयमें समझना कि जैसें अभी कितनेक मनुष्य नातरे–पुनर्लग्नमें फायदा मानते हैं वेसें उसी वक्तमेंभी माननेवाले होंगे उन्होंने वैसा किया होगा. और

बालहत्या, जुवानहत्या इन दोनुका शोच करनेवाले सुज्ञ जनोने यह बात अंगीकार न की उससें वही रीवाज चालु रहा सो अद्यापि चलता है, वो फिरानेमें कुछ फायदा नहीं मगर नुक्शान है पुन अपन जैनधर्मीओंको तो ज्यों बनसकै त्यों विषयवासना कमती हो कामसें मुक्त हुवा जाय वैसा करना योग्य है, और वो प्रत्यक्ष देखतेही हैं कि-जितनी विधवाएं धर्मसाधन करती हैं और ससार छोडकर दीक्षा लेती हैं उतनी सौभाग्यवती स्त्रीए नहीं करसकती है. जबराइसें शील-कुलकी मर्यादासें पालन कियाजाय तोभी महा नीशीथजीमें धन्य कृतार्थ कहेगये हैं, वास्ते शील पालनेमें बडा फायदा है-वो नातरेकी छूट मिलनेसें बंध होजाता है. बहुतसी विधवाएं तो चिंतन करती है कि मेरे जहांतक खाविंदका योग था वहातक तो मेरा चित्त विषयसें विरक्त न हो सकताथा, मगर अब आपही आप स्वामी न होनेसें शील पालन कियाजायगा ऐसी सुंदर भावनाका चिंतन करती हैं और आत्माकों निर्मल करती हैं वो नजरसें देखतेही हैं. फिर जिसकी न्यातमें नातरे होते है उनमें ऐसी उत्तम भावना आनेकीही नहीं और उन्हेंमेंभी जो विशेष खानदान होती हैं, वो दूसरा घर नहीं करती है वोभी देखते है, वास्ते नातरेमें लाभ दर्शाते है सो बेमुनासीब है

१३७ प्रश्नः—आत्मा निर्विकल्प है कि सविकल्प है ?

उत्तर.—आत्मा निर्विकल्प है विकल्प करना सो जडकी सोबतसें आत्माका उपयोग बिगडनेसें होता है.

१३८ प्रश्न—बारह भावना और चार भावनाका चिंतन उपयोगमें लैना उसमेंभी विकल्प करनेमें आता है ?

उत्तरः—वे विकल्प हैं सो निर्विकल्पदशाकों ल्यानेवाले हैं, वे प्रथम अवस्थामें आदरने योग्य हैं जब शुक्लध्यानका दूसरा पद ध्यावें उस वक्त अभेदज्ञान होता है, तब विकल्प दूर हो जाते हैं मगर शुक्लध्यानका प्रथम पद ध्यानेमें अव्वल श्रुतज्ञानका चिंतन होता है उससें असग अनुष्ठान रूप यानी कुम्हार जैसें चक्र हिलावै और उस्सें वो पीछे आपहीआप

फिरने लगता है, वैसें श्रुतज्ञानसें शोचे बाद सहज दशा प्रकट होती है तब स्वाभाविक ध्यान होनैसें अभेद ज्ञान प्रकट होवै. वहांसें निर्विकल्प दशाके अंश प्रकट होते जाते हैं; लेकिन जब दूसरा पद ध्यावें तब विशेष निर्विकल्पदशा प्रकटती है और जब केवल ज्ञान प्रकटता है तब पूर्ण निर्विकल्प दशा प्रकटती है.

१३९ प्रश्नः—केवलज्ञान तो निर्विकल्प दशासेंही प्रकटता है, तब विकल्परूप भावना और पूजा प्रतिक्रमण करना वो तो विशेष विकल्प सहित रहा वो करनेसें क्या लाभ?

उत्तरः—भावना वगैरः जो जो करणी हैं उसमेंभी अंश अंशसें निर्विकल्पदशा होती है. पूजनसामग्री लानेमें द्रव्य व्यय किया जाय वो द्रव्यपरसें मूर्छा उतरती है और निर्विकल्प दशाके अंश प्रकटते हैं. फिर संसारका राग छूट जावे तब प्रभुपर राग होता है. तब संसारके उपरसें जितना जितना राग कमती होवे वो निर्विकल्प अंश है. पुनः देह पूजनमें काम आती है वो वक्त विषयमें नहीं काम आती है तो विषयमें काम लगानेकी इच्छा दूर हुइ वो निर्विकल्प अंश है. वैसेंही पडिक्कमणेमेंभी संसारपरसें चित्त हठाकरकें पुद्‌गल दशासें भाव उतारकर व्रत अंगीकार किये हैं तथापि चित्तके पलटनेसें कुछ परभावकी प्रवृत्ति करनेके सबब दूषण लगता है वो चित्त स्वात्म दशाका होनेसें अरुचि मालूम होती है उससें परभाव वृत्तिकी निंदा करता है. तब वो निंदा करनेंमे पुद्‌गल दशाका अरुचकपना बनता है और निजस्वभाव सन्मुख होता है वोभी निर्विकल्पदशाके अंश हैं. तसेंही पौषधमें और भावना भावै उन भावनाओंमें भावनेका सर्वत्र इतनाही है कि पुद्‌गलदशा जो विभावदशा विकल्पमय है उसमें अनादिके अभ्याससें मेरापना मान लिया है वो हठ जाय, तब विभाववस्तु आत्माकों अच्छी न लगे, और अनादिकी अच्छी लगतीथी वो कुछ मिथ्यात्व पुद्‌गल हठ जानेसें होता है. जितने मिथ्यात्वके पुद्‌गल हठ गये वो स्वात्मभावमें वर्त्तनेका भाव हैं उतने निर्विकल्प अंश प्राप्त होते हैं; वास्ते जो जो जीव धर्मसाधन आत्म सन्मुख होकर करते हैं

उनमें अश अशसें निर्विकल्पदशा प्राप्त होती है. वैसेंही ज्ञान जो शास्त्र वाचना येभी आत्माकी स्वदशाका शोच करें तो निश्चय नयसें आत्मा केवलज्ञानमय है उनकों पढनाही क्या? मगर आत्मा केवलज्ञानमय है वो शास्त्र सुन्नेसें-वाचनेमे जानता है याने ज्ञानद्वारा वो वात समझनेमें आती है अब यहाभी अनादिकालका जीवका उपयोग शास्त्र सुन्ने वाचनेका आत्माकी पहिचान होनेके लिये नहि था, मगर जब आत्माकी साथ आवरण करनेवारे मिथ्यात्वके पुद्गल थे वो हठ गये तब आत्मधर्म जाननेके लिये शास्त्र सुनने वाचनेकी रुचि हुइ तब यहाभी आत्मा निर्विकल्पमय था उसके अश खुल्ले हुवे वाद अनुक्रमसें ज्यौं ज्यौं शास्त्र सुन्ने-वाचने-मनन करनेका विशेष दिल हुवा, त्यौं त्यौं आत्माके आवरण हटते चले और जीव निर्विकल्प हुवा लेकिन जीवकों प्रथमसेंही निर्विकल्पदशा नहीं होती है, वास्ते निर्विकल्पी पुरुषोंने ज्यौं अनुक्रमसें गुणस्थानक वतलाये है उस मुजब क्रमसें गुणस्थानक चढकर निर्विकल्पी पुरुष जो भगवत् उन्होंने व्यवहाररूप चढनेकी रीति दर्शाइ है. उसके अर्थी जीव वर्त्तते हैं उसकों उसीमें जितनी जितनी निर्विकल्प अशकी दशा प्रकटती है उससें वो आनदमान होते हैं. और देवपूजा श्रावकके व्रत-मुनिके व्रत-प्रतिक्रमण-भावना-ध्यानादिक तमाम करणी अपनी निर्विकल्पदशाके लियेही करते है ऐसा करते करतेही अनुक्रमसें निर्विकल्पदशा पूर्ण होती है।

१४० प्रश्नः—आत्मा परभावका अकर्त्ता कहा है और ये प्रवृत्ति तो कर्त्ता पनेसें होती है वो कैसा?

उत्तरः—तुम्हारी वात सची है. निश्चयनयसें आत्मा परभावका अकर्त्ता है और व्यवहारनयसें कर्त्ताभी कहा है. व्यवहारनयसें कर्त्ता मान्य न करें तो आत्माकों आवरणभी न लगे और आवरण न लगें तो उसकों मुक्त होनेकाभी नहीं. जब मुक्त होनेका वाकीमें रहा नहीं तब तो सब जीव सर्वज्ञ जैसे होने चाहियें, वो तो मालुम नहीं होते। तब प्रभुजीने व्यवहार नयसें कर्त्ता कहा है सो सिद्ध होता है आत्मा व्यवहारनयसें कर्मके

योगसें कर्ममय परिणत हो विभावमय पुदगलकी करणी विषयकषायकी कररहा है. अब व्यवहारनयसें कर्मबंधके कारण सेवन करता है; मगर उसमेंसें भवितव्यताके योगसें कछुक स्वाभाविक कर्मसें हलका हुवा और जैसें कोठारमें अनाज कम भरै और ज्यादे निकाला करै तो सहजही कोठारमें अनाज कमती होजावे वैसेंही जीव विशेष कर्म भुक्ते और अ-काम निर्जरा करै–उससे नये कर्म थोडे बांधे उससें हलका होवे. वीतराग सर्वज्ञ पुरुषपर प्रीति जाग्रत होवै और सत्संग करै. सत्संगसें अपने आपका स्वरुप सुने कि निश्चयनयसें तो मेरा आत्मा सर्वज्ञतुल्य है. जो ऐसा आत्मा न रहा होवै तो आत्मा कोइ दिन शुद्ध न होवै. आत्मा आच्छादित होता है वो जैसें स्फटिकके नीचे जैसा डांख रख्खाजाय वैसे रंगका वो मालूम होता है; मगर वो डांख निकलजावे तो जैसा नि-र्मल है वैसाही मालूम होवै. लेकिन ऐसा डांख एक रुप न हुवा है कि पुनः स्फटिकका रुप प्रकटही न होसकै. उसी तरह आत्माकों ऐसे कर्म नहीं लगे है कि कभी विशुद्धि होवेही नहीं. कर्मके आवरण ज्यौं ज्यौं दूर हठते जाय त्यौं त्यौं विशुद्ध होवै और वो प्रत्यक्ष अनुमान होता है कि जैसें कोइ जीव ज्ञानका विशेष अभ्यास करता है तो विशेष विद्वान होता है तो यदि अभ्याससें आवरण दूर नहीं हठते होवै तो बुद्धिमान क्यौंकर होय ? मगर ऐसे आवरण है कि आत्मतत्त्व प्रकट करनेका अ-भ्यास करै तो आवरण नाश होवै; वास्ते आत्माकी स्वाभाविक दशा कायम है, जाती नहीं रही वो प्रकट करनेकेलिये व्यवहारनयसें गुणस्था-नका व्यवहार प्रभुजीने बतलाया है त्यौं करना, और वैसा अभ्यास क-रनेसें आत्मा शुद्ध होवैगा. और निश्चयनयसें अकर्त्ता कहा है वोभी है. यदि अकर्त्तापनेका निज स्वरुप न जाने तो शुद्ध करनेकी बुद्धि होवैही नहीं. और जो विभाविक करणी है वो तो मेरे कर्त्तापनेसें करने योग्य नहीं ऐसा समझे. वास्ते निश्चयनयकी तर्फदारी हृदयमें अच्छी तरहसें रख्खे; मगर निश्चयनयसें आत्माविभावका कर्त्ता है ऐसा जब तलक जीव जाने तब तलक आत्मा शुद्ध करनेकी बुद्धि होवैही नहीं. जहांतक आत्मा पुद्गल भावका समझे वहांतक शरीरकों दुःख होवे तो मुझकों दुःख

हुवा है, धन गया तो मेरा धन गया है, स्वजनका वियोग हुवा तो मेरे सगे मरगये हैं अब क्या करुगा ? मेरा घर जातारहा, मेरा वस्त्र बिगड-गया, मुझकों मारा, मुझे गालियां देता है, ऐसें परवस्तुमें मेरापना मनमें मानरहा है वो जड पदार्थमें मेरापना मानता है–उसका कर्त्तापना मानता है मैंने सुखी किया–करवाया, मैंनें दुःखी किया, ऐसा मानता है उसका त्याग करके निज स्वभावमें रहना निश्चयनयसें स्वभावका कर्त्ता जानकर विभावका कर्त्तापना छोड देना

१४१ प्रश्न.—आत्मा निर्विकल्प और अकर्त्ता होनेपरभी कर्त्तापनेसें व्रत, पच्चख्खान, प्रतिक्रमण करें, शास्त्र वाचें और उससें अकर्त्ता निर्विकल्पता होवे वो क्यौं घटना हो सके ?

उत्तर —कर्म है सो परवस्तु है जैसें कोइ मनुष्यकों कांटा लगा है, वो कांटा परवस्तु है, फिर नाखुन उतारनेके ओजारसें कांटा निकालता है वो ओजारभी परवस्तु है, तो परवस्तुसें परवस्तु निकलती है, वैसें आत्माकों जो कर्म लगे है वो परवस्तु परवस्तुके योगसें निकलजावे और हरएक वस्तु अनुक्रमसें शुद्ध होती है वस्त्रकों मैल लगा है वो परवस्तु है उसकों क्षारादिक परवस्तुके योगसें शुद्ध–साफ करें तो शुद्ध होवै हीरे वगैर' रत्न पदार्थ है वो खानेंमेंसें निकालेजाते है तब मैले होते हैं, उनकों घिस-कर साफ करनेके ओजार लगें तब वो मेल दूर होजाता है और शुद्ध रत्न प्रकट होते हैं उसमेंभी तमाम मैल पहेला नहीं चलाजाता है, पहेलें तो अल्प अंश जाता हैं, मगर घिसनेका अभ्यास करनेसें क्रमसें करके सब मैल चलाजाता हैं, लेकिन मैल दूर करनेमें परवस्तुका योग चाहियें, वैसें आत्माभी कर्मसें आच्छादित हुवा है उससें आत्माकी निर्विकल्प दशाभी मालूम नहीं होती, अकर्त्तापनाभी मालूम नहीं होता वो आच्छा-दित हुयेका प्रभाव है वो ढकन दूर हटानेके वास्ते जिस तरह कपडा धोनेमें पहेले क्षार लगाते हैं, उससें ज्यादे मैला मालूम होता है, मगर व स्तुपनेसें वो क्षार मैलकों निकालनेवाला है, उसतरह व्यवहारकरणी दे-खनेमें तो परभावकी मालूम होती है, किंतु वस्तुपनेसें अंश अंशसें आत्माकों

शुद्ध करती है. ज्यौं ज्यौं अंशसें शुद्धता होतीजाती है त्यौं त्यौं व्यवहारकी करणीअें छूटतीजाती हैं. जैसेंकि श्रावक पौषध करता है तव पौषधमें पूजा प्रमुख नहीं करता है, मुनीकों पूजा, श्रावककों स्वामीभक्ति ये सबी छूटजाती है. इसतरह क्रमसेंकरकें समस्त करणीयें छूटजावे और आत्माका अकर्त्ता गुन निर्विकल्प गुन प्रकट होता है, वास्ते कुल्ल करणी निर्विकल्प दशा लानेके वास्ते करनी योग्य हैं. पेस्तर अशुभ क्रियाका त्याग कर शुभ क्रिया करती है. पीछे ज्यौं शुद्ध दशा प्रकट होती जाय त्यौं शुद्ध क्रियाका त्यागकर अक्रियपद प्रकट होता जाता है.

१४२ प्रश्नः—ज्ञानीनें तो पुण्य पाप दोनु त्याग करने योग्य वतलाये हैं और तुम तो एककों छोडकर एककों आदरनेका वतलाते हो वो किस तरह समझना ?

उत्तरः—ज्ञानी जीने कहा सो सत्य है. जैसें कोलीकी कोम चोरी करनेका धंदा करती हैं, उससें सामान्य वचनसें कोलीकी सोवत करनेका त्याग कहा जाता है; मगर चोरके डरसें रक्षण करनेके वास्ते यदि कोलीकों रक्षक करकें रखलेवे तो अपना रक्षण होता है. और रक्षकनें जव चोरकों मार हकाला तब निर्भय हुवे, पीछे चौकीदारकी जरुरत नहीं तव चोर और चौकीदार दोनुका त्याग होवे. उसतरह अशुभ प्रवृत्तिकों दूर करनेकेलिये शुभ करणीरुप चौकीदार है वो सब अशुभ प्रवृत्ति दूर हुवे बाद शुभ करणीकाभी त्याग होवे; वास्ते ज्ञानीने दोनुका त्याग कहा है सो सच है. सर्व कार्यमें आत्मा अज्ञानपनेसें अनादि कालका कर्त्तापना मानरहा है, और उसीसेंही आत्माके ज्ञानकों आवरण होते जाते हैं. जव जीव प्रभुके आगम सुनता है और स्पर्शज्ञानरुप ज्ञान जीवकों परिणमता है तव आत्माकों आत्माका स्वरुप अनुभवगम्य होता है तो जानताहै कि—अहा! मेरा आत्मा अरुपी, अनंतज्ञानमय, सर्व भावका जाननेहारा, निर्विकल्प ज्ञानी है. जड भावका जोजो कर्त्तव्य कियाहुवा है, वो मेरा स्वभाव नहीं. जव मेरा कर्त्तव्य नहीं तव उनका मैं कर्त्ता बनताहुं वोभी अज्ञानता है. ये वस्तु अनुकूल प्रतिकूल जिसकों मिलै उसमें मैं सुख दुःख मानता हुं वोभी

अनान है मेरा स्वभाव तो समझने देखनेका है वो स्वभावका मैं कर्त्ता हु और वो करने योग्य है ऐसा ज्ञान होता है, वास्ते निश्चयनयसें आत्मा स्वभावका कर्त्ता हैं. व्यवहारसें विभावका कर्त्ता हैं ज्यों ज्यों निश्चयगुण प्रगट होता है त्यौं त्यौं अशुद्ध व्यवहार त्याग हुवाजाता है और परभावका कर्त्तापना दूर हुवाजाता है, और जैसें आत्माका स्वरुप है वैसा प्रगट होता है

१७१ प्रश्नः—तुम जो जो भावना करनेकी कहते हो वो आत्म घरकी हैं कि परघरकी ?

उत्तरः—जितना व्यवहार वर्त्तता है उतना पुद्गलसें करके वर्त्तना करनेकी है और उसी वास्ते भावना चिंतनेकी है, वो सब व्यवहार परघरका है यानी पुद्गल मिश्रित है, सबब कि आत्माके स्वाभाविक गुण तो समझने देखनेके है, मगर विचार करना सो आत्माका धर्म नहीं है जहांतक सपूर्ण केवलज्ञान प्रकट नहीं हुवा वहातक पुद्गल करकें सहित विचार है. क्योंकि मति श्रुतज्ञान हैं वो इद्रियजनित ज्ञान हैं इद्रियोंका बल हैं अवबोध होवे सो पांच इद्रि और छट्ठा मन उन्होंके संयोगसें ज्ञान होता है. वो ज्ञान आत्मा और परके सयोगसें होता है, वोभी जीवका आत्मा आच्छादित होजानेसें मति श्रुतज्ञानका जितना बोध है उतना नहीं होता है. ज्ञानकी भक्ति—ज्ञानवानकी भक्ति—ज्ञान प्रकट करनेकी अतिशय उत्कठा और पढाने रचानेके काममें अतिशय अभ्यास, जिस जगह ज्ञान मिलनेका हो, या दूर हो, या नजदीक हो और उसका वक्त समालना पडे वो सहन करना पडताहो, किंवा जो हुकम फरमावे वो अमलमें लेनापडताहो, वो कुछ हुकम और दु ख सहन करकें-ज्ञान मिलानेमें आलस छोडकरकें रात दिन उद्यम करता है, तब ज्ञानावर्णी कर्म थोडे थोडे ज्यौं ज्यौं क्षय होते जॉय त्यों त्यों मति श्रुतज्ञानका बोध बढताजाता है, तब जीव मेरा स्वरूप और पराया यानी जडका स्वरुप पहिचानता है शास्त्रमें जडकी सगति छोडनेके जो जो उपाय बतलाये हैं वो जानना है उस्सें उसकी विचारणा करता है. वो विचारणा ऐसी है कि जिस्सें आत्मा अपने

स्वरूपकी सन्मुख होताजाता है, और परभावसें चित्त हठाता जाता है. जितना परभावसें चित्त हटगया उतना आत्मा शुद्ध होताजाता है. जैसें कि अपने कुटुंबके मनुष्य सिवाके मनुष्यकों घरमें मुनीम करकें रक्खे तो उसकों द्रव्य व्यवहारसें तो कमती हुवा लगता है; मगर दूसरी तर्फ शोच करे तो अपना जो धन है उसका रक्षण करता है और नया व्याज वगैरः पैदा करकें धन वढादेता है. उसी तरह ज्ञान और भावनाअें जो पुद्गलमें मिलकर करनी सो आत्मरुपसें पररूप देखनेंमें व्यवहारसेंही है, मगर वस्तुतासें आत्माकों आत्मस्वरूपसें जाने, जडकों जड स्वरुपसें जाने, आत्माका निरावरण करनेका उद्यम कररहा है, विषयकषायके काम कमती होतेजाते है और पूर्वके कर्म क्षय होतेजाते हैं. ये सब काम परवस्तुसें होता है. वास्ते जहांतक केवलज्ञान प्रकट नहीं हुवा वहांतक भावनाअें आदि बहुतही उपकार करती हैं. लेकिन जैसें लडके और मुनीमकों वस्तुपनेसें बाप अलग जानता है, वैसेंही वस्तु धर्म पहिचानसें जो ज्ञान आत्म उपयोगके है वो अवधि, मनपर्यव, केवलज्ञान या मति श्रुतज्ञान इंद्रियजनित है उसकों वो स्वरुपसें जानलेवे; मगर आत्मजानित ज्ञान प्रकट न हुवा वहांतक ये ज्ञानका अभ्यास छोडदेवे तो उसके आवरण किसतरह नाश होसकैं ? ऐसें जिस जिस तरह सर्वज्ञ महाराजने बतलाया है उस तरह सेवन करकें आत्माका आत्मभाव प्रकट करना. ज्यौं ज्यौं आत्म विशुद्ध होवे त्यौं त्यौं नीचेकी प्रवृत्ति छोडते हुवे जाना है और समभाव वढातेजाना है. जो जो परभावके संयोगसें सुख दुःख अनुकूल प्रतिकूल शरीरमें होता है उस्में अपना समभाव नहीं छोडदेता है. कोइ मार मार जाता है, कोइ पूजन करजाता है, कोइ गालियें देजाता है और कोइ गुण ग्राम करता है वो सबमें समवृत्ति है. ऐसे गुण ज्यौं ज्यौं वढें त्यौं त्यौं समझना कि यें चडती पायरीपें हुं. उससें गुणस्थानपर चडाभी समझाजाय और ज्यौं ज्यौं गुणस्थानपर चडताजाय, त्यौं त्यौं ज्ञानीने नीचेकी प्रवृत्ति छोडदेनेकी वतलाइ है वैसेंही छोडदेवे. ऐसे पुरुष तो मर्यादा मुजबही चलेंगे और वीतरागजीके ज्ञानसें स्वचेतनकों चेतनरुपसें जानेंगे, परपुद्गल-

कों पुद्गलरूप जानेंगे, आत्मा अक्रियपनसें जानेंगे, और क्रिया पुद्गलके सगसें होती है वोभी जानेंगे जहातक आत्माका अक्रिय गुण प्रकट नही हुवा, वहातक नीचेसें ज्यों ज्यों उचे चडता है और जितना जितना शुद्ध स्वरुप प्रकट होता है, उतनी उतनी क्रिया छोडता जाता है दशा तो अक्रियपदकी भावता है, स्वधर्म तो जितना आत्मधर्म प्रकट होता है उसमें स्थापन किया है. साधनरूप धर्मको साधनरूप मानता है जैसें कोइ मनुष्यके घरमें लाख रुपैकी दोलत है, मगर वो जीव नही जानता है उसकों किसी दूसरे पुरुषने उस दौलतके गुणोकी माहेती दी कि तेरे घरमें ये वडी दौलत है, उसकेपर सब कूस-धूल-मिटी-पत्थर वगैर.का थर चडगया है उससें वेमालूम है, वास्ते उद्यम कर, उद्यम करनेसें तेरी सब दौलत तेरे हाथ आवेगी अब जिस पुरुषकों माहेतगारी देनेवाले पुरुषकी प्रतीति है उसने तो, वो दौलत तो जमीनमें रही है, उससें और द्रव्य विगर कुछ काम होसकता नहीं ओर आपके पदरमें पैसा नही था, उसलिये कर्जा करकें खर्च किया-मजदूर बुलाये-खोदनेकी मिहनतकी और अखिर द्रव्य हाथ किया उसीतरह सर्वज्ञ महाराजने आत्मद्रव्यका स्वरूप दर्शाया है उस्सें आत्माका स्वरुप समझलिया, मगर अभी तो जडकी सगतिमें है वास्ते वो स्वरूप मालूम नहीं होता है उसकों प्रकट करनेमें जिस तरह धन निकालने वालेने कर्जा किया और फतेह मिलाइ, उसी तरह आत्माकों अज्ञान सगतिमेंसें मुक्त करनेके उपाय जो जो ज्ञानीने वतलाये हैं वो अमलमें लेवें तो वेशक आत्मधर्मरुप धन प्रकट होवे पुन' एक पुरुषकों एक दौलतकी माहेती वालेने दौलत वतलाइ, मगर उस पुरुषके वचनकी प्रतीति न की उससें उसकों दौलत हाथ न लगी एक पुरुषने कहा कि–' दौलत है तोभी में दूसरेकी-पराये मनुष्यकी मदद न लुगा दूसरेका कर्जा कौन करै ? आपही आपसें दौलत निकलेगी तो लुगा ' उन दोनु पुरुषोंकों द्रव्यकी प्राप्ती नहीं हुइ उसीतरह सर्वज्ञके वचनसें श्रद्धा नहीं करते हैं उनकों आत्मधर्मका ज्ञान नहीं होता है आत्मधर्म हे ऐसा नाम मात्र जानलिया; मगर उसके साधनकी श्रद्धा सर्वज्ञ-

के वचनसें विपरीत करकें निरुद्यमी हुवे. आत्माकी बातें करनी; लेकिन काम-क्रोध-विषय-कषाय नहीं छोडते है-किंतु विषय कषायकी वृद्धि करते है वैसे जीवकों धर्म कहांसें होगा? कितनेक जीव अकेले व्यवहार मार्गकोंही सत्य मानते हैं. कितनेक जीव अकेले निश्चय मार्गकों सत्य जानते है; मगर प्रभुका मार्ग तो निश्चय और व्यवहार सहित है. उस्सें स्याद्वादमार्ग कहाजाता है. दूसरे धर्ममें ऐसा स्याद्वाद धर्म नहीं है उसी-सेही मिथ्यात्व कहा है. उतनेपरभी जैनधर्ममें रहकर स्याद्वाद मार्गका ज्ञान न हुवा तो आत्माका कार्य कैसें होसके? वास्ते ज्यौं बनसकै त्यौं सर्वज्ञजीने दोनु (निश्चय व्यवहार) मार्ग कहे हैं उसी मुजब प्रवृत्ति कर-नेसें निकटमें आत्माकी शुद्ध प्रवृत्ति होवै. इसलिये अव्वलमें अशुभ प्र-वृत्ति छोडकर शुभ प्रवृत्ति करनी. पीछे ज्यौं ज्यौं आत्मा शुद्ध होवै त्यौं त्यौं शुभ क्रिया छुट जावै.

१५४ प्रश्नः—आत्माकी शुद्ध प्रवृत्ति किस तरह हो सकै?

उत्तरः—सर्वज्ञजीने आत्माका स्वरुप बतलाया है वो जान सकै; मगर आत्माके अनंत गुण हैं वो सब छद्मस्थपनेसें नहीं जान सकता है. कितनेक स-र्वज्ञके मुख्य गुण सिद्धांतसें जान लेवै कि आत्मा अरुपी, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्य, अव्याबाध, अगुरु लघु, अक्षय ये गुण आत्माके हैं. इन्सें विपरीत वो जडके गुण हैं. रूप, गंध, रस और स्पर्श ये चार मुख्य गुण जडके हैं. तीक्ष्ण बुद्धिवालेनें ये दोनु स्वरूप चेतन और जडके जान लिये, उससेंही विचार करता है कि-वर्ण, गंध, रस, स्पर्श रहित सो चेतन है, ज्ञानशक्तिवान है उसके समझै सो चेतन है, तब मै अभी मेरे गुणमें वर्त्तता हुं कि परगुणमें वर्त्तता हुं? उ-सका शोच करै. प्रथम यह मेरा शरीर देखनेमें आता है उस्सें रूपी है. श्वासोश्वास लेता हुं उसका स्पर्श-उष्ण वा शीतल होता है तो वोभी रूपी है. शब्द बोलता हुं वोभी कानोंमें शब्दके पुद्गल स्पर्श करते हैं वोभी रूपी हैं. इस शरीरमें लोही, मांस है वोभी रूपी है; वास्ते ये कुछ शरीर जड है इस लिये मेरा नहीं है. लडकेका स्वरुपभी दिखना है उस्सें

वोभी मेरा नहीं है स्त्रीभी मेरी नहीं है, ये मकानभी मेरा नही है, बैठताहु वोभी मै नहीं हु, चलताहु वोभी मे नहीं हु, आहारके पुद्गलभी रूपी है ओर मेरा गुण अरूपी है तो वोभी मेरे ग्रहण करनें लायक क्यौं हो सके? भूख लगी कहताहु वोभी मै नहीं, मुझकों खट्टा लगा, कषायला लगा, खारा-तीखा लगा, वोभी मेरे करने योग्य नही है उसमें जो मोहवत होताहु-घभडाताहु वो अज्ञानता है, मुझकों सुगध, दुर्गंध आती है, मुझकों ये राग अच्छा मालुम होता है या बुरा मालूम होता है, ये स्पर्श सुकोमल या कठोर लगता है-ये सब पुद्गलकों होता है, तथापि मुझकों होता है ऐसा मान लेता हु वो मेरी अज्ञानता है. मेरा स्वरूप मैंने न जाना, उस्सें मै मानता हुं मुझकों मारता है वो मै नहीं हु मुझकों गालियें देता है ऐसा मानता हु सो मेरी अज्ञानता है, मेरा धन चला गया, मै धन पैदा करता हु, मै कपडे पहनता हु, मैंने कपडे ओढे है, मैंनें बिछाये हैं, मै सोता हु, मै बैठा हु, ये मै करता हु, वो अज्ञान है मै सुखी करता हु, मै दु खी करता हु, मै धनवान हु, मै ऋद्धिवत हु, म परिवारवाला हु, मेरा सब कहा मानते हैं, मै सबकों शिक्षा करता हु, मै सबके ऊपर हुकम चलाता हु, मै प्रधान हु, मै राजा हु ऐसें जो जो गर्व करता हु वो मेरी अज्ञानदशाके प्रभावसेंही करता हु मैंने मकान बनवाये, मेरा मकान गिर गया, लेकिन वस्तुतामें वो वस्तुही मेरी नहीं है तोभी मेरी मानकर बैठा हु, वो अज्ञानता है मैंनें धन दिया, मैंनें धन लिया, मैंनें शास्त्र वाच, मैंनें पढाये, मैंनें चेले किये, मैंन व्रत दिये, मैंनें गृहस्थ किये, मैंनें समझाये, ये सब विकल्प अज्ञानतासें करताहु अज्ञानताके योगसें अहंकारदशा प्रकट होनेसें होती है परवस्तु मेरी नहीं पर जो पुद्गल है उसकों म क्या करु? ओर वो अहंकारके मदसें करकें जडकर्त्तव्यको मेरा या मै शब्दसें बुलाता हु, मगर बोलना वो मेरा धर्म नहीं है रोग आनेसें मुझकों बीमारी आइ-दर्द हुआ कहता हु, लेकिन अरूपी आत्माकों रोग होता है? नहीं नहीं कभी नहीं होता! जो रोग होता है वो तो इस उदारिक शरीरकों होता है वो उदारिक शरीर मेरा

नहीं और मेरा मानालिया उस्सें मुझकों राग हुवा अैसा मानता हुं सो अज्ञानता है. मुझकों जगतजन नमन करते हैं-सत्कार करते हैं. महत्त्वता करते हैं; मगर जो मेरा नाम है सो तो पुद्गलका है वो पुद्गल सो मै नहीं, तो नमन करते हैं, ऐसा मानना सो अज्ञानता हैं. अनेक प्रकारके आभूषण धारण कर मनमें मानता हुं कि मैंने दागीने पहने हैं. वो पहननेवाला तो शरीर है, मै तो अरुपी हुं वो ज्ञान नहीं हुवा उस्सें मै मान रहा हुं. स्त्रीओंके मुँह देखकर मानता हुं कि-अहा! क्या सुंदर स्वरूप है? इसके संग कब सोबत करुं? कितनीक वख्त योग बनता है तो उस्सें आनंदित होता हुं-ये मेरी कैसी मूढता है? जो शरीर जडपदार्थ है वो मै नहीं. फिर स्त्रीओंका शरीर वोभी जड है, इन दोनु जडपदार्थके संयोगमें मेरे क्या आनंद करना? उसका कुछ शोच न करतें मेरी मूढता छा रही है वो कैसी धिःकारने लायक है? कोइभी परसुखमें लीन होना वो मेरा धर्म कैसें होवै? अहा! अैसा स्वरूप जानता हुं तोभी अनादिके अभ्याससें वो विषयादिकमेंसें मूर्छितपना नहीं जाता है. पूर्वसमयमें अनेक महापुरुष हो गये उन्होंनें अपने आत्माकों जडसें मुक्त करकें निज रूपमेंही आनंदितपना अंगीकार कियाथा. अहा! तेरेमें कर्मके आवरण कैसा जोर करते हैं कि वीतरागजीकी वानी स्वपर स्वरूपकी सुन ली तोभी उसकी असर होतीही नहीं? और अब तकभी आत्मा ढकाया जाय अैसी प्रवृत्ति किये करता हुं; मगर अब तो मेरे अरूपी स्वरूपमें रहना वही उत्तम है. जैसें कोइ दीवाना मनुष्य चाहे वैसा बकवाद करै, चेष्टाअें करै; मगर सच्च रीतिसें वो नहीं जानता है कि मुझकों क्या करना लाजिम है? उसी तरह मैभी कर्मके संयोगसें मूढ हो मेरे आत्मस्वरूपकों भूल कर जड पुद्गलकी प्रवृत्ति रात दिन दीवानेकी तरह कररहा हुं. संसारमें अनेक प्रकारके कर्त्तव्य होते हैं, वो सब मेरेही समझके किये करताहुं और जडके कर्त्तव्य करकें अहंकारमें मशगुल बन हिरताफिरताहुं-अहा! क्या अज्ञानता है? अनेक जीवोंकों अनेक प्रकारके दुःख देताहुं. धिःकार है अज्ञान दशाकों!! ये मै जड

सगतिसें क्या कृत्य करताहु ? स्त्रीओंके महा दुर्गंधमय स्थानक जिसकी विभाविक जीवभी दुगछा करते है ऐसे स्थानकोंकों जीव चुबनादि अनेक चेष्टा करता है ! ये सब कृत्य आत्माके स्वरूपमें भिन्न हैं. व्यापारादिकमें लुचाइ–ठगाइ–चोरी आदि अनेक प्रकारके कृत्य जडकी सोबतसें करताहु ऐसी जड प्रवृत्ति अनादि कालकी पड रही है, वो मेरे स्वरूपसें भिन्नपना है और य नजरके आगे बडी बडी रौनकदार हवेलीयें देखताहु–नइ नइ रचनाकी उसमें कारीगिरी देखकर आनंदित होताहु वो मेरे करने लायक है ? नहीं! नहीं ! ये सब जडसगतका प्रभाव है मेरे मकानमें क्या उमदा रग कियागया है ? कैसी सुदर निगायत या बिछोंने बिछाये है ? ऐसी वस्तु देखकर मुझकों जो आनद होता है वो कैसा आश्चर्य है ! जो वस्तु जड सो मेरा धर्म नहीं, विनाशी है वोभी नहीं शोचताहु, जडकी सगतमेंभी वो चीज स्थिर रहनेकी नहीं, तु उसकों छोडकर जायगा या तो वो तुझकों छोडकर चली जायगी उसकाभी तुझे ज्ञान नहीं होता, और आसक्तता होता है–निज स्वरूपसें भूला पडता है अब मैंनें मेरे आत्माका स्वरूप जानलिया, वास्ते अब तो उससें मे न्याराहु ऐसा चोकस होता है तोभी ज्ञानीके कथन मुजब अतर स्पष्ट ज्ञान नहीं हुवा है–इसलिये अद्यापि पर्यंत उसपरसें विचार बध नहीं पडता है, वास्ते अब मेरे क्या करना, सो चेतन ! तु विचार कर वीतरागदेवका उपदेश सुना, मेरें आत्माका स्वरूप जानलिया, जडका स्वरूपभी जाना, तोभी जडसें चित्त हटता नहीं, उसके वास्ते भगवनजीने उपाय बताये है वो मेरे करना योग्य है जेंमें ये सब विचार होते हैं, वैसे वोभी विचार होने चाहियें यानी आत्माके स्वाभाविक धर्ममें निश्चयनयसें स्वरूप प्रकट हुवा नहीं वहातक अनुभवसें विचार करना योग्य लगता है और आत्माका हरहमेशां विचार करना–रोज शास्त्रकाभी अभ्यास करना जेसें कूपके उपर पत्थर या लकडे गडे–जडे हुये होते हैं उसके साथ रस्सीका निरतर घसारा लगनेसें उसमें वडे वडे खड्डे पडजाते हैं, उसी मुवाफिक निरतर अभ्याससें कर्मकोंभी घसारा लगेगा तो आत्मा निर्मल होवेगा वास्ते

अहर्निश और तमाम उपाधियोंकों छोडकर शास्त्रका अभ्यास करुं. मगर जहांतक संसारकी उपाधि है वहांतक एक चित्तसें शास्त्रका अभ्यास ठीक ठीक नहीं होसकता. वास्ते संसारकों छोडकर संयम लेलुं तो संसारी कुटुंबकी उपाधि, व्यापारकी उपाधि छूटजाय तो पीछे निर्विघ्नपनेसें ज्ञानाभ्यास होसके लेकिन इत्ती सारी मेरी विभावदशा छूटगइ नहीं कि जिस्सें मै साधुपना पालन करसकुं. तब मेरा जो श्रावकधर्म जिस तरह बारह व्रतरूप कहा है उसतरह अंगीकार करुं; उससें जितनी श्रावककी मर्यादा करुंगा उतनी उतनी निरुपाधिकता होवेंगी. जैसें कि श्रावक सामायिक करुंगा उतनी देर शास्त्राध्ययन करनेमें मेरा संसारी काम हरकत न करेगा. सारे दिनका या अहोरात्रिका पौषध करुंगा तो सब वक्त ज्ञानाभ्यास बन सकेगा. फिर जितनी जितनी चीजें व्रत लेकर त्याग करुंगा उन संबंधीकी उपाधियें मेरी हठजावेंगी. और जितनी जितनी जड प्रवृत्ति कमती होवेगी उतनी उतनी निरुपाधिकताका सुख होवेगा. अनेक प्रकारकी विषयवांच्छना होती हैं वे सब-इच्छा तो रुकती नहीं; मगर जितनी जितनी रुकीजाय उतनी रोककर स्त्रीके विषय, खानपानके विषय, पहननेके विषय और सुगंधीके विषय रात दिन मुझकों हो रहे है वो सब छोडदुं ऐसी विशुद्धि नहीं मालूम होती है, तो जितने जितने छूटजावे उतने छोडकरकें व्रत धारण करुं. ऐसा शोच करकें श्रावकके व्रत लेवै, प्रभुभक्ति कर, प्रभुभक्ति करनेकों जाय उतने वक्ततक संसारके कार्य छूट जाय. प्रभुके स्हामने बैठकर भावना चिंतन करै. (भावनाका स्वरूप इस पुस्तकमें आगे आगया ह उस मुजब करै.) उन भावनासें बहुत विशुद्धि होगी एसा शोच करकें भाव. यहांपर कितनेक मनुष्योंके दिलमें आवै कि संसारपरसें राग कमती किया और प्रभुजीपर राग बढाया-विषयका राग छोड व्रतपर राग बढाया तो वो आत्माकों बंधन है-पीछा उपाधियें पडता है फिर व्रतका अहंकार होवै, दूसरे नही करते हैं उन्होंकी निंदा होवै-वगैरः बहुतसें कारणोंसें आत्माकी मलीनता होती है. उस विषयमें समझना कि-संसारपरसें राग उतारकर प्रभुजीपर राग कायम किया, वो राग प्रभुपर न कायम करै तो संसारका राग कायम रहजाय, तो बंधन

न छूटे-घरमें बैठाहुवा जितनी विभाविक वर्त्तणुक करेगा उतनी करुना कुछ जिनमंदिरमें जाकर करनेका नहीं-प्रभुजीके गुण वगैर गायगा, तो उससें विभाववेंसें चित्त हठानेका साधन हाथ रहेगा. जहांतक पूर्ण विशुद्धि न हुइ है वहांतक जीवकों चडनेका मार्ग यही है. इसलिये वीतरागजीने बताया है, तोभी ऐसी अपनी विकल्पनासें कल्पे कि येभी रागबंधन है सो कहनेरूप हैं वस्तुतासें तो विभावपरसें राग दूर हुवा नहीं, उससें ऐसा बतलाकर प्रभुगुण गाने नहीं. जिनकों आत्माका कार्य करना है उन्हकों तो जितनी विशुद्धि होवे उस मुजब करनेका प्रभुजीने बतलाया है वैसेंही करेगा.

पेस्तर बहुतसें दृष्टांत दियेगये हैं-जैसें कि कोइ मनुष्यने विष खाया है. अब उस मनुष्यकों खबर हुइ कि विष मेरे खानेमें आया है वो मिटनेके वास्ते कुछ औषध सेवन करु पीछे विष दूर होनेके औषध खानेसें निर्विष हुवा. एक मनुष्य कहता है कि औषध तो कटु है ये कुछ खानेका पदार्थ नहीं कि उसें मैं खाउ. तो उस मनुष्यका विष न उतरेगा. वैसेंही प्रभुभक्ति वगैर है सो विषहर औषधरूप हैं. विष उतारडाले बाद औषधका काम नहीं, रागद्वेष रहित होवे उसकों शुभ रागकी जरुरतभी नहीं, मगर संसारके राग नहि उतरे हैं और शुभ रागकों बंधनरूप माने यह तो जैसें विषवाले कटु औषध जानकर उसका उपयोग न करे जिससें निर्विष न होवे, वैसें अशुभ राग छोडकर शुभ राग नहीं आदरता है उसकों आत्माकी विशुद्धि होनेकी नहीं फिर अहंकारादिक विषयमें कहना है सो अहंकार कुछ शुभ करणीसें नहीं आते है, मगर उसकी परिणती अबतक जड भाववेंसें हठगइ नहीं वो करवाते है अभी ज्ञान नहीं हुवा उससें वो खुद अहंकार करता है कि हम प्रभुजीकी भक्ति करते हैं व्रत करते हैं हजारह रुपे खर्च करते है-बडे बडे शासनके काम करते है हमारे जैसा कौन है? ये दशायें होती है वो मंदा अनान दशाका जोर है उससें उन विषयमें तो जिन्होंकी समझमें आया है कि-यहां मेरे आत्माकी स्वभावदशा तो जानना देखना है जड प्रवृत्ति कुछभी करनी वो मेरा

आत्मधर्म नहीं. फिर यह शुभ करणीभी मात्र अभी जड भावपरसें चित्त नहीं हटता है वो हटानेके वास्ते करनेकी है–वस्तुतासें मेरा धर्म नहीं है. जिनकों ऐसी बुद्धि प्राप्त हुइ है उनकों क्यों अहंकार आयगा ? और युं करते थोडी विशुद्धि होगी उससें मनमां आयगा तो उसकोंभी परवृत्ति जानकर उस अहंकारकी निंदा करेगा. उससें पीछे हटनेकी भावना भावेगा. अहा ! यह मेरी दशा क्या जड संगतीसें होती है ? जगत्‌में यह जड शरीरकों मान मिलता है तो वो शरीर में नहीं. तो वो मानसें मेरे क्या ? ऐसी भावना आत्मार्थी भावता है. रात दिन कषायसें पीछे हटनेकीही दशा जिनकी बनी है और जितना जितना पीछा नहीं फिरा जाता वोभी आत्माकों प्रतिकूल है ऐसा भाव रहे हैं. पुनः जडकी दशा दूर करनेकेलिये व्रत नियम धारण करते हैं. वो वस्तुओंका जहांतक खाने पीनेका अभ्यास है वहांतक वो खानेकी वस्तुअें न मीलेंगी, या प्रतिकूल मिलेंगी तो मुझको विकल्प आयगा. वास्ते जो जो वस्तु त्याग करुंगा उसका अभ्यास छूटजानेसें वो वस्तुपर चित्त न जायगा, तो उसका विकलपभी नहीं होवेंगा. ऐसा समझकर आहार–पानी–वस्त्र–आभूषण वगैरः का नियम करके बाकीकों वापरनेकेलिये त्यांग करता है. व्यापारभी बहुत पापके हैं वो पंदरह कर्मादान वगैरःका त्याग करता है. दूसरेभी व्यापार विकल्पके कारण हैं वास्ते अपना निर्वाह होवै उतना व्यापार रखकर दूसरे व्यापारका त्याग करता है. स्त्रीयादिकके विषयकीभी मर्यादा कर बाकीकी त्यागकें–यह प्रवृत्ति जड भावकी कमती होयगी तभीही मेरा आत्मा स्थिर होयेगा. जहांतक संसारके काम करनेके हैं, वहांतक वो वो काम धर्मध्यान करते वक्त याद आयगा और आत्माकी परिणती बिगाडेंगे; वास्ते जो जो कारण संसारके कमती होनेंगे उतने उतने विकल्प कमती होवेंगे. ध्यानमेंभी समाधी रहेगी. जैसें कि जो मनुष्य राजा नहीं है तो उसकों लश्कर वगैरःका विचार चित्तमें नहीं आयगा, क्योंकि उस काममें उसकी प्रवृत्ति नहीं है; वास्ते जितनी जितनी प्रवृत्ति शुरु है उतनी उतनी विकल्पता आवेगी. ऐसा समझकर खाने–पीने–बैठने–सोने–फिरने

तमासे देखने व्यापार करने ओर स्त्रीयोंके विषय संबंधी जितने जितने कारण छुटजाय वो छोड दे कि जिस्सें तेरा आत्मा समाधीमें रहै न छूटे उसमें अपने आपकी अज्ञानता विचारता है कि-अबतक मेरा मन जडसें दूर नहीं हठता है, वास्ते सत्पुरुषकी सेवा करु, और संसारसें दिल हठजाय वैसे शास्त्रोंका अभ्यास (सुनने वाचनेका) कर कि कोइ वक्त वों उपदेशरुप अमृतसें करकें मेरा चित्त सुधर होजाय, ओर विभावसें चित्त हठजाय-स्वभाव सन्मुख होवै ऐसा चिंतन कर तनमन धनसें ज्ञानादिकका अभ्यास करता है, वो ज्ञानसाधनमें कोइ विघ्न न आवे उस वास्ते सामायिक पौषध देशावगाशिक करै फिर विशेष सामर्थ्य जाग्रत होवै तो ध्यान करु ऐसा शोच कर आर्त्त रौद्र ध्यानका त्याग करकें धर्मध्यान करै कि जिस्से आत्मा निर्मल होवै, और निजस्वरूप सन्मुख हो जाउ ऐसा चिंतन कर ध्यानादिकका उद्यम परवस्तुसें हठनेके वास्ते करै ऐसें अनेक प्रकारके उद्यम आत्मार्थी कर रहे हैं हरएक प्रकारसें आत्माकी प्रवृत्ति विभावसें छूट जावे उस सन्मुख दृष्टि बन रही है संसारका स्वरूप विचारनेसें, जैसें कोइ पुरुष घरमें होवे और चारों ओर आग लगे तो उस घरमेंसें निकलनेका जैसा उद्यमवंत होवे, वैसें आत्मार्थीकों संसारदावानल जैसा लगता है जो जडप्रवृत्ति करता है उसमें आनंदता नहीं होती है एक विटंबना समझकर करता है वो दयाभी आत्मा निर्मल होनेकी है यह संसारमें सब चीज हैं, उसमें स्त्रीयादिकके काम सबसे जियादे दु:खदायक हैं, सबब कि कामदेव जिसके वश्य हो गया उसकों पीछे दूसरी उपाधि छोड देनी कुछ मुश्कील नहीं पडती और जिसकों काम न छूटे उनकों कुछ उपाधि नहीं छूट सकती हैं कामदेवके लिये स्त्री चाहियें, स्त्रीके लिये वस्त्राभूषण चाहियें, वस्त्राभूषणके लिये द्रव्य चाहियें, द्रव्यके लिये व्यापार करना चाहियें, व्यापारके लिये उलटासुलटा करना-ठगाइ-अन्याय-अनेक आरंभ करना चाहियें, स्त्री होवै तो लडका लडकी होवे और वै होवे तो उन्होंकी सादी करवानी चाहियें. उन्होंके लिये न्यात जातसें हिलमिलके चलना चाहियें, उन्होंकी दाक्षिण्यता रखनी

चाहियें, अैसा सब कामदेवके ताबे होनेसें होता है. कामवश न होवै वहांतक अनेक प्रकारकी उपाधि रहती है, और आत्मा शुद्ध होनेमें विकल्प उस संबंधी आ पडते हैं. वास्ते अनेक प्रकारके पूर्व समयमें महा पुरुषोंने शास्त्र रचे हैं उसका अभ्यास करके काम कब्जे हो जाय वैसा करना. कामकों जीतनेसें बहुतही विकल्पके कारण छूट जावेंगे इसी वास्ते पूर्व पुरुषोनें अव्वलमें कामकों जीत लियाथा. अहा! स्त्रीका दुर्गंधमय शरीर, वो जगाभी महा दुर्गंधमय उसमें क्या मग्न होना? कितनेक जीव चौथा व्रत धारण करते हैं; मगर धनकी तृष्णासें दूर नहीं हो रहते हैं वो लोभका महात्म्य है. लेकिन जीव विचार करै कि अनेक प्रकारके पाप करकें द्रव्य मिलाया वो क्या तुं साथ ले जायगा? नहीं! नहीं! वो तो कुछ बननेकाही नहीं. फक्त जगतमें कहा जायगा कि, मैं करोडपति–लक्षपति हुं. इस सिवा बहुत धनसें और कुछ लाभ नहीं है, तो उस द्रव्य परवस्तुमें क्या मूर्छित बन जाता है? वो योगसें जो जो कर्म बांधेगा उनके दुःख तेरेही भुक्तने पडेंगे. धनका सुख लडकोंकों या दूसरोंकों दे जायगा, वे धनका उपयोग कर मौज लेवेंगे. फिर जो लडके वगैरः मिले है वो सब क्या संबंधसें मिले हैं? सो तुं विचार कर. कितनीक वक्त स्नेहसें मिलते हैं, कितनीक वक्त वैरभावसें मिलते हैं, और कितनीक वक्त पिछले भवका लहेना वसूल करनेकों आ मिलते हैं–अैसें अनेक संबंधसें मिलते हैं वो तुं नहीं जानता है. फक्त मेरे फरजंद जानकर मूर्छित हो कर्म बांधता है और आत्माकों मलीन करता है, वास्ते आत्मा शुद्ध करना हो तो पुत्र धन वगैरःकी ममता कमती कर. जो जो बनता है वो पूर्व कर्मबंधानुसारसें बनता है, उसमें राजी क्या होना? और दिलगीरभी क्या होना? फक्त जो जो बनै उसमें जान लेनेका आत्माका स्वभाव है वो समझ लैना. मगर उसमें खुशी दिलगीर होना वो आत्म–धर्मसें बहार है. वास्ते आत्माका धर्म समझ लिया, अब क्या जडके काममें राजी–दिलगीर होना? उसके विकल्प करना? नहीं, कुछ नहीं करना! आपके सहजसुखमें मग्न होना. ऐसा चिंतन करनेसें विशेष

विशुद्धि होती है, तो ससारकों छाडकर सयम लेकें आत्माकी सुखप्राप्ति होवै वैसें विचरते हे शरीर है सो आहारके आधारसें रहता है, तौभी आहार न मिले और क्षुधा लगी तो विचारें कि अहा! आत्मा! तेरा अणआहारी धर्म है, आहार करना वो जडका धर्म है, वास्ते उसमें तेरे विकल्प करना वो केवल कर्मबंधका कारण है. उससें आत्मा मलीन होता है ऐसा शोचकर आप समभावमें रहै यों करते आहार मिल गया–वो स्वादिष्ट अगर बेस्वादवाला मिला तो विचार करै कि जो जो पुद्गल मिले है उसमें वैसा स्वाद है, मगर वो पुद्गल ग्रहण करना वो तेरा धर्मही नहीं, तो अच्छे है या बुरे हैं ऐसा विचार करना सोही बेम्रुनासिब है शरीरमें रहा है और अभी इतनी विशुद्धि नहीं है कि आहार न करु, शरीरमें पीडा होवें और मेरा आत्मा समभावमें रह सकै नहीं उस लिये आहारें ग्रहण करना है, लेकिन विकल्प करना वो मेरा धर्म नहीं ऐसा शोचकर अपनी समभावदशामें रहेवें. तृषा लगें तोभी इसी मुजब तृषाका विकल्पभी न करें. शीतकालमें ठंडी बहुत ही होनेसें शरीरमें शीतकी वेदना होती है वो वेदनामें शोचै कि–ठड–जाडा पुद्गलकों लगै है वो समझनेका मेरा धर्म है–स्वभाव है सो मैने जान लिया, उसमें मेरेकों जाडा लगता है ऐसा शोचु वो अज्ञानता है. गर्मीकी मोसममें धूपके पुद्-गल आनेका स्वभाव है उस मुजब पुद्गलकों स्पर्श करते हैं उसमें मेरे क्या? म तो अरुपी ह जिस्मे कोइ पुद्गल स्पर्शते नहीं और धूप लग-ताही नहीं घाम होनेसें हवा मिलनेकी इच्छा होती है वो मेरी अज्ञानता है जडमेंसें ममता नहीं निकल गइ है उस्से हवा खानेका दिल होता है–उसमें नये नये कर्म बधाकर मेरा आत्मा मलीन होवेगा ऐसा चिंतन कर हवा खानेकी इच्छा रोककर धामका विकल्प छोड अपने आत्माके आनदमें आनदित रहवै, लेकिन चित्तमें उपाधि नहीं चिंतते हैं फिर डास–मच्छर काटे उस वक्तभी आपका समभाव नहीं छोडते हैं, और उनकों उडानेके वास्ते शोचभी नहीं करते वो काटते हैं सो मुजकों नहीं काटते हैं मगर पुद्गलकों काटते है उसमें मेरे क्या है? कोइभी मनुष्य

दूसरेका घर जलता होवे उसमें आप फिकर नहीं करता है, वीसी तरह यह जडशरीरकों काटते हैं उसमें तुमकों विकल्प करनेका कुछ मतलबही नहीं. तुं तेरे आनंदमें रहे-अेसा शोचते हैं. फिर कपडे फटे हुवे हैं या मैले हैं, जाडेकी जरुरत हो और महीन-पतले मिले हो, अगर पतलेकी जरुरतमें वोजदार मिले हो अेसा वस्त्र संबंधी कारण मिलनेसें अपने समभावसें दूर हठते नहीं और शोचैं कि-वस्त्र पुद्गलकों पहननेके हैं. आत्माकों वस्त्र पहनने नहीं हैं, तो उसमें में किस वावतका राग द्वेष करुं ? जैसा कर्म पूर्व समयमें वांधा हैं उसके उदय माफक मिलते हैं उसमें अच्छा क्या ? और बुरा क्या ? आत्माकों तो परिधान करनेही नहीं है तो आत्मा किसलिये विकल्प करे ? ऐसे भावसें समभावमें वर्त्तते हैं. फिर शरीरमें पीडा होनेसें किसी प्रकारकी अरति उत्पन्न होनेके कारण मिलजाय; मगर जिसने स्व परका स्वरूप जानलिया है वे पुरुष अरति चिंतवतेही नहीं; सवव कि स्वभाव वहारके काम वने उसमें आत्माकों अरति करनेकी मतलव नहीं उसलिये अरति नहीं करते हैं. फिर खुवसूरत अलंकारित औरत कभी इंद्रकी इंद्राणी आकर मुनीके आगे हावभाव करती है-विषयकी चेष्टा करती है-नेत्रकटाक्ष चलाती है-हास्यविनोदी शब्दप्रयोग करती है, वो सुनकर मुनी शोचते हैं कि अहा ! जीव पुद्गलके रंगमें क्या रंजित होगया है ! पुद्गलकों सुभिता करकें आनंदित होता है, पुद्गलकी चेष्टा करकें खुश होता है ! क्या जीवकों अज्ञान पीडता है ! मेरे तो इसके स्हामने देखनेकीभी दरकार नहीं है; क्यौं कि अनादि कालका मेंभी पुद्गलका रंगी था उससें औरतोंका रागी था. मैंभी अज्ञानतासें इन स्त्रीकी तरह चेष्टा करताथा, वो चेष्टा शायद याद न आ जाय ! और पीछी इनके जैसी प्रवृत्ति होजाय ! वास्ते मेरे तो कामिनिके साथ वोलनाही नहीं-इसके अंगोपांग देखनेभी नहीं, मैं इसकों देखुं तो मेरे आतमाका आत्मतत्त्व भूलजाउं वास्ते नहीं देखना है. इसलिये ज्ञानीनेभी जेसे सूर्य सन्मुख दृष्टि पडगइ हो तो फौरन पीछी हठालेते है, वीसी तरह दृष्टि हठालेनेका कहा है, वोभी सत्य है. इस स्त्रीकी संगतिसें मैंनेभी

पूर्व समयमें बहुतसी अज्ञानता की है, जिसने इनके कर्मकी विचित्रता मुजब करनी है उसमें मेरे क्या? ऐसा शोचकर स्त्रीपरिसह जीतता है ऐसे स्त्रीयादिकके रागबंधन होवे उसवास्तेही मुनीविहार करते है. एक जगहपर नहीं ठहरते विहार करनेमें चलना पडे उसका थक मार्गमें लगे, पाव दूखने लगे, तो उसवक्तभी मुनी शोचे कि–अहा आत्मा! थक तो पुद्गलकों लगता है दूखना है वोभी पुद्गलकों दु:ख होता है, तु किसलिये विकल्प करता है? ऐसा शोच अपने आत्मस्वभावमेंही मग्न रहते है मगर अपने आत्मभावसे चित्त चलायमान नहीं करते है ओर उस स-र्वी कुछभी विकल्प नहीं करते है वो प्रभुजीके वचनसें और आपके अनुभवसें अपने आत्मधर्मकी श्रद्धा की है उसके फल हैं हरकोइ मकान निरवद्यतासें मिलता है उस मकानमें रहते है वो मकान यदि प्रतिकूल हो या बहुत सुंदर होनेसे अनुकूल हो तोभी उन सबकी राग द्वेष नहीं धरते हैं प्रतिकूल करतें अनुकूल परिसह जीतना बडा कठीन है लेकिन आत्मज्ञानी पुरुष तो चाहे वैसा हो, मगर निज स्वरूपसें दूर नही हठते हैं उससें विकल्प आताही नहीं विछानेका संथारा अनुकूल या प्रतिकूल मिलजाय, उसमेंभी कुछ चिंतन नहीं करते हैं, और आत्माका उदासी भाव होगया है सो अनुकूल प्रतिकूलमें चित्त जाताही नहीं, उस सबबसें कोइभी विचार करना पडताही नहीं चाहे सु होवे मगर आप अपनेही स्वरूपमें रहते हैं, और जड प्रकृतिकी ओर लक्ष देतेही नहीं समझ लेनेका धर्म है सो उसका स्वरूप जानलिया जाता है आक्रोष परिसह उपजे सो कोइ आकर कटु वचन–मर्मवचन–द्वेषमय वचन–यद्वातद्वा बोलै या मकार चकार बोलै, तोभी बिलकुल निजस्वरूपसें चलित नहीं होते हैं आप जिस आनंदमें वर्त्तते हैं, उसी आनंदमें वर्त्तते कोइ आकर वध करै तोभी समभाव नहीं छोडते है, जैसें कि मेतार्य मुनिवरकों चमडेकी रस्सी लपेटकर सिर चीरदिया ओर प्राण गये गजसुकुमालजीकों सोमिल ससरेने अग्निके अगारेकों सिरपर मिट्टीकी पाल बांधकर भरदिये याद सिंचन किये तोभी बिल्कुल अपने आत्मभावकों चलायमान न किया,

मगर ध्यानधारा वढाकरके केवलज्ञान पाकर सिद्धिपद पाये. पांचसो मुनियोंको पापी पालकने घाणीमें घालकर पीलवा दिये तोभी वे समभावमें रहे उससें केवलज्ञान पाये. इसतरह जो कोइ मारकूट करे उसकी दया शोचते है कि—यह विचारा अज्ञानतासें कर्मबंधन करता है; लेकिन आपकों दुःख होता है उस तर्फ लक्ष नहीं देता है. इसतरह मुनीमहाराज समभावमें रहवे. मारनेवालेपर किंचित्भी द्वेषभाव नहीं ल्याते है. भगवान् श्री वीराधीवीर महावीरस्वामीजीकों संगमादेवने वहुतही कठीन और वहुत उपसर्ग किये, तोभी भगवंतजी चलित न हुवे. इसीतरह आत्मज्ञानीकों अध्यात्मज्ञान प्रकट हुवा है उसके प्रभावसें चाहेसो उपसर्ग आता है वो समभावसें सहन करता है. लेकिन स्हामनेवालेकों स्वप्नमेंभी दुःख देनेका शोचते नहीं. आहार विगर रहा जाता नहीं उस्से शरीरकों आधार देनेकेलिये आहारपानी लेनेकों जाते हैं उसमें ऐसा चिंतन करते नहीं कि मैं गृहस्थाश्रममें चक्रवर्ती—वासुदेव—मांडलिकराजा या शाहूकार था सो मैं याचना करनेकों क्यों जाउं? फक्त उतनाही शोचे कि यह शरीर आहारके आधारसें चलता है, उससें इसकों आहार न दुंगा और शरीर वीमार पडजायगा तो मेरा समभाव कायम नहीं रहेगाः वास्ते यह शरीरकों आहार देनाही है उसवास्ते तीर्थंकर महाराजजीने याचना करनेकी मर्यादा वतलाइ है वो करनी उसमें मैं वडा राजाहुं ये विचार कुछ करनेका नहीं क्यौं कि राजा और रंकपना तो पुद्गलकों है. आत्माकों तो राजा और रंकपना कुछभी हेही नहीं-- आपके आनंदमय है. पुद्गलकों आहार पोषनेके लिये पुद्गल फिरते हैं याचना करते है उसमें मेरे कुछ विकल्प करनेकी आवश्यकता नहीं है. पूर्वकर्मके योगसें जो जो क्रिया करनेकी है वो होती है. याचना करनेसेंभी शायद आहार न मिला वो अलाभ परिसह उत्पन्न हुवा तोभी अलाभसें राग द्वेष नहीं करते हैं और शोचते हैं कि—आहार संबंधी पूर्वसमय अंतराय वांधा है वो उदय आया है उस्सें आहार नहीं मिलता है; वास्ते उसमें कुछ विकल्प करनेका कारण नहीं. ऐसा विचारके अपने स्वभावमें रहते हैं. फिर पूर्वकर्मके प्रभावसें

शरीरमें रोग उत्पन्न होवे तो वोभी अपनी आत्मदशामें रहकर भुक्तता है; लेकिन रोग सबंधी कुछभी चिंतन नहीं करता. जानता है कि रोगकी पीडा पैदा हुइ है उसमें मै विकल्प करुगा तो पीछे ऐसे कर्म बंधेंगे, तो आत्माकों कर्मसें मुक्त करनेकों प्रवर्त्तताहु उसके बदलेमें कर्मके बंधनमें पड जाउगा ऐसा उपयोग बनगया है, उसीसेंही अपने समभावकी धारा-वर्त्तन कियेकरती है और जो होता है वो जानलेता है, मगर उसमें लीन नहीं होता कदापि पॉवमें घास वगैर का तृण—कंकर चुभता है, क्यों कि मुनीकों जूते पहननेका नहीं उससें पॉवमें चुभें फिर आप सुकोमल भाग्यशाली होवे, तोभी किंचित् उसमें खेद नहीं धारण करते हैं मात्र कर्म स्वरूप जानलिया है, उससें उन सबंधीका विचारही चित्तमें नहीं आता कदाचित् थोडी विशुद्धिवालेकों विचार आवे तो फिर विचार करता है कि पावकों चुभता है आत्मा अरूपीकों कुछ नहीं चुभता है, वास्ते किस लिये मै विकल्प करु? यु करकें समभावमें रहता हैं शरीरमें मल वगैर" होता है. तोभी शरीरकी विभूषा वा सुश्रुषा कुछभी न करनी, उन्सें शरीर पर मैल होवे तोभी शरीर सो मै नहीं ये भाव होनेसें विकल्प नहीं होता. सत्कारपरिसह सो बडे बडे राजालोग आकर बहुत मान करते हैं. अहा महात्मा! आपके जैसें सत्पुरुष इस दुनियामें नहीं पचेंद्रिय वश करली है, तिलकुरभी शरीरकी ममता नहीं केवल आत्मभाव आपने सधा जाना है, कोइभी वक्त आप आत्मभाव नहीं चूकतेहो आपके जैसे ज्ञानी इस जगत्में नहीं, आपके समान उपकारीभी कोइ नहीं आपने जो मुझकों धर्म बतलाया है, ओर जो उपकार हुवा है वोभी मेरे शिरोधार्य है. आप साहबजीकी जितनी भक्ति करु उतनी कमती है ऐसी अनेक प्रकारकी स्तुति करे, मगर किंचित्भी अहंकार नहीं करते है मनमें शोचते हैं कि—अभितकमें पुद्गल दशामेंसे तो दूर हुवा नहीं, ये लोग तो इतनी बडाइ बतलाते है तो मुझमेंभी जोजो पुद्गल दशामें उपयोग जाते हैं वो पीछे हठाने चाहिये ये ज्ञानदशाके महान मान्य करते हैं वैसी ज्ञानदशा अभतक हुइ नहीं, वास्ते जो जो ज्ञान सबंधी खामी हैं वो प्रकट

करनेका उद्यम करना चाहिये. अहा ! सर्वज्ञके ज्ञान मुजब अवतक तो मेरे में ज्ञानकी बहुत न्यूनता है. ऐसे विचारसें अहंकार नहीं आता है और आपके समभावमें कायम रहता है. ज्ञानपरिसह यानी दूसरोंसें आपमें बहुत बोध हुवा होवे उससें दिलमें आवे कि मैं ज्ञानी हुं वैसा कोइ जगतमें ज्ञानवान नहीं है. ऐसे विचार करीके कर्म बांधकर आत्माकों मलीन करता है; मगर ये कौन करता है ? जिसनें अपना आत्मधर्म जाना नहीं है और वहारसें ज्ञान मिलाया है वैसे जीवकों ज्ञानीपनेका अहंकार आता है और वे जीव आगामिक भवमें अज्ञानी होवेंगे. मगर ज्ञानीजीव तो ऐसा शोचते हैं कि—मेरे आत्माका स्वभाव तो केवलज्ञानमय है, उसमेंसें तो अवतक कुछ ज्ञान प्रकट हुवाही नहीं है. फिर श्रुतज्ञानीभी पूर्वकालमें चौदह पूर्वधर हुवे हैं, उसकी अपेक्षासें मुजकों क्या ज्ञान हुवा है कि मैं अहंकार करुं ? ऐसें आपकी अपूर्णता चिंतन कर ज्ञानका अहंकार नहीं करते हैं—आप आपकी दशामेंही निमग्न रहते हैं.

अब अज्ञानपरिसह सो आप अपने आत्मभावकों गुरु मुखसें जानलिया है. पुद्गुलभावकों जानता है उससें स्वपर भेदका ज्ञान हुवा है, और जैसें गुरुमहाराज करते हैं वैसें आत्मतत्त्वकी श्रद्धा करकें अपनी आत्मदशामें प्रवर्त्तता है; मगर तर्कवितर्कका बोध नहीं. षट्शास्त्रका ज्ञान नहीं उस्सें किसीके साथ वाद करनेकी शक्ति नहीं, दूसरेकों बोध करनेकी शक्ति नहीं, उसलिये दूसरे जीव निंदा करते हैं. अहा मूढ ! अज्ञानी ! शिर मुंडवाया मगर कुछ ज्ञान तो है नहीं. ऐसे कठोर वचन कहते हैं, तब समभावी मुनी थोडा पढे हैं; लेकिन आप अपना विचार कर ऐसा शोचते हैं कि—ये जो कहते हैं सो सत्य है, मेरेमें ज्ञान नहीं और पिछले भवके आवरण हैं उससें मुझे बोध नहीं होता है तब ये कहते हैं, ये तो मेरे सद्गुरु हैं तो मै इसमें खेद किसलिये करुं ? फिर दूसरीतरह शास्त्र पढता है; मगर आवरणके लियेसें मुखपाठ नहीं होता है तब उसकों आत्मार्थिपना प्रकट नहि होता है. वो क्या शोचता है कि मुझकों याद नहि होता तो फिर पढनेका वक्त निकालकें क्या करुं ? ऐसा शोच कर

ज्ञानाभ्यास बध करता है उसकों नानावरणी कर्म बधातेजाते है मासतुस मुनि सरिखे आत्माथा है वे तो पढना याद नही होता तोभी उद्यम नहीं छोडते हैं ओर उद्यम नही छोडनेसे कदापि ज्ञान नहीं आता, ताभी समय समयसें ज्ञानावरणी कर्म क्षय होतेजाते है, वास्ते आत्मार्थी पुरुष तो ज्ञान नही आता तोभी ज्ञानका अभ्यास नहीं छोडते और हमेशा ज्ञानका उद्यम-मेंही प्रवर्त्तते हैं ऐसे पुरुष अज्ञानका परिसह जीतते है

सम्यक्त्वपरिसह सो यह चोदह राजलोकके अदर ७ द्रव्य रहे हैं उसमें पाच द्रव्य अरूपी और पुद्गल रूपी है, तोभी पुद्गल परमाणु बहुतही छोटा है. दृष्टिमें नहीं आता असे बहुतसे परमाणु इकठे हो बादरस्कध होता है, वो देखनमें आता है मगर सूक्ष्मस्कध देखनमे नहीं आते अरूपी पदार्थभी देखनेमें नहीं आते वो पदार्थोंका वर्णन सर्वज्ञ कर गये हैं वे सर्वज्ञ तो रूपी अरूपी सर्व पदार्थ जानते है उनकों जानना कुछ मुश्केल नहीं सहजमे जानलेकरके वो प्रकाशित किये हैं. अब ऐसे षट् द्रव्यके भावोंका वर्णन शास्त्रमें है, वो देखकर अज्ञानपनेसें अनेक प्रकारकी शका होती है और सर्वज्ञके वचनोंपरसें आस्था उठ जाती है, लेकिन जिननें सम्यक्त्वज्ञान हुवा है उन पुरुषन अनुमानसें कितनीक वस्तुओंका निर्णय किया है उसें वो जानता है कि यह सर्वज्ञ निष्पाक्षपाती हैं जिनकी बहुतसी बाते सत्य मालम होती है, और कोइ कोइ सूक्ष्म बाते नहीं समझी जाती तोभी प्रभुवचनोंके ऊपर श्रद्धा रखनी योग्य है. श्री महावीरस्वामीजीने आत्मधर्म प्रगट करनेका जो मार्ग बतलाया है उससें अधिक किसी धर्मवालेकों नहीं देखते है, तो मैं किसवास्ते अश्रद्धा करु? कितनीक बातें तो प्रत्यक्ष सिद्ध होती है तो जैसे भरे हुवे बर्त्तनमेंसे चावल पकानेकों आगपर रक्खे होवे उनमेंसें एक दाना पका हुवा देखकर सब चावल पक गये मानते है, वैसें ये पुरुषके बहुतसे वचन न्यायसे सिद्ध होते है और दूसरे,कुछ नहीभी समझमें आते है, उसका सबब मेरा अज्ञान है. कारण कि अज्ञानके जोरसें यथार्थ न्याय

जोडा नहीं जावे उसमें कुछ सर्वज्ञकी भूल नहीं. ऐसा विचार करके सूक्ष्म धानेकी श्रद्धा करे. वो पुरुष सम्यक्त्वपरिसह जीता युं कहा जाता है. और कितनेक अज्ञानी जीव दूसरे जीवोंकी बाह्यकी बाबत संबंधी तकरारे सुनकर उसमें घभडा जाते है-मोहवंत होते है. जैसें कि अभी इंग्रेजलोग पृथिवी फिरती है और सूर्य स्थिर है ऐसा कहते है और उसपर अनेक दुर्बीनोंसें देखकर मनुष्यकों समझाते है, वो समझमें लेकर मनुष्य कहते है कि शास्त्रमें तो सूर्य फिरता कहा है, वो बात मिलती नहीं आती; घास्ते जैनशास्त्रपर क्या श्रद्धा करे? ऐसी दशा होती है. मगर उसके अंदर विचारनेका है कि, जैसें लखो रुपे इंग्रेजलोग ऐसे काममें खर्चते हैं और वैसी मिहनत करते हैं, मिहनत करनेवालोंकोभी हजारों रुपेका पगार वा इनयाम मिलते है, वैसी तरह वर्त्तमान समयमें जैनमें कोइ राजा नहीं. और वैसे पैसे खर्च करना वो राजाओंका काम है. और पैसे खर्चे विगर पृथिवीपर फिर सके नहीं और उसका निर्णय हो सके नहीं. और जहांतक निर्णय हो सके नहीं वहांतक प्रभुके वचन पर प्रतीत रखनी चाहियें. अपनी शक्तिकी कसूरके बदलेमें शास्त्रपरसें आस्ता उतारनी योग्य नहीं. पुनः इंग्रेजलोक कहते हैं वो बात न्यायमेंभी जुडती नहीं; तोभी उन्हके वचनोंकी मनुष्य श्रद्धा करते हैं उस करतें प्रभुजीके वचनोंकी श्रद्धा करे वो श्रेष्ठ है.

इंग्रेज कहते हैं कि यहांसें सूर्य तीन करोड माइल दूर है और इस पृथिवीका व्यास-घेरावा २४ हजार माइलका है. उसकरतें सूर्य चौदहलाख गुना वडा है-इसतरह मानते हैं. अब शोचो कि-पृथिवीसें सूर्य चौदह लाख गुना वडा है तो पृथिवीमें रात पडनीही न चाहियें; क्यौं कि बाजुपरसें सब जगेपर प्रकाश जाना-पडना चाहियें. जैसें एक इंचकी सुपारी एक बाजुपर होवे, और एक बाजुपर चौदह लाख इंचका उजाला होवै तो सुपारीकी किसी बाजुपर उजाला न होसके ऐसा होसकताही नहीं, तैसेंही पृथिवीका गोला मानते हैं, वो गोलेपर सब जगे प्रकाश होना चाहियें-रात पडनीही न चाहियें. इस विषयमें कितनेक युंभी कहते हैं कि

तीन करोड माइल दूर है उससे गोलेकी एक बाजुपर उजाला न आसके-हम कहे तहै कि वो कथन अकलसें विरुद्ध है वो ४ हजार माइल तो गोलचक्र भरनेसें है, मगर एक जाडाइकों लंबाइ गिनलेवें तो आठ हजार माइल होवे अब जो तीन करोड माइलतक प्रकाश आ सकता है उसका आठ हजार माइल आनेमें कुछ हरकत होय ये वार्ता संभवित नहीं कदाचित वो लोग कहै कि पृथिवी श्याम है जिस्सें उसका परछाया या परदा पडता है ये वार्ताभी असंभवित है गोल वस्तुकी चारों और प्रकाश व्याप्त होवे उसमें कुछ हरकत होसके ये बातभी अकलसें दूर है यु होनेपरभी कितनेक लोग इंग्रेजोंकी कलाकौशल्यता देखकर श्रद्धा करके धर्मश्रद्धा उठा डालते हैं वो अज्ञानता है ऐसा समझना चाहिये सांसारिक कलाओं करनेका जीवकों अनादि कालका अभ्यास है वो कलाओं आवे उसमें कुछ नवाइ-ताजुबीकी वात नहीं, मगर धर्मकी कला आनी वो बहुत दुष्कर है हजारों मनुष्यमेंस धर्मप्रवर्त्तक बहुत कम होते है-धर्मज्ञपना बहुत मुश्कील है इंग्रेज लोग दूर देश रहे और सर्वज्ञ इस देशमें हुए, उस्से इस देशके लोगोंको तो कुछ कुछ वासनाभी सर्वज्ञकी आइहुइथी, लेकिन दूर देश-वालोंकों कुछभी वासना आइ नही उस सबबसें धर्मकी बाबतमें वो लोग कुछभी नहीं समझते हैं. व्यवहारिक कलाओं तो अपने हाथसेंभी शीख ले-नेसें आ सकती हैं, मगर अरूपी पदार्थका ज्ञान सर्वज्ञके वचनसेंही हो सकता है वास्ते सर्वज्ञके वचनपर जिनकी श्रद्धा कायम रहती है उनने सम्यक्त्व परिसह जीतलिया है यु कहेना योग्य है यहांपर कोइ शंका उठावेगा कि-भगवतजीने फरमाया वही कबूल करना और कुछ विचारही नहीं करना उसके बारेमें ऐसा समझना कि सर्वज्ञकी पहिचान अव्वल्सेंही करनी, उसमें सब प्रकारसें शुद्धता देखनी, वो देखलिये बादभी किसी ठौर विरोधपना न मालूम होवे तब उन्होंके ऊपर आस्ता रखनी वही योग्य है.

मनुष्य सूर्य पृथिवीकी बात प्रत्यक्ष गिनते है, मगर वो प्रत्यक्ष नहीं है; क्यों कि ये लोगने तीन करोड माइल सूर्य दूर है उसका मुकरर करना अनुमानसें किया है-सूर्यका और पृथिवीका मानभी अनुमानसें करते

हैः वास्ते अनुमानमें बहुत फरक रह जाता है जैसें कि पहाड हैं सो ऊंचे हैंः मगर दूरसें देखें तो नीचे मालूम होते हैं. एक मनुष्य नीचे खडा है और उसको सात मजलेकी हवेलीमेंसें देखेंगे तो वो मनुष्य छोटासा दिखाइ देगा. फिर कुछ चित्र चित्रे हैं वो दोनु आंखें खोलकर देखेंगे तो चित्रही मालुम देगा. सब अंग नहीं मालूम होगा. वही चित्र यदि एक आंख मुंदकरके निगाहपूर्वक एक आंखसें देखेंगे तो चित्रमें चित्रा हुवा मनुष्य साक्षात जैसा मालूम होवैगा. सच रीतिसें देखे तो चित्र है वो कुछ वस्तुतामें मनुष्य नहीं तथापि मनुष्य मालूम होता है—ऐसेंही दुर्बीनसेंभी विचित्र प्रकार मालूम होवे उसमें भ्रम रह जाय, वास्ते जहां जहां जो वस्तु हैं वो वस्तु उस ठिकानेपर जाकर नहीं देखी वहां तक वो वात मान लेनी वो वाजब नहीं. किसीके कथनसें सर्वज्ञके वचनकी आस्ता छोड देनी नहीं. सब जगह फिरकर निर्णय करना चाहियें, वो बन सकता नहीं तब इंग्रेजोंका कथन अनुमानवाला माननेसें तो सर्वज्ञकथित मानना वेही अच्छा है. ऐसे विचार करकें आत्मार्थीकों तो कुछभी व्यामोह होता नहीं. दूसरी तरह तो आत्माकों तो संसारसें मुक्त होना हैं वो मुक्त होनेके उपाय जो सर्वज्ञने वतलाया है उसका अभ्यास करनेसें सर्वज्ञता प्रकट होवें, तब सच कुछ मालूम हो सकें. अभी उस तकरारमें में मेरी शक्ति विगर कहां पडुं? वो तकरारमें पडुं तो उसमें सब तपास करनेसें मेरी उम्मरभी खलास हो जाय, तो फिर मेरे आत्मसाधन करना उसका वक्तभी हाथ न रहे. वास्ते अभी तो आत्मसाधन करकें जडभावमें जो मेरी प्रवृत्ति है उनसें मुक्त हो जाउं, और समभावमें रहनेका उद्यम करुं. ऐसा विचार करकें दस प्रकारका यतिधर्म है वो पालन करै—उसमें प्रथम क्षमा यानी क्रोधपर जीत मिलानी. कोइ जन अनेक प्रकारका तिरस्कार करै—कठोर—मर्मवचन कहदै—कोइ चीज ले जावै—नुकशान करैः मगर क्षमागुण आया है उस्सें उनकेपर द्वेष नहीं होता; क्यौं कि सब वस्तु वहार वनती है—तिरस्कार मेरे नामकों करता है या शरीरकों करता है, तो शरीर सो में नहीं. ऐसा जान लियी है. कुछ चीज ले जाता है वो

अैसा जानना और जो जो वनता है वो वो कर्मके योगसें वनता है वो देखना है उसमें कुछ रागद्वेष करनेका कारण नहीं ? ये दशा हो जानेसें क्षमागुण आता है उस्सें गुस्सा होताही नहा तैसेंही मानका जय करता हैं. मान कौनसी वातका करना ? यह शरीर, धन, स्त्री, पुत्रादि पदार्थ कुछ मेरे नहीं ऐसा निर्धार किया हें उस्सें किस वातका मान हावे ? फिर आप ज्ञानवान है उस विषे आपके मनमें है कि मेरे आत्माकी शक्ति तो केवलज्ञानकी है वो अभीतक प्रकट न हुइ और आच्छादित हो गइ है वो मेरी वस्तु होनेपरभी प्रकट न हुइ तो मेरी लघुताका स्थान है, तो अव में किस वातका मान करु ? ऐसी दशा वनी है उस्सें मार्दव गुण आया है उसीमें मानदशा सहज छुट जाती है मान-छोडनेका विचारभी अपूर्णका करनेका है पूर्ण पुरुषकों तो विचार कर-ना पडताही नहीं, क्यों कि मान आवे तो छोडनेका विचार करै, लेकिन ऐसी दशामें मान आताही नहीं अव आर्जव सो मायाका त्याग वो कपट रचनापना सहजही छुटगया है मुनीने आत्मपना जानलिया है. उसमें सव जड पदार्थ पर जानलिये है उसमें कितनीक प्रवृत्ति करते हैं, सो मात्र निज स्वरूप आच्छादित हुवा है उस्कों प्रकट करनेके लियेही करते हैं वो अव कपट किस वास्ते करना चाहियें ? चेलेकी इच्छा नहीं, श्रावककी इच्छा नहीं, धनकी इच्छा नहीं, ये मेरे और ये मेरे नहीं ऐसाभी करने का नहीं फक्त पूर्ण ज्ञान उत्पन्न नहि हुवा वहांतक पूर्ण ज्ञान उत्पन्न होनेका उद्यम करता है उसमें निर्वाह करना चाहियें वो वस्तु मिलजाय तो ठीक और न मिलजाय तोभी ठीक ये दशाके वर्त्तनेवालेकों कपट करनेकी क्या जरुरत पडे कि करे ? वास्ते निष्कपट आर्जवगुण प्रकट हो-नेसें सहजसें वर्त्तते हैं निर्लोभता गुण सो अपने शरीरकों मेरा नहीं जा-ना है तो लोभ किस वातका रहे ? शरीर मेरा नहीं और शरीरसरक्षणके पदार्थ मेरे नहीं, ये सव जड पदार्थोके ऊपरसें राग उतरगया है इससें लोभ किस वातका करै ? वास्ते निर्लोभता उत्पन्न हुइ है कोइ वस्तु शरीरके निर्वाह वास्ते चाहियें वो मिलगइ तो लेवै और न मिलगइ तो उस

यावतका विकल्प नहि करते, ऐसा विचारते हैं कि पुद्गलकों वस्तु चहीती है और पुद्गलकों मिलती नहीं–ऐसा विचारके पुद्गलिक पस्तुका लोभ नहि करते हे. यहांपर कोइ प्रश्न करेगा कि–ज्ञान पढनेका लोभ होवें कि नहीं ? उसके जवाबमें ज्ञान पढने–वांचनेका लोभभी निश्चय दाशमें जाता है, और जब ध्यानी पुरुष होते है और आठवे गुणस्थानकमें क्षपकश्रेणी मांडते हैं तब ज्ञानका लोभभी नहीं रहता है. मेरे आत्मामें अनंत शक्ति है उसमें मेरे क्या प्राप्त करना हैं ? जिसके पास वस्तु न हो वो वस्तु प्राप्त करनेका लोभ करै; मगर मौजूद होवै वो किस बातका लोभ करै ? और इन पुरुषनें अपना सत्ता धर्म जानलिया है और उसमें सहज सुखका अनुभव हुवा है, अपूर्व ज्ञानभी प्रकट हुवा है इससें ज्ञान प्राप्त होनेकी इच्छाभी वहां रुकजाती है; मगर वो दशा केवलज्ञानप्राप्तिकी अंतर्मुहूर्त्तकाल बाकी रहता है तब प्राप्त होती है–उसके अव्वल नहीं बनसकती हैं, लोभी वो लोभ करते हैं वो निर्लोभता प्राप्त करनेके वास्तेही है. वास्ते नीचेकी हदमें त्यागने योग्य नहीं; मगर ज्ञानके लोभसें नीति छोडकर न चलै. न्यायसे चलै. एक ज्ञान मिलानेकी इच्छा वर्त्तती है–उस रूप लोभ है; लेकिन वो इच्छाकेलिये संसारी जीव अन्यायकी प्रवर्त्ती करते हैं वैसे नहीं करते हैं; मात्र सब काम छोडकर मुख्यतासें ज्ञानका उद्यम कर रहे हैं. बाकी सब पुद्गलिक चीजोंपरसें लोभ हटगया है. फिर तप सो बारह प्रकारका करते है वो सहज भावहीसें होता है. आत्माका अणाहारी गुण समझलिया है. आहार करना सो मेरा धर्म नहीं ऐसा समझनेसें आहारपरसें इच्छा हटगइ है, उस्सें तप करते है. संयम सो स्वगुणमें रहना और पुद्गल प्रवृत्ति रोक देनी. वो संयम गुण प्रकट हुवा है उसीसें इंद्रियोंके विषयकी इच्छा नहीं वर्त्तती है. अव्रतकी प्रवृत्ति नहीं करते हैं. कषाय रहित वर्त्तते है. मन–वचन–कायासें बुरी प्रवृत्ति रुकगइ है उसकोंभी आत्मा निर्मल होवै वैसी प्रवृत्तिमें वर्त्ताते हैं–इसरुप सतरहा प्रकारसें संयम धारण करते हैं. बाह्य संयम सतरहा प्रकारसें पालनेके सबबसें अंतरंग निज स्वभावमें स्थिर होता है. ये रूप संयमगुण वर्त्तता है. सत्य सो

सचा बोलना जिसकों आत्मज्ञान नहि है वो शरीरकों मेरा कहता है- आत्मज्ञानी मुनी वैसा नहीं कहते हैं व्यवहारसें तो जैसा बोलाजाय वैसा बोले, मगर वस्तुधर्मसे पिराया जानलिया है उससें बोलते हैं लेकिन अंतरंग उपयोग मेरा नहीं ऐसा चलरहा है जो पुरुष पुद्गलकोंही मेरा नहीं मानते हे वो पुरुष दूसरी बाबतमें असत्य बोलेही क्या ? प्ररुपणाभी सहजसें यथार्थही होवे-ये सत्यगुण प्रकट हुवेका फल है अब शौचगुण सो निरतिचार वर्त्तते हैं अतिचारादिक दूपण लगे नहीं इस्सें पवित्रपना वर्त्तता है-यानी निज आत्मतत्त्वमें तृप्ति रही है -ये रुप पवित्रता होरही है, उस्सें पुद्गल प्रवृत्तिके दूपण नहीं लगते ह इमसें सहजसें निरतिचार वर्त्तते हैं, कुछभी पुद्गलीक काममें राग द्वेष नहीं करते है जो होवे उसमें कर्मोदय समझकर वर्त्तते है अकिंचन गुण सो बाह्यपरिग्रह त्याग-धन धान्यादि नौ प्रकारसें और आभ्यंतर परिग्रह-शरीरादिकपर मेरे पनेका ममत्वभाव वो सब प्रकारसें त्याग किया है उससें बाह्यपरिग्रहपरसें सहजही मूर्छा उतरगइ है-वस्त्र वगेर रखते है वो निर्मूर्छापनेसें जगतका व्यवहार समाल्नेके लिये रखते ह, मगर वो अच्छे बुरे-जैसे मिले वैसे पहनते हैं-किंतु विकल्प नहीं करत हैं ये मूर्छा गइ उसके फल है. ये रुप मुनी अकिंचन गुण प्रकट करते.हैं ब्रह्मचर्य सो बाह्यसें सब तरहसें स्त्रीका त्याग किया है अंतरंगमें पचेंद्रियके विषयकी तृष्णा नाश होगइ है- स्वात्मज्ञानमेंही आनंदपनेसें वर्त्तते हैं ज्ञानाचारमेंही उपयोग लगरहा है स्वप्नमेंभी कामकी वाछना नहीं, अंतरंगके सुख अगाडी तुच्छ स्त्रीओंके विषय सुख दु खरूप जानलिये है उनकों कामकी इच्छा क्यों होवे ? इस सबबसें सहजसें ब्रह्मचर्य गुण प्रकट हुवा है इसतरह दस प्रकारका यतिधर्म प्रकट हुवा है और आत्मार्थी इसतरहके उद्यम करके पुद्गलभावसें मुक्त होता हे प्रथम थाडीसी शुद्धता होती है तब मार्गानुसारी होता है, उससें विशेष विशुद्धियुक्त सम्यक्त्व दृष्टि होती है और विशेष विशुद्धिसें श्रावकपना प्रकटता है, उसमेंभी विशुद्धि होवे तब मुनिपना प्रकटता है उनमेंभी ज्यों ज्यों विशुद्धि बढती जाय त्यों त्यों गुणस्थान चढ-

त जावे, और केवलज्ञान प्रकट करता है. ऐसें अनुक्रमसें शुद्ध होता है.

१४५ प्रश्नः—निर्जरा तत्त्वके भेद अरूपी गिने हैं, और कर्म है वो तो रूपी है, उसकी निर्जरा होवे वो अरूपी क्यों होवे ?

उत्तरः—कर्म हैं वो दो प्रकारके हैं. एक द्रव्य कर्म सो आठ कर्म रूपी हैं. और दूसरे भावकर्म सो अरूपी हैं. अब भावकर्म सो क्या पदार्थ है ? द्रव्यकर्मके योगसें आत्माकी अशुद्ध परिणती रागद्वेषमय होती है, वही भाव कर्म कहेजाते हैं. उन भावकर्मोंकी निर्जरा होती है. उनकोंही निर्जरातत्त्वमें गिनी है. वो निर्जरा सम्यक्दृष्टि आदि पुरुष करते हैं. सम्यक् ज्ञान विगर सकाम निर्जरा नहीं होती. चौथे गुणस्थानसें लगाकर चौदहवे गुणस्थानतक होती है वो निर्जरातत्त्वमें है. उस सिवाके जीव अज्ञानपनेसें द्रव्यकर्मकी निर्जरा करे; मगर भावकर्मकी निर्जरा नहीं करसकते हैं; वास्ते द्रव्यकर्मकी निर्जरारुपी और भावकर्मकी अरूपी कहते हैं.

१४६ प्रश्नः—जीव अरुपी है और नवतत्वमें जीवके भेदरुपीमें गिने हैं उसका हेतु क्या है ?

उत्तरः—जीव तो अरुपी है; मगर शरीर बहार मालूम होता है वो शरीर, इंद्रिये पुन्य योगसें मिली हैं. उन शरीर इंद्रियोंसें जीव पहिचाना जाता है कि यह एकेंद्रि, यह पंचेंद्रि है; वास्ते कर्मके संयोगसें जैसी जैसी कर्मकी मलीनता वैसे वैसे शरीरादिकके अलग अलग भेद पडे हैं, उससें शरीर, इंद्रि अपेक्षितरुपी भेद गिने हैं.

१४७ प्रश्नः—संवरके सत्तावन भेद अरुपी कहे हैं, और संवरकी प्रवृत्ति बहारसें मालूम होती है वो तो शरीरसें है तो अरुपी कैसे कहे ?

उत्तरः—बाह्यसें पुद्गलपरसें मोह उतरजाय, तब बरोबर बाह्यवर्त्तना होवे और ज्यौं ज्यौं संवरकी बाह्यवर्त्तना होवे त्यौं त्यौं पुद्गल दशामेंसें प्रवृत्ति रुकतीजाती है और निज आत्मस्वरूपमें लीनता होती है. ज्यौं ज्यौं निज ज्ञानमें लीन होवे कि आते हुवे कर्म रुकजाते है. आत्मस्वरूपमें रहनेसें

द्रव्यकर्म, भावकर्म दोनु रुकजाते हैं, जो भावकर्म रुकगये यो अरूपी हैं वास्ते संवरभी अरूपी है उससें संवरके भेद अरूपीमे गिने हैं.

४८ प्रश्नः—संवर निर्जरा मिथ्यात्वी करै या नहीं?

उत्तरः—मार्गानुसारी मिथ्यात्व गुणस्थानमें अंशसें संवर, अंशसें निर्जरा करै ऐसा हेमाचार्यजीने योगशास्त्रमें कहा है, वैसेंही विचारबिंदुमें यशविजयजी उपाध्यायजीनेभी कहा है.

४९ प्रश्नः—जिनमंदिरमें प्रभुजीके अंगलूहने मैले वा फटेलेका उपयोग किया जाय तो उसका दोष कार्यभारीकों लगै या सब श्रावकोंकों लगै?

उत्तरः—प्रभुजीकों तो सर्व उत्तमोत्तम चीज चडानी चाहियें अपना शरीर पुछनेकों किसीने फटेला मैला दुवाल दिया होवै तो वो अनुकूल नहीं आता है और देनेवालेपर द्वेष आता है फिर अपने घरपर कोइ विदेशी महेमान आये होवै उनकों फटेला वा मैला दुवाल नहीं देते हैं, तो प्रभुजीके अंगलूहने फटेले या मैले वापरें तो अपनेकों अपने महेमान करते प्रभुजी अधिक हैं ऐसा दिलमें न आया, और जब प्रभुजीकी आधिक्यता मनमें न जमी तब आत्माकों लाभभी किसतरह होगा? और मुंहसें प्रभुजी बडे हैं यु कहते हैं, पर चित्तमें मोटाइ न आइ, तब लाभ तो न होगा, मगर अवश्य मिथ्यात्व लगेगा फिर दूसरी रीतिसे शोचें तो-प्रभुजीका महत्त्वपना मनमें न आया तो मिथ्यात्व गयाही न समझना जब मिथ्यात्व गया नहीं तब दूषणका तो कहेनाही क्या? लेकिन ऐसा विचारकर थककर बैठ रहना नहीं, किंतु प्रभुमंदिरमें गये, और वैसे फटेले मैले अंगलूहने नजर आये तो तुरत धोनेकी तजवीज करनी, अगर नये ला देनेकी योजना करनी यदि साधारन पुन्यवाला हो तो उन अंगलूहनोंकों आप धो डालें और पुन्यवंत होवै तो अपने मनुष्योंके द्वारा धुलवावें मंदिरके कार्यभारीकों मालूम पडे तो वो तुरत धुलवाके साफ करावै या नये ला देवै किसी औरकी नजर पडे तोभी उसका वैसाही बंदोबस्त करै लेकिन ऐसा न करै कि—कार्यभारी समझे कि दूसरे भाइ उसकी तजवीज करेंगे. दूसरे भाइ समझे कि कार्यभारी तजवीज करेगा ऐसा होनेसें काम

नहीं होता और आशातना जारी रहती है. वास्ते जीसकी वैसे अंगलूहनें पर नजर पडै कि वो फौरन उनके लिये योग्य बंदोबस्त कर लेवें. कुछ बडे खर्चका काम नहीं. अब कोइ कहेगा कि–जिनके नजर आया नहीं, या जो नजर करके किसी रोज देखनाही नहीं उसकों दोष नहीं. जो ऐसा कहे वो निध्वंस परिणामके लक्षण हैं जिसकों देखना नहीं उसकोंभी प्रभुजीपर प्रीति होती तो क्यों न देखना? वा पूजाकी प्रवृत्ति क्यों न करता? मगर प्रमादी है वास्ते उसकों देखनेमें न आया. उसकों कुछ कम दूषण है ऐसा न समझना. जितना प्रमाद ज्यादा है उतना दूषणभी ज्यादा है. वास्ते जो संसारसें तिरनेकी इच्छा करते हैं उन सबकों तो ये काम करना योग्यही है. अंगलूहने बराबर धुले हुवे नहीं होते हैं तो कडक हो जाते है, तो उन अंगुलहनोंसें प्रभुजीकों घसारा लगे उनका दूषण लगे, वास्ते मुलायमदार–सुकोमल–अच्छी तरहसें धुले हुवे अंगलूहनेका उपयोग करना, उससें सुंदर भक्ति होगी. पुन्यवंतोंकों ऐसा विवेक अवश्य रखना, और कभी पुन्यवंत बेदरकार रहेवें तो पंच मिलकर सामान्य पुन्यवाले करलेवें. हरएक प्रकारसें अच्छे, उमदा द्रव्य चडाया जाय वैसाही करना. एसा न करें तो तमाम श्रावकोंकों अशुद्ध वापरनेकी आशातना लगे.

१५० प्रश्नः—मंदिरमें बरतन साफ किये बिगर उपयोगमें लेवै तो क्या होवै?

उत्तरः—मंदिरमें संसारी काममें वपरास किये बिगरके बरतन साफ करकें उपयोगमें लैना. अच्छे द्रव्य होवै तो मन प्रसन्न रहेवै, और लाभभी होवै; और वैसा न होवै तो दूषण लगै ये अधिकार श्राद्धविधिमें है.

१५१ प्रश्नः—मंदिरमें मकडी वगैरःके जाले होवैं उसकों न निकालडाले तो आशातना लगे? और उनकों रखकर पूजा करे तो क्या होवे?

उत्तरः—मंदिरमें जाकर प्रथम आशातना टालनी चाहियें. पहेली निसीही कहे बाद वोही काम करनेका है; वास्ते मकडीके जाले वगैरः जो जो आशातना हो सो पहेली दूर करकें और क्रिया करनी. मंदिरकी आशातना दूर करनेसें ऐसा शोचे कि 'ये काम तो नौकरका है' तो ये बुरे परिणा-

मका कारण है आपके यहा नोकर होवै तो नौकरकी मारफत काम करा लेवें, और नोकर न होवै तो आप खुद्ही आशातना दूर करै अपने घरमें कुछ अनिष्ट वस्तु पडीहो तो वो तुरत निकालडालते है इसीतरह मदिरमेंभी न करै तो प्रभुजीपर प्रेम घर जैसा न रहा, वही बडा दूषण है, वास्ते पहेली आशातनाओं दूर करके पीछे पूजा करनी आशातना दूर किये बिगर पूजन करनेका काम नहीं किये जैसा हो पडता है.

१५२ प्रश्न'—प्रभुजीकों जहापर केसरके तिलक कियेजाते हैं वहापर सुन्ने चादीके पतरे लगायेजाते हैं वो वाजब है या नहीं ?

उत्तर'—प्रभुजीकों सुन्ना चादीके पतरे लगायेजाते हैं वो रीत अच्छी है, क्यों कि भाविक श्रावकवर्ग बहुतसा केसर चडाते हैं उस्से जो जहा पतरे नहीं लगायेहुवे होते हैं वहापर जिनबिंबमें खड्डे पडजाते है, और जो चकते-पतरे लगायेहुवे होते है तो केसर नहीं लागु होसकता है, उससें बिंब दुरस्त रहता है, ये बडा लाभ होता है, और पतरे न लगाये होवै तो बिंब बिगडजानेसें आशातना लगती है, वो बडा दूषण है फिर थोडी समझवालोंकों पूजा किस किस अगपर करनी योभी खबर नहीं होती है उसकों वो पतरोंके निशानसें नव अगकी पूजाभी सहजसें समझमें आती है ये फायदा है मुख्यतासें तो अगम खड्डा पडे नही ये लाभ शोचकर पतरे लगानेका योग्य लक्ष रखना और तमाम जिनबिंबकों वैसे पतरे लगादेना खड्डे पडे पीछे लगाये करते पेस्तरसही लगाना कि जिस्सें आशातना होवेही नहीं

१५३ प्रश्न'—पुष्पकी जगे केसरवाले चावल चडावै तो कैसा ?

उत्तर —स्नात्र भनाते वख्त दूसरे फूल यानि न मिलसकै तो वैसे चावल चडानेमें कुछ हरकत नहीं, क्यों कि आपकी पुष्प चडानेकी भावना है, मगर पुष्प मिलते नहीं तो अपनी भावना पूर्ण करनेके बदलेमें केसरवाले चावल चडानेसें कोइ हर्ज नहीं

१५४ प्रश्नः—जिस जीवने मरणके समय शरीर वोसिरगया नहीं वो शरीरसें शुभाशुभ जो क्रिया होवै उसका शुभाशुभ दोनु फल होवै या नहीं ?

उत्तरः—जो शरीर वोशिराये विगर मरता है और उनके शरीरसें जो जो दुष्ट क्रियाअें होती है उसके कर्म उन शरीरके मालिककों आते हैं. ऐसा भगवतीजीमें पांच क्रियाके अधिकारमें कहा है. वास्ते हरएक प्रकारसें आयुष्यका ज्ञान मिलाकरकें मरन समय संथारा कर सब वस्तु वोशिरानी और वोशिरा करकें मरजानेसें आराधक होवै उससें तीसरे भवमें मुनी और सप्त भवमें श्रावक मोक्षमें जाता है. फिर वो शरीरसें शुभ कर्म होवे उस संबंधीभी वासुपूज्य स्वामीजीके चरित्रमें जो जो एकेंद्रियपनेसें शरीर भगवंतजीकी भक्तिके काममें आये है, उनकी अनुमोदना की है वो देखनेसें अनुमोदना करनेसें शुभ कर्मकाभी लाभ होता है.

१५५ प्रश्नः—जो जो वस्तु वोशिरानेमें आती है वो इस भवके अंत तक वोशिरानेमें आती है तो आते भवमें उसका पाप आवै या नहीं?

उत्तरः—इस भवमें जो जो वोशिराते हैं तो उनके ऊपरसें रागदशा छूट जाती है और रागदशा छूटनेसें उन वस्तुपर मेरेपनेकी संज्ञा नहीं रहती है, उससें उन वस्तुकी क्रिया उनकों नहीं जाती है. और जिसनें युं वोशिराया नहीं उसकों रागद्वेषकी संज्ञा कायम रहती है, और वो संज्ञा कायम रहनेसें रागद्वेषके कर्म बंधे जावे. और जिसने वोशिराया है उसकों दूसरे भवमें अव्रत प्राप्त होता है. अव्रतकी क्रिया अव्रत होवै वहांतक आवै; मगर संज्ञा संबंधी नहीं आवै. संज्ञा उदासीन भावसें वोशिरानेसें उठ जाती है; वास्ते वोशिरानेवालेकों पाप नहीं आता है.

१५६ प्रश्नः—विवेक सो क्या?

उत्तरः—देवकों, अदेवकों, मुक्तिकों, संसारकों, जडकों, और चेतनकों जानै. और आत्माका तथा जडका क्या स्वभाव है? आत्माकों ग्रहण करने और अग्रहण करने योग्य क्या है? इस तरह जो जो द्रव्य हैं, उसके धर्म जानकर आपके आत्मासें जो जो परवस्तु जानै उसकों ग्रहण न करै. उस्में मग्न न होवै, जडवस्तुका कर्त्तापना न करै, आत्माके धर्ममेंही आनंदित रहै. जडधर्ममें किंचित्भी राग करै सो जडकी संगती नहीं छूट गइ है, और किसी तरहसें परकों ग्रहण न करुं एसी विशुद्धि नहीं बनी उससें

जो जो क्रिया करता है सो जडकी वृत्ति दठानेके लियेभी जडकी क्रियामें मग्न नहीं होता है आहार निगर चित्त शात नहीं होता उस लिये आहार करता है, मगर उसमें प्रसन्नता नहीं और वने वहातक तपस्या करता है आत्माका अणइच्छा धर्म चितवता है. जो जो पुरुष आत्मधर्म वतला गये है, उसके आधारसें वर्त्तमानमें जो आत्मधर्म वताते हैं उसका उपगार चिंतन करता है आपकी आत्मदशा प्रकट नहीं होती उससें लघुता चिंतवते है ऐसे तत्त्वज्ञानी पुरुषोंकी सदा सगति करता है. जो जो आत्मधर्म निर्मल होता जाता है, उसीमेंही मात्र खुशवख्ती हैं उद्यम निमित्तभी जो जो सेवन करनेसें आत्मधर्म प्रकट होवे वैसाही सेवन कर रहे हैं विषयादिकके निमित्त आत्माकों घातकर्त्ता जान लिया है उससें उन निमित्तोंसें हमेश दूर रहता हैं, और जितना दूर नहीं रहा जाता वो दूर होनेकी मनोवृत्ति रहती है जो जो काम करता है, उसमें जडकामकों जडपनेसें और आत्माके कामकों आत्मपनेसें जानता है

१५७ प्रश्न'—शातपना सो क्या ?

उत्तरः—कोइ शात-पुरुषकों उपद्रव करे-मारे-कूटे-अयोग्य वचन बोले, जो भूल होवे सो कहदेवे, कोइभी अयोग्य काम किया होवे तो कहकर निंदा करे या निगर कारणसे निंदे, तोभी उनके ऊपर द्वेषभाव न होवे उसकों मारनेका या कटुवचन कहनेका भाव न उठे और उसका बुरा करनेका भावभी न होवे, क्यों कि शातपुरुषने कर्मका स्वरूप जानलिया है कि इस शरीरने मार खानेका कर्म बाधाहोगा तो मारता है गालियां खानेका कर्म बाधा है तो गालि देता है निंदनीकपणेका कर्म बाधाहोगा तो निंदता है ये जीव तो निमित्तमात्र है, इसमें इन जीवोंका क्या दोष है ? ऐसें आत्मामें चिंतन कररहा है, उससें कोइ वैसे जीवपर द्वेष-खेद नहीं आता है और चितवता है कि खेद करूंगा तो पीछे नये कर्म वधे जायेंगे तो फिर आगे उदय आनेसें ऐसेही भुक्तने पडेंगे, और समभावसे भुक्त लेउंगा तो ये कर्मकी निर्जरा होवेगी फिर स्वाभाविक धूप लगता है, ठंडी लगती है, हवा चलती है, नहीं आवे तो सो सब ऋतुका स्वभाव जान-

लेवै; मगर उसमें विकल्प न करै. आहारपानी वस्त्र वगैरः जो कुछ जरूरतकी चीज हो, पर न मिले तो उसका बिल्कुल विकल्पही नहीं. मात्र अंतराय कर्मका उदय विचार लेवे, और अपने आत्मस्वरूपमेंही आनंदित रहै. अनुकूलतामें प्रसन्नता नहीं और प्रतिकूलतामें अरति नहीं. जडभाव जानलेवै वो पुरुषकों शांतपना कहाजाता है. वास्ते उत्तम पुरुषकों ये दशा लानी योग्य है.

१५८ प्रश्नः—दांत सो क्या ?

उत्तरः—पंचेंद्रिय वश की है. कोइभी इंद्रि छूटी नहीं. आहारपानी फक्त शरीरकों आधार देनेकेलिये देते हैं और वोभी चाहिये थितना हरकोइ पुद्गल मिले हैं वो देते हैं. उसमें अच्छा बुरा नहीं देखते. मात्र शरीरकों व्याधि उपद्रव न होवें वैसे पुद्गल ग्रहण करते हैं. इसीतरह फरसेंद्रियकों वस्त्र मिलते हैं वो मुलायमदार या कर्रे मिलें उन दोनुमें समभाव है. जानता है कि यह शरीर मेरा नहीं, तो मुलायमदार और कर्रे वस्त्रकाभी मेरे विकल्प क्यौं करना ? ऐसें पंचेंद्रियके विषयमें चिंतन कररहा है. कोइभी इंद्रिकों पोषन करनेका भाव नहीं. कोइभी विषय जोर करता नहीं. विषयपर उदासीनभाव हुवा है, उससें दिलकों खींचकर नहीं रखना पडता है. आत्माकी दशा सहज प्रकट हुइ है उनके सबबसें इंद्रियोंके विषयका मन होताही नहीं—उन पुरुषकों दांत कहाजाता है.

१५९ प्रश्नः—कामका जय सो क्या ?

उत्तरः—स्त्रीकों पुरुषका अभिलाष, पुरुषकों स्त्रीका अभिलाष और नपुंसककों स्त्री पुरुष दोनुका अभिलाष—इसतरह कामकी इच्छा है. अपने आत्मस्वरूपका जानपना हुवा है उससें पर स्वरूपमें नहीं वर्त्तना है; वास्ते सहजसें अभिलाषा बंध पडगइ है—होतीही नहीं. स्वप्नमेंभी स्त्री याद नहीं आती. स्त्री सामने दृष्टि पडती है उसीवक्त अपनी दृष्टि खींचलेता है; मगर नजर लगाके देखता नहीं. जैसें सूर्यके स्हामने नजर पडती है तो ताप न सहन होनेसें फौरन पीछी हठालेते हैं वैसें निष्कामी पुरुषनें स्त्रीका स्वरूप देखना दुःखकारी मानाहुवा है, उससें सहजसेंही नजर पीछी हठजाती

है स्त्रीका सगभी नहीं करते और कदाचित कोइ स्त्री चालत करनेकेलिये यत्न करै तोभी वो निष्फल होती है कभी स्पर्श करलेवै तोभी पुरुषचिन्ह जाग्रत होताही नहीं, और उसकी दशा बदलातीही नहीं जिसतरह सुदर्शन शेठकों अभयाराणीने कितनेही उपसर्ग किये, पुरुषचिन्हकों बहुतसी विटम्बना की तोभी नपुसक जैसा कायम रहा ऐसे पुरुषने काम जीतलिया है ऐसा कहाजावै, वास्ते काम जीतकर ऐसी दशा बनानी योग्य है

१६० प्रश्न—मुक्तिमें क्या सुख है कि मुक्तिका प्रयास करना ?

उत्तर —मुक्ति जैसे सुख इस दुनियामें नहीं, और वो विचार करोगे तो तुमकों ससारमें खात्री होगी ससारमें रहाहुवा जीव अज्ञानतासें ससारमें सुख मानता है जो सुख ससारमें होता है वो तपासकें देखो—सारादिन ससारी मौज शोख व्यापार करता है, उन व्यापारमेंसें फरसुद मिलती है और जब कुछभी काम न हो तब सोनेका वख्त मिलता है. और जब सोता है तब प्रसन्न होकर कहता है कि मुझकों निवृत्ति मिली लेकिन लडके वगैर कुछ सोरगुल मचादेवै तो सोनेवाला कहेगा कि मै आनदसें सोताहु वास्ते अभी मुझकों क्यु पीडा देतेहो ? वो लडके जावै उतनेमें फिर कोइ नइ उपाधि आ खडी रहवै—कामकी चिंता याद आवै, तो निंद नहि आती कुछभी वात यादीमें न आवे तो निंद आती है

अब वाचकवर्ग ! विचार करो कि जितनीदक्त कामकी निवृत्ति मिली, उतना वक्त सुखका मिला कामके वख्त अज्ञानतासें सुख मानताथा वो सुख झूठाही था क्यों कि उसवख्त सुख होता तो आनदसें सोया उसवक्त सुख नहीं मानता ? और आनदित नहीं होता ? लकिन जीव काममेंसें फरसुद पाता है तबही आरामसूचक शब्द मुँहमेंसें निकलता है वास्ते इस ससारमेंभी ससारके कामोंसें और विकल्पोंसें रहित होता है तबही सुख होता है. तो मुक्तिमें तो कुछ कामही नहीं है काम करनेका नहीं तो विकल्प चितन करनेकाही नहीं, उससें सारा वक्त सुखमेंही जायगा वास्ते मुक्तिके बरोबर इस फानि दुनियोंमें सुख हैही

नहीं. फिर इस जहांमें अज्ञानतासें पदार्थ देखकर, जानकर सुख होता है अच्छे मकान, आभूषण और बागबगीचे देखकर खुशी होता है; लेकिन उसके साथ कोइ अंधा होवै तो वे पदार्थ उसके देखनेमें न आनेसें नाखुश होता है; मगर अंधेकों देखनेवाला वो हकीकत सुनावै-समझावै तब उसकी समझमें आता है तो उससें वो खुश होता है. सोनेकी बिछायत मुलायमदार होवै और अंधा हाथ फिरावै तब मुलायमदार मालूम होवै उससें वो अंधा खुश होता है. अब शो चलो कि-कितनेक पदार्थ देखनेमें समझनेमें आते हैं तब उसीका सुख होता है; मगर जो देखा-समझा नहीं उसका सुख होनेका नहीं; लेकिन सिद्ध महाराज तो जगत-भरमें जितने पदार्थ हैं वो सब रुपी अरुपी जानकरकें देख रहे हैं. अपन तो सिद्ध महाराजजीके अनंतमें भागकाभी नहीं जानते हैं. वे अपनसें अनंते पदार्थ जान देख रहे हैं, तो अनंत सुखभी सिद्ध महाराजजीकों है वो सिद्ध होता है.

यहांपर कोइ शंका करेगा कि नजरसें लड्डु देखे; मगर खाये बिगर क्या सुख मिलै? उसके जबाबमें यही खुलासा है कि-लड्डु खानेमेंभी रसेंद्रिकों विषय ग्रहण करनेकी शक्ति न हो तो स्वादका सुख नहीं मिलता है. जेसें कि कुछ रोग हुवाहोता है तब नमकीन चीजकों फीकी बतलाता है और फीकीकों नमकीन बतलाता है, ऐसी विषय लेनेकी शक्ति बिगडजाती है तब लड्डु कैसे हैं? वो विषय लेनेकी शक्ति न हो उसकों लड्डु अच्छे बुरेका सुख नहीं होता है. जिनकों लड्डुके अच्छे बुरे विषय समझनेकी शक्ति हो वही लड्डुका सुख जानसकता है. वास्ते खानेसें सुख नहीं-लड्डुका स्वाद जाननेसें सुख है. निंदमें कोइ मनुष्यके मुँहमें मिसरी डालदेवै; लेकिन उसे कुछ मिसरीका सुख नहीं मिलता. दर्दी बेहोशमें हो उसके मुंहमें अमृत रक्खै तो कभी निकलजायगा; मगर समझमें आये बिगर अमृतका सुख नहीं मिलता; वास्ते जो जो वस्तु जाननेमें आती है उनकाही सुख जगतमें हैं. मुक्तिमें तमाम वस्तु जाननेमें आती है उससें तमाम सुख है. फिर क्षुधातुर जन खानेमें सुख

मानत ६ भोजनसे तृप्त हुवे वाद जवरदस्त कुछ खिलायाजाता है तो वो तृप्तिवतजन नाखुश होता है, लेकिन सुख नहीं मानता है, वैसेही मुक्त आत्माकों भूख लगतीही नहीं उससे भोजन करनेकी इच्छा होतीही नहीं. तृप्त हुए जन खानेकी इच्छा नहीं करते हैं हरहमेशा तृप्तही हैं कोइरोज भूख लगतीही नही और खानेकी इच्छा होती नही. इच्छा ये जडकी संगतिसें होती हैं, वो जडकी संगति छुटगइ है और स्वात्मदशा है वैसी प्रकट हुइ है. स्वदशामें जडकी किसी प्रकारकी इच्छा हैही नही विकल्पभी जहातक जडकी संगति होवै वहातक होते है सिद्धमहाराजजीकों वो जड संबध नही, उससे किसी प्रकारका विकल्प नही जगतमें संसारी जीवकों संसारमें है वहातलक विकल्प है और सर्वथा संसार छुटजानेसें सिद्धमहाराजजी हुवे कि विकल्पका नामभी नही वहा निर्विकल्पदशाका पूर्ण सुख है सो ऐसा है कि मुखसें कहाभी नही जाता सारे जगतका सुख इकट्ठा करे उसकरतेंभी अनतगुना सुख है वो सुखका वर्णन केवलज्ञानी मुखसें आयु पर्यंत न कहसके उतना है, वास्ते सिद्धके सुखका पार नहीं मगर जीव आत्मसुखका अंश सम्यग् पावेगा तब उसकों अनुभव मिलनेसें समझसकेगा कि सिद्धजीकों कितना सुख है वो प्रत्यक्ष मालूम होवेगा.

१६१ प्रश्नः—मनुष्य मरणके समय संथारा करे सो किसतरह करे? और उसमें क्या चिंतन करे? और उससें क्या लाभ होवे?

उत्तरः—वर्त्तमान समयमें आयुपकी चोक्कस खबर नहीं पडती है, उससें जावजीवका संथारा नहीं बनसके, क्यों कि भत्तपच्चक्खाण पयन्नेमें कहा है कि— केवलज्ञानी—मनपर्यव ज्ञानी—अवधिज्ञानी और पूर्वधर मुनीराजके कथनसें वा निमित्त शास्त्रसें, वा देववाक्यसें आयुपकी खबर पडे और प्रतीति होवे तो जावजीवका अनशन करे और ऐसे महापुरुषोंका इस कालमें विरह होनेसें आयुपका निर्णय नहीं हो सके तो सागारी अनशन करे. सागारी अनशन यानी एक दिन वा दो दिन, एक पहेर वा दो पहेर यावत् दो घडी—चार घडी वा अभिग्रह रक्खे कि मुट्ठी वालकर नौकार

गिनों वहांतक सर्व आहारका त्याग और सब संसारी काम करनेका त्याग है, कुछभी पापारंभ काम नहीं करुं–इसतरह संथारा करनेका विधि सबने कहा है. वो औसर न मिलै तों द्रव्य–क्षेत्र–काल और भाव देखकर उच्चराना उसके आलेवेकी विधि नीचे मुजब हैः—

अहन्नं भंते तुम्हाणं समीवे, भवं चरियं सागारियं पच्चक्खामी, जइमे हुज्ज पमाओ, इमस्स देहस्स इमाइ रयणीए. (किंवा) इमाइ वेलाए आहारमुवहिदेहं. सव्वंतिविहेण वोशिरियं. १ अरिहंत सक्खियं, सिद्ध सक्खियं, साहू सक्खियं, देव सक्खियं, अप्पसक्खियं, उवसंपज्जामि, अन्नथ्थणा भोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिया गारेणं वोसिरामि. २ नौकारपूर्वक ३ वार उच्चरावै. विशेष सागारिक–अहन्नं भंते तुम्हाणं समीवे, सागारियं अणसणं, उवसंपज्जामि, दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, दव्वओणं इमं सागारियं, अणसणं. खित्तओणं, इच्छंवा, अनिच्छंवा, कालओणं, अहोरत्तंवा, वीयदिन्नंवा, तइय दिन्नंवा, पासखमणंवा, मासखमणंवा, भावओणं, जावगहणं न गहिज्जामि, जावछलेणं, नछलिज्जामि, जावसन्निवाएणं, अन्नेणय केणइ रोगायं केणं एसपरिणामो नपरिवडइ तावमेयं इमं सागारियं अणसणं उवसंपज्जामि, तिविहंपि आहारं असणं खाइम साइमं अन्नथ० सहसा० महत्त० सव्व० वोसिरामि० पाणहार गंठ साहिय, पच्चक्खामी, अन्न० सहसा० महत्त० सव्व० अरिहंत सक्खियं, सिद्धस० साहूस० देवस० अप्पस० उवसंपज्जामि नित्थारपारगहोहं. जं जं मणेणवद्धं, जं जं वाएणभासियं पावं; जं जं काएणकयं, मिच्छामिदुक्कडं तस्स. १ अरिहंतो महदेवो, जावज्जीव सुंसाहुणो गुरुणो; जिणपन्नतं तत्तं, इयसमत्त मए गहियं. २ ये सब आलावा नौकारपूर्वक तीन दफै उच्चराना.

इस आलावेमें प्रथम पाठ वो जावजीवका संथारा करनेका है. और थोडे कालके वास्ते करनेका पाठ विशेष सागारिक कहा है वहांसें है. वर्त्तमान समयके जीवोंकों उच्चरना अनुकूल होवै वैसे उच्चरै. (मैंनें अनशन विधिके पत्रमें जैसा था वैसा लिखा है.) महानिशीत्थजी सूत्रमें कहा

है कि जो करना सो इरियावही पडिक्कमीकें करना; वास्ते वख्त मिलै तो इरियावही पडिक्कमी जघन्य मध्यम उत्कृष्ट ये तीनमसें जो वन सकै सो करना, देववदन करकें गुरुवदन कर ये पाठ उचारना तो विशेष श्रेष्ठ है, मगर जैसा औसरहो वेसा करना औसर मिलै तो सब जीवके साथ खमतखामणे कर ले. मुनि हावै तो मुनीके और श्रावक हावै तो श्रावकके व्रत उचरै, और चउसरणपयन्ना और आउरपचख्खाण, भत्तपचख्खाण, संथारापयन्ना, आराधनाप्रकीर्णक, आराधनापताका अध्ययन करै वा सुने उससें अध्यवसाय बहुतही सुंदर होवेंगा चउसरण आउर पचख्खाण पयन्नादिक सुननेसें समाधि मरण होता है उसका मुझकों अनुभव है आयुष आ रहा होवै तो मरणसें तो नहीं बचता, मगर रोग शांत पडता है और श्रवण करनेसें चित्त विरोया जाता है वो मेंने देखा है वास्ते वो पयन्नेका अभ्यास मरणके वख्त जरुर करना. वो पयन्नेमें ऐसा भावार्थ है कि धर्ममें जाव जरूर दृढ हो जाता है, और आत्मामें अच्छी भावना होती है और वोभी इसतरहकी होनी है कि- अहो! मैंने पेस्तर इस भवमें और पिछले भवमें पाप किये हैं वा जिससें पाप होवै वेसा मकान-दुकान-खेत्र वगैरः और कुदाले-पावडे-बरतन-शस्त्र-तलवार प्रमुख हरकोइ पापोपकरण [जिन वस्तुसें पाप होवै वैसे पदार्थ) बनाये है वो सब वोशिराता हु कोइभी पुद्गलीक वस्तुके साथ मेरेंपणेका सबंध मान लिया है वो सब वोशिराता हु कोइ वस्तुपर मेरा कुछभी राग रहे तो वो रागवाली वस्तुसें पाप हावै तो उस पापकी क्रिया मुझकों आवै, वास्ते कुल जडपदार्थपरसें मेरे ममत्वभावकों त्याग करता हु-कोइभी वस्तु मेरी है ही नही मेरी वस्तु तो मेरा आत्मधर्म ह और जो जो पुद्गलीक पदार्थ हे उनकों अज्ञानतासें मैंने मेरे मान लियेथे उससें अज्ञानपनेसें अनेक पाप उपार्जन किये अब पुन्योदय जाग्रत हुवा उससें में कुछ वीतरागजीका मार्ग जाना कि वो सब चीजों-जडपदार्थके साथका मेरा सबंध तपासनेसें मालूम हुवा कि कोइभी तरहसें सबंध रखना लायक नहीं वास्ते मेरे अज्ञानपनेसें मेरापना माना था

वो त्याग करता हुं और उस पापकों निंदता हुं. मैंने अज्ञानतासें अनादिकाल तक ये शरीर धनकों मेरा मान लियाथा, उस्सें मेंनें चारोंगतिमें भ्रमण किया और अनेक दुःख भुक्ते. वास्ते अब मेरे आत्मा सिवा स्त्री—पुत्र–पुत्री जो जो मेरे मान लिये हैं उन सबकों अज्ञानता और अज्ञान भावकों वोशिराता हुं. और एक आत्माका अवलंबन ग्रहण करकें मरणका डर छोडकर अदीनतासें मेरा आत्मा अविनाशी है उसकों आलंबन लेता हुं. उसके सिवा मेरा कुछ पदार्थ नहीं. आत्मा आपके आचारमें रहकरकेंभी मरता है और अज्ञानतासेंभी मरता है. मरण किसीकों छोड देता नहीं, तो अज्ञानपनेसें मरन करनेसें आत्मा कर्म करकें लिप्त हो जावै और भव भवके अंदर उसकों अनेक प्रकारके दुःख भुक्तने पडें; वास्ते मेरे आत्माका आचार जो जो शरीरकों होवे सो जानना; मगर वो दुःख सुख मुझकों होता है ऐसा मानलेना अयोग्य हैं. इसलिये मैं मेरे आत्मस्वभावकों जाननेरुप रहकर मरन करुं कि जिस्सें मेरा आत्मा निर्मल रहवै और मलीन न होवै.

यहांपर कोइ शंका करेगा कि प्रत्यक्ष दुःख होवै. और वो शरीरकों होता है ऐसा क्यों मानाजाय ? उसके समाधानमें यही है कि जहांतक अपना आत्मस्वरूप नहीं जाना और उसका स्पर्शज्ञानभी न हुवा वहांतक तुमारे दिलमे मुझे दुःख होता है ऐसा लगेगा; मगर तुमकों तुमारे आत्मस्वरूपका ज्ञान अनुभवगम्य होवेगा—जैसें प्रभुजीने फरमाया है वैसाही मेरा आत्मस्वरूप है, वो न्याययुक्तिसें करकें चित्तसें शुद्ध होगा कि तुमारे भाव ऐसे होवेगे कि—अब मेरे आत्मधर्मसें दूसरीतरह में नहीं चलुंगा. ये शरीर प्रमुख सब जड पदार्थ हैं इसके साथ मेरा कुछभी संबंध नहीं ऐसा होवैगा. पीछे शरीरकों कोइ काट देवैगा या रोगकी वेदना होवैगी, उसमें तुमारा चित्त नहीं जायगा. तुमारे दिलमें मुझकों दुःख होता है ऐसा आयेगाभी नहीं. जैसें कि कोइ मनुष्य नाटिक देखनेकों जावै और सारी रात जगै; मगर निंद नहि लीगइ उसका खेद दिलमें नही आवेगा, खडे खडे पॉव दुखै; मगर विवाहके हर्पसें वो दुःख ध्यानमें

नहीं आता. आभूषण पहने उसका भार पहननेके सुख अगाडी मनमें नहि आता, व्यापारमें पैदाश होवै उसकी पीछे मिहनत करनी पडे उसका दुःख निघाहमें नहीं आता उसी वजहसें तुम तुमारे आत्मसुखके रागी बनोगे–आत्मसुखमें मग्न रहोगे तो शरीरकों वेदना होवेगी वोभी मुझकों होती है ऐसा खियाल नहि आने पावेगा जहांतक शरीरके दुःखमें मन लग्न होता रहता है, वहांतक तुमारा भाव तुमारे आत्मभावपर तुमारी दशा नहीं हुइ उससें मश्न होता है कि–जब तुमारी दशाके सन्मुख होवोगे तब तो तुमारे मनमें आवेगा कि मैंनें अज्ञानपनेसें जो जो कर्म बांधे हैं वो कर्म शरीरमें रहकर बांधे हैं, सो शरीरकों भुक्ते बिगर छुटकारा नहीं ओर आत्मा निर्मल होनेका नहीं पुनः वो दुःखकों दुःख मानुगा तो फिर नये कर्म बंधेजायेंगें और आत्मा मलीन होवेगा शरीरके सुख दुःखकों मुझकों सुख दुःख होता है ऐसा मानलेना वो मेरे आत्माका धर्म नहीं मैं सच्चिदानंदहु, अनंत सुखका धणीहु, अरागीहु, अद्वैषीहु, अछेदीहु, अभेदीहु, अगमहु, अलखहु, अगोचरहु, पूर्णानंदहु, सहजानंदीहु, अचलहु, अमरहु, अमलहु, अतिंद्रियहु, अशरीरीहु, अविनाशिहु, ये मेरा स्वरूप है तो मेरा आत्मा विनाशवंत नहीं मरनसें शरीरका नाश होवेगा उससें में किसलिये डर रख्खु ? शरीर तो सडन पडने विदुसनेके धर्मवाला है तो विनाश होवै उसमें मुझे क्यौं चिंता करनी चाहिये ? मेरा आत्मा अमर है, उससें मरनेका नहीं, वास्ते मुजकों मरनका भय नहीं जितना जितना भय आवे वो तो अज्ञानदशा है सो मेरे अब अज्ञानदशाके विचार किसलिये करना ? मुझे आत्मधर्ममें रहना वही उत्तम है पूर्वभवोंमें अज्ञानतासें मरन किये और जीव भवचक्रमें भटका, अनेक प्रकारसें नरकादिककी वेदना भुक्ती, उथे शिरसें गर्भावासकी वेदना भुक्ती, इस भवमें भाग्योदयसें वीतरागका धर्म मिला जिससें मैंने मेरे आत्माका स्वरूप जाना अब रोगादिककी वेदनासें में नहीं डरता रोगके औषध अनेक प्रकारके करगा तोभी जो कर्मकी स्थिति पकी नहीं तो वहांतक रोग मिटनेका नहीं रोगका सच्चा औषध तो समभाव है

जो समभावमें रहुंगा तो जो जो वेदना होती है वो तो पूर्वके कर्म भुक्तते-जाते है उससें आत्मा निर्मल होता है, तो रोगकी वेदना मुझे होती है एसा विकल्प किसलिये करु? ऐसा शोच में रोगका विकल्प बिलकुल न करुं तो वेदनी कर्मकी स्थिति ओर रस कमती होवेगा. निकाचित मध्यम स्थानवृत्ति होगी वो शिथिल होजायगी. शिथिल कर्म होंगे वो नाश होजायेंगे; वास्ते मेरे आत्मस्वभावमें रहना वही औषध है. दूसरे औषधका अभिलाष किसलिये करुं? मेरे कुटुंबादिककी फिक्र करनी वोभी व्यर्थ है क्यों कि सब जीव आप अपने पुन्यानुसारसें सुख भुक्तते है. किसीको कोइ सुख दुःख करनेकों समर्थ नहीं, तो मैं किस वास्ते शिरफोड करुं? अगर मै क्या करसकताहुं? फिर अनादि काल गया वो भवोभम्यं कुटुंब मिले तो मैं कितने कुटुंबकी चिंता करुंगा? और पूर्वमें अज्ञानतासें, कर्मके स्वरुप नहीं जाननेसें चिंता करताथा; मगर इस भवमें कर्मके स्वरुप जानलिये उस्सें जानताहुं कि कुल सुख दुःख कर्मानुसारसें होते हैं; वास्ते मेरी मुझे चिंता करनी या पिरायेकी फिक्र करनी फजूल है. मै मेरे आनंदमेंही वर्तुंगा. मेरी कुटुंब चाकरी करता है वोभी पूर्व समयमें पुन्य उपार्जन किया है उसके फल हैं. मैने उन्होंकी चाकरी की है, और वे जीव मेरी चाकरी नहीं करते है सो मेरे पापोदयके फल हैं. उसमें उन्ह जीवोंपर द्वेष करना अयोग्य है. मरन समय कीसी जीवपरभी द्वेष करनेसें वो जीवके साथ वेरभाव होता है. वास्ते मेरे अब जो जो सुख दुःख उत्पन्न होवे सो समभावसें भुक्तना. पूर्वमें मुनीओंने, शिरपर खदिरांगार भरदियेथे तोभी वो वेदनाकी तर्फ नजर न कीथी, मेतार्य मुनीके शिरपर चमडेकी रस्सी लपेटकर बहुत दुःख देनमें आया तोभी समभावमें रहे; वास्ते इन मरणकी वेदनाभी उन्ह मुनिमहाराजोंकी तरह समभावसें भुक्तनी. किंचित्भी परभावमे मेरे प्रवेश न करना. और मेरा चित्त परभावमें जायगा तो आत्मा गिर्फतार हो जायगा. फिर मेंने शरीर धन-कुटुंब सबकों वोशिराया है, उस्में मेरा चित्त किसीमें जायगा तो मेरी आराधना निष्फल हो जायगी. इसलिये ज्यौं राधावेध साधनेवाला

गधावेध साधनेमें तत्पर रहता है, त्यों मेरेभी मेरे आत्मस्वभावमें रहना। और उसका शोच करना और उमीमही कायम रहना इसतरह आराधापनेसें मग्न करनेसें अवश्य तीसरे भवमें या सातवें भवमें जीव सिद्धि वरता है ऐसें प्रभुजीने आगममें फुरमाया है वास्ते प्रमाद छोडकर केवल मेरे आत्मामें वर्त्तनाही योग्य है अहा! प्रभुजीने यही मार्ग कहा है यह मार्ग ग्रहण करनेसें आत्माको आनंद होता है कि अब मेरा भवभ्रमण नष्ट पडेगा थोडासाभी पुद्गलपर राग धरुगा-धनकी ममता करुंगा या कुटुंबपर राग रखुंगा तो मेरी आत्मदशा बिगड जायेगी, और भवभ्रमणा बढजायगी। और मैं मेरी आत्मदशामें रहुंगा तो थोडे कालमें मेरी कार्यसिद्धि होजायगी। केसरी चोर जैसे बडे बुरे चोरी वगैर अकार्य करनेवालेनेंभी समभाव अंगीकार किया तो फौरन केवलज्ञान प्राप्त हुवा तो अब मैंभी मेरे आत्माके उपयोगमें रहुं मेरे आत्मगुणपर्यायमें मैं विचार करुं ज्यों ज्यो मैं स्वगुणमें लीन होउंगा त्यों त्यों कर्म नाश होवेंगे, और मेरा आत्मा निर्मल होवेगा फिर मेरे आत्माके अपूर्व भाव प्रकट होवेंगे मेरे आत्माके सहज सुखका अनुभव होवेगा और वैसा होनेसें पुद्गल सुखकी वल्लभता नाश पावेगी परसुखकी इच्छा नाश होगी त्यों त्यों कर्म हठते जायेंगे, उससें विशेष विशुद्धि होगी पीछे चाहेसो वेदना होवैगी-कोइ काटडालेगा-कोइ मारेगा तोभी कुछ विकल्प नहीं आवेगा जहांतक आत्माकी मलीनता है, वहांतक शरीरादिकको विकल्पना आवेगी, वास्ते अब तो मेरे अविनाशी सुखको भारमय यह मरणावुख साधनेको तत्पर होउं परभावपर उदासीन दशा मेरी प्रकट होवेकि जिससें कुटुंबादिकपर चित्त नाहि जाने पावे पूर्व समयमें मुनियोंने अपनी आत्मदशा चिंतन कर केवलज्ञान प्राप्त कियाथा, वैसी दशा अबतक मेरी नहीं हुइ है, तोभी श्रावकदशा मुजब विशुद्धि होवेगी तथापि सातवें भवमें मुक्तिसुंदरी वरुगा. वास्ते मेरे आत्मानंद सिवा दूसरा कोइभी आनंद जगतमें नहीं जो जो बने सो जानना यही मेरा धर्म है शरीरादिकमें जो जो उपाधि होती है उसमें मेरे कर्म नुकसान होते है और मेरा आत्मा निर्मल

होता है; इससे वोभी आनंद होनेका कारण है; मै किसलिये दिलगीर होउं ? या विकल्प करुं ? भगवान् श्रीमत् महावीरस्वामीजीकों संगमे देवने अत्यंत उपसर्ग किया; तोभी समभाव नहीं छोडा वोसीतरह मेंभी समभावमें रहुं. कोइभी चीज मेरी नहीं है तो में किस वावतका विकल्प करुं ? इसतरह निर्विकल्पतासें सर्वथा रहेगा तो केवलज्ञान पाकर सिद्धि वरेगा. और उस्सें उतरती विशुद्धिवालेभी गुणस्थानककी हदमें रहवेंगे तो सातवे भवमें सिद्धि वरेंगे. वास्ते संथारा करना और समभावसें रहनेका उद्यम करना. सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याणकारणं; प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयति शासनं. फिर भक्त पच्चख्खाणमें संथारा करनेवालेकेलिये गाथा ४१ वीमें शीतल समाधिके वास्ते नागकेसर, दालचीनी, तमालपत्र, इलायची और मीसरी ये दूधमें डालकर गर्म करकें ठंडा हुवे वाद अनशन करनेवालेकों वो दूध पीना, इस्सें उसकों शीतलता रहती है–इस मुजव कहा है. श्रावक धनवान होवै तो सप्त क्षेत्रमें धन व्यय करकें–देवगुरुकों वंदन करकें अनशन करै. अनशनका लाभ उस पयन्नेमें वहुतसा कहा है. इस मुजव सामान्य अनशन विधि है.

१६२ प्रश्नः—आत्मारामजीमहाराज–विजयानंदसूरीजीकों प्रश्न लिखेथे उन्होंका क्या जवाव है ?

उत्तरः—आत्मारामजीमहाराजका पत्र नीचेके लिखान मुजव आयाथाः—

शहर अंवाला. संवत् १९५१ के भादौ कृष्ण ११ रविवार–पून्यपाद श्री श्री श्री १०८ श्रीमद्विजयानंदसूरीश्वरजी–आत्मारामजी महाराजजी आदि साधु १० के तर्फसें धर्मलाभ वंचना.

भरुच वंदरे श्रावक पुण्यप्रभावक देवगुरु भक्तिकारक शेठ अनूपचंद मलुकचंद वगैरः अत्र सुखशाता है. धर्मध्यान करनेमें उद्यम रखना. तुमारी चोपडी तपासकर पीछी भेजदी है वो पहुंचनेसें पहुंच लिखना. तुमारे लिखेहुवे प्रश्नोंका जवाव नीचे मुजव हैः—

१ केवलज्ञानीमें पांच इंद्रि प्राण वर्जकें वाकीके पांच प्राण जानना; क्यौं कि केवलज्ञानी महाराज केवलज्ञानसें सव पदार्थ जानते हैं. जितनी इंद्रियोंका काम नहीं उससें वो प्राण प्रवर्त्तते नहीं.

२ केवलज्ञानीमें उदारिक, तेजस और कार्मण यह तीनु शरीर और मन वचन काया यह तीनु योग एक समयम प्राप्त होवे, परंतु मनयोगमें द्रव्य मन समझना।

३ चय उपचयको प्राप्त होवे और ओदारिकादि वर्गणाका बनाहुवा होवे वो शरीर और शरीरका व्यापार वो काययोग समझना

४ तीनु योगकी स्थिति अंतर्मुहूर्त और अवगाहना शरीर प्रमाण

५ जहा शरीर होवे वहा कायायोगकी भजना शैलेशि अवस्थामें कायाका व्यौपार न होवे उससें

६ शरीर बंधकभी है, और अबंधकभी है वो अबंधक शैलेशि अवस्थाम

७ तेरहवे गुणस्थानमें नोसंज्ञि नोअसंज्ञि

८ केवलज्ञानी महाराजको आहारादिक चार संज्ञामेंसें कोइभी संज्ञा न होवे.

९ कायबल नाम शरीरका सामर्थ्य हे. और स्पर्शेंद्रि शीत उष्णादिककी परीक्षा करनेवाली है

१० ज्ञानीकी अवगाहना आत्म प्रमाण

११ तीर्थंकरजीके वचन, केवलज्ञानीको कोइभी ज्ञानपनेसें न मणमें क्षायकभावका ज्ञान है उससें मणमना ये क्षयोपशमका धर्म है

१२ देवताको आहार करनेके वक्त कोइ देखसके और कोइ न भी देखसके

१३ जीव आहार लेवे सो शरीर लेवे और इंद्रियें तो फक्त रसादिकका ज्ञान करनेवाली है

इसतरहका पत्र महाराजजी साहबका था. यह जवाब विजयानंदसूरीजीके सिवा दूसरेसें लिखने वडे कठिन थे वाचकर हम बडे खुश हुवे. और इस कितावमें दाखिल करदिये गये

१६१ प्रश्न —मरणके वक्त समाधिमें चित्त रहे उस वास्ते कोइ जाप करनेका कहा है ?

उत्तरः—लोगस्सके कल्पमें ॐ ॐ अंबराय कित्तिय वंदिय महीया जेए लोगस्स उत्तमा सिद्धा; आरुग्ग बोहिलाभं, समाहिवर मुत्तमं दिंतु. इस मंत्रके १५००० जप करना. धूप दीप करके स्थिर आसन रखना. खुजाल आवे–मच्छर काटे तोभी उंचा हाथ न करना. (चलितासन न रखना.) मालापर नजर लगानी मगर फिरानी नहीं. जीभ होठ गिननेके वक्त न हिलाना. एक ध्यानसें गिनलेनेसें मरनके वक्त समाधि रहवेगी. ऐसा लोगस्स कल्पमें कहा है. बीमारीके वक्तमें इस गाथाका अवश्य ध्यान रखना. आउर पच्चख्खाण पयन्नेमें कहाहै कि–बारह अंगके जाननेवालेभी मरनेके वक्त विशेष ध्यान नहीं करसकते हैं. उससें एक गाथाका ध्यानभी भवसमुद्रकों तिरानेवाला है; वास्ते वीतरागके धर्मकी हरकोइ गाथाका ध्यान धरना. समाधीमें रहनेकी भावनाभी जीवकों तिरानेवाली है. वास्ते ये जाप करलेना बहुत फायदेमंद है.

१६४ प्रश्नः—साधारण द्रव्यसें धर्मशाला बनवाइ गइ हो उसकों श्रावक वापरे या उसमें संघ वगैरःको जीमावे तो श्रावककों मुनासिब है ?

उत्तरः—धर्मशाला बनवाइगइ है वो श्रावकके उतरने–विश्रामके लियेही बनी है. उसमें मुकाम करनेका कुछ बाध नहीं; लेकिन अपनी अपनी शक्ति मुजब कुछ साधारणमें रकम–पदार्थ देना चाहियें. श्राद्धविधिके पत्र ११० में साफ साफ कहागया है कि–कमती किराया देवै तो प्रकट दोष है. क्यों कि धर्मशाला बनवानेवालेकी दीर्घ कालतक एक जैसी स्थिति–हालत नहीं रहती है, तो उस धर्मशालेकी मरामत वगैरःका खर्च कहांसें निकालना ? वास्ते श्रावक दे जावैं तो वो मकान अच्छी हालतमें रहने पावे. फिर स्वामी–भक्ति करनेका पैसा जमा करगये हैं उसका भोजन पदार्थ बनवाकर भोजन करना उसमें कुछ हरकत नहीं है; परंतु स्वामीका माल तृष्णापनेसें इंद्रियोंके विषयके वास्ते अतिशय आकंठतक न खाना. फक्त स्वामीभाइका दिल रखनेकेलिये जीमनेकों जाना है उससें जीमानेवालेका बहुत मान करते हुवे जो वस्तु हाजिर हो वो निर्वाह रीतिसें जीमलेवै, तो हर्जा नहीं. मगर उसके कार्यभारी हो उसमेंसें कोइ चीज घरपर ले

जावै या अपने स्नेही सबधी वसीले'गरोंकों देदेवें या हरकिसी प्रकारसें अपने ससारी काममें साधारणकी चीज वपरासमें लेनी या पैसा बिगा-डना उससें तो श्राद्धविधिमें नुकशान कहा है वास्ते साधारण द्रव्यभी बिगाडदेना महा पापका कारण है, साधारण द्रव्यके उपरकी कथा आगे आचुकी है वो यहापर ध्यानमें लेनी

यह कथाओ सुनकर तुच्छ श्रद्धावालोंकों व्यामोह होवैगा कि इतना देवद्रव्य या साधारणद्रव्य, ज्ञानद्रव्य खाया उसके इतने सारे कर्म बांधे जावें ? उसकों शोचना योग्य है कि–जैसे कोइ लडकीके पैसे खाते हैं उन्होंकी कितनी निंदा होती है ? उसका सबब यही है कि लडकीकों देना लायक है, मगर उसका लैना नालायक है. वैसें इस द्रव्यमें अपना द्रव्य देना–व्यय करना योग्य है, लेकिन उसकी एवजीमें उनका द्रव्य खा जावे तो पापही होवे, वास्ते ज्ञानीनें ज्ञानमें विशेष पाप देखा सो बतलाया है

१६५ प्रश्न —पुद्गल कितने प्रकारके कहे है ?

उत्तर —पुद्गल तीन प्रकारके कहे है जीवने जो ग्रहण किये हुवे हैं उसमें जीव है वहातक प्रयोगशा कहा जावे जीव नीकल गये बाद जो पुद्गल रहे वो मिश्रशा कहा जावे, और स्वाभाविक पुद्गलके स्कध होते है–जैसें कि आकाशमें हरे पीले रग होते मालूम होवे है वो अगर अंधेरेके पुद्गल या बद्दलके पुद्गल जीवके ग्रहण न कियेसें होते हैं वो विश्रशा कहा जाता है. इस तरह तीन जातीके पुद्गलका अधिकार भगवतीजीमें पत्र ५२१ में है

१६६ प्रश्न—परिहार विशुद्धि चारित्र कितने पूर्व पढे हुवे अगीकार करे ?

उत्तर—नौ पूर्वकी तीसरी वस्तु तक पढे हुवे होवे वो परिहार विशुद्धि सयम आदर सके नौ जने गच्छमेंसें निकले, उसमें चार जने छ महिने तक तपश्चर्या करें और चार जने उनकी वैयावच्च करें और एक गुरु स्थापन करे तपश्चर्या करनेवाले छ मास तक कर रहे तब वैयावच्च करनेवाले छ म-हिने तक तपश्चर्या करे पीछे छ महीने तक गुरुतपश्चर्या करे दूसरे आठ मेंसे एकको गुरुस्थापन करके सात जने वैयावच्च करे इस तरह अढारह

महीने तक तपश्चर्या करें उसका नाँव परिहारविशुद्धि चारित्र कहा है. ये अधिकार भगवतीजीके पत्र ५७१ में है.

१६७ प्रश्नः—सिद्धमहाराजजीकों चारित्र कहा जाय या नहीं ?

उत्तरः—सिद्धमहाराजजीकों व्यवहाररूप चारित्र नहीं जिससें भगवतीजीके पत्र ५७६ मै नोचारित्र नोअचारित्र कहा है.

१६८ प्रश्नः—विभंग ज्ञानवालेकों दर्शन होवै या नहीं ?

उत्तरः—कर्मग्रंथमें तो ना कही है. मगर भगवतीजीके पत्र ५८८ में विभंगज्ञानवालेकों अवधिदर्शन कहा है. पन्नवणाजीमेंभी अवधिदर्शन कहा है. अब ये दो मतांतर हैं—तत्त्वकेवलीगम्य है.

१६९ प्रश्नः—मुनीकों अशुद्धमान आहार पानी देनेसें क्या फल होवै ?

उत्तरः—मुनीकों मुख्यतासें तो शुद्धमान आहारपानी देनेकाही भाव होवै; मगर कितनेक सबबोंकेलिये अशुद्धमानभी देदेवै. फिर गुरुपर राग है. उससें कुछ कुछ चित्तमेंभी आजाय. परंतु मुनीकों प्रतिलाभनेका अतिशय भाव है उसलिये अल्प दोष और बहुत निर्जरा भगवतीजीके पत्र ६१० में कही है.

१७० प्रश्नः—प्रायश्चित लेनेका भाव है और उस अरसेमें काल करजाय तो आराधक होवै या नहीं ?

उत्तरः—भगवतीजीके पत्र ६१५ में मुनी गौचरी गये है और वहां कुछ दोष लगा है वो गुरुके पास जाकर आलोयणा लेनेका भाव है ओर अधबीच काल करै तो उसकों आराधक कहे हैं.

१७१ प्रश्नः—बडेमें बडा दिन कौनसा या कितना होवै ? ओर रात्री कितनी होवै ?

उत्तरः—भगवतीजीके पत्र ९३८ में कममें कम दिन बारह मुहूर्तका यानी चोवीस घडीका ओर कममें कम रात्रीभी उतनीहीं होवै. और ज्यादेमें ज्यादे दिन अठारह मुहूर्तका यानी छतीस घडीका और रात्रीभी ज्यादेमे ज्यादे उतनीही होवै.

१७२ प्रश्नः—श्रावक पौषध लेकरकें धर्मकथा करै सो अधिकार किसतरह है ?

उत्तर'—भगवतीजीमें पत्र ९७० के अंदर ऋषिभद्र पुत्रका अधिकार है वहां श्रावक आसन लेकर बैठे हैं और ऋषिभद्र धर्मप्ररुपता है उसमेंसें श्रावकको शंका हुइ है उससें भगवतजीकों पूछा कि ऋषिभद्र इसतरह प्ररुपता है भगवतजीने फरमाया कि ऋषिभद्र प्ररुपता है सो सत्य है इस मुजब अधिकार है और उपदेशमालामें गाथा २३३ के अंदर श्रावक दूसरे श्रावकोंकों धर्मोपदेश करे ऐसा कहा है

१७३ प्रश्न—भव्य जीव है सो सभी सिद्धि वरे तब सब अभविही बाकीमें रहे या नहीं ?

उत्तर:—जयती श्राविकाने भगवतीजीमें प्रश्न पूछे हैं उसमें ये प्रश्न है, उसका जवाब पत्र ९९१ में है कि—गत काल अनंता गया उसका अंत नहीं तोभी एक निगोदके अनंतमें हिस्सेके सिद्धि वरे हैं युंही आते कालकाभी अंत नहीं, वास्ते दोनु तुल्य हैं, उससें आते कालमेंभी दूसरे एक निगोदके अनंतमें हिस्सेके सिद्धिपद प्राप्त करेंगे उसके सबबसें भवि खाली नहीं होनेके

१७४ प्रश्न—समकित सहित कौनसी नरक तक जावे ?

उत्तर—समकित सहित छठी नरक तक जावे और सातवी नरकमें समकित वमन करकें जावे—ये अधिकार भगवतजीमें पत्र १०८७ में है

१७५ प्रश्न.—पुस्तक और प्रतिमाजी होवे वहां हास्यविनोद करनेसें आशातना लगे या नहीं ?

उत्तर'—जहां ज्ञान और प्रतिमाजी होवे वहां आहार निहार स्त्रीसंयोग और हास्यादिक क्रीडा करनेसें आशातना होती है ये अधिकार भगवतीजीके पत्र ११७७ में है सौधर्मसभामें स्तंभे हैं उसमें पुस्तक और प्रभुजीकी दाढायोंके डिब्बे हैं, उससें इंद्राणीके साथ हास्यविनोद सुधर्मेंद्र वहां नहीं करते हैं, उसीतरह मनुष्यकोंभी न करना

१७६ प्रश्न—क्षयोपशमभावके समकित और उपशमभावके समकितमें क्या तफावत है ?

उत्तर'—क्षयोपशमभावका समकित है उसकों समकित मोहनीविपाकका उदय है, और मिथ्यात्व मोहनीप्रदेश उदय है और उपशम समकितवालेको मि-

ख्यात और सम्यक्ति मोहनी विपाक उदय तथा प्रदेश उदयसें हठजाता है. ये अधिकार भगवतीजीके पत्र ११८३ में है.

१७७ प्रश्नः—श्रावक खुल्ले मुँहसें बोले तो उचित है?

उत्तरः—श्रावककों अवश्य मुखपर कपडा या हाथ या मुहपत्ति रखकर बोलना. खुल्ले मुंहसें न बोलनां चाहियें. इस संबंधी भगवतीजीमें गौतमस्वामीजीने प्रश्न पूँछा है कि—इंद्र सावद्यभाषा बोलता है या निरवद्यभाषा बोलता है? उसका उत्तर भगवंतजीने दिया है कि इंद्र जिस वक्त मुँहपर कपडा या हाथ रखकर बोलता है उस वक्त निरवद्यभाषा बोलता है और खुल्ले मुँहसें बोले उस वक्त सावद्यभाषा, बोलता है. इस तरह पत्र ११०२ में अधिकार है.

१७८ प्रश्नः—पूर्वका ज्ञान कहां तक रहा?

उत्तरः—पूर्वका ज्ञान भगवंतजीके निर्वाण बाद एक हजार वर्ष तक रहा. ये अधिकार भगवतीके पत्र १५०२ में है.

१७९ प्रश्नः—प्रभुजीका शासन कहां तक रहेगा?

उत्तरः—इक्कीस हजार वर्ष तक रहेगा यह अधिकार भगवतीजीके पत्र १५०४ में है.

१८० प्रश्नः—विद्याचारण जंघाचरण मुनी नंदिश्वरद्वीपमें जिनप्रतिमाजीका वंदन करनेकों जावे ये अधिकार किस ग्रंथमें है?

उत्तरः—भगवतीजीके पत्र १५०६ में है.

१८१ प्रश्नः—श्रावक, श्रावककों और श्राविकाकों व्रत उच्चराय सकै या नहीं?

उत्तरः—श्रावक, श्रावक-श्राविकाकों व्रत उचराते हैं. ज्ञाताजीमें पत्र १०१६ (छपी हुइ प्रत) में है. जितशत्रु राजाने सुबुद्धि मंत्रीके पास धर्म सुनकर प्रतिबोध पाकर श्रावकके बारह व्रत (सुबुद्धि प्रधानके पास) लिये हैं. फिर पचख्खाणके करानेवाले जाननेवाले और अनजान उसके चार भांगे कहे हैं—वो इसतरह हैः—पचख्खाण कराने और करनेवाला दोनु जाननेवाले होवै वो शुद्ध पचख्खाण है. करानेवाला जाननेवाला हो और करनेवाला अनजान हो; मगर करानेवाला जाननेवाला होनेसें व्रतकी रीति बतलावे वास्ते यहभी शुद्ध है. करानेवाला अनजान और करनेवाले

जानकार होवे वोभी शुद्ध कहे हैं, मगर वहा दर्शाया है कि यथाविध गुरुके अभावसें पिता-दादा-मामु-भाइ-या कोइभी गवाहदार रखकर करना. क्यों कि वे अनजान है मगर आप जानता है उससें शुद्ध है. चौथा भागा करानेवाला और करनेवाला-दोनु अनजान होवे-वो अ-शुद्ध पचख्खाण कहा है इसतरह प्रवचनसारोद्धारजीकी टीकाके पत्र ३९ में कहा है-उसपरसें तीसरे भागेसें सिद्ध होता है कि पिता वगैरः अनजान हैं, उनके समक्ष पच्चख्खाण लेना, तो जानकार श्रावकके पाससें लेना वो तो ज्यादे योग्य है ऐसी चौभंगी योगशास्त्रमें और पचाशकजीमें भी है, वास्ते मुनीमहाराजके अभावसें श्रावकके पास पचख्खाण लेना योग्य है

१८२ प्रश्नः—श्रावककों फासुक पानी पीनेसें क्या फायदा है? क्यों कि आरंभ तो करना करवाना रहा है, तो सचित्तका अचित्त करके पीवे उससे क्या फल है?

उत्तर:—श्रावककों सचित्त वस्तुकी मूर्छा उतर गइ ये बडा लाभ है कर्म बंधन है सो इच्छास करकें है वो सचित्त वस्तुकी इच्छा बंध हुइ वो बडा लाभ है फिर सचित्त जल जगतभरमें है वो उन सब जलके ऊपर चित्त छुट्टा रहता है, वो फासुक जल पीनेवालेकों बंध होजाता है फासुक पानी जहा जावे वहा नहीं मिलता है, तो वो परिसहभी शायद सहन करना पडता है फिर सचित्त जलमें समय समय जीव पैदा होते हैं और नाश पाते हैं उनकाभी आरंभ दूर होजाता है, उससेंकरकें श्रावककों सचित्तका त्याग होता है उसके अतिचारभी कहे हैं फिर महंत श्रावक आनंदजी आदिनः सचित्तका त्याग किया है और आरंभ छुट्टा है यह सचित्त त्याग ७ वी पडिमाम किया है और आरंभका त्याग ८ वी पडिमामें किया है यह अधिकार उपासकदशागजीकी छपीहुइ प्रतके पत्र ६६ में है पुन आ-ठवी पडिमामें आपकों आरंभ करनेका त्याग है, मगर आरंभ करवानेका त्याग नहीं आरंभ करवानेका नौमी पडिमाम त्याग है वास्ते आरंभ छुट्टा है, तोभी आनंदिक श्रावकानें सचित्तका त्याग किया है उसीतरह

वर्त्तमान समयके श्रावकोंकोंभी त्याग करना मुनासिब है.

१८३ प्रश्नः—श्रावक जिनमंदिरमें जावे वहां अच्छी आंगी रचीगइ हो तो, या प्रभु गुणगान होता होवै तो वहां उनकों क्या चिंतन करना ?

उत्तरः—जिन जिन पुरुषोंने आंगीमें पैसे खर्च किये हैं उन उन पुरुषोंकी अनुमोदना करनी;कि धन्य है ! संसारके कार्यमें पैसा खर्चना मोकूफ करकें प्रभुभक्तिमें पैसा व्यय किया है या करते हैं! मेरा चित्त ऐसा कब होयगा कि मेंभी ऐसी प्रभुभक्ति करुंगा फिर आंगीके बनानेवाले पुरुषकी अनुमोदना करै कि अपना घर काम छोडकर आंगी रचनामें कालव्यतीत किया है—करते हैं ऐसा मेरा भाव कब होवेगा ? पुनः गायन होता हो तो जो जो प्रभुजीके गुण गाते हैं उसमें लीन होना—नहीं कि गायनके विषयमें लीन होना. फिर नजरभी प्रभुजीके सन्मुख स्थापनी; लेकिन गानेवालेके स्हामने न देखना; क्यों कि प्रभुके सिवाकी तीन दिशामें देखना दशात्रिकमें वर्जीत करनेका कहा है; वास्ते प्रभु सन्मुख दृष्टि रखनी. फिर राग—हलक अच्छाहो तो उसकेलिये ऐसा चिंतन करना चाहियें कि मुझकों ऐसा गाते आता होता तो मेंभी प्रभु गुणगान करता. ऐसा शोचना; नहि कि रागमें लीन होना. बालजीवोंकों तो प्रभुकी जो जो प्रशंसना है वो परंपरासें गुनदायक है; मगर विवेकीकों तो प्रभुजीके गुणगान करना वही गुनकारी है. यशविजयजी महाराजने सवासो गाथेके स्तवनमें कहा है कि “जिनपूजामां शुभ भावथी, विषय आरंभतणो भय नथी.” वास्ते जिनमंदिरमें जाकर विषयकी दृष्टि न रखनी वही गुणकारी है. वहां परभावना छोडनेकों जाना है और विषयकी दृष्टि होवै तो फिर विषय कहांपर छूटा होजाने पावै ? वास्ते पुद्गलीक पदार्थमें दृष्टि न रखते प्रभुके गुण यादकर प्रभुकी आज्ञा समालकर शुभ भावकी वृद्धि करनी और पुद्गल राग घटाना वही धर्म है.

१८४ प्रश्नः—पिछले भवमें आयुष बांधाहोवे उसी मुजब पूरा होवै या किसीतरहसें टूटै ?

उत्तरः—शास्त्रमें आयुष दो प्रकारके कहे हैं—एक उपक्रमी और दूसरा निरुपक्रमी

-उपक्रमी आयु है उसकों उपक्रम यानी विष शस्त्र प्रमुख लगजानेसें आयु कम होता है–उसें अकाल मृत्यु कहाजाता है वों उपक्रमी आयुवालेने जो आयु बांधलिया है वो शिथिल है उससें उसकों उपक्रम लगता हैं. यह अधिकार तत्त्वार्थमें दूसरा अध्याय पूर्ण होनेके वक्त पत्र १०५ मेंसें शुरु होकर अध्याय दूसरा पूर्ण होने तक है पुन विशेषावश्यकमेंभी अधिकार है. और आचारागजीकी शिलागाचार्यकृत छपीहुइ टीकाके पत्र १११ में है बाकीभी बहुतसी जगहपर हैं वास्ते उपक्रमकी अच्छी तरह सभाल रखनी, सबब कि बहुतकरकें इस कालमें बहुतसें मनुष्यके उपक्रमी आयु होते हैं वास्ते उपक्रम लगा हो तो उसकों दूर करनेका उद्यम करना. उसलिये मुनीमहाराजभी औषधादिक करते हैं, लेकिन सारा जन्मभर व्रत-पालन करके छेल्ले वक्तमें दूषण लगें या व्रतभागें ऐसी दवा वापरनी वो अच्छा नही ज्यौं बनसके त्यौं व्रत रखना और रोगका विकल्प न करना. रोगका विकल्प न करनेसें रोग जल्दी दूर होजाता है, वास्ते अपना आत्मधर्म न विगडे ऐसा उद्यम करना.

यहापर कोइ शका करेगा कि हरएक व्रतमें चार आगार हैं उसमें सव्व समाहिवत्तियागारेण यह आगार है वास्ते कदापि अयोग्य वस्तु त्यागकी हुइ उपयोगमें लेवे तो क्या उससें व्रत भग होवे ? उस विषयमें समझना कि आगार रक्खे है, मगर उसके वारेमें शास्त्रमें कहा है कि दृढ प्रतिज्ञवान आगार सेवन नही करते है जिसका मन चलित या ढेढगा है उससें रागादि सहन हो सकते नहीं परिणाम विगड जाते हैं. ऐसा लगे तो व्रतपर परिणाम रखनेके लिये प्रायश्चित लेनेकी भावना सह उपयोगमें लैना वो आगारवाली वस्तु सेवन कियेकाभी प्रायश्चित कहा है तो वो अपवादमार्ग है, परतु जो आगार नही सेवन करते हैं और शुद्ध स्वरूपपर नजर रखते हैं उसकी अपेक्षासें तो ये उतरते दर्जेका है पुन कितनेक जीव पैसेके लोभसें यानी निर्दोष द्वारा खर्च ज्यादा लगता है उस कृपणतासें दूषित दवाइयें वापरते हैं वो तो बहुतही दोष है ऐसे मनुष्य पैसेकी कसरसें अभक्ष दवायें वापरते हैं और पीडा शुभ

खाते द्रव्य वापरें, उस करतें शुभ खातेमें कमी खर्च करके मक्ष दयामें वापरें तो विशेष उत्तम नीति है वास्ते व्रत अखंडित रहे वैसें करना वही कल्याणकारी है. और जिसके परिणाम बिगडने होवै उसकों आगार सेवन करनेकी मना करनी वोभी अयोग्य है.

१८५ प्रश्नः—साधुजी गाँवमें प्रवेश करें तो उन्हेंकों वाद्य गीतके साथ स्हामैया करके ल्यानेका शास्त्रमें कहा है?

उत्तरः—श्राद्धविधिमें पत्र २६८ में ऐसा अधिकार है कि श्री धर्मघोषसूरीके नगर प्रवेशके उत्सवमें वहोत्तर हजार टके श्रावकने खर्च कियेथे. पुनः व्यवहार सूत्रके भाष्यमें पत्र १८२ के अंदर प्रमाण दिया है कि प्रतिमाधर मुनी प्रतिमा पूर्ण होवै तब नगर वहार रहींकें गुरुकों खबर कि में आया हुं. बाद गुरु, राजा वगैरः जो श्रावक होवै उसकों जाहिर करें, और पीछे उसें श्रावक बडे आडंबरके साथ प्रवेश करावें उससें शासनकी प्रभावना होवै और बहुतसे जीव धर्मानुरागी होवैं. इत्यादि बहुतसा दर्शाव श्राद्धविधिमें है; वास्ते बडे ठाठसें गुरुमहाराजजीकों नगरमें प्रवेश करवाना.

१८६ प्रश्नः—वर्षाकालमें चीनी वगैरःका त्याग करनेका कौनसे शास्त्रमें है?

उत्तरः—श्राद्धविधिमें पत्र २५४ के अंदर वर्षाके चौमासेमें चीनी, खजूर, द्राक्ष, मेवे, सुकवनीके शाख-भाजी वगैरः अभक्ष्य कहे हैं. वहां देखोगे तो साफ मालूम हो जायगा; क्यौं कि चातुर्मासमें उन चीजोंमें त्रस जीवकी उत्पत्ति होती है वास्ते त्याग करनीही चाहियें.

१८७ प्रश्नः—गुरुद्रव्य किसकों कहेना?

उत्तरः—श्राद्धविधिके पत्र १०० में ठब्बेवाली प्रतके अंदर वस्त्र पात्र प्रमुख उपगरणकों गुरुद्रव्य कहा है.

१८८ प्रश्नः—जिनबिंबकी प्रतिष्ठामें और दीक्षामें मुहूर्त्त किस तरह देखना चाहियें?

उत्तरः—मैंने लग्नशुद्धि वगैरः जैनके मुहूर्त्त संबंधी ग्रन्थ देखे हैं. उनमेंसें सामान्य रीतिनें निम्न लिखित मुहूर्त्त देखना दुरस्त है. विशेष विचार और शास्त्रोंसें जान लैना.

पहेले महिने देखने–सो मिगशर, अघहन, फागुन, वैशाख, ज्येष्ठ और अषाढ इन्ह महीनोमें प्रतिष्ठा करनी लग्नशुद्धिमें कही है. और ज्योतिर्विदाभरण ग्रथमें जिनप्रतिष्ठाकी सक्रातियें कही हैं यानी वृश्चिक, मकर, कुभ, मेष, वृषभ, मिथुन यह छ सक्राति कही हैं. (यो काळीदासकृत ग्रथकी टीका जैनाचार्यने की हैं) पुन' प्रतिष्ठाविधिके पचागमें सावन महीनाभी लिखा है, और सावन महीनेमें प्रतिष्ठा भइहुइभी मदिरोंमें देखनेसें मालूम होती है तत्व केवलीगम्य अपने सिद्धांतोंमें पूर्णमासीके दिन पूरा महीना होनेकी मर्यादा है, उससें मुहूर्त्तभी उसी मुवाफिक लेना.

तिथियें सामान्य रीतिसें शुक्लपक्षकी १० मीसें लगाकर कृष्णपक्षकी पचमी तक उत्तम कही हैं और १–२–५–१०–११–१५ ये शुक्लपक्षकी और १–२–५ यें कृष्णपक्षकी सुदर कही हैं

वार—सोम, बुध, गुरु और शुक्र ये सुदर कहे हैं तथापि दूसरी तीथि और वार सिद्धियोगसें युक्त होवे तो लग्नशुद्धिमें सुखदायक कहे हैं

फिर आरभसिद्धिकी बडी टीकामें एक मगलवारको छोडकर सब वार प्रतिष्ठामें लिये हैं; वास्ते बलवान् योग होवे तो तिथि वारका नियम नहीं है

प्रतिष्ठामें–मघा, मृगशिर्ष, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरापाढा, उत्तरा भाद्रपद, अनुराधा, रेवती, श्रवण, मूळ, पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी, स्वाती, और धनिष्ठा ये नक्षत्र लेना

कुभस्थापनमें रवि नक्षत्रसें प्रथमके पांच नक्षत्र छोडकर पीछेके आठ नक्षत्र और उस पीछेके आठ छोडकर उस पीछेके छ नक्षत्र यह चौदह नक्षत्र शुभचक्रके है उसमें कुभस्थापनका मुहूर्त्त करना पहेले पांच और आठ पीछेके आठ वर्जित करने योग्य है

ऊपर प्रतिष्ठा नक्षत्र कहे हैं, उस अदरका प्रतिष्ठा करानेवालेके जन्मनक्षत्रसें १०–१६–१७–१८– ३–२५ होवे तो काममें न लेना

आडलयोग सो रवि नक्षत्रसें २-७-९-१६-२१-२३-२८ यह नक्षत्र होवै तो आडलयोग होता है. वो परदेश जानेके वक्त वर्जित है. और दूसरे कामोंमेंभी वर्जित किया जाय तो अच्छा है.

वार तिथि नक्षत्रोंके संयोगसें जो जो कुयोग होते हैं वोभी वर्जित है. वो योग नीचेके कोष्टकसें ध्यानमें लिजीयेः—

	रवि	सोम.	मंगल.	बुध.	गुरु.	शुक्र.	शनि.	कुयोगो.
तिथि.	७	६	५	४	३	२	१	कुलिकयोग
,,	५	४	३	२	१	७	६	उपकुलिकयोग.
,,	३	२	१	७	६	५	४	कंटकयोग.
,,	४	७	२	५	८	३	६	अर्धप्रहर.
,,	८	३	६	१	४	७	२	कालसमय.
,,	१२	११	१०	९	८	७	६	कर्कयोग.
नक्षत्र.	मघा.	विशा.	आर्द्रा.	मूल.	कृति.	रोहि.	हस्त.	यमघंट.
,,	विशा.	पू. षा.	धनि.	रेव.	रोहि.	पुष्य.	उ. फा.	उत्पातयोग.
,,	अनु.	उ. षा.	शत.	अश्वि.	मृग.	अश्ले.	हस्त.	मृत्युयोग.
,,	ज्येष्ठा.	अभि.	पू. भा.	भर.	आर्द्रा.	मघा.	चित्रा.	काणयोग.
तिथि	७	७	०	१-३	६	३	७	संवृत योग.
नक्ष.	मघा.	चि.	उ. षा.	धनि.	उ. फा	पुष्य.	रेव.	वार, नक्षत्र निषेध.
,,	ज्ये.मघा	पू. षा.	शत.	पू. भा.	रो. मृ.	रो. मृ	उ. षा.	
,,	वि. अ.	विशा. उ. षा.	आर्द्रा. धनि.	मू. आ. भरणी.	आर्द्रा. शत.	अश्ले पू. षा.	ह. चि. पू पा.उ.	
तिथि.	५ ह.	६ मृ.	७ अश्वि.	८ अनु.	९ पुष्या.	१० रेव.	११ रो.	महा मृत्यु योग.

उपरके कोष्टकमें बुरे योगोंका सयोग बतलाया है. जिसमें कुलिकयोग होता है सो चार घडी होता है सो प्रतिपदाके रोज पहेले चोघडीयेमें, बीजके रोज दूसरे चोघडियेमें, ऐसे सातमके रोज सातवे चोघडियेमें होता है और उपकुलिक, कटक, अर्धप्रहर, कालसमय, ऐसे ऐसे कोष्टकमें तिथिके सयोगसें कुयोग होते है वो जिस तिथिके सयोगसें हो उस तिथिकी संख्यावाले चोघडियेमें वो योग रहता है उस वक्तके सिवाका वक्त अच्छा गिना जाता है दूसरेभी कुयोग निचे मुजब है:—

रवि	सोम	मगळ	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	(कुयोग)
भर	आर्द्रा	मघा	चित्रा.	ज्येष्ठा	अभि	पू भा	कालदंडयोग
आर्द्रा	मघा	चित्रा.	ज्येष्ठा.	अभि	पु भा	भर	ध्वांक्षयोग
अश्ले	हस्त	अनु.	उ पा	शत	अश्वि	मृग	वज्रयोग
मघा	चि	ज्ये	अभि.	पु भा	भर	आर्द्रा	मुद्गरयोग
चित्रा.	ज्ये	अभि	पु भा	भर	आर्द्रा	मघा	कपयोग
स्वा	मूल	श्रव	उ भा	कृति	पुनर्व	पु फा	लुपकयोग
वि	पु पा	धनि	रेव	रोहि	पुष्य	उ फा	प्रवासयोग
अनु	उ पा	शत.	अश्वि	मृग	अश्ले	हस्त	मरणयोग
ज्ये	अभि	पु भा	भर	आर्द्रा	मघा	चि	व्याधयोग
पू पा	धनि	रेव	रोहि	पुष्य	उ फा	विशा	शूलयोग
अभि	पु भा	भर	आर्द्रा	मघा	चि	ज्ये	मूशलयोग
शत	अश्वि	मृग	अश्ले	हस्त	अनु	उ पा	क्षययोग
पु भा	भर	आर्द्रा	मघा	चि	ज्ये	अभि	भिप्रयोग

यमलयोग वर्जित है, सो गुरु, मंगल और शनि इनमेंसें कोइ वार और तिथि २–७–१२ होय, और मृग, विशाखा, धनिष्ठा इनमेंसें कोइ नक्षत्र होवै जब होता है सो तीनूंके योगसें वर्जित है.

त्रिपुष्कर योग–सो २–७–१२ तिथि, गुरु, मंगल, शनिवार, और कृतिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र होवें इन तीनू योगसें होता है सो त्यागने योग्य है.

गुरु शुक्रके अस्तमें प्रतिष्ठा, उद्यापन करनेका निषेध है. और दीक्षा शुक्रके अस्तमें देनी सभवित है ; क्यों कि लग्नशुद्धिमें शुक्र निर्बल लेना ऐसा कहा है. (तो अनिर्बल है.) और प्रतिष्ठादिमें गुरु, शुक्र बाळ या वृद्ध हो वो दिनभी त्यागने योग्य हैं.

गुरु, शुक्रका पूर्वदिशामें उदय होवै तो तीन दिन तक बाल समझना और पश्चिम दिशामें उदय होवै तो दस दिनतक बाल समझना.

गुरु, शुक्रको पूर्व दिशामें अस्त होवै तो उस पहेलेके पंद्रह दिन वृद्ध समझ लेना. और पश्चिम दिशामें अस्त होवै तो उस पहेलेके पांच दिनको वृद्ध जान लेना. उन दिनोंमें मुहूर्त्त नहीं देना.

आरंभसिद्धि ग्रंथमें गुरु आश्री बाल और वृद्ध दोनुके पंद्रह दिन त्याग करनेका कहा है. और अन्यदर्शनमें गुरु और शुक्रके दिन समान कहे हैं. १०–७–३ दिन. इस तरह मुहूर्त्तसिद्धिमेंभी कहा है.

गुरु मंदिरमें प्रवेश करतें जिन दिशामें उदय होवै सो सन्मुख भावसे और दक्षिण–दाहिना हो तो अवश्य त्याग देना;मगर कभी अंध शुक्र होवै तो हरकत नहीं. ऐसा आरंभसिद्धिकी छोटी टीकामें कहा है. दूसरे दो प्रकारके शुक्र त्याग किये जांय तो त्याग देने चाहियें यानी संक्रांतिमें वर्त्तता हो–[जिस संक्रांतिमें हो सो देखो] और सन्मुख आवै तो त्यागने योग्य है. और नक्षत्रमें वर्त्तता हो सो कृतिका, रोहिणी, मृगशिर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा–इन नक्षत्रोंके दिन पूर्वदिशामें शुक्र होवै, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा–इन नक्षत्रोंमें दक्षिण दिशामें होवै, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्त-

राषाढा, अभिजित्, श्रवण–इन नक्षत्रोंमें पश्चिम दिशामें और धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी–इन नक्षत्रोंमें याने इन नक्षत्रोंके दिनमें उत्तर दिशामें शुक्र होवें मुहूर्त नक्षत्र जो होवें वो देखनेमें सन्मुख शुक्र आवे तो त्यागदेना

रविनक्षत्र चलता होवे उससें सातवा नक्षत्र होवे सो भस्मयोग कहा जाता है, वास्ते वो नक्षत्र नहीं लेना. धूलसें आकाश ढक गया हो याने सूर्य धूलसें आच्छादित हुवा हो वो दिनभी मुहूर्तमें निषेध है संक्रांति लगे उसका पहेला और पीछेका एक दिन और संक्राति लगै वो दिन छोड देना चाहियें

घदल उमड आकर गर्जारव होता हो, विजुली चमती हो या कडाके होते हो, या इंद्रधनुष मालूम होता हो, सूर्य चंद्रके पीछे [चोगिर्द] जलकुंडा–गोल चक्र मालूम देता हो और आकाश रक्तवर्णका बन रहा हो तो वो दिन या अकालवृष्टि हुइ हो वो दिन त्याग देनाही योग्य है.

ग्रहणके सात दिन याने ग्रहण हुवे पहेलेके तीन दिन, एक ग्रहण हुवा हो वो दिन और ग्रहण हुवे बादके तीन दिन यु मिलकर सात दिन ग्रहण दग्ध तिथिके कहे जाते है उन दिनोंमेभी मुहूर्त नही देना मगर खग्रास याने चंद्र सूर्य पूरा ढक गया हो वो या आधा ढक गया हो तो तीन दिन गोचरशुद्धि देखनी–उसकी हकीकत नीचे मुजब है.—

जिस राशिमें गुरु होवे सो राशि प्रतिष्ठा करानेवालीकी जन्मराशिसें २–५–७–९–११ वें ठौर हो तो श्रेष्ठ हैं

जिस राशिका चंद्र हो सो जन्मराशिसें १–३–६–७–१०–११–२–५–९ वे ठौर हो तो वोभी अच्छा ह [प्रभुजीकी राशिसें प्रभुजीकाभी देखना]

जिस राशिका रवि हो सो जन्मरासिसें ३–६–१०–११ वें ठौर हो तो अच्छा समझना

इस तरह प्रतिष्ठा करानवालेकों गुरु, चंद्र और रवि ये तीनू देखने चाहियें. प्रतिमाजी महाराजको चंद्र रूच देखना, मगर जो कृष्णपक्ष हो

सो तारा वल देखना सो नीचे मुजब है:—

जन्म नक्षत्रसें गिनना—सो जन्म नक्षत्र अश्विनी है तो दसवा नक्षत्र मघा आया ऐसें गिनना.

तारा.	नक्षत्र.	नक्षत्र.	नक्षत्र.	अच्छी, निर्बल तारा
१	१	१०	१९	शुभ तारा, नक्षत्रमें मुहूर्त्त देना.
२	२	११	२०	शुभ.
३	३	१२	२१	अशुभ.
४	४	१३	२२	शुभ.
५	५	१४	२३	अशुभ.
६	६	१५	२४	शुभ.
७	७	१६	२५	अशुभ.
८	८	१७	२६	शुभ.
९	९	१८	२७	शुभ तारा कही उस नक्षत्रमें मुहूर्त्त करना.

समझ यह है कि जन्मनक्षत्रसें १–१०–१९ वा नक्षत्र हो तो १ तारा—इसी तरह दो तीनँ वगैरः समझ लैना.

अब जिसका जन्म नक्षत्र हो तो उसका जो नाम हो उस परसें अक्षर—अवकहोडा चक्रसें देखकर नक्षत्र निकालना सो निचे मुजवः—

चू, चे, चै चो, ला, अश्विनी. लीँ, लु, ले, लो, लौ, लै, भरणी. अ, ई, ऊ, ए, ऐ, कृतिका. ओ, वा, वी, वु, रोहिणी. वे, वो, का, की मृगशिरा. कु, घँ, ड, छ, आर्द्रा. के, को, ह, ही, पुनर्वसु. हु, हे, हो, हा, पुष्य. डी, डु, डे, डो, अश्लेषा. म, मी, मु, मे, मघा. मा, टी, टु, टे,

पूर्वाफाल्गुनी. टे, टो, प, पी, उत्तराफाल्गुनी. पु, ष, ण, ठ, हस्त पे, पो, र, री, चित्रा रु, रे, रो, ता, स्वाति ती,तु, ते, तो, विशाखा. न, नी, नु, ने, अनुराधा नो, य, यी, यु, ज्येष्ठा ये, यो, भ, भी, मूल भू, ध, फ, ढ, पूर्वाषाढा भे, भो, ज, जी, उत्तराषाढा. जु, जे, जो, खा, अभिजित् खी, खु, खे खो, श्रवण ग, गी, गु, गे, धनीष्ठा. गो, स, सी, सु, शतभिषा. से, सो, द, दी, पूर्वाभाद्रपद दु, थ, झ, थ, उत्तराभाद्रपद. दे, दो, च, ची, रेवती इस मुजब नामके अक्षर है याने एक नक्षत्रके चार पाये होते है और उन चारों पायेमेंसें जिस पायेमें जन्म हुवा हो उसी पायेके अक्षर मुजब नाम रखा जाता है जैसें अश्विनीके पहेले चरणमें जन्म है तो चूनीलाल नाम आयगा सदूरेमें जन्म होगा तो चेतराम आयगा तीसरेमें होगा तो चोथमल्ल आयगा और चौथे चरणमें जन्म होगा तो लाभचंद्र नाम आयगा इस मुजब नक्षत्र पाद देखकर नामका नक्षत्र निकाल लेना.

मुहूर्तके दिन विष्टि होवें तो वो सक्रांतिमें देखना उसमें स्वर्गमें भद्रा हो तो जो कार्य करे सो सिद्ध होवें पातालमें भद्रा हो तो कार्यकी सिद्धि होवै, मगर मनुष्यलोकमें भद्रा हो तो कार्य न करना–करनेसें हानी होती है.

योगिनी देखनी सो सन्मुख हो तो अवश्य छोड देनी दाहिने हो तोभी त्याग देनी और पृष्ट भाग वाम भागकी हो तो लेनी योग्य है

काल और पास सन्मुख हो तो त्याग देना (जो तिथियोंमें बत-लाया है सो वहासें देख लेना) यह वास्तु शास्त्रमें देखनेका कहा है विशेष जैनमें देखना नहीं कहा है–ऐसा प्रतिष्ठा टीपणीमें लेख है

घातचंद्र, घातनक्षत्र, घाततिथि और घातमहीना त्यागनेका हुकम है

राहु सूर्योदयसें चार घडी पहेले पूर्वदिशामें रहे, बाद चार घडी वायुकोनेमें, बाद चार घडी दक्षिणमें, बाद चार घडी इशान कोनेमे, बाद चार घडी पश्चिममें, बाद चार घडी अग्नि कोनेमें, बाद चार घडी उत्तरमें, और पीछे चार घडी नैऋत कोनेमें–इस तरह दिन और रातमें अष्ट दिशामें फिरता हुवा रहता है

संक्रांतिमें क्या देखना ? सो नीचे मुजब है:—

राहु सन्मुख वर्जित है. तथा वच्छ सन्मुख और मंदिरमें प्रवेश करतें पीछे हो सो त्याग देना.

मेष संक्रांतिमें–राहु दक्षिनमें, वच्छ पश्चिममें, शुक्र पश्चिममें और विष्टि स्वर्गमें, तथा छठ रविदग्ध.

वृष संक्रांतिमें–राहु दक्षिनमें, वच्छ पश्चिममें, शुक्र उत्तरमें, विष्टि स्वर्गमें और चौथ रविदग्ध.

मिथुन संक्रांतिमें–राहु पश्चिममें, वच्छ उत्तरमें, विष्टि पातालमें, शुक्र उत्तरमें और अष्टमी रविदग्ध.

कर्क संक्रांतिमें–राहु पश्चिममें, वच्छ उत्तरमें, शुक्र उत्तरमें, विष्टि पातालमें और छट्ठी रविदग्ध.

सिंह संक्रांतिमें–राहु पश्चिममें, वच्छ उत्तरमें, शुक्र पूर्वमें, विष्टि मनुष्यलोकमें और दशमी रविदग्ध

कन्या संक्रांतिमें–राहु उत्तरमें, वच्छ पूर्वमें, शुक्र पूर्वमें, विष्टि पातालमें और अष्टमी रविदग्ध.

तुला संक्रांतिमें–राहु उत्तरमें, वच्छ पूर्वमें, शुक्र पूर्वमें, विष्टिं पातालमें और द्वादशी रविदग्ध.

वृश्चिक संक्रांतिम–राहु उत्तरमें, वच्छ पूर्वमें, शुक्र दक्षिनमें विष्टि मनुष्यलोकमें और दशमी रविदग्ध.

धन संक्रांतिमें–राहु पूर्वमें, वच्छ दक्षिणमें, शुक्र दक्षिणमें विष्टि पातालमें और बीज रविदग्ध.

मकर संक्रांतिमें–राहु पूर्वमें, वच्छ दक्षिणमें, शुक्र दक्षिणमें, विष्टि स्वर्गमें और द्वादशी रविदग्ध.

कुंभ संक्रांतिमें–राहु पूर्वमें, वच्छ दक्षिणमें, शुक्र पश्चिममें, विष्टि मनुष्यलोकमें और चौथ रविदग्ध.

मीन संक्रांतिमें–राहु दक्षिणमें, वच्छ पश्चिममें, शुक्र पश्चिममें, विष्टि मृत्युलोकमें और बीज रविदग्ध.

तिथियोंके साथ कुयोग होवें सो त्याग देनेका खुलासा नीचे मुजब है —

प्रतिपदाके रोज मूल नक्षत्रके योगसें ज्वालामुखी योग होता है सो वर्जित है योगिनी पूर्वमें, पाश शुदिमें पूर्वमें वदिमें वायुकोनेमें, काल शुदिमें पश्चिममें और वदिमें अग्निकोनेमें रहता है

बीजके रोज अनुराधा नक्षत्रके सयोगसे वज्रपात योग होता है सो त्याग देना. धन और मीनके चद्रसें चद्रदग्ध बीज, योगिनी उत्तरमें, पाश शुदिमें अग्निकोनमें वदिमें उत्तरमें, काल शुदिमें उत्तर और वदिमें वायु कोनमें होता है.

त्रीजके रोज उत्तरा (उत्तरापाढा, उत्तराफाल्गुनी और उत्तराभाद्रपद ये तीनु) के योगसे वज्रपात योग होता है सो वर्जनीय है योगिनी इशानमें, पाश वदिमें इशान और शुदिमें दक्षिणमें, काल शुदिमें उत्तर और वदिमें नैऋतमें होता है. तीज और अनुराधा नक्षत्रके योगसें कालमुखी योग होता है सोभी वर्जनीय है

चतुर्थीके रोज तीनु उत्तराके सयोगसें कालमुखी योग होता है सो त्याग देना वृषभ, कुंभके चद्रसें चद्रदग्ध तिथि, योगिनी नैऋतमें, पाश शुदिमें नैऋतमें, वदिमें अधोलोकमें, काल वदिमें उर्द्ध और शुदिमें इशानमें होता है.

पचमीके रोज भरणी नक्षत्रके संयोगसें ज्वालामुखी और मघाके सयोगसें कालमुखी योग होता है सो त्याग देना. योगिनी दक्षिणमें, पाश शुदिमें पश्चिम और वदिमें अधोलोकमें, काल शुदिमें पूर्व और वदिमें उर्द्धलोकमें होता है

छट्ठके रोज रोहिणीके सयोगसें वज्रपात योग होता है सो वर्जनीय है कर्क और मेषके चद्र साथसें चद्रदग्ध तिथि होती है योगिनी पश्चिममें, पाश शुदिमें वायुकोन और वदिमें पूर्वमें, काल शुदिमें अग्निकोन और वदिमें होता है

सप्तमीके रोज हस्त और मूल नक्षत्रके योगसें वज्रपात योग होता है सो त्याग देना. योगिनी वायव्य कोनेमें, पाश शुदिमें दक्षिण और वदिमें अग्नि कोनेमें, काल शुदिमें दक्षिण और वदिमें वायुकोनेमें होता है.

अष्ठमीके रोज कृतिका नक्षत्रसें ज्वालामुखी और रोहिणीके योगसें कालमुखी योग होता है सो त्याग देना. मिथुन कन्याके चंद्र संगसें चंद्रदग्ध तिथि होती है, योगिनी इशानमें, पाश शूदिमें इशानमें और वदिमें दक्षिणमें, काल शूदिमें नैऋत और वदिमें उत्तरमें होता है.

नौमीके रोज रोहिणीके योगसें ज्वालामुखी और कृत्तिकाके योगसें कालमुखी योग होता सो वर्जनीय है. योगिनी पूर्वमें, पाश शूदिमें उर्द्धलोक और वदिमें नैऋतमें, काल शूदिमें अधोलोक और वदिमें इशानमें होता है.

दशमीके रोज अश्लेषाके योगसें ज्वालामुखी योग होता है सो त्याग दैना वृश्चिक, सिंहचंद्र संगसें चंद्रदग्ध तिथि होती है. योगिनी पूर्वमें, पाश शूदिमें अधोलोक वदिमें पश्चिममें, काल शूदिमें उर्द्धलोक और वदिमें इशानमें होता है.

एकादशीके रोज योगिनी अग्निकोनेमें, पाश शूदिमें पूर्व, वदिमें वायुकोनेमें होता है. काल शूदिमें पश्चिम और वदिमें अग्निकोनेमें होता है.

द्वादशीके रोज तुला, मकरके चंद्रसें चंद्रदग्ध तिथि होती है. योगिनी नैऋतमें, पाश शूदिमें अग्निकोन और वदमें उत्तरमें होता है. काल शूदिमें वायुकोन और वदिमें दक्षिण दिशामें होता है.

त्रयोदशीके रोज चित्रा नक्षत्रके योगसें यमक्रांति योग होता है सो त्याग दैना. योगिनी दक्षिणमें, पाश शूदिमें दक्षिणमें और वदिमें इशानमें होता है. काल शूदिमें उत्तरमें और वदिमें नैऋतमें होता है.

चतुर्दशीके रोज योगिनी पश्चिममें, पाश शुक्लपक्षमें नैऋतमें और कृष्णपक्षमें उर्द्धलोकमें होता है. काल शुक्लपक्षमें इशानमें और वदिमें उर्द्धलोकमें होता है.

पूर्णमाशीके रोज योगिनी वायव्य कोनेमें, पाश शुक्लपक्षमें पश्चिममें वदिमें अधोलोकमें होता है, और काल शूदिमें पूर्वदिशामें और वदिमें उर्द्धलोकमें होता है.

चंद्रदग्ध तिथि लग्नशुद्धि प्रकरण मुजब लिखी गइ है. दूसरे ग्रंथोमें दूसरी तरहसेंभी चंद्रदग्ध तिथिका लेख है.

चद्रमा देखना सो मदिरमे प्रवेश करनेके वक्त दाहिनी बाजु या सन्मुख लेना. सो मेष, सिंह, धनका चद्र पूर्वदिशामें, वृषभ, कन्या, मकरका दक्षिणमें मिथुन, तुला, कुभका पश्चिममें और कर्क, मीन, वृश्चिकका चद्र उत्तर दिशामें रहता है.

सत्ताइस योगमेंसे अशुभ योगोंकी घडी त्यागनी सो विष्कुभकी, शूलकी और गड योगकी पहेली पाच घडी, अतिगडकी छ घडी, व्याघात, वज्रयोगकी नौ घडी, परिघकी ३० घडी और वैधृत, व्यतिपातकी सभी घडी त्याग देनी चाहियें

आरभसिद्धिके अनुसारसें सिद्धियोग और अमृतसिद्धियोग नीचे मुजब होता है.—

तिथि	वार	नक्षत्र	नक्षत्र.
१–८–९	रवि.	हस्त	पुन रे रो मृ ३ उत्तरा पुष्य मू. अश्वि. ध.
२–९	सोम.	मृग.	रो अनु उफा. हस्त. श्र. विशा पुष्य शत
३–८–१३–६	मग	अश्वि	रो उभा मृ उफा. कृ मृ पुष्य. अनु.अश्ले.
२–७–१२–६	बुध	अनु.	श्र ज्ये. पुष्य. ह उफा कृ मृ रो पुफा. उभा.
५–१०–१५–११	गुरु.	पुष्य	अश्वि पुन पूर्वा ३ अश्ले ध रे स्वा. नि. अनु
१–६–११–९	शुक्र	रेव	अश्वि पुषा. उषा. अनु श्र ध पुफा हस्त
४–८–१४–९	शनि	रोहि	श्र ध अश्वि स्वा पुष्य अनु मघा शत.
१	२	३	४
ये तिथि और वारके सयोगसें सिद्धियोग होता है	ये वार और नक्षत्रके संयोगसे अमृतसिद्धि योग होता है		ये वार और इन नक्षत्रोंके सयोगसें सिद्धियोग होता है आरभी सिद्धियोग लग्नशुद्धिके मुजब आगे लिख दिया गया है आरभसिद्धि और लग्नशुद्धिमें सिद्धियोगका मिलाप नहीं मिलता है-सो तत्त्व केवलीगम्य है

लग्नशुद्धि ग्रंथ मुजब सिद्धियोग.

तिथि.	वार.	नक्षत्र.
८	रवि.	हस्त. ३ उत्तरा. मू.
९	सोम.	रो. मृ. पुष्य. अनु. श्र.
१–६–८–१३	मंग.	उभा. अश्वि. रेव.
७–१–१२	बुध.	कृत्ति. रोहि. मृ. पुष्य. अनु
२०–३–१५	गुरु.	अश्वि. पुष्य. पुन. अनु. रे.
७–६–११–१३–१	शुक्र.	रेव. अनु. श्रवण.
१–९–१४	शनि.	रो. श्रव. स्वाति.

ये तिथि वारके संयोगसें और ये वार नक्षत्रके योगसें सिद्धियोग होता है.

तिथि.	वार.
१–६–११	शुक्र.
२–७–१२	बुध.
३–८–१३	मंगल.
४–९–१४	शनि.
५–१०–१५	गुरु.

नारचंद्रके मतसें इन "तिथि वारोंके संयोगसें" सिध्धियोग होता है.

आनंदादि शुभ योगका कोष्टक

रवि.	सोम.	मंग	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	शुभ योगके नाम
अश्वि	मृग	अश्ले	हस्त	अनु	उषा	शत	आनंदयोग
कृत्ति.	पुन.	पुफा	स्वा	मूल	श्रव	उभा	प्रजापतियोग
रो.	पुष्य	उफा	विशा.	पुष्य	धनी	रेव	शुभयोग
मृग	अश्ले	हस्त	अनु	उषा	शत	अश्वि	सौम्ययोग
पुन	पुफा	स्वा	मूल	श्रव	उभा	कृत्ति	ध्वजयोग
पुष्य	उफा	विशा	पुषा	धनी	रेव	रोहि	श्रीवत्सयोग
पुफा	स्वा	मूल	श्रव	उभा	कृत्ति	पुन	छत्रयोग
उफा	विशा	पुषा	धनी	रेव	रो	पुष्य	मित्रयोग
हस्त.	अनु	उषा	शत	अश्वि	मृग.	अश्ले	मनोज्ञयोग
मूल.	श्रव	उभा	कृत्ति	पुन	पुफा	स्वा	सिद्धियोग
उषा.	शत	अश्वि	मृग	अश्ले	हस्त	अनु	अमृतसिद्धियोग
श्रव	उभा	कृत्ति	पुन	पुफा	स्वा	मूल	गजयोग
उभा	कृत्ति	पुन	पुफा	स्वा	मूल	श्रव	स्थिरयोग
रेव	रो	पुष्य	उफा	विशा,	पुषा	धनी	वर्द्धमानयोग
धनी	रेव	रो	पुष्य	उफा	विशा	पुषा	मातंगयोग

रवियोगकी, कुमारयोगकी और राजयोगकी महत्त्वता अपने ज्योतिषके ग्रन्थोंमें बहुतसी की है. ये योगोंमें काम करनेसें अतिशय उत्तम फल कहा है. ये योग होवें और दूसरे कुयोग होवें तो वो कुयोग हरकत नहीं कर सकता है.

रवियोग सो-चलते सूर्यनक्षत्रसें ४-६-९-१०-१३-२० इस अंदरका कोइ नक्षत्र हो तो रवियोग होता है.

कुमारयोग सो-मंगलवार, बुध, सोम, शुक्र, तिथि १-६-१०-११-५, नक्षत्र अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, हस्त, विशाखा, मूल, श्रवण, पूर्वाभाद्रपद, इन वारमेंसें कोइ वार, इन तिथिमेंसें कोइभी तिथि और इन नक्षत्रमेंसें कोइभी नक्षत्र आवै तो कुमारयोग होता है.

राजयोग सो-रविवार, मंगल, बुध, शुक्र, २-७-१२-३-१५ ये तिथिके दिन भरणी, मृगशिर्ष, पुष्य, पुर्वाफाल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, पुर्वाषाढा, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद-इन नक्षत्रोंमेंसें कोइ नक्षत्र और उपर बतायेगये वारका संयोग हो जानेसें राजयोग होता है, सो बहुतही उत्तम माना जाता है.

स्थिविरयोग सो-अनशन करनेमें, रोगनिवारण निमित्त औषध करनेमें उत्तम कहा है. वो गुरु, शनीवार तथा १३-८-४-९-१४ तिथि, और कृत्तिका, आर्द्रा, अश्लेषा, उत्तराफाल्गुनी, स्वाति, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा, शतभिषा, रेवती ये नक्षत्रके याने उपर कहे हुवे वार-तिथि-नक्षत्रके संयोगसें स्थिविर योग होता है.

मुहूर्त्तके नक्षत्रोंमें दूषित नक्षत्र लग्नशुद्धि प्रकरणमें कहे हैं सो निचे मुजबः—

१ संजागत याने जो नक्षत्र सूर्यास्तके समय उदय होवै उसको संजागत नक्षत्र कहा जाता है सो वर्जनीय है.

२ आदित्यगत याने जिस नक्षत्रका सूर्य हो उस नक्षत्रमें मुहूर्त्त करै तो निवृत्ति न पावे, वास्ते वर्जनीय है.

३ वडे वडे सो अभिजित् नक्षत्रसें सात नक्षत्र पूर्व दिशाके, उस पीछेके सात दक्षिण दिशाके, उस पीछेके सात पश्चिम दिशाके और उस बाद सात उत्तर दिशाके-इस तरह स्थापन करकें देखे और प्रभुजी

विराजे उन्होंके सन्मुख नक्षत्र आवे उस नक्षत्रमें मुहूर्त करना सो सुंदर है सन्मुख सिवाके वो वडे वडे नक्षत्रोंमें कार्य करे तो शत्रुका जय और आपकी हानी होवे

४ सग्रह सो—क्रूर ग्रह सहित जो नक्षत्र हो सो वर्जनीय है. उस नक्षत्रमें कार्य करे तो विघ्न होवे

५ विलंबीए—सो सूर्यनक्षत्रके पीछेके नक्षत्रमें कार्य करे तो विवाद होवे.

६ राहुहत—सो जिस नक्षत्रपर ग्रहन हो वो नक्षत्रमें कार्य करे तो मरण होवे

७ ग्रहभिन्न सो—नक्षत्रके बीचमें होके ग्रह जावे उस नक्षत्रमें मुहूर्त करे तो लोही—रुधिर वमे.

रोहिणीवेध यंत्र.

कृ. रो मृ आ पु पू अ

उपरकी रेषामें नक्षत्र लिखे हैं उस नक्षत्रपर मुहूर्तके दिन जो जो नक्षत्रपर ग्रह हो वो ग्रह नक्षत्रपर लिख और पीछे तपासना कि जिस नक्षत्रपर चंद्रमा होवे उस लकीरकी सन्मुखके नक्षत्रपर कोइभी ग्रह होवे तो वो वेध समझना. और चंद्रवाले नक्षत्रमें मुहूर्त्त नहीं करना. वो नक्षत्र छोड देना. अभिजित नक्षत्रपर कोइभी ग्रह न हो तोभी उत्तराषाढाके चतुर्थ पादमें जो ग्रह हो वो या श्रवण नक्षत्र बैठनेके वक्तसें लगा चार घडी तक जो ग्रह हो वो ग्रह अभिजितपर समझना; क्यों कि उत्तराषाढाका चतुर्थपादकों श्रवण बैठतें चार घडी तककोंही अभिजित नक्षत्र कहा है. इस मुजब रोहिणीवेधका नक्षत्र त्याग देना.

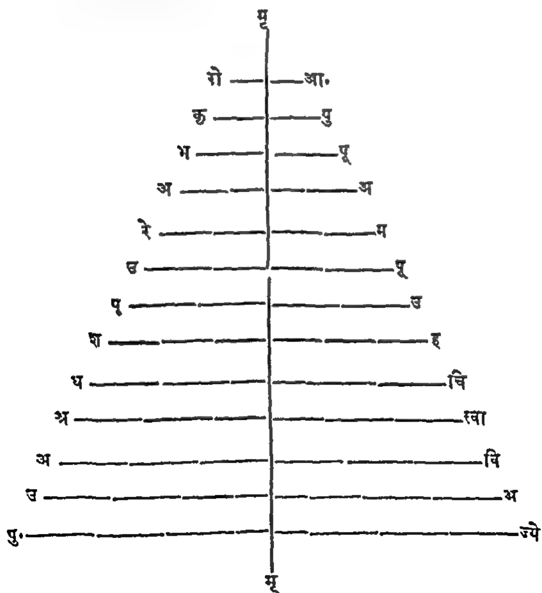
उपग्रह सो-सूर्यनक्षत्र जो वर्त्तमान हो उस नक्षत्रसें ५-१४-१८-१९-२२-२३-२४ इसके अंदरका कोइ नक्षत्र होवे तो वो उपग्रहवेध कहा जाय वास्ते वोभी वर्जनीय है.

लग सो लत्ता प्रतिष्ठा करानेवालेके या दीक्षा लेनेवालेके जन्मनक्षत्रसें बारहवे नक्षत्रपर रवि होवे और तीसरे नक्षत्रपर मंगल, छट्ठे नक्षत्रपर गुरु और अष्टम नक्षत्रपर चंद्र होवे तो उस नक्षत्रमें मुहूर्त्त नहीं करना. उसीतरह बुध जन्मनक्षत्रसें सप्तम नक्षत्रपर होवे, शुक्र पांचवे नक्षत्रपर, राहु नवम नक्षत्रपर, पूर्णिमाका चंद्र बाइसवे नक्षत्रपर हो सो नक्षत्रभी वर्जनीय है-और यह लत्ता दोष बंगालेमें अवश्य वर्जने योग्य है

पातदोष सो-सूर्यनक्षत्रसें अश्लेषा, मघा, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, रेवती, ये नक्षत्र जितनी संख्याका हो उतनी संख्यावाले नक्षत्रकों अश्विनीसें गिनना, वो जो नक्षत्र आवे सो पातदोष कहा जाता है जैसें कि अभी पुनर्वसुका सूर्य है तो उससें गिनती करतें अश्लेषा तीसरा आया तो अश्विनीसें तीसरा नक्षत्र कृत्तिकाकों पात कहा जाय; वास्ते वो वर्जनीय है और अवश्य करकें कौशल देशमें विशेष वर्जने योग्य है.

इकार्गल दोष सो-सत्ताइस योगमेंसें १-६-९-१०-१३-१५-१७-१९ और २७ इन योगके अंदरका जो योग हो वो योग जितनी संख्यावाला हो उतनी संख्यावाले नक्षत्रका अंक सम हो तो उसका अर्द्ध

करना और विषम हो तो एक अंक बढाके अर्ध करना ऐसा करनेसें जो अंक आवे वो अंकवाला नक्षत्र यत्रके मध्य रेखाके शिरपर स्थापना और पीछे क्रमवार और नक्षत्रोंकों स्थापदे पीछे जिस नक्षत्रपर सूर्य होवे सो सो नक्षत्रपर लिखना और चंद्रमा जिस नक्षत्रपर हो वो वहां लिखना. ये दोनु सामसामने आ जावे तो इकार्गल दोष कहा जाता है, वास्ते वर्जनीय है. यत्र शुक्लमें योगमें हो वो मृगशिर्ष मध्यरेषाके शिर आता है. ये गौडदेशमें वर्जित है



उपरके यंत्रमें जो शूलयोगपर मृगशिर्ष नक्षत्र रख्खा गया है, उसी तरह परिघयोगपर मघा, वैधृतपर चित्रा, व्याघातपर पुनर्वसु, वज्रपर पुष्य, विष्कुंभपर अश्विनी, अतिगंडपर अनुराधा, गंडपर मूल, और व्यतिपातपर अश्लेषा—इस मुजवसें जितनी संख्यावाला योग हो उतनी संख्यावाला नक्षत्र रखना.

उपर मुजबके दोष छोडकर प्रतिष्ठा, दीक्षाके मुहूर्त्तके नक्षत्र लेवै. दीक्षाके नक्षत्र लग्नशुद्धि मुजव लेना.

उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, हस्त, अनुराधा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, पुष्य, पुनर्वसु, रेवती, मूल, अश्विनी, श्रवण, स्वाति, इन नक्षत्रोंमें, दीक्षा देनी. गुरुकों चंद्रवल देखना और शिष्यकों चंद्रवल, गुरुवल, रविवल जो प्रतिष्ठा करानेवालेके देखनेका जैसें वतलाया है वैसें देखना. दूसरा सव प्रतिष्ठा मुजवही करना.

यात्रा करने जानेके प्रयाणमें उत्तम और मध्यम नक्षत्र नारचंद्रके टीप्पणमें नीचे मुजव हैः—अश्विनी, पुष्य, रेवती, मृगशिर्ष, पुनर्वसु, हस्त, ज्येष्ठा, अनुराधा और मूल ये उत्तम कहे हैं, और चित्रा, रोहिणी, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, तीनु पूर्वा, ये मध्यम कहे हैं. दीक्षाके वार रवि, वुध, शनि ये उत्तम है. इन सिवाके वारके दिन यदि सिद्धियोग वगैरः शुभ योग होवै तो लग्नशुद्धिमें वो वारभी उत्तम कहे हैं.

इसतरहकी दिवसशुद्धि देख करकें लग्नशुद्धि देखनी. उसमें छः वर्ग तक देखनी. और ग्रहका उदय, अस्त, वलभी देखना चाहियें. छ वर्ग नीचे मुजव हैः—

ग्रह, होरा, देशकान, नवमांश, द्वादशांश, त्रीशांश इन छउं जगेपर सौम्य ग्रह आवै तो उत्तम है. कदाचित् पांच वर्ग शुभ होवै तोभी मुहूर्त्त लेना. अव लग्नका प्रमाण निम्न लेख मुजव हैः-—

मीन और मेष लग्नकाल २१९ पल,

कुंभ, वृषभका २५१ पल,

मकर मिथुनका ३०३ पल,

वृश्चिक, सिंह लग्नका २४७ पल, कन्या, तोलाका ३२७ पल,
और धन, कर्क लग्नका ३४३ पलका काल है अब लग्न निकालना होवे तो छपे हुवे पचांगमें रवि कितने अंशमें है? वो देखकर पीछे पचांगमें लग्नपत्रके कोष्टकमें रवि कितने अंशमें है? वो देखना, और पीछे लग्नपत्रके कोष्टकमें जितने अंशमें रवि जिस संक्रांतिका हो, उसके कोठेमें जो अंक हो वो वो लग्न प्रात काल–सूर्योदय समय होनेका समझ लेना पीछेका जो अच्छा लग्न होय वो कोठेमें जो अंक हो सो देखना, उसमें जितनी घडीकी विशेषता आवे उतनी घडी दिन चढनेसें वो लग्न आवेगा ऐसा समझ लेना पीछे कुंडली निकालकर जिस जिस राशिके ग्रह हो वो लिखना और वे ग्रह अच्छे या बुरे है कि कैसे? वो देखनेके लिये लग्नशुद्धि मुजब कुंडली दी हैं उस मुजब देखना

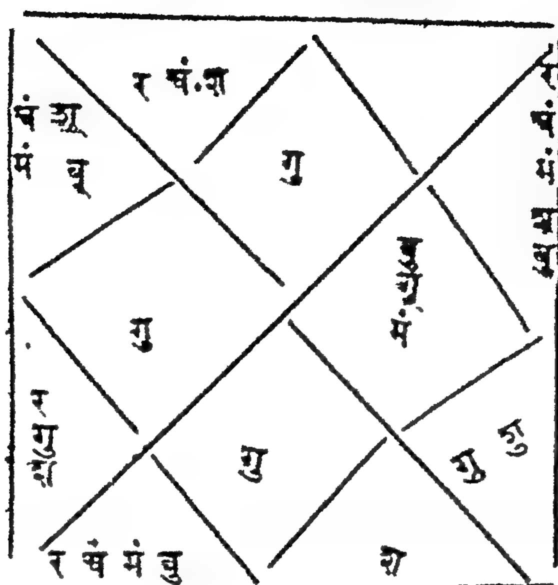
प्रतिष्ठा ग्रह नीचे मुजब —

उत्तम—

मध्यम.

उपर मुजब ग्रह होवे तो प्रतिष्ठा करानेमें श्रेष्ठ है इस सिवाय स्थान पर ग्रह होवे तो करानेवालेको हानिकर्त्ता पडे है यह कुंडली आचार्यस्थापना, गच्छाधिपक, विवाह और अन्यभी शुभ कार्यमें उपर लेनेवाली है

दीक्षाकी उत्तम कुंडली.



इस उत्तम कुंडलीमें ग्रह रख्खे हैं उस मुजबके ग्रहोंमें दीक्षा देनी सो बहुतही श्रेष्ठ है. मगर उस मुजबके ग्रह न हो तो दीक्षाकुंडलीमें शनी मध्यम बली हो गुरु बलवान हो और शुक्र निर्बल हो उसमें दीक्षा देनी इसका स्वरुप नीचे मुजब है:—

शनि–२–५–६–८–११ इन स्थानोंपर मध्यम बली,

गुरु–१–४–७–१० इन स्थानोंपर बलवान,

शुक्र–६–१–२ इन स्थानोंपर निर्बल वो दीक्षामें अच्छा.

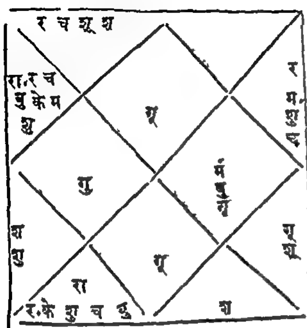
बुध–२–३–५–६–११ सुखदायक हैं.

मंगल–३–६–१०–११ इन स्थानोंमें हो तो दीक्षा लेनेवाला बहुत अच्छे ज्ञान तपयुक्त हो सकेगा ऐसा समझना.

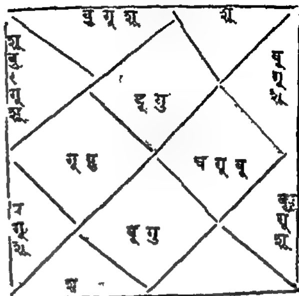
शुक्र, मंगल, शनि इन तीनमेंसें कोइसेंभी सप्तम भवनमें चंद्र हो तो अयोग्य हैं. दीक्षा लेनेवाला बेशक कुशीलीआ निकले और तप ज्ञानसें रहित होवै.

नारचंद्रमें दीक्षाकुंडलीऐं कही हैं उस मुजब कहता हुं. एक उत्तम कुंडली तो जैसें लग्नशुद्धिमें कही है उसी मुजब है और दूसरी ग्रंथांतर मुजब की है:—

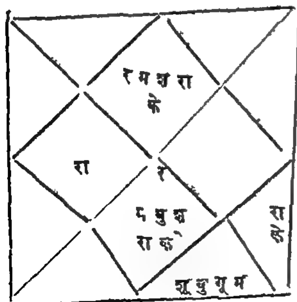
दीक्षाकी सप्तम कुडली.



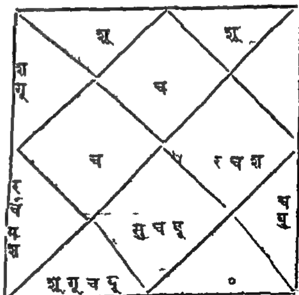
दीक्षाकी मध्यम कुडली



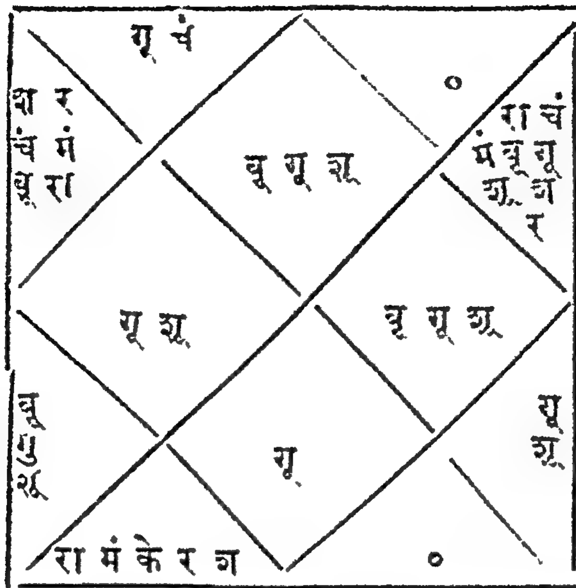
जघन्य.



मध्यम.



उत्तम.



इस लग्नकुंडलीमें उत्तम ग्रह आवै सो ग्रहशुद्धि.

होरा सो लग्न लिया गया हो उसके दो भाग करना. उसमें-१-३-५-७-९-११ इन संख्यावाला लग्न होवै तो पहेली होरा रविकी और दूसरी होरा चंद्रकी. और २-४-६-८-१०-१२ इन संख्यावाला लग्न हो तो पहेली होरा चंद्रकी और दूसरी होरा सूर्यकी. प्रतिष्ठा, दीक्षादिक चंद्रकी होरामें करना.

देशकाण सो-लग्नके तीन हिस्से करना, उसमें जो मेष लग्न लिया हो तो पहेला देशकाण मेषका, और इसीही तरह जो लग्न लिया हो उसीकाही पहेला देशकाण समझना. दूसरा देशकाण सिंहका, तीसरा धनका, वृष लग्नमें पहेला वृषका, दूसरा कन्याका, तीसरा मकरका, इस मुजब जो लग्न लिया हो उससें देख लैना. पीछे जो देशकाण आवै उसका स्वामी जन्मकुंडलीमें देखना और स्वामी अच्छे स्थानमें हो तो देशकाणमें मुहूर्त्त करना.

नवमांश देखना सो-जो लग्न होवै उनके पहेलेका जो होय उसके नौ भाग करना. उसमें पहेले हिस्सेका नवमांश जो मेष लग्न हो तो प-

हेले मेषका। १–२–३–४–५–६–७–८–९ जो वृष लग्न हो तो पहेला १०–११–१२–१–२–३–४–५–६ जो मिथुनका हो तो पहेला ७–८–९–१०–११–१२–१–२–३ जो कर्क लग्न हो तो पहेला ४–५–६–७–८–९–१०–११–१२ जो सिंह लग्न हो तो पहेला–१–२–३–४–५–६–७–८–९ कन्या लग्न हो तो पहेला–१०–११–१२–१–२–३–४–५–६ जो तुला लग्न हो तो पहेला–७–८–९–१०–११–१२–१–२–३ जो वृश्चिक लग्न हो तो पहेला–४–५–६–७–८–९–१०–११–१२ जो धन लग्न हो तो पहेला–१–२–३–४–५–६–७–८–९ मकर लग्न हो पहेला १०–११–१२–१–२–३–४–५–६. जो कुंभ लग्न हो तो पहेला ७–८–९–१०–११–१२–१–२–३ जो मीन लग्नका हो तो पहेला ४–५–६–७–८–९–१०–११–१२ इस मुजब जो नवमांश जो नवमांशका स्वामी बलवान हो सो लेना और सौम्य ग्रहका लेना सौम्य ग्रह सो–चंद्र–बुध–गुरु–शुक्र

द्वादशांश सो–लग्नके बारह भाग करना और जो लग्न हो उस पहेले भागका स्वामी, और उससें क्रमवार बारह भागके स्वामी देखना उसमें जो भागमें मुहूर्त होवे उस भागका स्वामी लग्नमें वो शुभ ग्रह हो तो श्रेष्ठ समझना

त्रींशांश सो लग्नके तीस हिस्से करना उसमें मेष लग्न हो तो पहेले पांच भागका स्वामी मंगल, उस पीछेके पांच भागका स्वामी शनि, उस पीछेके आठ भागका स्वामी गुरु, उस पीछेके सात भागका स्वामी बुध, उस पीछेके पांच भागका स्वामी शुक्र–इस तरह मिथुन, सिंह, तुला, धन, कुंभके भागोंके स्वामी येही समझ लिजीयें और समराशि जो वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन ये छउ सम लग्नमें पहेले पांच भागका स्वामी शुक्र, उस पीछेके पांच भागका स्वामी बुध, उस पीछेके आठ भागका स्वामी गुरु, उस पीछेके सात भागका स्वामी शनि और उस पीछेके पांच भागका स्वामी मंगल. इस मुजबसें अंशके स्वामी देख लेने चाहियें उसमें सौम्य ग्रहके अंशमें मुहूर्त करना श्रेष्ठ है फिर दूसरी तरहसें त्रींश अंशोंमेंसें अंश कहे है वो नीचे मुजब त्रींश अंश अंकके अंश है।—

वृष और मकर लग्नका वीसवा अंश.

मीन, कर्क, कन्याका	१५ तथा	८ अंश.
वृश्चिकका	....	१२ अंश.
कुंभका	....	२६ अंश.
तोलाका	....	२४ अंश.
मेषका	....	२७ अंश.
सिंहका	....	१८ अंश.
धन और मिथुनका	....	१७ अंश

इस तरह जो लग्न हो उसके ऊपर कहे हुवे अंशोंमें मुहूर्त करना वोभी उत्तम कहा है. वारह लग्नके स्वामी देखना सो मेषका स्वामी मंगल, वृषका शुक्र, मिथुनका बुध, कर्कका चंद्रमा, सिंहका रवि, कन्याका बुध, तुलाका शुक्र, वृश्चिकका मंगल, धनका गुरु, मकर कुंभका शनि और मीनका गुरु है. इस मुजव लग्नके स्वामी हैं. वो स्वामी वलवान् होवै सो देखना, या उच्च स्वगृही होवै तो वहुत अच्छा; मगर नीचका या शत्रुके गृहमें वैठा हुवा वा हस्तका वक्रीका हो सो वर्जनीय है. इस तरह छः वर्गशुद्धि देखनी चाहियें.

एक आचार्य महाराजने और लग्नशुद्धिमें कहा है कि नवमांश शुद्ध देखकर प्रतिष्ठा करनी. चद्रमा क्रूर ग्रहसें युक्त हो तो वो क्षीणचंद्र कहा है, सो निर्वल है.

उदय शुद्धि सो—नवमांशका स्वामी लग्नकुंडलीमें लग्नके स्वामीकों देखता होवै तो उसकों उदयशुद्धि कहा जाता है. वो प्रतिष्ठा दीक्षामें देखनी चाहियें.

अस्तशुद्धि सो—नवमांशका स्वामी लग्नके सातवे स्थानकों देखता हो तो उसें अस्तशुद्धि कहते हैं.

लग्नशुद्धिमें ऐसाभी कहा है कि अस्तशुद्धि और उदयशुद्धि देखनेकी दीक्षा, प्रतिष्ठामें जरूरत नहीं है. युं कितनेक आचार्यभी कह गये हैं. वारह राशियोंमे चर, स्थिर और द्विस्वभावकी पहेचान नीचे मुजव है:—

मेष, कर्क, तुला और मकर चर राशी हैं
वृष, सिंह, वृश्चिक ओर कुंभ स्थिर राशी हैं
मिथुन, कन्या, धन और मीन द्विस्वभाव हैं

इनमेंसे प्रतिष्ठाके काममें स्थिर लग्न लेना वो नही तो द्विस्वभाव लेना. आरंभसिद्धिमें बने वहां तक द्विस्वभाव लेना और वो न आवे तो स्थिर लेना अगर ग्रह बहुतही उत्तम आते होवे तो क्वचित् चरभी लेनेका कहा है

नारचंद्रमें लग्नकुंडलीके भीतर ग्रह पडे हो उसके योगायोग और फल कहे है सो नीचे मुजब है —

चंद्रके साथ रवि मंगल होवे तो अग्नि भय होवे.
चंद्रके साथ शनि हो तो मरण भय करे
चंद्रके साथ बुध हो तो समृद्धि करे
चंद्रके साथ गुरु हो तो महीमा प्रभाव बढावे
चंद्रके साथ शुक्र हो तो समस्त सौख्य देवे

प्रतिष्ठा-कुंडलीमें रवि अबल [निर्बल] हो तो गृहके मालिककी हानी होवे चंद्र निर्बल हो तो स्त्रीका मरण होवे, शुक्र निर्बल-विबल हो तो धननाश, गुरु विबल हो तो सुखनाश होता है प्रतिष्ठा कुंडलीमें नीचग्रह क्रूरग्रहसें युक्त हो, या अस्तका, या शत्रुक्षेत्रका ग्रह, या वक्री हो तो विबल समझना. शनि रवि वक्री होवे तो प्रासादका नाश करे.

मंगल, शनि, राहु, रवि, केतु, शुक्रभी इस ग्रहसें सहित इन ग्रहमेंसे सातवा हो तो सूत्रधार, आचार्य, श्रावक इन सबका मृत्यु करे मंगल, शनि, सूर्य १-१०-४-७-८-९ इतने स्थानपर होवे तो प्रासादका भंग करे मंगल बारहवे स्थान हो तो सुखभंजकरे

शुक्रवार शुक्रका नवमांश, शुक्रलग्नाधिपति, शुक्रके उदयमें शुक्र सातवेंसे लग्नको देखता होवे तो उसमें दीक्षा न देनी.

सोमवारके रोज लग्नका स्वामी चंद्र, नवमांशका स्वामी चंद्र, चंद्रके उदयमें यो शुक्लपक्षमें ये एकत्र योगमे दीक्षा न देनी

कुंडलीमें शुभयोग कुयोग होते है वो आरंभसिद्धिके अनुसार.

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	अच्छे योग.
					श.			शुभ ग्रह.		र. मं.		श्री वत्सयोग श्रेष्ठ.
					मं					र.		अर्धयोग श्रेष्ठ.
शुभ		श.	शुभ.					शुभ	शुभ			शंखयोग श्रेष्ठ.
												हलयोग श्रेष्ठ.
							पाप ग्रह	गु				
बु.												गरुडयोग श्रेष्ठ.
		चं.		शुभ	अ	ने	क	न्या	लग्न	होवे	तो	हर्षयोग अच्छा.
बु.												आनंदयोग श्रेष्ठ.
गु.												जीवयोग श्रेष्ठ.
शुक्र.												नंदनयोग श्रेष्ठ.
गु. शुक्र.												स्थिरयोग श्रेष्ठ.
बु. गु.												जैमिनियोग श्रेष्ठ.
बु. गु.												जावयोग श्रेष्ठ.
बु. गु. शुक्र.												अमृतयोग श्रेष्ठ.
					शुभ.		शुभ	र			पाप ग्र.	धनुयोग नेष्ट. कुठारयोग नेष्ट.

कुंडलीके ग्रह

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	
			म				च				श	मूशलयोग नेष्ट
	श			म			च				र	कूर्मयोग नेष्ट.
पाप			पाप			पाप			पाप			वापीयोग नेष्ट
पाप			पाप						पाप			शल्ययोग नेष्ट.
पाप												पाणीयोग नेष्ट.
पाप												मर्मयोग नेष्ठ
				श.								वक्रयोग नेष्ठ.
				पाप					पाप			सकटयोग नेष्ठ.

उपरके यन्त्रोमें जहा पाप और क्रूर शब्द लिखा है सो रवि, मगल, शनि राहु-इस अदरका ग्रह समझना और जहा शुभ ग्रह लिखा है वहां चद्र, गुरु, शुक्र, बुध समझ लेना. और नेष्ट योग छोडकर श्रेष्ठ योगमें मुहूर्त देना

मुहूर्त करनेकी ताकीदी हो अगर शुभ मुहूर्त या लग्नशुद्धि अच्छी हाथ न लगती हो तो लग्नशुद्धि प्रकरणमें और नारचद्र टीप्पणमें छाया लग्नका विधि कहा है उससें मुहूर्त करनेमें श्लोक कहा है सो नीचे मुजब.—

न तिथि र्न च नक्षत्र, न वारो न च चद्रमा
न ग्रहोपग्रहाश्चैव, छाया लग्न प्रशस्यते

इस तरह कहा है, वास्ते छायालग्नसें कार्य करना—याने सूर्यकों पीठ देकर पुरुष खडा रहे और पीछे अपनी छाया जहा तक लगी मालूम होती हो वहा तकका निशान कायम कर पीछे आपहीके कदमसें पगले भरे, वो पगले वार अनुसार लैना अगर सात अगुलका शकु रखकर उसकी छाया आगुलसें नाप लेवें.

रविवारके दिन ११, सोमवारके रोज ८॥, मगळवारके रोज ९, बुधवारके रोज ८ गुरुके रोज ७, शुक्रके रोज ८॥ और शनीवारके रोज ८ अगुल नापना इस मुजब आगुल नापे सो शकु बारह अगुलका पा-

टियेपर समान जगहपर रखना. पीछे जिस वारके रोज मुहूर्त करना हो उस रोजके अंगुल कहे मुजब छांउ आ जाय कि मुहूर्त कर ले, वो कल्याणकारक है. यह छाया लग्नसें यात्रा करनेकों मयाण करना हो या हरकोइ कार्यका आरंभ करना हो वो कल्याणकारक है.

यात्रा वा परदेशकों मयाण करना हो तो चंद्र सन्मुख या दाहिना लैना. योगिनी पृष्ठभागमें रखनी. सन्मुख काल न लैना. नक्षत्र मयाणके पत्र १२६ में कहा है वहां देख लैना. शुभ लग्न या छाया लग्नमें मयाण करना. नारचंद्रमें चंद्रवासा देखनेकी रीति कही है याने मेष, सिंह, धनका चंद्र पूर्वदिशामें, वृष, कन्या, मकरका चंद्र दक्षिणमें, मिथुन, तुल, कुंभका पश्चिममें और कर्क, मीन, वृश्चिकका चंद्र उत्तरमें रहता है.

१–३–५ इन संख्यावाले चंद्रका निवास मस्तकपर होता है उन चंद्रमें विदेश–परगाम जाय तो धनकी प्राप्ति करे. ६–९ इन चंद्रोंका वासा पीठमें होता है वो अच्छा नहीं. ८–१२ इन चंद्रोंका वासा पॉवपर होता है वो निराशादायी है. १०–११–७ इन चंद्रोंका निवास छातिपें होता है उसमें मयाण करे तो धनादिका वहुत सुख मिले, और २–४ इन चंद्रोंका निवास हाथमें होता है उसमें मयाण करनेसें सब आशा पूर्ण होती है.

सातों वारके फल नारचंद्रके मुजबः–गुरु पाणीग्रहणमें, शुक्र परदेश जानेमें, बुध पढनेमें, शनि दानदक्षिणा देनेमें, मंगल लडाइमें, और राज मिलापमें, और सोमवार सब कार्यमें अच्छा कहा है वहुत करकें मंगल रवि इनकों बने वहां तक काममें न लैना. शुभ योग लेकर काम करै तो जय होवै. कुयोग या तिथिके कोष्टक–यंत्रमें देखकर जो वर्जनीय हो उसकों छोड देना. हर किसी काममें कुयोग विगरकी शुभ योगवाली तिथि लेकर कार्य फतेह करना.

जो वार होवै उसी रोज ग्रह वलवान हो याने कृष्ण पक्षमें रवि, राहु, शनि, मंगल वलवान होते हैं, और शुक्लपक्षमें सोम, बुध, गुरु, शुक्र बलवान होते हैं.

नौ ग्रहोंकी दृष्टि और शत्रु-मित्रता-उच्च-नीच-स्वगृही वलवान देखनेका यंत्र.

रवि	साम.	मगल	बुध.	गुरु.	शुक्र	शनि	राहु	केतु	ग्रहोंके नाम
७	७	४-८-७	७	५-९-७	७	३ १० ७	७	७	सपूर्ण दृष्टि
४-८	४-८	५-९	४-८	३-१०	४-८	७	०	०	त्रिपाद दृष्टि
५-९	५-९	५-९	५-९	०	५-९	५-९	५-९	५-९	द्विपाद दृष्टि.
[illegible]-१०	३-१०	३ ७ १०	३-१०	४-१०	३-१०	५-९	३-१०	३ १०	एकपाद दृष्टि
च म. गु	र बु	र गु च	र रा शु	र च म	बु रा श	बु रा शु	बु श शु	बुध	मित्र ग्रह.
बु.	म शु गु श	शु श गु	म श गु	श रा	म गु	गुरु	गुरु	०	सम ग्रह
श. रा. शु	श.	बु रा	च	बु शु	र च	र च. म	र च म.	०	शत्रु ग्रह.
मेष १०	वृष ३	मकर २८	कन्या १५	कर्क ५	मीन २७	तुला. ०	मिथुन	० ०	उच्च ग्रह-परमो च्च अंश
तोला १०	वृश्चि ३	कर्क २८	मीन. १२	मकर ५	कन्या २७	मेष २०	धन ०	०	नीच ग्रह-नी-चांश
सिंह	कर्क	मे वृ	क मि	ध मी	वृ तु	म कु	कन्या	०	स्वगृही
दिन	रात्रि.	रात्रि	दि रात	दिन	दिन	रात्रि	०	०	बलवान

कुंडलीमें ग्रह जिस स्थानपर बैठा हो उससें २-३-४-१०-१२ इन संख्यावाले स्थानपर दूसरा ग्रह होवे तो उसके साथ तात्कालिक मित्रता कहेनी और ५-६-७-८-९ इन स्थानपर बैठा हुवा ग्रह तात्कालिक शत्रुता कहेनी कुंडलीमें मित्र हो और अहर्निश मित्रता हो तो अधिमित्रता, और शत्रुभी सब जगह हो तो अधिशत्रुतावत समझना.

प्रतिष्ठा, दीक्षा कुंडलीमें तीन शुभ ग्रह बलवान् होवै और दूसरे हीन बली हो तोभी मुहूर्त्त करना ऐसा आरंभसिद्धिमें कहा है.

लग्नकुंडलीमें बुध रविसें रहित १-४-७-१० यह चार स्थानपर हो तो लग्नके १०० दोषोंका नाश करै. शुक्रकेंद्रे स्थान-१-४-७-१० में होवै और क्रुर ग्रहोंसें रहित हो तो १००० दोषका नाश करै. और गुरुभी उसी केंद्रस्थानमें बलवान् हो तो लग्नके लक्ष दोषका निवारण करै-इस तरह आरंभसिद्धिकी छोटी टीकामें कहा है. और बडे प्रतिष्ठा कल्पमें ५-९ गुरु, शुक्रका वैसाही फल कहा है. पुनः प्रतिष्ठाकल्पमें मेष, वृषका चंद्र, सूर्य हो और शनि बलवान् हो, मंगल, बुध हीनबली हो तोभी प्रतिष्ठा करनेका कहा है-वार, तिथि, नक्षत्र, चंद्रबल देखना नहीं-लग्न बलवान् देखना.-३-११ सूर्य हो, १-४-९-१०-५ गुरु या शुक्र हो तो दूसरे सब दोषोंको दूर करै, और शुभ फल देवैं. उन ग्रंथमें लग्नकुंडलीमें राहु या केतु १-४ हो तो उत्तम कहा है; मगर दूसरे किसी ग्रंथमें उत्तम नहीं कहा मालूम होता है.

तमाम ग्रह शत्रुके घरमें होवै तो प्रतिष्ठा नेष्ट समझनी. लग्न या सातवे स्थान चंद्र, राहु या केतु युक्त हो तो वो अधम फल देवै. लग्नमें या चंद्रयुक्त गुरू हो तो निर्विघ्नतासें प्रतिष्ठा होवै. चंद्र शुक्र युक्त या शुक्रको चंद्रपर दृष्टि हो तो अच्छा फल देवै.

चोवीस तीर्थंकरजीकी राशि, नक्षत्र लांछन नीचे मुजबः-

ऋषभदेवजीकी धनराशि, उत्तराषाढा नक्षत्र, और वृषभ लांछन है. इसीतरह तमामके लिये समझनाः—

अजीतनाथजी-	वृषभ,	रोहणी,	हाथीका.
संभवनाथजी-	मिथुन,	मृगाशिर्ष,	घोडेका.
अभिनंदनजी-	मिथुन,	पुनर्वसु,	बंदरका.
सुमतिनाथजी-	सिंह,	मघा,	कौंचपक्षिका.
पद्मप्रभुजी-	कन्या,	चित्रा,	कमलका.

सुपार्श्वनाथजी–	तुला,	विशाखा,	स्वस्तिकका
चद्रप्रभुजी–	वृश्चिक,	अनुराधा,	चद्रका
सुविधिनाथजी–	धन,	मूल,	मघरका लांछन
शीतलनाथजी–	धन,	पुर्वापाढा,	श्रीवत्सका.
श्रेयांशनाथजी–	मकर,	श्रवण,	गेंडेका
वासुपूज्यजी–	कुभ,	शतभिषा,	पाडेका–भेंशेका.
विमलनाथजी–	मीन,	उत्तराभाद्रपद,	सूअरका
अनतनाथजी–	मीन,	रेवती,	बाजपक्षीका
धर्मनाथजी–	कर्क,	पुष्य,	वज्रका
शातिनाथजी–	मेष,	आश्विनी,	हरिणका.
कुंथुनाथजी–	वृष,	कृत्तिका,	बकरेका
अरनाथजी–	मीन,	रेवती,	नदावर्त्तका.
मल्लिनाथजी–	मेष,	अश्विनी,	कलशका.
मुनिसुव्रतस्वामीजी–	मकर,	श्रवण,	कछुवेका.
नमिनाथजी–	मेष,	आश्विनी,	कमलका
नेमिनाथजी–	मेष,	विशाखा,	शखका.
पार्श्वनाथजी–	तुला,	विशाखा,	सर्पका
महावीर स्वामीजी–	कन्या,	उत्तराफाल्गुनी,	सिंहका.

चोवीसों भगवतजीकी राशी मिलतीका पत्र १ विज्यानद सूरिजीके पास देखाथा उसमें नीचे लिखी हुइ राशिवालोंकों फलाने फलाने भगवतजीके शासनदेव अनुकूलता देवें असा कहाथा :–

मेषराशिकों १–३–४–५–७–९–१०–११–१२–१६–१९–२०–२१–२३

वृषराशिवालेकों २–५–६–७–८–११–१२–१३–१४–१७–१८–२०–२२–२४

मिथुनराशिवालेकों १–३–४–५–६–७–९–१०–१२–१३–१४–१६–१८–१९–२०–२१–२२–२३–२४

कर्कराशिवालेकों १–२–६–७–८–९–१०–११–१२–१३–१४–१५ १६–१७–१८–१९–२०–२१–२२–२३–२४.

सिंहराशिवालेकों १–२–३–४–५–७–८–९–१०–११–१२–१३–१४–१६–१७–१८–१९–२१–२३

कन्याराशिवालेकों १–२–३–४–६–८–९–१०–११-१२–१३-१४ १५–१७–१८–२०–२२–२४.

तोलाराशिवालेकों १-२-३-४-५-७-९-१०-११-१२-१५-१६-१७-१९ २०-२१-२३.

वृश्चिकराशिवालेकों २-५-६-८-११-१२-१३-१४-१५-१६-१७-१८–१९-२०-२१-२२-२४.

धनराशिवालेकों–१–३-४–५–६–७-८-९-१०-१२-१३-१४–१५-१६ १८-१९-२१-२२-२३-२४.

मकरराशिवालेकों–२-३-४-५-६-८-११-१३-१४-१५-१६-१७-१८-१९ २०-२१-२२-२३-२४.

कुंभराशिवालेकों–१-२-३-४-५-६-७-८-९-१०-१२-१५-१६-१७-१९ -२३-२४.

मीनराशिवालेकों–१-२-३-४-५-६-७-८-९-१०-११-१३-१४-१७-१८ २०-२१-२२-२३-२४.

इस मुजब उन पत्रमें था सो लिख दाखिल किया है. दूसरी तरहसेंभी है मगर वो अवर शास्त्रोंसें निर्णय करना.

इस मुजब प्रतिष्ठा दीक्षामें मुहूर्त्त देखकर काम करनेसें कल्याण होता है. मेरे देखनेमें आया वैसा लिखा है. विशेष देखना हो तो जैनके योतिष ग्रंथ बहुतसे हैं उसमें देख लेना.

१८८ प्रश्नः—श्रावक रात्रिमें सोनेके वक्त क्या करणी करै ?

उत्तरः—श्रावक रात्रिमें सोनेके वक्त धर्मसंग्रहके लेख मुताबिक विधिसें करणी करै याने–प्रथम देवस्मरण करना सो इस तरहः—

नमो वीयरागणं, सव्वन्नुणं;

तिलुयपूइयाण, महाद्दिय वत्थुवाइण.

अर्थ —सब वस्तुके ज्ञाता, तीनु लोकको पूजनीक, और यथास्थित वस्तुके प्ररुपक ऐसे वीतराग प्रभुजीको मैं नमस्कार करता हु

गुरुका स्मरण इस मुजब है:—

धन्यास्ते ग्राम नगर जनपदादयो येषु मदीय धर्माचार्यविहरतीत्यादि चैत्यवदनादिना वा नमस्करण स्मृति.

अर्थ —उन ग्राम-नगर-देश वगैरःको धन्य है कि जहा मेरे धर्माचार्य विचरेते हैं इत्यादि कहकर चैत्यवदन करै या नमस्कारसें [नौकारसें] स्मरण करै

चार शरण करना सो इस मुजब है —

क्षीणरागादिदोषौघा सर्वज्ञा विश्वपूजिता
यथार्थवादिनोर्हत, शरण्या शरण मम १

अर्थ —रागादि दोष समूहको जिन्होंने क्षीण किये हैं, समस्त वस्तुके ज्ञाता, विश्वसें पूजित, यथार्थवादी और शरण करनेके योग्य ऐसे अरिहत भगवानजीका मुझे शरण हो

ध्यानाग्निदग्धकर्माणि सर्वज्ञा सर्वदर्शिन
अनत सुख वीर्यधा सिद्धाश्च शरण मम २

अर्थ —ध्यानरूपी अग्निसें करकें कर्मोंको जिन्होंने जला दिये है, जो सब वस्तुके ज्ञाता है, सब वस्तुको देखनेवाले है, और अनत सुख, अनत वीर्य-पराक्रम युक्त ऐसे सिद्ध भगवानजीका मुझको शरण हो

ज्ञानदर्शन चारित्र-युता स्वपर तारका
जगत्पूज्या साधवश्च, भवतु शरण मम ३

अर्थ —ज्ञान, दर्शन, चारित्रसें युक्त आपको ओर दूसराको तिरानेवाले, और तीनु जगत्को पूजनीय ऐसे साधुमहाराजका मुझे शरण हो

ससार-दुखसहर्त्ता, कर्त्ता मोक्षसुखस्य च,
जिनप्रणीतधर्मश्च, सन्तु शरण मम ४

अर्थः—संसाररूप दुःखका नाश करनेहारा, और मोक्ष सुखको देने-हारा-करनेहारा ऐसा जिनेश्वरजी प्रणीत धर्मका मुझकों सदा शरण हो.

इस तरह अरिहंतजी, सिद्धजी, साधुजी और धर्मका शरण करकें पीछे नीचे मुजब चिंतन करेः—

चउरंगो जिणधम्मो, न कओ चउरंग सरणमवि न कयं;
चउरंग भवच्छेओ, न कओ हा हारिओ धम्मोति. ५

अर्थः—दान-शील-तप-भाव रूप चार अंगवाला धर्म मैंनें न किया! चार शरणभी न किये! और चार गतिरूप भवकाभी छेदन न किया!! हा! अति खेदका मुकाम है कि मै धर्म हार गया!!!

अब दुष्कृतकी गर्हा सो नीचे मुजबः—

जं मण वय काएहिं, कयकारी अणुमईहिं आयरियं;
धम्मविरुद्धमसुद्धं, सव्वं गरिहामि तं पावं. ६

अर्थः—मन वचन कायाके योगसें जो कोइ धर्मविरुद्ध याने प्रभुजीकी आज्ञा वहारका कृत्य किया हो, करवाया हो या अनुमोदन दिया हो वो सब पापकीमें गर्हा करताहुं.

सुकृत्यका अनुमोदन इस तरह करनाः—

अहवा सव्वंचिय वीयराय वयणाणुसारि जं सुकयं;
कालत्तएवि तिविहं, अणुमोए सो तयं सव्वं. ७

अर्थः—अथवा वीतराग वचनानुसारसें तीनु कालमें जो जो सब सु-कृत्य किया सो मन वचन कायासें करकें अनुमोदता हुं.

अब सब जीवोंको क्षमापन करना सो इस मुजबः—

खामेमि सव्व जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे;
मित्तिमें सव्व भूएसु, वेरं मज्झं न केणइ. ८

अर्थः—में सब जीवोंकों क्षमापन करता हुं. याने कुल जीवोंके पाससें में माफी मंगता हुं-सब जीव मेरेपर क्षमा किजीयो. मेरे सब जीवोंके साथ मैत्रिभाव है, नहीं के किसीके साथ वैरभाव है?

इस तरह कर लिये वाद चार आहारका त्याग न हो तो गंठसी सहित

पचख्खाण कर, सर्व व्रत संक्षेपरूप बारह व्रत अंगीकार करके देशावगाशिकका पचख्खाण कर—तोभी गठसी तरकी मर्यादा रखे

और शेष पापस्थान वर्जनेके लिये इस मुजब कहे—

तहा कोहच माणच, माया लोह तहेवय,
पिज्ज दोष च वज्जेमि, अभ्भख्खाण तहेवय ९
अरईरइ पेसून्न, परपरिवाय तहेवय;
मायामोस च मिच्छत्त, पावठाणाणि वज्जिमोति १०

अर्थ.—वैसेंही क्रोध मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कल्ह, अभ्याख्यान, पशून्य, रतिअरति, परपरिवाद, मायामृषावाद और मिथ्यात्वशल्य इन पापस्थानोंकों मै दूर करता हु

पापस्थानोंकों इस तरह दूर कर पीछे वोशिरानेके लिये इस मुजब गाथा कहेवै —

जइमेहुज्जपमाओ, इमस्स देहस्स इमाइ रयणीये,
आहार मुवहिदेह, सव्व तिविहेण वोसरिय ११

अर्थ —जो इस रात्रिके अदर मेरा मरण हो जाय तो चार प्रकारके आहार, धन, धान्य, घर, राच रचीला और कुटुंब तथा शरीर इन सबकों मन वचन कायासें करकें वोशिराता हु

इस मुजब कहकर नमस्कारपूर्वक तीन गाथा कहनेका कहा है, मगर कौनसी गाथा ? उसका नाम नहीं, तोभी अनुमानसें नीचेकी गाथायें होगी ऐसा संभव है.—

एगोह नत्थि मे कोइ, नाहमन्नस्स कस्सइ,
एव अदीण मणसो, अप्पाण मणुसासइ १२
एगोमे सासओ अप्पा, नाणदसण सजुओ,
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे सयोग लख्खणा १३
सजोग मूला जीवेण, पत्ता दुख्खपरपरा,
तम्हा सजोग सबंध, सव्वे तिविहेण वोसरिय १४

अर्थ —मै अकेलाही हु, मेरा कोइ नहीं और मैंभी किसीका नहीं

इस मुजब अदीन मनसें आत्माकों शिखामन देवे. ज्ञान दर्शनसें युक्त मेरा आत्मा शाश्वत है, बाकीके तन धन कुटुंबादि सब बाह्यभाव संयोगरूप लक्षणवाले हैं. संयोगरूप मूलसें जीव दुःखकी परंपराकों पाया हैं; इसी कारणके लिये सर्व संयोग संबंधकों मन वचन कायाके योगसें वोशिराता हुं.

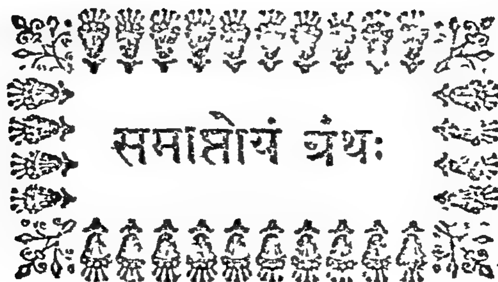
इस मुजब चिंतन करकें स्त्री किंवा पुरुषनें जो शीलपालन किये हैं उन्होंके चरित्र चिंतन कर ध्यानकों शांत कर, पीछे नौकार मंत्र स्मरण करता हुवा सो जावे, वोभी स्त्रीके पास नहीं—अलग सो जावे.

यह नियम गंठसी किंवा मुट्ठसी करते है विसी तरह एक नौकार गिनकर पारना वहांतक अभिग्रह है. यह विधि बहुत अच्छी लगती है. मरण होवे तो आराधक हो जाय; वास्ते हरहम्मेशाः करने योग्य है. और मंदगीके वक्त तो अवश्य करकें करने योग्य है.

(दोहा.)

परमदेव परमातमा, बुद्धि आतमगुरुराय;
एह परमपद सेवतां, अनुपानंद थवाय.

अस्तु !





मतीपावत श्री मुनिसुव्रतस्वामिने नम

अढारदूषणनिवारक.

१ प्रश्न —अपना यह शरीर मालूम होता है उसमें जीव है ऐसा कितनेक सज्जन कहते हैं और कितनेक कहते हैं कि जीव नहीं है, तो उसमें सत्य क्या है?

उत्तर —जितने धर्म आस्तिकमति हैं वे चेतन शरीरमें जीव और जड जो शरीररूप अजीव ऐसें दो मानते ह जो नास्तिक मति हैं वे अकेला शरीरही मानते हैं, शरीर विनाश हो गया कि पीछे कुछ नहीं और पाप पुन्यका फलभी भुक्तनेका नहीं ऐसा मानते ह

२ प्रश्न.—इन दोनु पक्षमेंसें तुम कौनसा पक्ष स्वीकार करते हो?

उत्तर —हम पूर्ण प्रतीतिसें जीव और अजीव इन दोनुका मानते हैं दोनु वस्तुएं है उसका अच्छी तरह अनुभव हो सकता है

३ प्रश्न —जीव है ऐसी किस प्रकारसें प्रतीति होती है?

उत्तर —इस शरीरमें जीव हो वहा तक हिलना, चलना, बोलना, शोचना, हिताहित समझना, और सुख दु ख जानना इत्यादि बनता है और जब जीवरहित शरीर होता है, तब यह समस्त क्रिया नष्ट हो जाती है, उसमें पूर्ण प्रतीत होती है कि जानने-समझनेकी शक्तिवाला सो जीवही है, और शरीर अजीव है उसीसें जीव बिगर अकेले शरीरसें कुछ नहा बन सकता है; वास्ते जीव पदार्थ है इसमें कुछ सदेह नहीं है

४ प्रश्न—नास्तिकमति यों कहते है कि पचभूतके सयोगसे समझने आदिका शक्ति उत्पन्न होती है, तो उसका क्या समझना?

उत्तर —पचभूतोंमें पृथक् पृथक् ऐसी शक्ति है ही नहीं, तो पीछे इकट्ठे होनेसें

किसतरह वैसी शक्ति होवै? कदाचित् उत्पन्न होनेका स्वभाव मान लेवे तो सब जीवोंकी समान शक्ति होनी चाहियें, वो मालूम होती नहीं. ज्ञानशक्ति तमाम जीवोंमें भिन्न भिन्न मालूम होती है वो न होनी चाहियें. सुख दुःखभी भिन्न भिन्न देखनेमें आते हैं वोभी न होने चाहियें और जब अलग अलग मालूम होता है तब उसका कुछभी कारण होनाही चाहियें!

५ प्रश्नः—जो ज्ञानशक्ति कम जियादा देखनेमें आती है वो तो उद्यमकी न्यूनतासें मालूम होती है. जो ज्ञानका उद्यम करता हैं उसकों ज्ञान होवै और न करें उसकों न होवै वो क्या?

उत्तरः—दो मनुष्य साथ साथ बैठकर समान वक्त तक उद्यम करते हैं; परंतु समान नहीं पढ सकते हैं. कितनेक पढते हैं तो अर्थ नहीं समझ सकते हैं और कितनेक समझकर उसी मुजब चलते हैं उसी मुजब दूसरा मनुष्य नही चल सकता है; वास्ते अकेले उद्यमसें ज्ञान नहीं आता है.

६ प्रश्नः--उद्यम विगर ज्ञान दूसरे किस उपायसें आ सकता है?

उत्तरः—ज्ञानशक्ति जीवकी है वो आच्छादित हो गइ है, उसमें जिनके जिनके जितने जितने आवरण खुल जाते हैं उस मुजब उन मनुष्यकों ज्ञान होता है.

७ प्रश्नः—तब क्या उद्यमकी जरूरत नहीं है? अकेली आत्मशक्तिसेंही ज्ञान होता है और हिताहित जान सकता है?

उत्तरः—जहांतक आत्माकी जितनी शक्ति है उतनी प्रकट नहीं हुइ वहांतक आत्मा और शरीर इन दोनुके मिलापसें ज्ञान होता है. आत्माका ज्ञान और आत्माकी शक्ति कर्मके योगसें आच्छादित गइ है और वो ढकी हुइ है वहां तक इंद्रियोंके संयोगसें ज्ञान होता हैं; जैसें कि अपन आंखोंसें देखते हैं वही आंख खुली हो और जीव चला गया तो वो आंखोंसें कुछभी मालूम नहीं हो सकता है. जीव शरीरमें है; मगर आंखें मुंद देवें तो कोइ पदार्थ नहीं देख सकते हैं. आंखें खुली हैं तोभी आप खुद दूसरे उपयोगमें लुब्ध हुवा है तो और पदार्थ नहीं देख सकतां हैं उससें खुल्ला—साफ मालूम हो सकता है कि उपयोग करनेवाला कोइ अंदर है सही! वो कौन होगा? वो जीव हैं! इसी तरह कानसें सुन्नेके बारेमेंभी यदि उन बातमें होवैं तो वो सुनकर समझ सकते हैं; लेकिन जो दूसरे काममें ध्यान लग रहा हो तो कोइ दिल चाहै सो बोले तो वो सुन्नेमें नहीं आता हैं. इसी तरह कानोंमें कोइ रुइका ढकना दे देवै या रोग

हुवा हो तो अदर जीव है तथापि नहीं सुन सकते है देखियें नाकके विषयभी कोइ कहेगा कि यह गध काहेकी आती है? तव वहा बैठा हुवा मनुष्य उपयोग देकर गधका तपास करेगा तो कह सकेगा कि घीकी गध आती है अब शोचो कि नासिका तो खुली है, परतु उपयोग न था इससें गधकी खबर न पडी तो सबूत होता है कि इस शरीरके अदर गध लेनेवाला कोइ अलग है रसेन्द्री जो जीभ है सो मनुष्यका ध्यान भोजन करनेकों बैठा है तोभी अन्य जगे लगा हुवा है तो उसकों स्वादका ज्ञान नहीं होता है स्वादका जाननेवाला कोइ अन्य नहीं किंतु शरीरके अदर रहा सो जीवही है. स्पर्शेंद्रि जो शरीर उसकों स्पर्शज्ञान स्पर्श होनेसें होता है, परतु शरीरकों वस्तुका स्पर्श होवे उस वक्त वो कोइ दूसरे ध्यानमें होवे तो उसकी खबर नहीं पडती फिर शर्दिके वक्तमें शरीरमें बधीरता हो गइ होवे तो अदर जीव है तोभी स्पर्शज्ञान नहीं होता है इन सबका तपास करनेसें शरीर और जीव ये दोनु मिलकर सब काम करते हैं उसमेंभी एक दूसरेमें विषय ग्रहण करनेका तफावत है सब समान विषय ग्रहण नहीं कर सकते हैं उसका कारण–किसीकों कर्मावरण विशेष है तो हरएक विषय थोडासा कर सकता है जिनकों ये पाचों इद्रियोंके आवरण खुल गये हैं वे विशेष इद्रियोंसें जान सकते है वास्ते जो जो ज्ञान होता है वो कर्मके क्षयोपशमसें होता है, अकेले उद्यमसें नहीं होता है थोडा उद्यमकरै और ज्ञान ज्यादे होवै और विशेष उद्यम करै और ज्ञान कमती होवै, वास्ते जीव और अजीव इन दोनुकों कबूल रखनेसें सब बात समझ लेनेमें सुगमता पडेगी।

८ प्रश्न—हम जीव मान लेवे, मगर फिर तुम जीवकों कर्मसयोग कहते हो वो क्या है? कौनसी वस्तु है?

उत्तरः—कर्म है वो जडरूप पदार्थ है उसका इन जीवके साथ अनादिका सबध है, यह अतिशय ज्ञानी पुरुषके वचनसें साबित होता है अनुभवसें शोचनेसेंभी यदि पहिले निरावरण हो तो कर्म क्यों लगे? कदाचित् लगे हुवे मान लेवे तो वो दिवसकी आदि हुइ तब उसकी पेस्तरकी स्थितिमें निर्मल था तो वो कबसें? था वोभी अनादि करना पडेगा कितनेक आदि कहते हैं तो उसके पूर्वकालमें ससार–जगत् थाही नहीं यह कैसें सभवित हो सके इस जगत्की स्थिति फेरफार होवे किंतु कुछ चीज नहीं हो सके वो कहासें आ सके, वास्ते जैन मानेवाले अनादिका जीव कर्म-

संयुक्त है ऐसा मानते हैं वो बात निर्विवादसें सिद्ध होती है वे कर्म न होवें तो जीव सुखदुःख काहेसे पावे? सुखदुःख कितना भुक्तना? कितने कालतक जीना? और कितना कुटुंब मिलना? ये सब कर्मसंयोगसेंही बनता है.

९ प्रश्नः—ये तमाम उद्यमसें बनता है उसमें कर्म क्या करता है?

उत्तरः—अरे इच्छाकारी! सुखदुःख यदि उद्यमसेंही होता होवे तो मजदूर सारा दिनभर मजदूरी करता है तब बिचारेकों चार आने मिलते हैं, और एक मनुष्यका पॉव जमीनमें घुस जाय और वहांसे निधान प्राप्त होकर धनवान बन जाता है, जैसें कि शयाजीराव गायकवाड सरकार कैसी स्थितिमें थे और एकदम राज्यगादी पर बिराजित हुवे ये क्या उद्यम करनेकों पधारे थे? पूर्वजन्ममें पुन्य उपार्जन किया था तो राज्य मिला. एकही दवा दो मनुष्य खाते-पीते हैं, एककों तन्दुरस्ती मिलै और एककों नादुरस्तीही रहवे और दवा देनेवाला डॉकटर-वैद्यभी एकही होवे; तथापि न मिट सके वो कर्मका तफावत है उसीसें ऐसा बनता है. एक बुद्धिमान् अच्छा विद्वान् अनआलसु उद्यम करनेमें तत्पर रहता है; परंतु व्यौपारमें बापदादेके कमाये हुवे पैसे गुमा बैठता है, तो यदि उद्यमहीसें बनता होता तो गुमाताही क्यों! पूर्वभवोंमें किये हुवे पाप उदय आये उससें उसकों दुःख भुक्तनाही चाहियें—उसी सबबसें उसके पैसे चले जाते है ये कर्मकाही फल है. कोइ पुरुष एक दो औरतोंसें सादी कर लेवें और उसकों एकभी संतान नहीं होता है. भोगादिकका उद्यम करता है; मगर संतान नहीं प्राप्त होता. यों करनेसें कभी संतान होभी जाय तो वो जीता नहीं तो ये क्या है? पूर्वकर्मके संयोग हैं! एक मनुष्य बडा बलवान् है और अच्छा खानपान करता है—शरीरकी संभालभी अच्छी तरहसे रखता है, ऐसा मनुष्य महामारी आदिके उपद्रव विगर फक्त ज्वारी आनेसेंही मर जाता है, फिर महामारीकी बिमारीवाली हवा सारे शहरमें चल रही है; तौभी वो हवा सबके बदनमें दाखिल नहीं हो सकती. दो मनुष्य एकही घरमें साथ साथ रहनेवाले, फिरनेवाले, खानेवाले और अच्छी हिफाजत रखनेवाले हैं; तथापि एकके शरीरमें महामारी घुस जाती है और उससें मर जाता है, और दूसरा जीता रहता है तो ये पूर्वके कर्मका प्रभाव है. यदि केवल उद्यमसेंही बन सके ऐसा होता तो वे दो मनुष्य समान उद्यमी वो मरने न चाहियें; वास्ते पूर्वमें पाप कर्म बांधे हुवे थे उसका फल है. इस परसें समझ

लिजीयें कि-केवल उद्यम व्यर्थ है, तब कुछ हेतु होना चाहियें-वा हेतु पूर्वके किये हुवे कर्म जब पूर्वमें कर्म रह गये तब पूर्वजन्मभी रह गया पिछला भव रह गया तो जीवभी रहा जीव शब्द अजीव शब्दका प्रतिपक्षी है, तो दुनियाके भीतर अजीव शब्द जीव होनेसेंही पडा है, वास्ते अच्छी तरहस सिद्ध होता हे कि जीव हैं इस जगत्में नास्तिक, जीव नहीं माननेवाले थोडी सख्यावाले हैं, वहुतसे ओर धर्मवाले ऐसा कथन करते हैं कि-' जेसा करेंगे वैसा पावेंगे " तब करनेवाला जीवही होना चाहियें, इस्सेंभी सिद्ध होता ह कि जीव है जीव शब्दका अर्थभी एही है वो जीव प्राणधारणे धातुसें सिद्ध होता है, वास्ते जीवे सो जीव शरीर फेरफार हुवे करते हैं, मगर जीव तो वोका वोही है जेसे कर्मवगा किये हो वैसा पुन शरीर धारण करता है वही जीव है और जो जो सुखदु ख उत्पन्न होते हैं वा जैसे जैसे पूर्वभवमें पाप पुन्य किये हैं वैसे जीव भुक्तता हे और तुमारे मत मुजब जीव न हो और शरीरही अकेला हो, तब ये ऊपर तफावत वतलाया गया है वो होनाही न चाहियें, और वैसा होवै तो तुमारा नास्तिकका समझना भूलमेंभरा हुवाही है ये नास्तिक मतका निकालनेवाला पापी होना चाहिये, क्यों कि इस समय इग्लेंडमें कितनेक इग्रेज ऐसा माननेवाले मदानमें आये हे कि पाप पुन्य हेही नहीं शरीरकी मावजत रखनेस दुरुस्त रहता हे और हिफाजतके सिवा विगडता हैं ऐसा शोच करके गुन्हा कियेकी शिक्षाकोंही नही मानते हैं, और नही माननेसें ऐसेही मनुष्य खुन वहुत करते हे तो जब अभी नास्तिक पाप नही मानेंगे तो वुरे काम करनेकी धास्तीभी न रहेगी और बुरे काम किये करेंगे उसपरसें मालुम हो सकता है कि नास्तिकमत स्थापक पापीही होना चाहियें वैसेकी सगतिमें रहे वोभी किसी जातिके पापकर्मसें न डरेगा इस समय जितने राज्य चल रहे हैं उतने कुछ राज्योंमें गुन्हाकी शिक्षा ह, तो जैसी शिक्षा सब आलम कबूल करती ह, उसी तरहसें हरएक पाप करे उसकी शिक्षा होनीही चाहियें इस दुनियामें तमाम लोग मानते हैं कि किसी जीवको दु ख न हो वो काम करना और जब नास्तिक होवे तब तो किसीको दु ख देनेकी फिकरभी नही रहती उसस दुनियाके विचारसें और न्यायसें करकेभी ये अयोग्य होता ह ये तमाम तरफसे तपासनेसें जीव मान लेना सुखदु ख कर्मके सयोगसे वनते हैं ऐसा माननेस सब दूषण दूर हो जाते हैं ये कर्मका स्वरूप मेरी की हुइ साथ सामिल है उसी प्रश्नोत्तररत्नचितामणिमें बहुत विस्तारसें है सो वहा देख लेना

१० प्रश्नः—तुमारे कथन मुजब कर्मके संयोगसें सब बनता है, तब जीव अकेला कुछ न कर सकता है ?

उत्तरः—जीवकी शक्ति तो अनंत है; मगर पापकर्मके वशिभूत है. वहांतक अकेली आत्माकी शक्ति नहीं चला सकता है—जेसें कोइ बडा राजा हो और कैदमें गिर्फतार हो जाता है तब उसका कुछ जोर नहीं चलसकता, वैसें कर्मके वशमें जीव पडा है वहांतक आत्माकी प्रवृत्ति आत्मा जडसंगति विगर नहीं कर सकता है.

११ प्रश्नः—कर्मके संबंधसें प्रवृत्ति करता है तब जीवकी शक्ति तो न रही, तब जीव पदार्थ किसलिये मानना चाहियें ?

उत्तरः—जीव विगर जड तो कुछभी नहीं कर सकता; क्यों कि जिसमें जड स्वभाव है—चेतन स्वभाव नहीं उससें वो क्या कर सके ? जितनी जितनी विचारशक्ति है वो चेतनकी है, जडमें वो स्वभावही नहीं. पंचभूत जो तुम मानते हो वैभी जड हैं, उन्हमेंभी विचारशक्ति नहीं. पंचभूत खानेकी रसवतिमेंभी सामिल हैं, मगर उन्हमें कुछ जीवनशक्ति उत्पन्न नहीं होती; वास्ते पाँचोंकी वातोंमेंभी वहुतसे प्रश्न हैं वो प्रकरण रत्नाकर भाग दूसरेके पत्र १७७ में नास्तिकका संवाद है वहांसें देख लेना.

१२ प्रश्नः—तुम कहते हो कि जडमें चेतनशक्ति नहीं, तब तुमभी बुद्धि वढानेके लिये सरस्वती चूर्न खिलाते हो. फिर शास्त्रमेंभी वज्रऋषभनाराचसंघयण होवै तो क्षपकश्रेणी मांड सकै—फिर "प्रश्नोत्तर रत्न चिंतामणि" मेंभी यात्राके फलमें सार पुद्‌गल स्पर्शनेसें अच्छी बुद्धि होवै ऐसा वतलाया है वो जडकी शक्तिसें क्यौं वन सकता है ?

उत्तरः—जड है उसकी शक्ति जहांतक कर्म सहित जीव है और कर्मसें करकें आत्माका स्वभाव ढका गया है, वो आवरण करनेवाले पुद्‌गल है, वो पुद्‌गल ऐसे मिले है कि आत्माकी ज्ञानशक्ति चलनेही नहीं देते. तो सरस्वतीचूर्ण प्रमुखके सार पुद्‌गल हैं, वो जैसे औषध खाते हैं तो शरीर अंदरके रोगके पुद्‌गलकों निकाल देते है, वैसें शरीरमें वायु प्रमुखसें इंद्रियोंकी शक्तिकों हरकत हो वो दूर होती है; उससें चेतनशक्ति चलनेमें जो अडचण थीं वो दूर हुइ कि जो बुद्धिथी वो चल सकती है. जैसें आंखपर पाटा वांध दिया गया हो और पीछा हठा देवैं तो आंखोंसें देख सकते हैं. पाटा दूर हठनेसें कुछ आंखोंमें ताकत नहीं आती है; मगर हरकत डालनेवाली चीज

दूर हो गइ–किसी तरह सरस्वती चूर्ण करता है संघयणका बलभी जैसें कानमें रोग हुआ हो तो आत्मा है तथापि सुना नहीं जाता, क्यों कि कानका भाग बिगडा हुवा है वो सुधर जाय तो सुना जावें, वैसें संघयण बलवान हो तो आत्माकों अपना काम करनेमें हरकत करनेवालेकी हरकत नही रहीहै, उससे अपनी ज्ञानशक्ति चल सकती हैं जैसे निर्बल मनुष्यकों लकडीका आधार हो तो चलनेमें हरकत नही होती, किसी तरह आत्मा कर्मके आवरण सहित है वहातक निर्बल है, उससें आधाररूप संघयणका बल चाहियें सर्वथा कर्मसें रहित होवें तब टहरहित होता है और तभी अपनी शक्ति जितनी है उतनी चल सकती है, उसमें कुछ पुद्गलके आधारकी जरूरत नहीं. जैसें निरोगी आखवालेकों चस्मेकी जरूरत नहीं, मगर आखका तेज घट गया हो उसकों बेशक चस्मे चाहियें, तैसें कर्म आवरणरूप रोग है वहा तक जो जो ज्ञान होता है वो इंद्रियोंके बलसें होता है ओर वहा तक अच्छे पुद्गलकी जरूरत पडती है जैसें कि केवलज्ञान प्रकट होता है तब कोइभी इंद्रिकी जरूरत नहीं पडती है, अपनी आत्मशक्तिसेंही ज्ञान होता है, वास्ते आत्मशक्तिमें कुछभी जडकी जरूरत नहीं पडती ज्यों ज्यों जडसंगति दूर होती जाय त्यों त्यों आत्मज्ञान प्रकट होता है, और संसारमें भटकनेका मिट जाताहै आत्माके उलटे विचार होते है वो जडकी संगतिके फल हैं, वो जडकी संगति छुट जायगी और आत्माकी सन्मुख होगा तबही जो जो सत्य विचार हैं वो मालम होवेंगे वहातक मालूम न होवेंगे, वास्ते जडकी संगति कमती करो कि सबकुछ अच्छा होवें

१३ प्रश्न —जडकी संगति कमती करनेमें क्या करना ?

उत्तर —सद्गुरुका समागम, और निष्पक्षी, निर्विषयी न्यायाभावी पुरुषोंकी सोबत करनेसें मार्ग हाथ लगेगा

१४ प्रश्न —तुमारे कहने मुजब सब कर्मसें बनता है तो ज्यो बननेका होगा त्यों बनेगाही सही, तो फिर उद्यम करनेकी क्या आवश्यकता है ? उद्यमकों तो तुमने बेस्तर निकमा गिन लिया है

उत्तर — हमारे जैनशासनमें तो हरकोइ कार्य होता है वो पाच कारण मिलनेसे होता है, और पाचों कारणोंमें उद्यमभी शामिल रक्खा गया है तुमने तो अकेले उद्यमसेंही काम पार होना मान लिया है सो हम नहीं मानते है क्योंकि प्रत्यक्ष देखते

हैं कि उद्यम बहुतही करते हैं; मगर पुन्यकी न्यूनता हो तो कुछ फल मिलता नहीं. पुनः अकेले उद्यमसें होवै तब उसकों अच्छी करणी करनेकी बुद्धि नाश होती है; क्यौं कि उसके दिलमें पूर्वपुन्यकी श्रद्धा नहीं कि पुन्य होवैगा, उससें पुन्य करनेका उद्यम नष्ट हो जाता है. और कितनेक भावीपर रहते हैं कि ज्यौं बननेका होगा त्यौं बनेगा, वोभी निरुद्यमी होते हैं, सोभी कामका नहीं. पांचों कारणोंके योग मिलनेसें ही कार्यकी सिद्धि होती है.

१९ प्रश्नः—(अ) पांच कारण किस तरह मानते हो ?

उत्तरः—पांच कारण सो–काल, स्वभाव, नियत, उद्यम और पूर्वकृत यह पांच कारण इकठे होते हैं तब हरएक कार्य होता है. काल सो इस वक्त पंचमकाल है तो पंचमकालमें कोइ जीव मुक्तिमें नहीं जा सकते. तीसरे चौथे आरेमें जीव मोक्ष पाते हैं. जैसें उष्ण ऋतुमेंही आमके पेडपें फल लगें, स्त्रीकी उम्मर चाहियें उतनी न होवे-तबतक गर्भ धारण न करै, वैसें हरएक कार्यमें कालकी सामग्री मिलनी चाहियें. कालकी सामग्री चौथे आरेके जीवोंकों मिलै; मगर उन जीवोंमें भव्य स्वभाव नहीं वहांतक वैभी मुक्ति नहीं पा सकते; क्यौं कि भव्य स्वभाव चाहियें. और तीसरे चौथे आरेमें बहुतसें भव्य जीव थे उससें स्वभाव कारण मिला; मगर उस जीवने समकित प्राप्त नहि किया जिंससें नियत कारण नहि मिला. तब कोइ कहेगा कि–'श्रेणिक महाराज और कृष्ण महाराज क्षायक समकित पाये थे उन्होंकों नियत कारण मिला था तोभी मोक्षमें क्यौं नहीं गये ?' उसका जबाब यही है कि ये तीन कारण मिले; परंतु मोक्षसाधनका उद्यम किया नहीं. जैसें आमके पेडपर आम लगनेकी मोसम है [आमकों वंध्यत्वपना नहीं] वो स्वभाव और मंजरी वगैरः आइ है ये तीन कारण मिले; तथापि उस आमका रक्षण न करै याने पानी वगैरः जो कुछ आमकों चाहियें वो सींचन न करै तो आम हाथ न आवेंगे, वैसें, समकित पाया; मगर ज्ञान दर्शन चारित्र प्रकट करनेका उद्यम न करै तो मुक्ति न मिले. विसी तरहसें श्रेणिकमहाराजाने संयमाराधन किया नहीं उससें तद्भव केवलज्ञानकी प्राप्ति न हुइ. अब जो उद्यमसेंही केवलज्ञान होवै तो स्थूलीभद्रजी प्रमुख मुनिमहाराजने तप संयमका बहुतसा उद्यम किया था; तदपि केवलज्ञान न पाये उसका कारण क्या ? पांचवा भवितव्यताका योग मिलना चाहियें. स्थूलीभद्रजीकों अभी कर्म भुक्तने बाकीमें थे उससें

मोक्षमें न जा सके कर्मकी स्थितियें जिन जिन मुनिकी परिपक्व होती है उन उन मुनिको उद्यम करनेसे केवलज्ञान हो सिद्धिसुख प्राप्त होता है और फिरभी होवेगा वास्ते पांचों कारण मिलनेसें मोक्षरूप कार्य होवेगा यह अधिकार प्रकरण रत्नाकर भाग पहिलेके पत्र १७६ में है वहासें देख लेना पुन विनयविजयजीने स्याद्वादका स्तवन बनाया है उसमेंभी विस्तारसे कथन किया है, वोभी वहासें देख लेना इन पांचों कारणोंमेंसें एक एक कारणकी मुख्यता लेकर भिन्न भिन्न मत प्रकट हुवे हैं, उसमेंसें आत्मार्थियाकों देख लेना कि इन पाचोंके मिलापसें जैसा कार्य होता है वैसा एक एक कारणसें नहीं हो सकता है कितनेक उद्यमकी महत्ता गिनकर उद्यम किया करते हैं, परतु इच्छित कार्य जब नहीं होता है तब चित्तमें विषाद होता है, मगर कर्मकी जो प्रतीति होवे तो उससें करनेका विचार करे कि–' व्योपार तो किया, किंतु पूर्वकृत पुण्यकी न्यूनता है उसीसें लाभ नहीं पाया अब विकल्प करके क्या करेगा ?" ऐसा सोच करकें समताभाव ल्यावे फिर कितनेक यु कहते हे कि भाविमे बननेवाला होगा वैसा बन रहेगा ' ऐसा विचार करकें उद्यम नहीं करते है, तो वैसे जीवभी प्रभुमार्ग-का लाभ न ले सकते है कारण कि प्रभुजीने कर्म दो प्रकारके कहे हैं याने उपक्रमी और निरुपक्रमी उनमेंसे जो निरुपक्रमी कर्म है उनमें तो उपक्रम लगनेकाही नहीं; परतु उपक्रमी कर्ममें उद्यमसें उपक्रम लगता हे और उससें कर्म नाश होते हैं, कारण कि क्षायकसमकित जिस वक्त पाते है उस वक्त एक कोडाकोडी सागरोपमें पल्यो-पमका असख्यातवा भाग कमी उतनी स्थिति सातों कर्मकी रहती है अब जो दूसरे भवका आयुप न बाधा होगा तो उसी भवमें मोक्ष पावेगा, तब आयुष्तो कोडपूर्वसें विशेष कोइभी मोक्षगामीका नहीं, तो ये कर्म कहा भुक्तेंगे अर्थात् न भुक्तेंगे ! ज्ञान दर्शन चारित्रके आराधनरूप उद्यमने ये कर्मकी स्थिति कपती कर थोडे वक्तमें भुक्त लेवेंगे, वास्ते वो सब उद्यमसें बनता है–इस लिये भाविक ऊपर भरोसा रख बैठ रहना सो अयोग्य है जो जो कार्य करना हो उसमें उद्यम तो करना, उसमें उद्यम करनेपरभी कार्य सिद्ध न हुवा तब शोचना कि–' इस कार्यमें अतराय कर्म जोर क-रता है, वो कारणकी न्यूनता हुइ उससें मेरा कार्यसिद्धिको न भेट सका. ' ऐसा शोच करकें समभावम रहना, उसस चित्त प्रसन्न रहेगा नये कर्म न बध [illegible] वास्ते जो जो कार्य करना हो उसमें पाचो कारणमसें जिम जिसकी [कारण-]

न्यूनता—कसर होवै वहांतक कार्य न हो सकैगा. ऐसा विचारकें न हुवा उस संबंधी संताप न करना. कोइ वक्त उद्यम किया; मगर खामीसें भराहुवा किया तो उस-संबंधी कार्य न होवैगा तो पुनः उद्यम करना. इस संबंधमें ऐसा समझना कि जिस जिस वक्त जो जो करने योग्य हो उस उस वक्त वो कार्य करना. इस मुजबके पांच कारणके योगसें कार्य होवै ऐसा जैनागमका फरमान है और वही हमारा मनोरथ पूर्ण करनेहारा है !

१५ प्रश्नः—(व) जैनागमकी मर्यादा मुझकोंभी अच्छी लगती है. इन पांच कारणोंके संयोगसें कार्य हो सके उसमें कुछ संदेह न रहता है; मगर तुमने जीवका स्वरूप बतलाया वो देखनेसें अनंत ज्ञानादि शक्ति कायम है तो वो किसतरह प्रकट करनी?

उत्तरः—अठारह दूषण जबतक जीवमें मोजूद है वहांतक जीवकी जो जो आत्मशक्ति है वो प्रकट नहीं हो सकती. वे अठारह दूषण ये है. दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, दुगंछा काम, अज्ञान, मिथ्यात्व, निद्रा, अव्रत, राग और द्वेष—ये १८ ओगुन दूर कर देवै तब आत्माकों गुन प्रकट हो सकै और जन्ममरनका परिभ्रमणभी मिट जाय.

१६ प्रश्नः—दानांतराय सो क्या ?

उत्तरः—दान याने देना सो—संसारमें पांच प्रकारका है याने अभयदान, सुपात्रदान, अनुकंपादान, कीर्तिदान और उचितदान—ये पांच दानके भेद हैं. उसका अंतराय होवै वहांतक जीव दान न दे सकता है.

सुपात्रदान सो—तीर्थंकरमहाराजजी, सामान्य केवलज्ञानीजी, आचार्यजी, उपाध्यायजी, साधुजी, उत्तम श्रावक, सम्यग्दृष्टि और मार्गानुसारी—ये तमाम सुपात्र हैं. ऐसे पुरुषोंका योग मिलै, आपके पास योगवाइ होवै, और ऐसे पुरुषोंकों देनेमें लाभभी जानता होवै; तोभी दानके अंतरायसें करकें न दे सकै और दानांतराय कर्मका क्षयोपशम हुवा होवै तो दे सकै. अभयदान सो—कोइ किसी जीवकों मार डालता होवै तो उस जीवकों म्होतसें बचाना, और उस जीवकों बचानेमें कुछ कष्टभी पडै तो उठा लेकरभी उसकों बचा लेवै फिर जिन पुरुषोंकों विशेष दानांतरायका क्षयोपशम हुवा होवै तो वै आपके खाने पीनेके वास्तेभी किसी जीवकी हिंसा न होने देते हैं—आप खुद कष्ट सहन करै अचित्त—जीवरहित वस्तु मिलै वही लेवै, न मिलै तोभी

जीवकी हिंसा होवे वैसी वस्तु न लेवे आपका मरन होवे वो कबूल कर ले, मगर किसी जीवकों दुःख होवे वैसा न करें वैसे पुरुष तो कोइभी कारणसें कोइभी जीवकों दुःख होवे वैसा करेंहि नहीं, सबब कि जिस तरह मुझकों पीडा होनेमें है दुःख होता है, उसी तरह दूसरे जीवकोंभी दुःख होवे, वास्ते किसीकोंभी दुःख होवे वो काम मेरे न करना. इस तरहसें चले सो अभयदान कहा जाय

अनुकंपा दान सो–कोइ जीव दुःखी हो और आपके पास वस्तु हो तो वो देकरकें उसकों सुखी करना पीछे थोडी योगवाइ हो तो थोडा देवे, और विशेष योगवाइ हो तो विशेष देवे. शरीरकी महेनतसें दुःख दूर हो जाता हो तो महेनत करकें उसका दुःख निवर्त्तन करे इसमें पात्रापात्रका विचार नहीं करना फकत दुःखी जीवका दुःख दूर करनेकी बुद्धि है पुनः जिनमें ज्ञानशक्ति है उनकों मुनासिब है कि अधर्मि जीवोंकों ज्ञानका बोध करना–वोभी अनुकंपादान है औषधादिक देकरकेंभी दूसरेकों सुखी करना–जिस प्रकारसें अन्यजीव सुख पावे वैसी बुद्धिसें करना वो अनुकंपादान कहा जावे. इसका अंतराय होवे तो ये दान सची योगवाइके वक्त न कर सके, और इस अंतरायका क्षयोपशम हुवा होवे तो ये दान दे सके ये तीन दान आत्माकों हितकर्त्ता हैं

चौथा कीर्तिदान सो–आपकी कीर्ति-शोभा होवे उस वास्ते देना, दूसरा शासनकी कीर्तिके वास्ते देना, याने जैनीलोग क्या दानेश्वरी हैं ! क्या उदारशील है ! धन्य है जैनधर्मकों ! ऐसें धर्मकी प्रशंसाके वास्ते देना सो एक सम्यक्त्वका प्रभाविक गुन है–वोभी अंतराय कर्मके आवरण दूर हट गये होवे तो बनता हैं

पांचवा उचितदान सो–संसारी कुटुंबादिककों ब्याजबी हो किसी तरहसें देना वोभी अंतराय होवे तो उचितता न संभाल सके इस प्रकार पांच दान हैं, उनमेंसें पिछले दो दानसें इस लोकमें यश कीर्ति होती है, नीति संभाली जाती है, माता-पितादि उपकारियोंके उपकारका बदला दिया जाता है और लक्ष्मीकाभी उपयोग होता है जो जन उचितमें नहीं समझता है सो पापका भोगी होता है पहिले तीन दान है सो आत्माके हितकारी हैं, वो जब दानांतराय हट गया होवे तबही गुणवंत जानकर देनेका विचार होवे, तब जितना जितना दानांतराय तूट गया हो उतना आत्मा विशुद्ध होवे

यहांपर कोइ शंका करेगा कि–'मुनिमहाराज आदि क्या दान देते हैं?' उसका उत्तर यही है कि–ज्ञानदान समान दूसरा कोइ सर्वोपरी दान हेंही नहीं. वास्ते मुनिमहाराज भव्यजीवोंकों ज्ञान पढाते हैं, ज्ञानोपदेश देते हैं उससें वे जीव न करने योग्य कार्य–अकार्यसें मुक्त हो जाते हैं और पापके काम नहीं करते हैं. इससें दुर्गतिके दुःख भुक्तने पडते नहीं और सद्गति–देवलोक वगैरःके सुखकी प्राप्ति होती है. तो वो सुखके देनेहारे वो गुरुमहाराज हैं तो किसीसें न दिया जाय वैसा ज्ञानदान दिया. कितनेक तीर्थंकरजीका उपदेश सुनकर संपूर्ण तीर्थंकरजीकी आज्ञा शिरपर चडाकर सर्वथा रागद्वेषसें मुक्त होते हैं. केवल अपने आत्मधर्ममेंही प्रवर्त्तते हैं उससें केवलज्ञान पाकर मुक्तिमें जा वहां सदैव स्थिरतासें रहते हैं. पुनः संसारमें आनेका नहीं, जन्म मरनका दुःख मिट जाता है, सब प्रकारके विकल्प दूर हो जाते हैं, पूर्ण आत्माके गुण प्रकट होते है और किसी प्रकारकी हरकत नहीं ऐसा–अव्याबाध सुख प्राप्त होता है. तो वो देनेवाले तीर्थंकरजीमहाराज हैं. वही दानांतराय क्षय होनेसें आत्मामें अनंत दानशक्ति प्रकट हुइ है उससें ज्ञानदान देकर जगतकों भव दुःखसें छुडाते हैं. जो और कोइ न कर शके वैसा अद्भुत ज्ञानदान है. पुनः गृहस्थावासमें थे तब हमेशां एक; वर्षभर तक एक क्रोड आठ लाख सुवर्ण म्होरोंका दान दिया वैसे दानेश्वरी जगतमें कोइ नहीं. वो दानांतरायके क्षयोपशमका फल है. फिर जब केवलज्ञान होता हे तब सर्वथा दानांतराय क्षय होता है उसके प्रभावसें ज्ञानदान है वो व्यवहार, निश्चयमें अपने आत्माके गुण ढका गयेथे और बहिरात्मदशा हुइ थी उतने अपने गुण अपने आत्मामें आये वो रुप दानगुण प्रकट हुवा हे और सदा काल अवस्थित हे और वे गुण सिद्ध भगवान होवे तब कायम रहते हैं. वे जीव अपनी आत्मसत्ताकों शोचनेपर वो वर्त्तना करनसें दानांतराय क्षय होवे.

१७ प्रश्नः—दानांतराय क्या करनेसें बंधा जाता है?

उत्तरः—पांच प्रकारमेंसें हरकोइ दान कोइभी करता होवे उसकों कहवे कि ये दान देना उस करतें पेटमें खाना वो अच्छा है वो छोडकर लोगोंकों देनेमें क्या फायदा है. या गुणवंत होवे उनकों निर्गुणी ठहराकर न देवे. फिर देता हो उसकों मना करै-निंदा करै–उसकों कहवे कि यह तो उडाउ है–कुछ पैसा खर्चनेका विचार नहीं करता है, या आप शक्तिवान होवे और दान देनेवालेका महीमा होवे वो देखकर

उसकेपर गुस्सा ल्यावे, आपसे कुछ बन सके तो उसका नुकसान करै-हीलना करै अगर दान देवे तो अहंकार ल्यावे कि मेरे समान जगत्भरमें कोइ दान देनेवाला हैही नहीं मैंने धर्मके कार्य कोइ न करे वैसे किये हैं. इत्यादि अनेक प्रकारके कारणोंसे जीव दानांतराय कर्म बांधता है जो आत्मार्थी हैं वो तो शोचते हैं कि भगवान्जीने संवत्सरी दान दिया था और मैंने क्या दिया ? मेरे आत्माका तो दानगुण ढका गया है वो प्रकट करना चाहियें फकत पुन्योदयमें धन मिला है, वोभी जितना मेरे भोगके लिये व्यय करता हु उतना दानमें व्यय नहीं करता हु तो में क्या अहंकार ल्याउ ? पेस्तरके महान् पुरुष मूलदेव जैसे कि जिन्हने तीन दिनसें अन्न नहीं पायाथा और चौथे रोज जब उरद खानेकों मिले तोभी दिलमें आया कि कोइ सुपात्र मुनि मिल जावे तो मैं उन्होंकों देकर पीछे खाउ ऐसा शोचता है दरम्यान भाग्यशालीकों मासखमणके पारणेवाले मुनि मिल गये कि तुरत वे उरद दे दिये वो दानगुणके महिमासें आकाशमें देववाणी हुइ कि-'सातवे रोज तुझकों राज्य मिलेगा.' ऐसा कहे बाद दानकी प्रशंसा की देववाणी मुजब उनकों राज्यभी मिला तो है चेतन ! तूंने तो वस्तु मौजूद होनेपरभी वैसा दान न दिया तो क्या गर्व करता है पेस्तरके वैसे गुणवंत पुरुष अपना तन धन दोनु गुरुजीकों अर्पन करतेथें, वोभी तूंने नहीं किया तो तु क्या अहंकार करता है देवभक्तिमें न्यूनता न आवे उस वास्ते रावणने अपने हाथकी नस निकालकर वीनकों दुरुस्त करके गानतान जारीही रख्खा था, तो वैसी तूने भगवंतजीकी भक्ति की नहीं और न धनभी व्यय किया है या शरीरभी काममें न लिया है तो तु किस प्रकारका अहंकार ल्याता है ? पूर्वकालमें केइ पुरुषोंने अभयदानके लिये कोइ जीव मरता होवे तो बचानेके वास्ते अपनी दौलत लूटादि है सो तो तूने लूटादी नहीं तो काहेका अहंकार करता है ? शांतिनाथजीनें तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया उस जीव-मेघरथराजानें एक कबूतरकों बचानेके लिये अपने शरीरका मांस काट काट कर देना शुरु किया, देखिये दानेश्वरीपना ! तूने वैसा तो अभयदान दिया नहीं कि अहंकार करता है ? सब जीवोंकों अभयदान होवे उस वास्ते चक्रवर्तीकी रुद्धि छोडकरकें संयम ग्रहण किया, तो चेतन ! तूने क्या किया है कि अहंकारसें घमंडी बन जाता है ? संगराम सोनीने सुवेके अक्षरोंसें ज्ञान लिखवाया उस अन्दरका मैंने क्या किया कि अहंकार करु पुनः कुमारपालराजानें

ज्ञान लिखवानेके वास्ते ताडपत्र न थे उससें कागजपर पुस्तक लिखते हुवे देखकर हेमचंद्राचार्यजीकों कहा कि–' कागजपर किस सबबसें लिखवाना शुरु रख्खा है?' आचार्यजीने फरमाया कि–' अभी ताडपत्रकी न्यूनता है उस सबबसें.' कुमारपालनें उसी दम अभिग्रह लिया कि–' जबतक ताडपत्र चाहियें उतने ल्याकर हाजिर न करुं वहांतक अन्नजल न ग्रहण करुंगा.' उस बात प्रधाननें अर्ज की कि–' ताडपत्र दूर देशसें आते हैं और आपश्रीने कठिन अभिग्रह लिया तो वो क्योंकर पूर्ण होवैगा?' तोभी राजाने कहा कि–' जो नियम लिया गया सो अब न फिर सकैगा. चाहे वैसें हो; परंतु ताडपत्र पूरे कीये विगर तो अन्नजल न ल्युंगा!' बाद इस उग्र अभिग्रहके प्रभावसें आपके बगीचेमें खडताड थे वो असली ताड बन गये और उससें अभिग्रह पूरा हुवा. तो चेतन! तूने कितने ज्ञान लिखवाये? कितने अभिग्रह लिये हैं कि ज्ञानमें अल्प खर्च करकें अहंकार करता है? तूने साधर्मियोंकी क्या वात्सलयता की? कुमारपालराजाने स्वधर्मीयोंकों राज्यके अंदर रोजगारमें लगा दिये, वैसे तूने कौनसें उपकार किये हैं कि गर्व करता है. संप्रतिराजाने सवाक्रोड जिनबिंब भरवाये उनमेंसें तूने क्या किया? कि अहंकार करता है. धनाजीने जगह जगह धन उपार्जन किया और वो अपने भाइकों देकर विदेशगमन किया तूने वैसा क्या कुटुंबका रक्षण किया है कि अहंकार करता है. भोजराजाने एक एक श्लोकके लख्खों रुपे दानमें दिये हैं उनमेंसें तूने क्या दिया? सिद्धसेनदिवाकरजीने चार श्लोक कहे उसमें विक्रमराजाने चारों दिशाओंका राज्य उन्होंको सुपरद कर दियाथा. अब शोच कर कि तूने क्या दान दिया? कि अहंकार करता है. ऐसी सुंदर भावना ल्याकर दान देकर अहंकार न ल्यावें दूसरोंको दान देने, दिलवानेकी प्रेरणा करता है, कोइ दान करै उसकी प्रशंसा करै, दानके अतिशय व्यसनी होते हैं वे तो अपने पहननेका वस्त्र तकभी देकर आप दुःख उठा लेते हैं. ऐसे दानके उत्कृष्टभाव ज्यौं ज्यौं होते जाय त्यौं त्यौं दानांतराय तूटता जाय. दातारकी सोबत करनी, दानके फल श्रवण करना, विषयकी लालसा छोड देंनी. विषयवाला तो शोचता है कि में दान दउंगा तो में पीछे क्या खाउंगा? ऐसे पुद्गल सुखमें मग्न होनेसें दान न दे सकता है. और दानांतराय बांधता है. और जिसकों दानांतर तूटनेका है वो तो चिंतवन करता है कि–हे आत्मा! तेरा स्वभाव ज्ञान दर्शन चारित्र गुणमें रहनेका है यह सरीर सो तूं नहीं. शरीर कर्म-

सयोगसें मिला है, तो इनका पुष्ट करनेसें नये कर्म बधेंगे जो जो विषय भुगतेंगे उससें कर्म बधे जावेंगे और यह धनादिक पुन्योदयसे प्राप्त हुवा है तोभी इस द्रव्यकी ममता करेगा तो कर्म बधे जावेंगे और मेरा आत्मा कर्मसे आच्छादित हो जायगा, वास्ते इस द्रव्यका, दान करेगा तो जिन द्रव्यसें जो कर्मविषय भुक्तकर कर्म बधे वो न वधे जायेंगे इस लिये यह द्रव्य ज्यौं वन सके त्यौं सुपात्रमें देना, ऐसी भावना भावता है एन' चिंतन करता है कि–तेरे आत्माके गुण प्रकट करकें आत्माकों देना सो दानगुण है, और ये धनादिककी ममता है उसका त्याग होवे तो जितनी जितनी ममता तेरी त्याग हुइ उतना आत्मा निर्मल हुवा और तूने तेरे आत्माके गुण आत्माकों प्रकट कर दिये वही स्वाभाविक दानगुण प्रकट हुवा ऐसे विशुद्धभावसें दानातराय अनुक्रमसें सर्वथा तूट जायगा

१८ प्रश्न —लाभातराय वो क्या ? उसका बयान किजीयें

उत्तर —जो जो लाभ होनेके हो वो लाभातराय तूटनेसेंही होनेके है और वो लाभ दो प्रकारके है–याने एक ससारी लाभ और दूसरा आत्मिक लाभ ये दोनूम अतरायकर्म पीडता है प्रथम ससारी लाभ है सो शरीर निरोगी मिलना, स्त्री–पुत्र–परिवार–धन–अनुकूल मनुष्य–नोकर चाकर ओर जिस वक्त जो इच्छा हो वो वस्तुका मिलना अगर विद्या कला शीख लैनी यह सव लाभातराय कर्मका क्षयोपशम हुवा होवे तो मिले उसमें फिर थोडा क्षयोपशम हुवा हो तो थोडा लाभ और विशेष हुवा हो तो विशेष लाभ मिले और जो जो वस्तुका अतराय हो वो लाभ न मिल सके उत्तम पुरुषोंनें इस कर्मका स्वरूप जान लिया है, उससें ये वस्तु न मिले तो उसका शोचसताप नहीं करते जिनके मनमें क्लेश आता है वोभी शोचते हैं कि पूर्वजन्ममें लाभातराय कर्म वाधा है उसीके लिये नहीं मिलता है गतजन्ममें कर्म बाधनेके समय शोच नहीं किया और अव सताप करता हूं वो क्या काम आवे ? ऐसे विचारसें सतोप भजते हैं और उसीसें लाभातराय कर्मकी निर्जरा करते हैं विशेष उत्तम पुरुषकों तो शोचनाही नहीं पडता–सहजही समभावमें रहते हैं जो होवे सो जाननेका आत्माका धर्म है उसमें रह करकें जान लेते हैं,; मगर विकल्प नहीं करते है अज्ञानी जीव है सो जव लाभ मिलता नहीं तव दूसरेका दोप निकालते है कितनेक दैवकों दोप देते है–' अहा ! दैव ! तूनें ये क्या किया ? मैंनें तेरा क्या विगाडा था ? ' फिर

कमानेवाले मनुष्यके साथ लडे—झगडे—गुस्सा करवावे. मेरेको माल मास देवे और जिनका होनेका लाभ न मिले तो उनके ऊपर द्वेष करे, और लाभ मिलनेमें अंतराई वाले करना फिर—अहंकार करे कि मैं ऐसा हुशियार हूं, मैं ऐसा होशियार—शक्तिवंत हूं कि जो व्यापार करता हूं उसीमें पैसाही पैदा करता हूं, कोई आदमीको नौकरी मिले. राजा होवे तो राज्यका लाभ मिलनेमें या राज्यमें अन्यायी आफसरोंसे या गो-वरमेन्टकी ओरसे जुल्म गुजारकर रखे हो, प्रजाको बिना कारण लाभ मिलावे, अहंकार करे, फिर कार्यभारी होवे तो लोगोंके पाससे पैसा लेकर लाभ मिलावे, अनीति करे या लोगोंके ऊपर जुल्म गुजारे, सारा लुटेरा हो ऐसा ठगाई करे—विश्वास-दगा—विश्वासघातक करनेवाला अन्याय करे तो लाभ मिलानेके अंतराय पडे, जो अनीति अन्याय हो उसकी प्रशंसा करे या उसके साथ आपकीभी तारीफ करे, लुटाइ करके दिलमें सोचे कि मैं कैसा बहादुर हूं! किसीके जानेकेभी न भाग चोर मेरे संग लाभ मिला किया. ऐसे अनेक मनोरथ करे करे. फिर किसीका लेना लेना हो तो खोटी बातें बनाके करके उनकोही देकर प्रचार करना पर उसका लेना खोटा करके मनमें फायदा होवेकी खुशाली मनावे. ऐसी खोटी करनी क-रनेसे जीव लाभांतराय कर्म बांधता है. उससे दूसरी दफे लाभ मिलना मुश्किल हो पडता है.

आत्मिक लाभ तो संपूर्णतासे तब प्राप्त हो सके कि जब सब कर्म क्षय होके आ-त्माका अनंत ज्ञान—अनंत दर्शन—अनंत चारित्र—अनंत वीर्य—अव्याबाध सुख—अक्ष-यपद्—अजरामर—अज—अगम—अगोचर—अगुरुलघु आदि अनंत गुण प्रकट होवे, तब आत्माको लाभ प्राप्त हुआ. वो सर्वथा प्रकारसे बारहवे गुणस्थानकपर सत्ता बंध उदयमें यह कर्म क्षय हो जाय तब होता है. तब अंश अंशमें तो चौथे सम्यक्त्व गुणस्थानकसे प्रकट होता है. जितना आत्माका गुण प्राप्त हुआ उतना लाभ हुआ, ऐसे गुणस्थानकसे गुण प्राप्त करनेके कारणरूप प्रवृत्ति होनेकीभी लाभ होता है. वो लाभभी लाभांतराय टूटनेसे होता है—याने दान—शील—तप और भाव इन चारों वस्तुओंकी प्राप्तिरूप ला-भ लाभांतरायके टूटनेसे होता है.

१९ प्रश्नः—दान क्या चीज है?

उत्तरः—दानांतरायके स्वरूपमें कहा है उस मुजब दान कर सके तो दानगुण

प्रकट हुवा यही आत्माको लाभ हुवा, उसमे जो जो अशसें गुण पर शके उतना लाभ प्राप्त हुवा समझना

२० प्रश्न —शील वो क्या है?

उत्तर —शील याने आचार वो आचार पाच प्रकारका है उसमें प्रथम ज्ञानाचार, वो ज्ञानाचार सपूर्ण तो अनतज्ञान प्रकटे तब वो रूप लाभ मिलेगा और उसके कारणरूप मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान-ये चार ज्ञान प्रकट होवे तब चारका लाभ हुवा उतना लाभातराय न तूट गया हो तो मति-श्रुत-अवधि प्राप्त होता है किंवा मति-श्रुत मन पर्यवज्ञान होता है उतनाभी लाभातराय कर्म क्षय न हुवा हो तो याने थोडा क्षयोपशम हुवा हो तो मति श्रुत ये दोनुही प्रकट होते हैं उतना लाभ हुवा, और उसके साथ समकितकाभी लाभ होवे, कारण कि समकित विगर मति, श्रुत अज्ञान कहे हैं उससेभी कम क्षयोपशम हुवा हो तो समकित रहित ज्ञानरूप लाभ होवे. उससें बुद्धिकौशल्यता प्राप्त हो सके सासारिक कार्यमे हुशियार होवे मगर आत्मिकज्ञान न होवे आत्माके कल्याणरूप ज्ञान तो सम्यक्त्वज्ञान है वो काम लगे सम्यक्त्वज्ञानरूप लाभ होवे, वो ज्ञान किसीको द्वादशागरूप ज्ञान होता है उतना लाभातराय तूट जावे तो मुक्तिके बहुतही समीप होवे किसीको चौदह पूर्वका ज्ञान होवे उन चौदह पूर्वके नाम —उत्पादपूर्व-जिसमें द्रव्यके पर्यायके उत्पादका स्वरूप है दूसरा अग्रायणी पूर्व-जिसमें सर्व द्रव्य सर्व पर्यायका परिमाण दर्शाया है तीसरा वीर्यप्रवादपूर्व-जिसमें कर्मसहित जीवके और अजीवकी शक्तिका विस्तारपूर्वक स्वरूप है चौथा अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व-जिसमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल ये छ' द्रव्य स्वस्वरूपसें अस्ति, पर स्वरूपसें नास्ति आदि वर्णन है पाचवा ज्ञानप्रवादपूर्व-जिसमें पाचों ज्ञानका विस्तारपूर्वक वर्णन है छठा सत्यप्रवादपूर्व-जिसमे सत्य, सयम, वचन, इन तीनोंका विशेष स्वरूप दर्शाया है सातवा आत्मप्रवादपूर्व-जिसमे आत्म जीवके अनेक नयमतभेदसें करके वर्णन किया है आठवा कर्मप्रवादपूर्व-जिसमें आठ कर्म याने ज्ञानावरणी १, दर्शनावरणी २, वेदनी ३, मोहनी ४, आयु ५, नाम ६, गोत्र ७, और अतराय ८ इन आठो कर्मोंकी प्रकृतिबध-स्थितिबध-रसबध-प्रदेशबध इन चारोंके बधका स्वरूप अतिविस्तार पूर्वक दर्शाया है नवम प्रत्याख्यान प्रवादपूर्व-

जिसमें त्याग योग्य वस्तुका और त्यागका स्वरूप कथन किया है. दशवा विद्यानुवादपूर्व-जिसमें अनेक आश्चर्यकारी विद्याका स्वरूप है. ग्यारहवा पूर्व-अनुनाकल्याणपूर्व अगर अवंध्यपूर्व है-जिसमें फल वंध्य नहीं, ज्ञान-तप-संयमादिकका शुभ फल, प्रमादादिकका अशुभ फल ऐसे शुभाशुभफल बतलाये हैं. बारहवा प्राणायुपूर्व जिसमें दश प्राण याने पांच इंद्रि, तीन बल, श्वासोश्वास और आयु इन्होंका वर्णन है. तेरहवा क्रियाविशालपूर्व-जिसमें कायकि आदि क्रियाओंका स्वरूप संयमक्रिया, छंदक्रिया वगेरःका वर्णन है. चौदहवा लोकबिंदुसारपूर्व-जिसमें लोगमें अक्षरोंपर बिंदु सारभूत है, तथा सर्वोत्तम सब अक्षरोंका मिलाप और लब्धिका हेतु इन्होंका वर्णन है. इन एक एक पूर्वके पदकी संख्याका मान और एक एक पूर्वका ज्ञान लिखनेके लिये शाईमें कज्जल कितनी चाहियें ये कुछ हकीकत नंदीसूत्रजीकी छपी हुइ टीकावाली प्रतके पत्र ४८२ में है वहांसें देख समझ लेना. तथापि पहेला पूर्व लिखवानेमें एक हस्तीके समान काजलका ढेर चाहियें. पीछेके पूर्वमें दूना-दुगुणा लेना. ऐसें चौदह पूर्वमें ८१९२ हस्तिके समान काजलका ढेर चाहियें. उसमें पानी डालकर शाही बनाकर लिखें तो वे पूर्व लिखे जावे-इतना चौदह पूर्वका ज्ञान है. फिर उसके अर्थका तो क्या पार ? एक दूसरे चौदह पूर्वधर ज्ञानीके बीचमें अनंतगुणी हानि वृद्धि होती है. जिस पुरुषकों जितने लाभांतरायका क्षयोपशम हुवा हो उतने अर्थ ज्ञानका लाभ होवै. कोइ मुनिकों इतना लाभांतराय न तूटा होवे तो कमती पूर्वका ज्ञान होवै. किसीकों एक पूर्वका, किसीकों दो पूर्वका, किसीकों तीन पूर्वका-इस तरह यावत् चौदह पूर्वका ज्ञान होवै. वर्त्तमान समयमें पूर्वका ज्ञान किसीकों नहीं होता है बहुत-अतिशय ज्ञानी होवै तो सूत्र याने पिस्तालिस आगमका ज्ञान हो सके. उसमेंसें अभी ग्यारह अंग हैं, बारहवा विच्छेद हो गया है.

आचारांगजी १, सूयगडांगजी २, ठाणांगजी ३, समवायांगजी ४, भगवतीजी ५, ज्ञाताजी ६, उपासकदशांगजी ७, अंतगडदशांगजी ८, अनुत्तरोववाइजी ९, प्रश्नव्याकरणजी १० विपाकसूत्रजी ११ यह ग्यारह अंग गणधरमहाराजजीके रचे हुवे हैं-याने जिस तरह श्रीमत् महावीरस्वामीजीने प्ररूपे उसी तरह गणधरमहाराजजीने सुनकर गाथारूप गुंथन कर लिये; मगर उस बाद बारह दुकाली बहुत वक्त पडी उसमें हरएक ग्रंथमें अंगमेंसें बहुतसा भाग विच्छेद हो गया. और जो थोडा भाग रहा

वो देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने लिखवाया उससें नदीजी, समवायागजीमें जितनी पद सख्या बतलाइ है उतनी नहीं पाइ जाती है एक पदमें ५१०८८६६४० श्लोक होवे- ये एक श्लोकके अट्ठाइस अक्षर कहे हैं यह अधिकार सेनप्रश्नमें पत्र ३१ के अदर है, वहा अनुयोगद्वारजीकी टीकाकी साख-गवाह दी है वहासे देख लैना

उपाग बारह है.—उवाइजी १, रायपसेणीजी २, जीवाभिगमजी ३, पन्नवणाजी ४, सूरपन्नत्तिजी ५, जबुद्विपपन्नत्तिजी ६, चदपन्नत्तिजी ७, निरीयावलीजी ८, कप्पि याजी ९ कप्पवडसीयाजी १० पुप्फियाजी ११ और वन्हीदशागजी १२ यह १२ उपाग हे

दश पयन्नाजीके नाम —चउसरणपयन्नाजी १, आउरपचख्खाणपयन्नाजी २, महा पचख्खाणपयन्नाजी ३, भत्तपचख्खाणपयन्नाजी ४, तदुलवीयालीपयन्नाजी ५, गणी- वीज्जपयन्नाजी ६, चद्राविजयपयन्नाजी ७, देविन्द्रस्तवपयन्नाजी ८, मरणसमाधिपय- न्नाजी ९, सस्थारकपयन्नाजी १०

छ छेद ओर चार मूलसूत्र वगैर याने दशाश्रुतस्कधजी १, बृहत्कल्पजी २, व्य- वहारसूत्रजी ३, जीतकल्पजी ४, निशीथजी ५ और महानिशीथजी यह छ छेद ग्रथ हैं तथा आवश्यकजी १, दशवैकालिकजी २, उत्तराध्ययनजी ३, ओर पिंडनिर्युक्तिजी ४ ये चार मूलसूत्रजी है ओर नदीसूत्रजी, अनुयोगद्वारजी ये दो–ये सब मिलकर पिस्तालीस आगमजी कहे जाते ह

उक्त आगमजी सिवाभी दूसरे पयन्नाजी वगैर है ओर उन्हके नामभी नदीजीमे तथा समवायांगजीमें हैं पख्खीसूत्रमेंभी है, परतु पिस्तालीसकी मुख्यता होनेका का- रण यही हुवा कि वल्लभीपुरमें पुस्तक ४५ ही लिखे गये उसी लिये उतनीही सख्या कही गइ परंतु दूसरे मुल्कोंमें दूसरे लिखे गये है वैभी वर्त्तमान समयमें मौजूद हैं ऐसा दीपकजीने एक चोपडीमें लिखा ह (उनमेंसे मैंनेभी कितनेक देखे है) उसके नाम नीचे मुजब है —

ऋषिभाषितसूत्र, पारसीमडळ, वीतरागस्तव, सलेखनासूत्र, अगविद्या, ज्योतिषकर डक, गच्छाचार, तीर्थोद्गारक, उपदेशमाला, सिद्धपाहुड, श्रावकआराधना, शत्रुजयल- घुकल्प, शत्रुजयबृहत्कल्प, शत्रुजयकल्प, भद्रबाहुस्वामीकृत गाथा २५, शत्रुजयकल्प वज्र स्वामीकृत, अगवलीपयन्ना, वशुदेवहींड, श्रावकपन्नत्ति, अगचूलिया, वगचूलिया और

आराधनापताका इतने सूत्र वर्त्तमान समयमें मालूम होते हैं. तोभी बहुतसे देशोंमें प्रसिद्ध नहीं हैं परंतु दूसरे देश बहुत हैं वहां कुछ सबने निगाह नहीं की है तो इनसें कदापि विशेषभी सूत्र होंगे; क्यों कि नंदीसूत्रजीमें देवर्द्धिगणीक्षमाश्रमण महाराजने जो नाम दर्शाये हैं वो नामवाले सूत्र उस वक्त हाजिर होनेही चाहियें. ये आगमोंमेंसें दश सूत्रजीकी निर्युक्ति भद्रबाहुस्वामी महाराजने की हैं, जो चौदह पूर्वधर थे, इससें निर्युक्तिभी पूर्वधरजीकी बनाइ हुइ हैं वास्ते सूत्रजीकी तरह मानी जाय, जिसमें सूत्रजीका अर्थ युक्तिसें करकें सिद्ध किया है और भाष्यपूर्वधर जैसे जिनभद्रगणीक्षमाश्रमण महाराजजीने रची है, उसमें निर्युक्तिसेंभी विशेष विस्तारपूर्वक अर्थ किया है. इस सिवा बहुतसे ग्रंथ और टीकाएं पूर्वधरजी वगैरः बहुश्रुत पुरुषोंके रचे हुवे हैं, वेभी आगमजी जैसे हैं. ऐसे जैनके कुल शास्त्रके और जो जो शास्त्र दूसरे दर्शनोंमें रचे हुवे हैं वो, और व्याकरण, न्यायशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, नीतिशास्त्र, अष्टांगनिमित्तशास्त्र अष्टांगयोगशास्त्र—ये सब शास्त्रोंका बोध मिलाकर सत्य असत्यकी परीक्षा करै के—सत्यकों अंगीकार करै तो उतना ज्ञानका लाभ हुवा कहा जाता है. ऐसे लाभवाले पुरुषको ज्ञानके आचारका आठ प्रकारसें लाभ मिलता है. जो जो सूत्र जिस जिस समय पढने बांचनेका कहा हैं उसी काल पढै. चार संध्याकाल वर्जित करैं—याने प्रातःकालमें सूर्योदयके पेस्तरकी और पीछेकी एक एक घडी और मध्यान्ह तथा संध्या, मध्यरात्री इन चारों वक्तकी दो दो घडी छोड देनी. उस वक्त कोइभी सूत्र न पढे. उस वक्त दुष्टदेव फिरनेकों निकलते हैं वे जैनमार्गके द्वेषी होवै तो पढनेवालेको छल करै उससें वो वक्तका निषेध किया है. विनय सो ज्ञानवंत पुरुषका मुंह देखै कि नमस्कार करै, बैठा हो तो खडा हो जाय, ज्ञानवंतको सन्मान सह आसन देवे, जब तक ज्ञानवंत खडा हो वहांतक आपभी खडा रहै. ज्ञानवंतकों योग्यासन दियेबाद उचित रीतिसें वंदना वगैरः करकें आप उचितासनपर बैठै याने गुरुसें उंचे आसनपर न बैठै और आगेभी न बैठै. जब फिर वे खडे होवै तब खडा हो विनयपूर्वक स्थित रहै और जब वे चलने लगै तो आगे आगे न चलै—इस तरह जो नीतिका फरमान हो उसकों अमलमें लेवै. और ज्ञानवानकी महत्ता ज्यों बढे त्यौं करै. उन्होंका वचन न उल्लंघन करै ज्ञानवंतकी जिस जिस तरह आपसें बन सके उस तरह तन मन धनसे करकें भक्ति करै. दूसरेके पाससें भक्ति करावै. ज्ञानवंतकी तरह ज्ञानके पुस्-

फोंकाभी विनय करै, पुस्तकें पास हो तो पेशाब दस्त न करै अगर जहापर पुस्तक होवे वहाभी वैसे काम न करे. और स्त्री आदिकके भोगादिभी न करै या पुस्तकके पास बैठकर भोजन करना, पानी पीना येभी न करै अतमें करनेकी जरुरतही हो तो जवका-पदातर रखकर करै पुस्तकका शिरानाभी न करे. फिर पुस्तक लिखवाकर ज्ञानकी वृद्धि करै, पुस्तक हो तो उन्होंकी सभाल रक्खे, मान पढनेका उद्यम करै, आप पढेला हो तो दूसरोंकों पढावै-इस तरह विनय करै ज्ञानवतका बहुत मान करै वोभी सिर्फ ऊपरसें नहीं, मगर अतरगके प्रेमसें करै और भावै कि-अहा! इस पुरुषके ज्ञानके आवरण बहुतसें खप गये है उसमें इन्होंका आत्मा निर्मल हुवा है ये पुरुष मुझेभी ज्ञान बक्षते है ये ज्ञानके प्रभावसें मेरा आत्माभी निर्मल होगा-मुजको चारों गतिमें भटकनेका वध हो जायगा जन्ममरणके दु खभी इन्होंके प्रभावमें मिटेंगे, वास्ते ऐसे ज्ञानवत पुरुषके जितने बहुतमान न करु उतने कमती हे जगत्के जीव जो उपकार करै वो पैसे देवै तो अल्पकाल सुख होता है और ज्ञानी पुरुष तो ज्ञान देते हैं उसका सुख तो अनतकाल तक पहुचेगा-तो ऐसे पुरुषके कितने बहुमान करु ऐसें भावसें बहुमान करै उपधान सो ज्ञान पढनेके लिये नवकारादिकके उपधान जो तप करनेका महा निशीथजीमें कहा है, और सूत्र पढनेके लिये-योग वहनेका कहा है उसी मुजब तपस्या करनी योगकी जो जो क्रियाएं है वो करनी अब यहापर कोइ शका करेगा कि ज्ञान पढनेमें तपस्या और क्रिया किस लिये करनी चाहियें? तो उसका समाधान यही है कि पुद्गलभावपरसें मोह उतर जाय तब तपस्या हो सकै फिर मोह उतर जाय तब आत्माकी विशुद्धि होवै और आत्माकी विशुद्धि होवै तब ज्ञानावरणी कर्म नाश हो जावै उससें सुखपूर्वक ज्ञान आ सके फिर क्रिया है सो तत्रके समान है उससें सूत्रजीके अधिष्ठाता सहाय्य करै-जैसें कि मल्लवादी महाराजजीकों देवीने एक ऐसी गाथा दी कि उस गाथासें द्वादशसारनयचक्रकी रचना की और बौद्धलोगोंके साथ जय मिलाया, और सोरठ नगरमें जहा जहा शिलादित्यका राज्य था वहासें बौधलोगोंकों हदपार करवाये फिर मुनीराजजी साहेब श्री आत्मारामजीकों विशेषावश्यकजी न बैठता था उससे धिस्ताने लगे, तो उसी रात्रिमें स्वप्नके भीतर हेमचद्राचार्यजी उन्होंके मिले और जो जो न मालूम होताथा वो सबका खुलासा बतलानेसें समझमें आ गया इसी तरहसें कमलगच्छके आचार्यमहाराज

वद्धमान विद्या पढा गये. इस मुजब शासनदेवकी सहायतासें ज्ञानका लाभ होता है. इसी वास्ते योगवहनकी क्रिया बतला गये हैं सो बहुतही हितकारी है. विशेष हेतु और शास्त्रमें जैसें कहा हो वैसें समझ लेना. यहां तो मात्र संक्षेपरूप है. अनीन्हवणे सो गुरुकों न छुपा रखना याने किस गुरुजीद्वारा शास्त्राभ्यास किया हो उन्ह गुरुजीका नाम छुपाकर किसी दूसरेका नाम न देना सो पांचवा आचार. व्यंजन याने अक्षर जैसा शास्त्रमें लिखा हो वैसाही शुद्धोचार करना–अशुद्ध न बोलना. अर्थ याने जैसा गुरुमहाराजने दिया–बतलाया हो वैसाही रखना–फेरफार नहीं करना. व्यंजन और अर्थ दोनु जिस तरह शास्त्रमें कहा हो त्रिसी तरह बोलना. इस तरह ज्ञानका आचार व्यवहारसें तन मन वचनमें पालन करें इससें विपरीत वर्ते तो ज्ञानाचारमें दूषण लगे, और ज्ञानावरणी कर्म बंधा जावे, उसके भयसें सावध रहना. फिर बहुत पढे हुवे संबंधका अहंकार आ जाय तो मनमें भावे कि–हे चेतन ! तूं अनंतज्ञानका मालिक है, जगत्में छ द्रव्य हैं–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, और काल ये पांच द्रव्य अरूपी याने वर्ण, गंध, रस, स्पर्श रहित हैं. और छट्ठा पुद्गलास्तिकाय वो रूपी, वर्ण-गंध–रस–स्पर्श सहित है. यह छउं द्रव्यमें एक एक द्रव्यके अनंत गुणपर्याय हैं, सो समय समय एक एक द्रव्यमें षट्गुण हानि वृद्धि हो रही है याने अनंत भाग हानि, असंख्यात भाग हानि, संख्यात भाग हानि, संख्यात गुण हानि, असंख्यात गुण हानि अनंत गुण हानि–ऐसे छ प्रकारसें हानि वृद्धि हो रही है. त्रिसी तरह छउं द्रव्यकी वार्त्ता गतागत और वर्त्तमान समयकी वो सभी केवलज्ञानीमहाराज एक समयमें जान रहे हैं, त्रिसीही तरह आत्मा ! तेरीभी शक्ति है; मगर वो ज्ञानशक्ति ज्ञानावरणी कर्मसें आच्छादित हो गइ है और उससें तुझकों ज्ञान नहीं होता है. तो तेरा ज्ञान जाता रहा सो लघुताका स्थान है, तोभी महत्वता करता है ये तेरी हे चेतन ! कितनी और कैसी मूर्खता है ? पुनः पूर्वकालमें चार ज्ञानवाले थे और तीन ज्ञानवालेभी थे वैसे ज्ञान तो तुझको प्रकटभी नहीं हुवे हैं तो येभी तेरी लघुताका स्थान और लज्जाका कारण है तथापि तूं क्या अहंकार करता है ? फिर दो ज्ञानवालेभी चौदह पूर्वधर बारह अंगके ज्ञाता थे वैसा ज्ञानभी तेरेमें नहीं तदपि किस बाबतका तूं उत्कर्ष करता है ? पुनः कमती ज्ञानवाले एक पूर्वधर थे उसकाभी तुझकों ज्ञान नहीं है तो तूं किस लिये और कौनसी बाबतमें

फूलकर मगरूर होता है ? वर्त्तमान समयमेंभी आगम-निर्युक्ति-भाष्य-चूर्ण-टीका-ग्रंथ वगेरे मौजूद है, और अन्यदर्शनियोंके शास्त्रभी हैं, उन्हकाभी तुझकों ज्ञान नहीं है तो हे चेतन ! किस बातका तू गर्व करता है ? उन्हमेंसें तू कुछ शास्त्र पढा है, वोभी कुछ याद नहीं, फिर गुरुमुखद्वारा सुनेहुवे शास्त्रवचनभी तुझकों याद नहीं, तो किस प्रकार बडाइ करना है ? पुनः देशदेशकी भाषा, भिन्न भिन्न लिपि उनकाभी ज्ञान नहीं, तथा सम्मतितत्त्वार्थ आदि न्यायके शास्त्र हैं वो कोइ ज्ञानी समझावें तोभी समझनेकी तेरेमें शक्ति नहीं और मगरूर बनता है वो कैसी अज्ञानता ? फिर जो जो तू धर्मक्रिया करता है उन सबके हेतुकाभी यथार्थ ज्ञान नहीं, तदपि तू फोकट मद क्या करता है ? अनेक प्रकारके नीतिके ग्रंथ हैं, अनेक प्रकारके गणित-हिसाबी कामकी रीति हैं उसकाभी तुझकों ज्ञान नहीं तोभी जीव ! तू अहंकार करता है वो अहंकार करना लायक है कि कर्मकी निंदा करनी लायक है उसका तू आत्मासें शोच कर पूर्व समयमें मुनिसुंदरसूरिजी जैसे स्मरणशक्तिवाले पुरुष एक हजार और आठ अवधान करते थे वो शक्तिभी तेरेमें नहीं इस समयमेंभी १०८ अवधानके करनेहारे हैं वोभी शक्ति तुझमें नहीं तो किस प्रकारका मिजाज करता है ? स्वर्गस्थ आत्मारामजी महाराजभी १०० श्लोक रोजके रोज नये कंठाग्र कर सकते थे, और तुझको तो पांच गाथाएभी मुखपाठ करनेकी ताकत नहीं तो चेतन ! तू बहुत विचार कर और झूठा गर्व न कर पूर्वपुरुष शास्त्रमेंसें उद्धार करके अनेक नये ग्रंथ तैयार कर गये है और इस वक्तभी विद्वान् पुरुष नये बनातेही जाते है, तो क्या तेरेमें ऐसी शक्ति है ? तूनें नये ग्रंथ कितने तैयार किये या मुफ्तही भूलसें आनंद मानता है ! फिर पूर्वपुरुषोंनें सुवर्णाक्षरोंसें ज्ञान लिखवाये है तो तूने स्याहीके अक्षरोंसेंभी सब शास्त्र लिखवाये है कि अहंकार करता है ? तूने पढकर क्या आत्मविचारणा की ? और दूसरे जीवोंकों पूर्वके शास्त्र कितने पढाये कि मदोन्मत्त हो फिरता है? तेरेसें अभी बहुत पुरुष आत्मसाधन करते हुवे बने हैं कि खाली मिजाजही बतलाते है ? तेरा लघुता होवे वैसी तू करणी करता है वास्ते नाहक ज्ञानावरणी कर्म बांधता है इस लिये शोच कर कि एक अंशमात्र ज्ञानका क्षयोपशम हुवा उससें मनमें ज्ञानी बन बैठता है ? ऐसी भावना भाव कर आत्मज्ञानमें मग्न होते है अपने आत्माका ज्ञानगुण है सो प्रकट करनेका उद्यममें तत्पर रहवे वो ज्ञानाचार जानना ऐसा ज्ञानाचार पालन करनेसें परंपरासें तमाम ज्ञान प्रकट करने है

दर्शनाचार–दर्शनशब्दसें देखना सो–याने जो जो पदार्थ जिस तरहका हो विसी तरहसें देख लैना–मान लैना. शुद्ध देवकोंही शुद्धदेव मान लेना, शुद्ध गुरुजीकोंही शुद्धगुरुजी और शुद्ध धर्मकोंही शुद्धधर्म मान लैना. शुद्ध धर्म सो आत्माका स्वभाव वही धर्म. भगवतीजीमें फुरमाया है कि–'वत्थु सहावो धम्मो' याने वस्तुका स्वभाव सोही धर्म कहा जावै. तब आत्मस्वभावमें रहना वही धर्म और उसकी श्रद्धा करनी. आत्मा शरीरमें रहा है वहांतक जडप्रवृत्ति करता है वो आपका धर्म न समझै–आत्माका स्वभाव ढका गया हैं उसकों प्रकट करनेके कारणोंकों कारण धर्म मान लेवै. धर्मके निमित्त कारणरूप देवगुरुकों निमित्त कारण मान लै. व्यवहारनयसें धर्मके कारणकों धर्म कहा है उस अपेक्षासें धर्म मानें. जो जो देवगुरु उपकारी पुरुष हैं उन पुरुषोंकी सेवा भक्ति शास्त्रमें कथन की है उसी मुजब अमलमें लेवै. उसका विस्तार प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें कहा है उस मुजब करे सो दर्शनाचार कहा जाता है और वो आठ प्रकारका है–याने निसंकीय अर्थात् अव्वलमें जो अठारह दूषण वतलाये गये हैं उन दूषणोंसें रहित देवके वचनोंमें शंका न करे; क्यौं कि जिन देवकों राजा और रंक दोनु समान हैं, किसीका पक्षपात नहीं, जिनकों धनकी, स्त्रीकी ममताही नहीं, मान अपमान दोनु जिनकों समान हैं वैसे पुरुषकों असत्य वोलनेकी जरुरत नहीं रहती है. और वैसे लक्षण है या नहीं उसकी प्रतीति चरित्र देखनेसें हो जाती है. वो खात्री–प्रतीति करकेंही देवकों देव मानने चाहियें. पीछे उन्होंके कथनमें शंका न करनी; कारणके अरूपी पदार्थ है सो चक्षुसें निर्णय नहीं हो सकता हैं. कोइ कहेगा कि बुद्धिसें निर्णय कर लेवें; मगर संपूर्ण प्रकारसें बुद्धि प्रकट हुइ हो तो शास्त्र देखनेकी जरूरतभी नहीं पडती. बुद्धिकी कसूर है उससें शास्त्र देखकर गुरुका समागम कर बुद्धि प्राप्त करनेका उद्यम करते हैं; वास्ते बुद्धिकी न्यूनता सिद्ध होती है. कितनीक वातें नहीं समझी जाती हैं वोभी बुद्धिकी तंगास है. वो तंगास निकल जायगी तब यथार्थ समझा जायगा. संसारी काममें बुद्धि प्रकट होनी सहल है; परंतु आत्मतत्त्व पहिचाननेकी बुद्धि पैदा होनी वहुत कठीन है; वास्ते वीतरागजीके वचनमें शंका न करनी.

निकंखा सो कुमतिकी वांछना–यांने कुमति–कुबुद्धि कि जो आत्मामें अनादिकी है उसके प्रभावसें विषयादिकके अभिलाष हुवा करते हैं. जो जो दुःखके का-

रण है जो सुखके कारण भासते हैं. आत्माकी स्वऋद्धि सन्मुख दृष्टिही नहीं पुनः कुबुद्धिवाले देवगुरुकी वाछना होती है जो कखा दूषण कहा जाता है वो दूषण जिःससें हट गया होवै उसकों किंचित्‌भी कुमतिकी वाछना नहीं होती है

निर्विचिकित्सा अर्थात् धर्मके फलका सशय करै उससें जो दूर रहना सो यानें सशय रहित होना सो निर्विचिकित्सा आचार समझना ये आचार लाभातराय तूटनेसें होता है सत्य प्रकारसें आत्मिकवस्तुकी और आत्मिकवस्तु प्रकट होनेके कारणोंकी चोकस प्रतीति होती है, उससें फलका सदेह नहीं रहता है

अमूढदृष्टि सो मूढपना दूर हुवा है याने मूढतासें वस्तुकों अवस्तु मान लेवै— जैसें कि दुनियामे चेंदिये पशु कहे जाते हैं वे आत्माकी वाते करैं, मगर विषय कषायमे मग्न रहते है कोइभी प्रकारसें ससारसें उदासीन न होवें देवगुरुकी भक्ति और व्रत नियमके अदर न प्रवर्त्ते—ऐसी दशा उसकों मूढदृष्टिपना कहा जाता है—वो, न होवे जिस जिस तरहसें प्रभुजीनें जिस जिस अपेक्षासें धर्म बतलाया है उस मुजबसें श्रद्धा करें विषयकषाय अव्रत जितने जितने कमती होवें उतने कमती करै जो दूर न हो सके उसकों दूर करनेकी हरदम वाछना बन रही है—ऐसा जो आचार वो अमूढदृष्टि कहीजाती है

उववूह गुण सो साधु—साध्वी—श्रावक—श्राविका प्रमुख उत्तम पुरुषके गुणोंकी, प्रशंसा करनी

थिरिकरण सो वे साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध सघ उत्तम पुरुष धर्मसें चलायमान होते होवें उन्हकों धर्म समझा करके स्थिर करै तन मन धनसें जिस जिस प्रकारकी वैसे पुरुषोंको तकलीफ होवे उस उस तक्लीफकों दूर करकें स्थिर करै उसें स्थिरीकरण कहाजावे

वत्सलता याने समानधर्मी—आपसें अधिक या कम गुणवाले हो उनकी शक्त्यानुसार आहार—पानी—वस्त्राभूषणादिकसें करकें सेवा बजावै ज्ञान—दर्शन—चारित्रकी, जिस प्रकार वृद्धि होवै उसी प्रकारसें भक्ति करनी यही वत्सलतागुण कहाजाय

प्रभावना गुण सो जिनशासनकी बहुमानता दूसरे धर्मवाले लोग करैं और वो कृत्य देखकर दूसरे जीव धर्म पावें—जैसें कि प्रभूजीके मदिरमें उत्सवादिक करनेसें,

यो धनवान पुरुष संघ निकालकर तीर्थयात्राकों जावे और मार्गमें संघका संरक्षण करे कि जिससें संघके लोग निर्विघ्नतासें अपना आत्मिकधर्म साध सकै ऐसी धर्मकी सहाय करें. जैनधर्म ज्यौं जाहोजलाली पावै त्यौं कार्य किये करे. फिर महंन पुरुष अष्ट प्रकारसें प्रभुजीके शासनकों शोभावंत करें याने पहिला प्रवचनी सो–प्रवचन–आगम–प्रभुप्ररूपित अंग–उपांग–छेद–निर्युक्ति–भाष्य–चूर्णि–टीका इत्यादि तमाम शास्त्र वर्त्तमान कालमें प्रवर्त्तमान होवै वो सभी स्वसमय कहाजावै और परसमय सो षट्दर्शनके शास्त्रोंके पारगामी होवें उनके प्रभावसें जो शास्त्रका रहस्य जिनकों समझना हो वो तमाम समझा सकै. जिन जिन शास्त्रोंके अर्थ पूंछे जाय उन उनके अर्थ बतला सकै उससें जैनशासनकी बहुत प्रशंसा होवें. दूसरा प्रभावक धर्म कथन करनेहारा सो धर्मोपदेश देनेमें अतिशय कुशल होय–जिसके मुखमेंसें ऐसे वचन निकलें कि सुननेवालोंकों उन्हके वचनमें शंका पडे नहीं. सुननेवालेका मन संसारसें उदास होवै जाय और अपना आत्मतत्त्व प्रकट करनेकों तत्पर रहै. मोहनीकी आधीनता अनादिकालकी छूट जाय, मिथ्या हठवाद न रहै, सांसारिक सुख तो दुःख जैसे लगें, आत्मिकसुख वोही सुख मानें, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, गुण आत्माका है वो प्रकट करनेके कार्य होवैं, विषयादिकके अभिलाष शांत हो जाय. कामभोगकी वांछनाओंका नाश होवै, कुबुद्धि कुशास्त्रकी बुद्धि दूर हो जाय. ऐसे उपदेशक पुरुष उपदेश करके शासनकों शोभावंत करे. तीसरा वादी, प्रभाविक सो– जो जो खोटे मतवादी वाद करनेकों आवै, अनेक कुतर्क करें, उसके जवाब ऐसे देवै कि कुतर्कोंका नाश हो जाय–जैसेंके मल्लवादीजी महाराजने बोद्धके साथ वाद किया उसमें बौद्धवालोंसें जवाब न दिया गया उसकी फिक्रमें वो विचारा मर गया–ऐसे वाद करनेकी कुशलतासें जिनशासन शोभा पावै चौथा नैमित्तिकी सो–निमित्तशास्त्र–ज्योतिषशास्त्रका पारगामी होय उससें जो जो निमित कहवै सो सत्य होवै–जैसें भद्रबाहुस्वामीने राजासें कहा कि–सातवे रोज तुमारा पुत्र मरण पावैगा–उसी मुजब हुवा. और वराहमीहरने सो वर्षका आयु कहाथा सो झूठा हुवा. ऐसे भद्रबाहुस्वामी जेसे निमित्तशास्त्रके ज्ञाता वो ऐसी शासनकी प्रभावनाके वास्ते निमित्त प्ररूपकर शासनकी प्रभावना करैं. पांचवा तपस्वी सो अहंकार मकार रहित शांत स्वभावी कठीन तपस्या करै. अपने आत्माका अणहारी गुण प्रकट करनेकों वडी वडी तपस्याए करै उसकों देख-

कर दूसरे पुरुषकों तपस्या करनेकी बुद्धि जागत होवे, तपस्याका अजीर्ण क्रोध जगतमें कहाजाता है वो जिसमें नहीं है. शांतरसका समुद्रही हैं, उसकों देखकर बहुतसें लोग प्रशंसा करे, वो तपस्वी नामक प्रभाविक कहाजाय. छठा विद्या प्रभाविक सो जैसें वज्रस्वामीमहाराज विद्याके प्रभावसें श्रीदेवीके भुवन नगर सें पुष्प लाये जिस्सें बौद्धधर्मका राजा चमत्कार पाया और जैनधर्म अंगीकार किया इस तरहसें शासनकी शोभा बढावे सो विद्याप्रभाविक कहाजाता है सातवा अंजनसिद्धिप्रभाविक—जैसे कालिकाचार्यमहाराजने अंजन योगसें सारा इटोंका गंज चूर्ण डालकर सुवर्णका बना दियाथा, और गर्धभील राजाकों जीतकर अपनी व्हेन सरस्वतीकों छुडा दी. ऐसे शासनके काम करकें शासनकों शोभावंत करें आठवा नये काव्य वगेरे रचनेमें कुशल सो कवि नामक प्रभाविक—जैसें सिद्धसेनदिवाकर महाराजने विक्रमराजाके अगाडी नये काव्य रची कें चार दिशामें चार काव्य कहे थे। एक एक काव्य कहनेसें एक एक दिशाका राज्य दिया; मगर वो तो निष्प्रही थे जिस्से राज्य न लिया ऐसी कुशलतासें शासनकी प्रभावना होवे, बहुतसे जीव धर्म पावे और अपना आत्मतत्त्व साध लेवे उससें उपकार होवे इस प्रकार आठ तरहसें शासनकी प्रभावना निष्प्रहतासें करे, किसी प्रकारसें कुछभी वांछना रखकर न करें वो प्रभाविकगुण कहाजावे यह आठ प्रकारसें दर्शनका आचार पावे, सो लाभांतराय तूटनेसें होता है और जिसकों दर्शनका लाभांतराय हो उसकी ये आचारसें विपरीत वर्त्तना होवे, देवगुरु धर्मकी निंदा करे, धर्ममें कुतर्क करकें शंका करे, खोटे मत अच्छे लगे, लोगोंकी खोटे धर्ममयी बुद्धि करे, और जिनराजजीकी भक्ति करके अहंकार करे कि मै विधियुक्त भक्ति करता हु मै जिनभक्तिमें धन व्यय करता हु वैसा जगतमें कोइ नहीं व्यय करता हैं में उत्साह सहित करता हु वैसा कोइ नहीं करता है ऐसें अनेक प्रकारका अहंकार करे सो अनाचार जानना वैसे अनाचार सेवनसें दर्शनका लाभांतराय कर्म उपार्जन करे

चारित्राचार आठ प्रकारसें है—याने इर्यासमिति सो चलना, बैठना, उठना, सोना, करवट फिराना ये तमाम काम यतना पूर्वक करने चाहियें पहिली रजोहरण या मुहपत्तीस करकें प्रमार्जनकर-दृष्टिसें देखना, और पीछे चलने नगैर की वर्त्तना करनी ऐसें करनेसें कोइभी जीवकों दुःख न होवे, क्यों कि परजीवकों दुःख न दे-

अपने आत्माके सहज स्वरूपमेंही सदा मग्न रहते हैं. कोइभी तरहकी परपरिणतीमें मनकों नहीं जाने देते हैं, सद् चिदानंद स्वरूपमें मनकों प्रवृत्ति करने देते है. आत्माका स्वरूप अरूपी, अक्रोधी, अमानी, अमायी, अलोभी, अशरीरी, अखंड, अगोचर, अलख, अविनाशी, अकल, अगम, अतिंद्रिय, अजर, अरागी, अद्वेषी, अपर, अमदी, अणाहारी, और अनूपम-ऐसें स्वरूपमें मग्न हो रहा है. उसमें शरीरके अंदर रोग हो आवे, कोइ उपद्रव करै, कोइ कटुवचन कह दै, कोइ मारै, कूटै; तोभी उसमें मनकों नहीं प्रवर्त्ताते हैं-वो मनोगुप्ति कहीजावै. वचनगुप्ति सो-विशेष विशुद्धि करनेकों ध्यानादिक करते हैं इससें कुछभी नहीं बोलना पडता है. श्रीमत् वीरस्वामीजीने अभिग्रह धारण कियाथा कि 'केवलज्ञान प्राप्त हो जाने तक किसीके साथ वचन बोलनाही नहीं.' किसी तरहसें न बोलै. वैसी शक्ति न हो तो कोइभी जीवकों दुःख लगै या दुःख होवै वैसे वचन बोलनेकी गुप्ति करै-याने वैसे वचन न बोलै. और बोलै सोभी ऐसा बोलै कि सुननेवालेकों वचनगुप्ति होवै, आपकों वचनगुप्ति होवै वैसे वचन शास्त्रके आधारसें बोलै; क्यौं कि मौनपना धारण करै वो मुनी कहा जाय; वास्ते परभावमै मौनपना होवै वैसा उद्यम करै. लाभ सिवा नाहक बकवाद, वादविवादमें वचन न प्रवर्त्तावै. केवल वचन रहितपना अयोगी गुणस्थानकमें और सिद्धपनेमें हैं. संसारमें रहे हुवे जीवकों ऐसे औसरमें प्रभुजीका मार्ग मिला, उससें ज्यौं बन सकै त्यौं वचनयोगगुप्ति होवै वैसा करै सो वचनगुप्ति कही जावै. कायगुप्ति सो कायाकी प्रवृत्तिकों रोक लैनी. बिलकुल कायगुप्ति तो चौदहवें गुणस्थानकमें हो सकती है. वो गुणस्थान न पाया हो वहांतक पापके काममें कायाकों न प्रवर्त्तावै, कायगुप्ति हो सकै वैसे काममें-कारणोंमें कायाकों प्रवर्त्तावै. जितनी जितनी कायाकी प्रवृत्ति काबूमें रक्खी जाय उतनी रोक लेवै वो कायगुप्ति कही जाती है. ज्यौं बन सकै त्यौं आत्मभावमें वर्त्तै और कायाकी चपलता छोड देवै. स्वस्वभाव सन्मुख होवै उसमें जितना चेतनस्वभाव प्रकट होवै उतनी गुप्ति होवै. इस तरह पांच समिति और तीन गुप्ति मिलकर आठ चारित्रके आचार व्यवहारसें मन-वचन-कायाकी प्रवृत्ति प्रभुजीकी आज्ञासें करनी, जिससें आत्माके स्वभावका आचार शुद्ध होवै. निश्चय चारित्राचार क्या है? आतमा आत्मस्वभावमें स्थिर होवै-देहके स्वभावमें न वर्त्ते, कर्मका नाश होवै, आत्मा जितना जितना शुद्ध होवै उतना उतना चारित्राचार प्रकट

होवे यह चारित्राचार सब प्रकारसें प्रगट होवै तब सब कषाय–क्रोध, मान, माया, लोभ-ये नाश होते हैं और यथाख्यात चारित्र प्रकट होवै ये लाभ चारित्राचारका अंतराय तूटे तब प्राप्त होता है जो पुरुष–जीव चारित्रवतकी निंदा करता है और बोलताहैकि–' खाने पीनेकों न मिला, व्यापार करना न आ सका तब साधु हो बैठे ' ऐसा बोलनेसें, किंवा कोइ दीक्षा लेनेवाला अपना सगा है उसके मोहसें साधु (दीक्षा देनेवाले)की निंदा करे, और दीक्षा न लेने देवै, ओर कहवै कि–'साधुपनेमें क्या फायदा है?' ऐसा बोलकर दुष्ट चिंतवन करै कितनेक नाम हीके–ज्ञानी बनकर बोलते हैं कि–' ये करनेसें कुछभी लाभ नहीं, ज्ञानसें लाभ है ' यु कहते हुवेभी आप विषय-कषायकी प्रवृत्ति छोडते नहीं छोडनेवालेकी लघुता करते हैं. ऐसा करनेसें जीव चारित्रके लाभका अंतराय कर्म बांधता है, वास्ते चारित्राचार जिनसें प्रकट हो सकें वैसें कारण सेवन करै या कोइ दीक्षा लेता हो तो उसमें बन सकै उतनी मदद करै उसके कुटुंबके मनुष्यकों आजीविकाका दुःख होवै तो अपनी शक्ति मुजब दुःख उठा लेवै कि जिसमे दीक्षा लेनेवालेका दीक्षा अंगीकार करनेमें हरकत न होवै, कोइभी तरहसें संयमकी मदद होवै वैसा करै–करावै संयम लेनेकी भावना भावै कोइ संयमवतकी निंदा करता हो तो वो निंदा बंध पडे वैसा उद्यम करै–जैसें कि राजगृही नगरीमें भिखारीने दीक्षा ली उसके वास्ते लोग निंदा करने लगे पीछे अभयकुमार सवा क्रोड सुवर्ण म्होरोंका ढेर किया और सारे शहर भरमें ढूंडी पिटवाइ कि–' जो मनुष्य पृथिवीकाय सो मिट्टी वगैर, अपकाय सो जल, तेउकाय सो अग्नि, वायुकाय सो पवन, वनस्पतिकाय सो कुछ वनस्पति, और त्रसकाय सो हिरते-फिरते प्राणी–इन छउ कायकी हिंसाका त्याग करै उसकों ये सवाक्रोड म्होरें दे दु ' पीछे किसीने म्होरें न ली सब जन विचार करने लगे कि ' संसारी सुख हिंसा किये बिगर नहीं बनता है, तो पैसेका क्या करना ? ' ऐसा शोचकर कोइभी सुवर्ण म्होरें लेनेकों न आया पीछे अभयकुमार मंत्रीश्वरनें बाजारमे आकर लोगोंको इकठे कर पूंछा कि–' यह म्होरें क्यों कोइ नहीं लेते हो ? ' सब लोगोंने कहा–' सोनैय लेकें क्या करें ? संसारमें खाना–पीना–पहनना–ओढना–गाडी घोडे दोडाना ये सब काम हिंसाके बिगर नहीं हो सकते हैं और हमारी संसारसुखके तर्फसे इच्छा हट गइ नहीं इसमें मोहोरेकों क्या करें ' ' पीछे अभयकुमारने कहा कि–तुम लोग मना

क्रोड सोनैये लेकरभी हिंसाका त्याग नहीं करते हो, तो उन भिक्षुकने तो विगर दाम सेंही हिंसाका त्याग किया है उसकी क्यों निंदा कर रहे हो?' ऐसा सुनकर वे सब लोग संयम लेनेवाले भिखारीका बहुत बहुत सन्मान करने लगे. इसी तरह जो संयम लेवे उसके बहुतमान होवे वैसा करना. पुनः जिस वक्त थावच्चाकुमारने दीक्षा ली, उस वक्त कृष्ण वासुदेवजीने सारी द्वारिकामें उद्घोषणा करवाइ (ढंढी पीटवाइ) कि जो कोइ थावच्चाकुमारके साथ दीक्षा लेगा उसके मावापं लडके वगैरः जो कोइ होगा उनकी मैं प्रतिपा पालन करुंगा.' और पीछेसें वैसाही किया. ऐसा करनेसें सहज संयम लेनेवालेके संयम लेनेमें विघ्न होते है वो दूर होते हैं: वास्ते इस तरह संयमके बहुतमान करनेसें संयमका लाभांतराय टूट जावे वैसा उद्यम करना. यह सब अधिकार सर्व संयमका कहा. वैसेंही देशचारित्र श्रावकके बारह व्रतरूपका-भी किसी तरहसें देशसें आचार समझ लेना; क्यों कि व्रत देशसें है तो आचारभी देशसें समझना. वोभी अंतराय कर्म होवे वहांतक देशविरती न ले सकता है. सामायिक पौषधमें तो मुनि जैसेही आठ आचार पालते हैं. वो न पालन कर सकै और जब अंतराय टूटे तब पालन कर सकै—जैसें कि सुव्रत शेठने पौषध लिया था और मकानके चोगिर्द आग लग गइ तोभी वो पौषधसें चलायमान न हुवे—और मकानमें रात्रिभर रहे तो धर्मदृढता देखकर देवने सहायता की, और आप जिस मकानमें थे उसकी आस पासके मकान भस्मीभूत हो गये (और जिस मकानमें थे) उसको कुछ इजा न हुइ. वास्ते पौषध सामायिकमें मुख्यतासें चारित्राचार पालन करना. और पालन करनेकी भावना रखनी. ज्यों ज्यों चारित्राचार पालन करनेकी उत्कंठा होती है त्यों त्यों चारित्राचारके लाभका अंतराय टूटता है. हरहमेशां यही चिंतन करना कि कब यह संसाररूप कैदखानेमेंसें छूट जाउं. इस संसारमें अज्ञानतासें सुख मान लिया है; परंतु विचार करनेसें कुछभी सुख नहीं. अग्निमें लोहका गोला जैसें तप्त हो रहा है वैसा यह संसारमें विकल्परूप ताप रात और दिनभर लग रहा है. धनके, व्यापारके, कुटुंबके, खाने पीनेके, पहनने ओढनेके, और सोनेके—ऐसें अनेक विकल्प-रूप तापसें तप्त हो रहा हुं सो उस विकल्पोंसें कब अलग हो जाउंगा?' ऐसा चिंतवन करकें बने वहांतक तो संसारको छोड देते हैं. और न बन सकै तो संसार छोड देनेकी हरदम भावना कायम रखै. ऐसी भावना भावनेसें जीव हलका होता

है फिर कदापि चारित्र अंगीकार कर मनमें अहंकार धारण करे कि–'मेरे जैसा चारित्रका पालनेहारा कौन है?' तब चिंतन करना कि–'अय जीव! श्रीमन्न् महावीरस्वामीजीनें कैसे उपसर्ग सहन किये है? दो पॉवके बीच अग्नि सुलगाकर खीर पकाइ, संगमे देवने हजारों मनका चक्कर शिरपर रख्खा, जिससें गोठन तक जमीनमें घुस गये, तोभी समभाव न छोडाथा तूने ऐसे कौनसे उपसर्ग सहन किये? कि तू अहंकार करता है रे चेतन! तूने सूर्यकी आतापना ली? या चार महीने तक कूपके अग्रभागपर पूर्वके मुनी काउस्सग्ग ध्यानमें रहते थे उस तरह तूने किया? ढंढणमुनीकों छ महीने तक आहार न मिला तोभी अपना अभिग्रह न छोडा, वैसा क्या तूने बडा संयम पाला है? कि अहंकार करता हैं' ऐसे मुनियोंके उत्कृष्ट कृत्य शोचकर आपके अहंकारका नाश करता है, और आत्माकों आत्मस्वभावमें स्थिर करता है परभावमें अनादिकी स्थिरता हो रही है उसकों हठा करकें स्वपरणतिमें स्थिर होते है वो लाभ लाभांतरायके क्षय होनेसें होता है

तपाचार सो–आत्माका अणहारी गुण है आहार करना सो आत्माका धर्म नहीं, तथापि आहारमें अनादिकालका पुद्गलके संगसें आहारकी आकांक्षा हुवा करती है, वो दशा छोडनेके लिये तप करता है आत्माके षट् लक्षण कहे हैं, उसमें आत्माका तपभी लक्षण है, वो तपका अंतराय कर्म बांधा है वहांतक तपगुण प्रगट नही होता तपका अंतराय जीव हमेशा बांध रहा है तपस्वी पुरुषोंकी निंदा करता है–तपमें कुछ गुण नहीं है, खानेपीनेकों न मिले कि तप करें' इसतरह बकवाद करें कुटुंबके मनुष्य तपस्या करते होवें और उन्हके शरीरमें कुछ तफावत हो जाय तो तपको दूषण देवें, परंतु ऐसा न शोचे कि–'पूर्वकालमें अशातावेदनीय कर्म बांधा है उससें रोग हुवा कोइभी रोग पूर्वके कर्मोदय विगर नहीं हो सकता है, तो पूर्वजन्ममें अज्ञानतासें तप या करनेके भाव न हुवे और तपस्या की नहीं, विषयकषायमें मग्न रहा उसीसे यह अशातावेदनी कर्म बांधा सो उदय आया है तपकाभी अंतराय किया उससें अंतरायकर्मका उदय हुवा कि तपस्या नहीं हो सकती–' ऐसी विचारणा करें फिर तप करकें अहंकार करे कि–'मेरे समान तपस्वी कौन है?' दूसरेसें तपस्या न होती होवे तो उसकी निंदा करे, आपने तपस्या की है उसकी बडाइ करनेकों लोगोंके आगे आपनयसा करनेके लिये तप किया जाहिर करे, मगर ऐसा न शोचे

कि–' मैंने क्या तप किया है ? पूर्व समयमें मुनिवर्ग तप करताथा सो इंद्रियोंके विषय मंद पाडनेके वास्ते करताथा. शरीरके अस्थि–हड्डीयें आवाज देतीथीं. उसका दृष्टांत भगवतीजीमें दिया है कि–पातरोंसें भरी हुइ गाडी चलती हो उस वक्त उन पातरोंका जैसा अवाज होता है वैसा अवाज मुनीमहाराज तपस्या करके शरीर सुष्क किया हो तो होता है. वैसी तपस्या करके शरीरशोषनकी मरजी नहीं; सबब कि शरीर नरम पडता है तो उसको पुष्ट करनेके लिये सदा उद्यम कर रहा है. पूर्वके पुरुष देहको विदेह मानतेथे याने देहको अपना नहीं मानतेथे, तो वैसा भाव नहीं हुया है वहांतक तेरा तप कथन मात्र है. फिर तपस्या करके खानेकी इच्छा किसी प्रकारकी नहीं करतेथे, और तूं तो इच्छा करता है. तेरी इच्छाएं रुकी नहीं तो तूं तपका किस बाबतसें अहंकार करता है ?' ऐसी भावना न करते अहंकारमें मस्त रहै उससें जीव तपका अंतरायकर्म बांधता है. और उसी सबबसें तप करनेका भाव नहीं होता है. अब जिनको तपके लाभका अंतराय टूट गया है उन पुरुषको तपस्या करनेका भाव होता है और वो अच्छी रीतिसें तपका आचार पालन करता है. बारह प्रकारसें तप करनेमें अग्लानभाव करे. ग्लानभाव उसें कहा जाता है कि यह तप कैसें हो सके–मेरेसें न हो सकेगा–शक्ति होनेपरभी उत्साह न करे. फिर तप करे तो बीमारके जैसा भाव धारण करे. ऐसी ग्लानता धारण न करे. जो जो तपस्याएं करे सो उत्साहसें करे. मनभी प्रसन्न रहवे कि–' आज मेरा धन्य दिन है कि आत्माका तप लक्षण प्रकट करनेका मेरा भाव हुवा. फिर यह उद्यममें प्रवर्त्तनेका वक्त मिला. अब जिसतरह मेरे आत्माका तपगुण प्रकट होवे वैसा मै चलुं ' इसतरह करे. पुनः अणाजीवी सो तपस्यासें करके आजीविकाकी इच्छा नहीं याने–' मैं तपस्या करुंगा तो मुझको तमाम लोग मान देवेंगे, या धन देवेंगे, या पुद्गलीक सुख इस लोक और परलोकमें मिलेंगे ' ऐसी आजीविकाकी इच्छा नहीं है. केवल आत्माको कर्मसें मुक्त करनेके लियेही उद्यम करे. पुनः कुशल दीर्गी याने–' श्री तीर्थंकरमहाराजजीने तप करनेका कहा है और आप खुदने कर बतलाया है. और कर्म क्षय करके मोक्षमें पधारे हैं, किसी प्रकार मेंभी तप करके कर्म क्षय करुं ' ऐसी भावनासें वो तप करे सो तपका आचार है इस मुजब तपाचार कहा. ' जो शरीरको दुःख सुख होवे उसको ध्यानमें न लेवे उससें शरीरकी संभाल न रहवे तब शरीर पड जाय तो धर्म-

साधन किस प्रकारसे कर सके ?' ऐसी शंका होवे तो इसका समाधान यही है कि-पूर्व समयमें जिन्होंने तपका अंतरायकर्म बांधा है उन्होंका शरीर नरम पडे, और धर्मसाधन न हो सके, तो वे शक्ति मुजब तपका उद्यम करेगा फिर शरीर नरम होगा तो सर्वथा आहार छोड देवेगा नहीं, कुछ विषय छोड देनेमें शरीरके बलकी जरूरत नहीं है, उससें शरीरकों जितना आधार रह सके उतना आहार लेवेगा, परंतु बत्तीसों रसोइके स्वाद लेनेका भाव न रक्खे फकत जो वस्तु निरवद्य-पापरहित मिलगइ वोही चीजसें निर्वाह कर लेवे एक चीजसें शरीर निभ सकता है तो विशेष चीज किस लिये लेवें? ऐसे विचारसें आहार करता है तोभी उसकों आहारकी इच्छा नहीं' तपस्वी है और तप करे और तपके रोज या दूसरे रोज खानेकी भावनाए करे तो उसकों ज्ञानीजीने तप नही गिना है, कारण कि इच्छाके रोधकों ज्ञानीमहाराज तप कहते हैं, वास्ते हरएक प्रकारसे इच्छा रुक जाय वैसा करना यों रोज तप करु, तपका अभ्यास करु तो वो अभ्याससें मेरी इच्छा रुक जायगी, ऐसे विचारसें तप करे तो उस अभ्याससें किसी रोज इच्छा रुक जावेगी इस लिये इच्छा रुक जानेका उद्यम करना सो अच्छा है जिस जिस प्रकारसें आत्माका गुण प्रकट होवे वैसा उद्यम करना ज्यों बन सके त्यों इंद्रियोंके विषयकी वांछा कम करनी चाहियें, तभी सच्चा ज्ञान कहा जाय, क्यों कि जो आत्माका स्वरूप जानता है कि जानना, देखना ये आत्माका धर्म है तो जो जो खानेकों मिला वो फक्त जान लेना है, उसमें विषयबुद्धि नहीं करनी ये आत्माका काम है वैसे विचारसें वो आहार करता है, तोभी तपस्वीही है, क्यों कि आत्मस्वभाव कायम रहा तप कुछ आहारके त्यागमें नहीं; लेकिन इच्छारोधमें है इच्छारोधके साधनोंकोभी तप कहा है, उससें बारह भेद कहे है, वास्ते जिस प्रकारका तप करनेसें अपनी स्वदशा प्रकट होवे वो तप करना बारह प्रकारका तप उपयोग सहित करे तो ज्ञानीमहाराजने निर्जराका कारण कहा है-यानें कर्म क्षय करनेका कारण कहा है सबब कि जीवकों गाढ कर्मके दलिये बंधाये हैं वास्ते सबसें वेदनीकर्मकों पुद्गल विशेष भाग लेता है, क्यों कि वेदनी-यका प्रकटपना है अब जो जो तप करे उसमें अशातावेदनी हुवे फिगर नहीं रहती वो अशाता तपगुणका अंतराय टूट गया होवे उतनी समभावसें भुक्तता है. समभाव रहनेका बीज कौन है? वीर्य है! वीर्यअंतराय टूटनेसें स्फुरायमान होता है वो वीर्य जिस

जिस आचारमें जीव प्रवर्तै उस उस आचारमें स्फुरायमान होता है. और जो जो वीर्यके स्फुरायमानसें तप होता है, वो प्रसन्नतासें होता है. अहर्निश उसीमें हर्ष होता है. और जब किसीके आग्रहसें या शरमसें होता है, तब प्रसन्नता न होवे—वहां वीर्य स्फुरायमान नहीं होता. तब अशाताके वक्तमें समभावभी जीवकों न रह सकता है. जिनपुरुषोंकों स्वपरका ज्ञान हुवा है उन्होंका भाव तो अपनी आत्मदशामें रहनेका बन गया है; परंतु आत्मभावमें प्रवृत्ति नहीं कर सकता, क्योंकि तप गुणके लाभका अंतराय नहीं टूट गया है. वो जितना जितना टूटता जावै उतना उतना कमती होता जावै और उननी वर्त्तना करता है. वर्त्तना करनेमें अशाता होती है तब बालजीव शोचता है कि: मैने तप किया उससें मुझकों वेदना—आशातावेदनी हुइ, मगर ज्ञानीजन तो शोचते है कि—'कर्म नाश करनेके लिये तप किया है और वेदनीकर्मके उदयसें वेदनी हुइ है, वेदनी कुछ तप करनेसें नहीं होती. तप करनेसें श्री वीरप्रभुजी प्रमुखने वेदनीकर्म वगैरः क्षय किये हैं त्यों क्षय होते हैं. ओर निकाचितकर्म तपस्याके समय उदय आये हैं तो वो तपस्या समभावसें शुरु की है; वास्ते समभावसें वो कर्म भुक्तैगा, उससे कर्मनिर्जरा विशेष होवैगी.' ऐसा शोचकर अशाता वेदनीसें नहीं डरते हैं. अशातावेदनीकी उदीरणाही की है तो उदय आवै उसमें न डरें. ऐसे भाव ज्यों ज्यौं भाववृद्धि पाता है त्यौं त्यौं वीर्यांतराय टूटता जाता है, और वीर्य स्फुरायमान हुवे जाता है. फिर विशेष विशुद्धिवंतकों तो ऐसें विचार करनेही नहीं पडते. वे तो अपनी आत्मदशा जानने देखनेकी है उस रूप वेदनीकों जान लिया करते हैं उसमें राग द्वेष नहीं करते हैं. ऐसी समभाव दशा अप्रमादी मुनिकों बनती होती है. वे तो अप्रमाद दशामें रहकर आनंदमें वर्त्तते हैं. अब प्रमाद गुणस्थानकवंत वगैरः तो आपकों स्वभाव दशा कितनी हुइ है. और कितनी न हुइ है उसकों वढानेके लिये बारह प्रकारसें तप करते हैं. वो अनशन याने अन् अर्थात् रहित और अशन अर्थात् अनाज प्रमुख खाना—वो अनशन तप कहा जाता है. आहार करना सो आतमाका धर्म नहीं है; परंतु पुद्गलके साथ संबंध होनेसें आहार जाने आत्माही करता है, ऐसी दशा अनादिसें बन रही है; मगर ज्ञान होनेसें जाना गया कि आहारके पुद्गल शरीरमें विस्तरते हैं. आत्मा अरूपी है उसमें कुछ परिणमते नहीं तोभी मेरे आहार करना मानता हुं वो अज्ञानदशा है; परंतु मेरी और प्रकारसें चाहियें उतनी विशुद्धि नहीं होती उससें आहारकी इच्छा होती है;

तथापि जितनी जितनी रुकी जाय उतनी उतनी रोक लुं कि अभ्याससें सर्वथा रुक जावै ऐसा शोच कर नवकारसी यानें दो घडी दिन चडने तक, पोरसी याने पहर दिन चडने तक, साढ पोरशीयाने देढ पहर दिन चडने तक, पुरिमड्ढ याने दो पहर दिन चडने तक, अवड्ढ याने तीन पहर दिन चडने तक, या दो वेर खाना, या एक वेर खाना [बेयासना, एकासना] या आयंविल याने छव विगयके त्याग सहित एक वक्त खाना और उपवास सो सर्वथा-बिल्कुल न खाना वो जितने उपवास वैंने उतने दिन आहारका त्याग करना उसमें कोइ चारों आहारका और कोइ तीन आहारका त्याग करै याने पानी-फासुक जल पीनेकी छुट्टी रखै इस तरह तप करना या मरण के समय बिलकुल आहारका त्याग करकें समस्त वस्तुका और शरीरका त्याग करना वो अनशन तप जानना

अब उणोदरी तप याने कम खाना-मतलब कि बिल्कुल नहीं खाना ऐसा आत्माका धर्म है, परंतु अनादी जडकी संगतिसें करकें जीव जडक्रियाकों अपनी मान रहा है उसी तरह देहकोंभी अपना मानता है वो जोर अज्ञानताका है, उस अज्ञानताके जोरसें मुझकों भूख लगी है, मेरे खाना मेरे पीना है ऐसा कहता है फिर शरीरमें रहा है वो जड देह जड पदार्थ है सो जड पदार्थका धर्म सडना पडना विध्वसना याने विनाश होना वोही है आहारके पुद्गल मिलै तभी कायम रहै. अब आहारके पुद्गल दो प्रकारके है याने रोम आहार याने रोमरोमसें आहारके पुद्गलका शरीरमें समय समय आहार कर रहा है सो, और एक कवलआहार सो कवलकरके मुंहसें रखे सो अब रोम आहार सो तो अपने उपयोग सहित और उपयोग रहितभी लिया जाता है, वो तो जीवकों जब तक शरीर है वहातक लेनेका बंध नहीं हो सकता है, तदपि वो आहार किस किस प्रकारसें लिया जाता है ? जो पवन आता है वो ठंडा आता है तो ठंडक लगती है और गरम आता हो तो गर्मी लगती है बारिसकी मोसम होवे तो शर्दी लगती हैं-ये सब गर्मी वगैरे, काहेसें मालूम होता है ? शरीरमें प्रणमते हैं-स्पर्शकर फैलते है उससें ! तो वही आहार है परंतु वो कुछ स्ववशपना नहीं, उसी लिये उसका ग्रहण त्यागमें उपयोग रहता है और नहीं भी रहता. उससें विरती नहीं होती तोभी ज्ञानीजन है सो उसमें राग द्वेष नहीं, करते है फक्त आत्माका जाननेका धर्म है उससें जानलेता है कि यह गर्मीके पुद्गल, यह शीतके पुद्-

गल लेनेका कर्मोदय है वैसे लिये जाते हैं. ऐसा सदाकाल उपयोग रहता है. उन पुरुषकों इच्छाका रोध हुवा सोही तप है; परंतु उतना गुण प्राप्त नहीं होता उससें ठंडी गर्मीमें जाननेरुप रह सकता नहीं; तथापि कुछ ज्ञान हुवा है, और कुछ स्पर्शज्ञान हुवा है उसके प्रभावसें कुछ समभाव रखता है. तो जितना रागद्वेष कमती हुवा वो भी उणोदरी तपका लक्षण है. वास्ते जिस प्रकार रागद्वेषकी परिणती कम होवै उस मुजब उत्तम पुरुषकों करना. अब दूसरा कवल आहार है सो-सर्वथा जिसकी इच्छा उठती है उसका त्याग करता है वो अनशन तप गिनाजाता है. अब बिलकुल आहारके त्यागसें तो शरीर कायम नहीं रह सकता, तब आहार देना चाहिये; परंतु आहार लेनेका धर्म नहीं उससें इच्छा नहीं होती; मगर शरीरको आधार रहनेके वास्ते आहार देना. वो कुछ कम खावै तो भी शरीर कायम रहवै, रागादिककी उत्पत्ति न होवै उससें आहार कम लेवै और इच्छा नहीं या इच्छा है तो वो कमता हुइ उतना निर्मल हुवा और इच्छाके रोधरुप सहजसें उणोदरी तप हुवा फिर जिसकी इतनी विशुद्धि न हूइ वो भी हमेशांके खुराक करत पांच कवल या उससें विशेष कम खानेका अभ्यास करै उसके लिये पीछे सहजसें इच्छारोध हो जाय. फिर दूसरी तरहसें खानेकी चीजें हैं उनमेंसें जितनी चीजें कम लेवै उतना उणोदरी तप होवै. फिर ओछी वस्तु कब ग्रहण हो सके कि कुछ खानेके विषय कम हुवे होवै तो या विषय घटनेका अभ्यास होवै तो; क्यौं कि आहार लेनेका आत्माका धर्म नहीं, तो ज्यौं बन सके त्यौं आपका आत्मधर्म प्रकट करनेका जीवकों अभ्यास करना चाहियें. जैसें जो जो हुन्नर शिखना हो वो वो हुन्नर अभ्यास करनेसें शीखा जाता है, वैसें अभ्याससें सब हो सके. आत्मधर्मकी वर्त्तना अनादीकालसें नहीं जानता है और न वर्त्तना करता है वो अभ्यास करनेसें वर्त्तना होवै तो वो अभ्याससें ज्यों बनै त्यौं अयोगका त्याग करना. आहार बहुत प्रकारके हैं-उनमेंसें जो आहार लेनेसें बहुतसे जीवोंकी हिंसा होवै वो आहार शाकादिक और अभक्षादिकका न करै. [वो बाइस अभक्षके नाम प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणीमें मौजूद हैं. और योगशास्त्रादि ग्रंथोंमेंभी है उनमेंसें देख करकें त्याग करना.] वोभी उणोदरी तप है. और जो आहार-रसवती भक्ष्य है उस रसवतीके अंदरसें थोडी चीजोसें निर्वाह होता है. तोभी जीव निर्वाहमें ज्यादे चीजो विषयके वास्ते उपयोगमें लेता है उससें आत्मा

विशेष लिप्त होता है ऐसा जिसने जान लिया है तो खानेके वख्त निर्वाह जितनी वस्तु ग्रहण कर दूसरी वस्तुपरसें इच्छा उतार डाले वोभी उणोदरी तप है, वास्ते ज्यों बने त्यों निर्वाहके उपर लक्ष देना जितनेक विषय कम नहीं हुवे है उससें विशेष वपरासमें आवे, तो उसके अदरभी जीव निंदा गर्हा सहित जा उपयोग करें तो विषयके कर्म कठिन न बधे जाय तो वै कर्मके रस जितने कमती पडे वो भी उणोदरी तपका ही फल पावे वृत्ति सक्षेप तप सो–जो वृत्तियें वर्तन कर रही हैं उसका सक्षेप करना–याने मर्यादामें आना जैसे कि श्रावकको चौदह नियम धारण करना गुनीको द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन चार। प्रकारमेंसे हरकोइ प्रकारकी आहारादिक वस्तु सबधी धारणा करनी, रोटी गैरा हरकोइ पदार्थ धार लेवे कि जो चीज मिले तो लेनी, या फलाना मनुष्य देवे तो लेना या इतने बजेमें मिले तो लेना या हावभावस देवे तो लेना, इस तरहके अभिग्रह धारण करे जैसी धारणा करनेकी मतलब क्या है कि इसतरहका याग न बनशके और तप बनसके तो अच्छा पूर्ण चित्त तप करनेका नहीं होता तब ऐसे अभिग्रह धारण करके आहारादिककी इच्छाको शात करे पुद्गल भावमें वृत्ति बध हो रही है वो ऐसे अभ्यास करके वृत्तियाका रोक लेवे सो वृत्तिसक्षेप तप कहा जावे

रसत्याग तप याने चार महा विगय सो मदत, मदरा, मास, मक्खिन इन चारोका श्रावक और मुनिमहाराजको सदा त्याग होवे, क्योंकि य वस्तुओं खानेमें उसका य जीवका विनाश होता है उस बातका योगशास्त्रमें हेमचन्द्राचार्यजीने विस्तारपूर्वक निषेध (मना) किया है, उतनाही नहीं मगर हरिभद्रसूरिजीने पचाशक वोरे ग्रथमें मासादिकका निषेध किया है मासाहारी जीवको निर्दयपना तो अवश्य होवे. यदि दयाके परिणाम होवे तो जिसमें बहुतसे जीवोंकी हिंसा होवे ऐसी वस्तु उपयोगमें लेनेका भाव होवेही नहीं. पन्नवणाजीमें जघन्य श्रावक कहे हैं यो इन चार महा विगयके त्यागीही कहे है पुन उपासकदशागम आणन्दजीने मासादिकका त्याग किया है फिर मासाहारसें स्वभाव मिजाजी और गुस्सेदार होवे, ऐसा अभीके डॉक्टरभी कहते हैं मदिरासे करके आत्माकी ज्ञानशक्ति आच्छादित हो जाती है बकम्मद हो के दीवाना हो जावे, दीवाना होकर धन धान्यादिक व्यापारमेंभी नुकशान उठावे, जगतमेंभी निन्दाका पात्र होवे, और परमेश्वरका गुन्हेगार होता है उ-

सें उत्तम पुरुष, साधु और सद्‌गृहस्थ उनका त्याग करता है. पुनः अभीके वक्तमें इंग्रेज और पारसीयेंभी कितनेक मांसका त्याग करते हैं और कितनेक वो टेव-आदत कमती हो जाय वैसा करते हैं ऐसें अनार्य लोगभी जब मांसाहारका त्याग करते हैं, तो आर्यलोगोंकों त्याग होवे उसमें क्या नवाइकी बात है ? ! वास्ते महा विगयका त्याग कहा है. दूसरी छः विगय सो-दूध, दहीं, तेल, गुड, पकवान्न और घी इन छउँमेंसें जितनी विगय त्याग होवै उतनी करै; कारण कि विगय खानेसें विकारकी वृद्धि होती है-उससें कामदेव दीप्त होता है; वास्ते मुनीमहाराज विगयका त्याग करते हैं. परंतु इस समयमें विगयका उपयोग किये विगर शरीर नहीं टिक सके उससें शरीरके निभाव जितनी विगयका उपयोग कर बाकीकी विगयका त्याग करें. श्रावक हैं वोभी हरहमेशां एक एक विगयका त्याग करें; कारण कि मुनीमहाराज तो सब कामके त्यागी हैं उससे बन सके तो सर्वथा त्याग कर डालें; मगर गृहस्थसें वैसा बनना मुश्किल है. गृहस्थकों तो जितनी मूर्छा कामके ऊपरसें उतरती जावै उस मुजब विगयका त्याग करना योग्य है. भावसें जितने पुद्‌गल कमती ग्रहण करनेमें आवेंगे उतना कर्मबंध नहीं होगा. ऐसा चिंतवन कर मुनि और गृहस्थ विगयका त्याग करै. आपका अणहारी गुण प्रकट करनेरूप वीर्य स्फुरायमान होवें वही आत्माका तप गुण प्रकट होवै सो रसत्याग तप कहा जाय.

कायक्लेष तप याने जितना जितना समभावसें कायाका कष्ट भुक्तनेमें आता है सो कायक्लेश तप है. मुनिमहाराज लोचादिक कष्ट सहन करते हैं, विहारमें चलनेका कष्ट सहन करते हैं, सूर्यकी आतापना लेते हैं. वो मुनीमहाराज क्या चिंतवन करकें कष्ट सहन करते है कि अपनी आत्माका स्वरूप जान लियर है, जडका स्वरूप जान लिया है उससें जड जो शरीर उसकों अपना नहीं जानते हैं. आपके वैसे भाव रहते है कि नहीं-ऐसा शोचना. जिस वक्त लोच करै उस वक्त कष्ट पडता है वो कष्ट पडनेसें जिनका मन नहीं विगडता है और समभावमें रहते हैं, तो ऐसे कष्ट स्वाभाविक रोगादिकके आवे उस वक्तभी समभावमें वैसे पुरुष रह सकते हैं. और समभावमें रहनेसें वो कर्म भुक्ता जाता है, उसी वक्तपर आत्माकी अशुद्ध परिणती हठ जाती है, वो निर्जरामें गिनि जाती है, और आत्मा शुद्ध होता हैं. अब जो मनुष्य जानबुझकर ऐसे कष्ट सहन नहीं करते हैं उसकों रोग भुक्तकें या दूसरे कुटुंबके

व्यापारके काम करके कष्ट भुक्तने पडेंगे अनादिकालका जीव संसारमें रुलता है उसमें मोहके वश अशातावेदनीकर्म, अंतरायकर्म बंधे हुवे है वो भुक्ते विगर छूटका नहीं होता, वास्ते उत्तम पुरुष जिस मुजब समभावमें रह सकते हैं उस मुजब कष्ट भुक्तकर आपके कर्म क्षय करते है वो कायक्लेश तप कहा जाता है. समभाव सिवाके कष्ट भुक्तते है वो निर्जरामें ज्ञानीमहाराज नहीं गिनते हैं, कारण कि एक कर्म भुक्तकर पीछे हजारो नये कर्म उपार्जन करता है, उस लिये वो दुःख भुक्ते हुवे काममें नहीं आते हैं, उनसें उसकों सकाम निर्जरा नहीं गिनते हैं. हरएक धर्ममें समझकर काम करनेसें लाभ बतलाया है, और जो जो कष्ट भुक्तना वो समझकर भुक्तना उससें आत्माकों लाभही होवेगा कष्ट भुक्तनेसें आत्माका वीर्य जाग्रत होता है और तभी समभाव रह सकता हैं–नहीं तो समभाव न रह सकता है. वो आत्मवीर्यके अंतराय टूटे विगर वीर्य स्फुरायमान नहीं हो सकता है, वास्ते समभावमें रहकर जो जो बन सके उस प्रकारसें कायाकों कष्ट भुक्ताकर कर्म क्षय करना सो कायक्लेश तप समझना।

संलीनता सो–मुनि महाराज कर सक्ते है–जैसें मुर्गी शरीर संकोचकें सोती है वैसें मुनि महाराज सोते हैं इस तरह सोनेसें अंगोपांग सबकों जाग्रति होती है, निंद्रामें लीन नहीं हुवा जाता है, और आत्मज्ञान आच्छादित नहीं हो जाता है. जैसें सखत निंद्रा आवे वैसें उपयोग लुप्त हो जाता है, उससें ज्यौं कठीन निंद्रा न आवे त्यौं मुनि महाराज सोवें फिर योग संलीनताभी तपमें कहा है, परंतु वो अभ्यंतर तपगिना जावे, उसी तरह वचन काया के योग ज्यौं बन सके त्यौं आत्मस्वभावसें वहार प्रवर्त्तते रोध करकें निजस्वभावमें स्थिर करना, वो योगसंलीनता तप है वो बहुतही श्रेष्ठ तप हैं इस तरहसें संलीनता तप कहा है

यह ६ प्रकारसें बाह्य तप कहा, उसका कारण कि ये तप करनेवालेकों देख करकें यह तपस्वी है यु पहिचान सकें बाकी वस्तुपनेसें तो कर्मक्षय करनेके भावसें यह बाह्य तप करें, वो भी आत्मा निर्मल करें और अभ्यंतर तपसेंभी आत्मा निर्मल होवें अब अभ्यंतर तप काहसें कहा जाता है ? वो कहते हैं;–बाहारसें देखकर तपस्वी कोइ न कह सकें, परंतु आत्मा निर्मल करें उससें अभ्यंतर तप कहा–वो भी ६ प्रकारका है

१ पहिला विनयतप सो-देव-गुरु-धर्मका विनय करना. देव सो अरिहंत कि जिन्होंने ज्ञानावर्णी कर्म क्षय करके केवलज्ञान उपार्जन किया है. जिस ज्ञानसें करके लोकालोकके भाव याने स्वर्ग, मृत्यु, पाताल ये तीनुके अंदर जीव अजीव पदार्थ रहे हैं उन्ह पदार्थोंकी वर्णना हो रही है. समय समय अनंत पर्यायका उत्पात, व्यय और ध्रुव हो रहा है, और गतकालमें वर्तना हुइ, आते कालमें होवेगी और वर्त्तमानमें होती है, वो तमाम भाव एक समयमें जान रहे हैं उसका नाम केवलज्ञान-ऐसा ज्ञान जिनकों प्रकट हो रहा है. दर्शनावर्णी कर्म क्षय करके अनंत दर्शन गुण प्रकट हुवा है, उसमें (सामान्य बोधरूप) केवलदर्शन प्रकट हुवा है. मोहनीय कर्म क्षय करकें चारित्रगुण प्रकट हुवा है सो आत्मस्वभावमें स्थिर होने सो चारित्रगुण समझना. अंतरायकर्म क्षय होनेसे अनंतवीर्यादिगुण प्रकट हुवा है. ऐसे अरिहंत भगवानजीका विनय करना; क्यों कि आत्माका स्वरूप अरूपी है सो केवलज्ञान प्रकट हुवे विगर प्रकट नहीं हो सकता. वो केवलज्ञानसें तमाम जीवके आत्माका स्वरूप प्रत्यक्ष मालूम होता है इससें प्रभुजीने वो स्वरूप वर्णन किया. फिर आत्मा मलीन काहेसें होता है वो स्वरूप बतलाया. पुनः आत्मा निर्मल काहेसें होता है वोभी बतलाया. पुन्यपाप बांधनेके कारण बतलाये. तो उस द्वारा अपन अपने आत्माका स्वरूप जान सकते है, वास्ते प्रभुजी बडे उपकारी है; इस लिये उन्होंका विनय ज्यों बन सके त्यों करना. नहीं कि शक्ति छुपाकर मिजाजमें रहना ?

सिद्धमहाराजजीकों आठों कर्म क्षय हो जानेमें आत्माके संपूर्ण गुण निष्पन्न हुवे है. शरीर रहित है. मोक्षस्थानमें है, पुनः संसारमें आनेका रही नहीं, केवल आत्माके गुणमेंही लीन हैं, न राग, न द्वेष, न क्रोध, न मान, न माया, न लोभ, न विषय, अक्षय, अमर, अजर, अकल, अगोचर, अरूपी आदिक अनंत गुणवंत है, ये सिद्धमहाराजजीका रूप देख अपनी सिद्ध दशा प्रकट करनेकी बुद्धि जाग्रत होनेका हेतु है. पुनः गुणवंतके गुण गानेसें अपना आत्माभी गुणी होता है और अनादिकी भूलसें परवस्तु अपनी मानकर प्रवर्त्तता है वो भाव पलटानेका साधन है. वास्ते सिद्धमहाराजजीका विनयभी जितना बन सके उतना करना. अरिहंतजी और सिद्धजी इन दोनुका विनय करना सो देवका विनय समझना. अब इस क्षेत्रमें अरिहंतजी ओर सिद्धजी कहींभी नहीं विचरते हैं, तो उन्होंकी प्रतिमाओंकाभी विनय करना; स-

पर कि गुणवंत पुरुषोंकी मूर्तिमभी जिन जिन भगवानकी मूर्ति है उन उन भगवानजीके गुणोंका आरोप करना है और वे गुणोंका विनय करनेका है, इससें भगवानकाही विनय किये समान है अब उसमें पहिला कौनसा विनय है कि उन्ह पुरुषोंनें जो जो हुकम फरमाये है वे कुल हुकम अंगीकार करकें अपना आत्मा शुद्ध करनेके उद्यमी होना, और ऐसा उद्यम करनेमें आत्मा शुद्ध होवैगा जिस जिस अंशमें प्रभुजीके हुकम मुजब समभावमें रहेंगे-रहवेंगे यह मुख्य विनय है पीछे उसकें कारण रूप पांच प्रकारका विनय है ' भक्ति बाहाज प्रणीपतीयी'' याने पंचांग प्रणाम करना अर्थात् खमासणा दे कर पांचो अंग इकठे (दो गोठन, दो हाथ, और शिर-ये पांच अंग एकत्र मिला) करकें भगवंतजीकों या भगवंतजीकी मूर्तिकों नमस्कार करना पुन अष्ट द्रव्यसें-सत्तरह द्रव्यस-इक्कीस द्रव्यस या १०८ द्रव्यसें भगवानजीकी पूजा करनी, वो भी प्रभुजीका विनय है " हृदय प्रेम बहुमान " याने हृदयके अंदर भगवतजीके गुण और भगवतके उपकार अत्यंत विचार करके हर्षके मारे रोमराय विकश्वर हो जाव-आनंदका पार न रहवै ऐसा अंतरमें हर्ष हो आवे और प्रभु पर अत्यंत प्रीति जाग्रत होवे, तथा प्रभु प्ररूपित धर्म जो आगमोमें कहा है वे आगम सुनकर- 'अहा ! प्रभुजीने क्या सर्वोत्तम मार्ग दर्शाया है! ' वो सोच कि हर्ष होवे फिर प्रभु जीके चरित्र सुनकर प्रभुजीका वर्त्तन देखकर-'अहा ! अत्यंताश्चर्यकारी भगवंतजीका वर्त्तन है, जो देखकर हर्षित होवे और प्रभुजीके उपकार याद ला करके अंतरगमें प्यार उत्पन्न होवे सोभी प्रभुजीका विनय है

" गुणकी स्तुति '' याने प्रभुजीके गुणोकी स्तुति करनी सो स्तोत्र श्लोक-दोहरे-छंद इत्यादि प्रभुजीके आगे खडे रहकरकें उच्चारन करना, या चैत्यवंदन, नमुथ्थुण, स्तवन, स्तुति वगैर कहना, या प्रभुजीके चरित्र सुने हुवे है जो चरित्रोंमें जो गुण वर्णन किये है वो याद करकें आप स्तवन कर या दूसरेके आगे कहकर उन लोगोंको प्रभुजीके रागी बनाना वोभी भगवंतजीकी स्तुति है. औगुणको ढक देना याने प्रभुजीमें तो किसी प्रकारका औगुण हैही नहीं, परंतु कोइ कल्पित औगुण कहेता होवै तो उनकों समझाकर औगुण बोलना बंध करवा देवै प्रभुजीकी प्रतिमाजी है उन्हांकी पूजा न करते होवे तो उन्होंकों समझा करकें प्रभुजीकी पूजा करते बनाने चाहियें. प्रतिमाजीके अवर्णवाद बोलता हो उसकों समझाकर वो अवर्णवाद न बोलै वैसा करना

चाहियें; क्यों कि प्रभुजी और प्रभुजी स्थापना दोनु समान हैं यूं भगवंतजीनें फुरमाया है. श्री अनुयोगद्वार सूत्रजीमें और आवश्यक सूत्रजीमेंभी स्थापना निक्षेपा कहा है. इस समयमेंभी सामान्य गृहस्थकीभी यादी कायम रखनेके लिये फोटोग्राफ (छबी-तसवीर) बहुतसें लोग करवा ते हैं. फिर वडे होद्देदारोंकी या राजाओंकी या शाहुकारोंकी मूर्ति (पुतले-बावले) भी मरनेवालेके मान्यकी खातिर बैठानेमें आती हैं. तो जब असे मनुष्योंका बहुमान करते हैं और देवकी मूर्तिके बहुमान करने करवानेका खियाल न रख्खै तब आपहीके देवपर आपका राग नहीं है अैसा साफ मालूम हो जाता है. न्यायकी बुद्धि सहजहीसें जिसकों हुइ होगी तो उसका सहजहीसें समझनेमें आयगा कि भगवंतजीकी मूर्ति देखकर भगवंतजी याद आते हैं और भगवंतजी याद आये कि उन्होंक चरित्र याद आवैं, और उन्होंके अद्भुत चरित्र याद आवें तो प्रभुजी कैसें गुणवंत है वो गुण याद आवें, गुण याद करनेसें प्रभुजीने मोक्षमार्ग बतलाया है उस मार्गपर जीवकों किस तदबीरसें चलना वो याद आवें, वो याद आनेसें अपन भगवंतजीके हुकमसें विरुद्ध चलते हैं वो याद आवे, और वो याद आनेही अपनी भूल सुधारनेकी बुद्धि हो आवे, भगवंतजीके उपकार याद आवें तो भक्ति करनेके भाव होवै-सबब कि उपकारीकी जितनी भक्ति न करैं उतनी कम है; वास्ते भगवानजीकी यथाशक्ति भक्ति करनेके भाव जाग्रत होवे वो प्रभुजीका विनय है. जो जो अवर्णवाद बोलते होवें वो बंध होवै वो लाभ समझानेवालेकों होता है, और वोही प्रभुजीका सच्चा विनय है.

"आशातननी हाणी" याने भगवंतजी विचरते होवै उस वक्त छद्मस्थ अवस्थासें याने जब तक केवलज्ञान न पाया हो तब तककी अवस्थामें कितनी प्रशंसा होती हो तो वो अज्ञानी मत्सरी जीव सहन कर शकते नहीं, वैसें जीव अवर्णवाद बोलते होवे या पीडा करते होवै तो अपनी शक्ति स्फुरायमान करकें वो पीडा दूर करनी. मुंहसें बोलता हो तो उसकों समझाकरकें वैसी बातें बोलता बंध कर देना, या प्रभुजीकी परिक्षा लेनेके लीयेभी कितनेक देव पीडा-उपसर्ग-करते है, तो उस देवकोंभी अपनी गुप्तशक्तिसें-मानसिक शक्तिसें दूर हठा देना, या मिथ्यात्वी जीव प्रभु प्ररुपित ज्ञान संबंधी बिगर दूषणकों दूषण कहकर निंदा करता होवे तो वोभी प्रभुजीकी आ-

शातना है उसकाभी समझ समझाकरके आशातनासें दूर करके धर्ममें स्थिर करना फिर अपनेमें शक्ति न हो तो दूसरे कोइ शक्तिवत हो उसकों वीनती करकें उन्हकी शक्ति स्फुरायमान करवा के उन्हकी शक्तिसें आशातना दूर करनी उसी तरह जिन बिंब याने मुर्तिकी आशातना करता होवे वो दूर करना, अब जिनभुवनमें चोराशी आशातना दूर करनी उसके नाम नीचे मुजब —

१ बलगम या थूक डालना, २ झूला वा अकरकें झूलना, ३ क्लेश–लडाइ–टंटा फिसाद करना, ४ धनुर्विद्यां शीखनेका अभ्यास करना याने बाण साधनेमें निशानकी जगह बान लगे वो शीखना, ५ पानी पी करकें कुल्ले करना, ६ तांबूलादिक–पान सुपारी खाना या खाकरजाना, ७ तांबूल खाया होवे वो वहा थूकना, ८ दूसरेकों गालि देना, ९ जेसा वैसा-गाली गलुच ठठाबाजी-दिल्लगी-विभत्स बोलना या शाप देना, १० स्नान करना, ११ शिरके बाल या कोइभी बाल डालना, १२ नाखून डालना, १३ खून डालना, १४ मिठाइ वगेर खाना, १५ शरीरकी चमडी डालना, १६ पित्त वमन करना, १७ सामान्य वमन करना, १८ दांत गिरगया हो सो डाले या दांतोंकों साफ करे, १९ थक लग गया हो तो विश्राम लेवे, २० गव वगेर चोपायेका बाधना, २१ दांतका मैल डालना, २२ आखोंका मेल डालना, २३ नाखून उतारे या उतरावे, २४ गंड-स्थल–गालका मैल उतारे या डालें, २५ नाकका मैल डाले, २६ शिरमें कगाइ फिरावे या सुधारे, २७ कानका मैल डाले, २८ शरीरको सजावे, २९ मित्रको भेटे, ३० घर-ससारी कामका नामा लिखे–या कागज लिखे, ३१ कुछ वेचान करे, ३२ थापन रखे, ३३ दुष्टासनसें बेठे, ३४ छाने थंपे, ३५ कपडे सूखावे, ३६ पापड सूखावे, ३७ वडीयें करे या सूखावे, ३८ राजाके डरसें भाग कर मदिरमें छुप जाय, ३९ अनाज सूखावे, ४० मंदिरमें अपने सगोंकों याद करकें रोवे [भगवानके गुणानुवादका बहुमान करनेके वक्त हर्षके आसु आवे वो आशातना नहीं गिनी जाती है], ४१ विकथा याने राजकथा, देशकथा, भोजनकथा, स्त्रीकथाकी बाते करनी, ४२ शस्त्र बनावे, ४३ चोपाये बाधे, ४४ आग सुलगाके तापे, ४५ रसोइ बनावे, ४६ रुपे म्होरकी परीक्षा करे, ४७ निसिही कहकर ससारक कार्य निषेध किये परभी करे [और निसिहीका भग करे सो व्रतभगके दोष जैसा दोष है] ४८ अपने शिरपर मदिरमे छत्र वगेरे, ४९ जूते–बूट मदिरमें रखवे, ५० चॅवर ढरावे–ढुलावे, ५१

मनकी एकाग्रता न करै, ५२ शरीरकों तेलका मालिश करावै, ५३ सचित्तभोग न तजै, ५४ अयोग्य अचित्त पदार्थ न तजै, ५५ शास्त्र रक्खै, ५६ प्रभुका मुख देखने परभी हाथ न जोडै, ५७ एक साडी उत्तरीय वस्त्र डाले सिवा मंदिरमें दाखिल होवै, ५८ मुकुट पघडी पर पहनकर मंदिरमें जावे, ५९ पघडीका अविवेक करै, ६० फूल तुर्रे वगेरः शिरमें रखकर मंदिरमें जावै, ६१ शर्त करै, ६२ दडे-बॉलकी रमत करै, ६३ गेडीकी रमत-बेटबॉल खेलै, ६४ मंदिरमें जुहार-सलाम करै, ६५ किसीकों टूंकारा करै, ६६ लंघन करनेकों बैठै, ६७ वथ भीडकर लडै, ६८ भांड चेष्टा करै, ६९ शिरवेणी सुधारै, ७० काम-याने खडे घोंटे रखकर कपडा बांधकर बैठै, ७१ खडाउ पहनकर मंदिरमें जावै, ७२ लंबे पॉव पसारकर बैठै, ७३ पीपुडी-सीटी बजावै, ७४ मंदिरमें कीचड करै, ७५ शरीरकी धूल उडावै, ७६ मैथुन सेवै या उस संबंधी चेष्टा करै, ७७ जुगार खेलै, ७८ पानी पीवै-भोजन करै, ७९ कुस्ती खेलै, ८० नवज देखै-दवा देवै, ८१ मंदिरमें किसी जातका सौदा-सट्टा करै, ८२ बिछौना बिछावै, ८३ खानेकी चीज [मंदिरमें] रक्खै, ८४ और मंदिरमें स्नान करै. इसतरहकी ८४ आशातनाएं हैं वो कोइ वख्त किसीकोंभी करनी नहीं चाहियें. अगर कोइ करता हो तो उनकों रोक देना चाहियें. इनके सिवा मंदिरका पैसा खा जाना, या मंदिरके पैसेसे नफा हांसिल करना, या मंदिरका पैसा घरकाममें खर्चना, मंदिरकी चीज लाकर काममें लेनी ये तमाम आशातनाएं गिनी जाती हैं और देवद्रव्य खानेका दूषण लगै; वास्ते मंदिरकी कोइभी चीज अपने घरकाममें न लेनी. इस मुजब देवका पांच प्रकारसें विनय करना कहा है और देवभाषित धर्म जो आगममें लिखा है; वास्ते आगमका विनय करना. याने उसके विनयके साथ उसका ज्ञानभी करना. आगम याने शास्त्र उसकों लिखवाना, लिखवानेके काममें पैसे खर्चना, जो आगम ग्रहण करना हो उनकों नमस्कार, खमासमण देकर लेना. छोडना जबभी उसी मुजब करना. आगमके पुस्तक धरे हो वहां दस्त पेशाव न करना. पाँवके या शिरके नीचे आगमकों न रखना, उनके आगे आहार पानीभी न करना, मैथुन या मैथुनचेष्टाभी न करनी, हास्यविनोदभी न करना. इसतरह प्रभुजीके ज्ञानका विनय करना सो प्रभुजीकाही विनय है. मुख्य विनय तो यह है कि प्रभुजीका हुकम है कि आपके आत्मभावमें रहना. जो जो सुख दुःख होते हैं उनके कर्म पूर्वसमयमें या वर्त्तमान-

समयमें बंधे हैं उस मुजब सुख दुःख होते हैं, ओर आत्माका स्वभाव जाननेका हैं सो जान लेना, परतु मुझकों सुख या दुःख हुवा असा मान कर हर्ष या अफशोष ये न होना चाहियें ऐसे विचारमें रहनेसें नये कर्म नही बंधे जाते हैं ऐसा प्रभुजीने फरमाया है–ऐसा शोचना वही प्रभुजीका विनय हैं, और आत्माका हित होनेका कारण है इत्यादि विनयका स्वरूप प्रभुजीने शास्त्रमें बहुत तरहसें बतलाया है उत्त राध्ययनजीमें विनय अध्ययन हैं वो सुनकर तदनुसार विनय करना

गुरुमहाराजजीका विनय करना सो कैसे गुरुमहाराजका करना ? जिन महाशयने बिलकुल हिंसाका त्याग किया है–किसी जीवकोंभी मारना या दुःख देना बंधही कर दिया है झूंठ बोलना छोड दिया है, कोइभी जातकी चोरी करनीभी त्याग दी है, कोइभी स्त्रीके साथ मैथुनक्रिया करनी त्याग दी है, स्त्रीकों छूनाभी बंध कर दिया है, धनधान्यादि नौ प्रकारका परिग्रहभी सर्वथा छोड दिया है–कौडीभी पास न रखना मंजूर रक्खा है, ऐसे पांच महाव्रतसे करकें युक्त जो मुनीमहाराज प्रभुजीकी आज्ञा शिरपर चडा करकें विचरते हैं–प्रभुजीकी आज्ञा बहार नहीं वर्त्तते हैं–अपनें आत्मगुणमें आनंदित दिलवाले है–विषयकषाय नहीं सेवन करना हैं इससें विषयकषायसें मुक्त हुवे हैं-और कुछ अंशसें रहा हैं उससें मुक्त होनेके कामी हैं–शातरसनेही उद्यमी हैं–शत्रु मित्र तुल्य हैं–वैसे आचार्य, उपाध्याय ओर साधुजी-महाराज, पर जीवपर उपकार करनेकाही पृथिवी पर विचरते हैं और धर्मोपदेश देकर जगतके जीवोंकों अधर्मसे छुडाते है–कितनेक नहीं छुडाते हैं, परतु छुडानेके वास्ते सन्मुख हो रहते हैं–ऐसे उपकारके करनेहार पुरुष है सोही गुरु याने बडे हैं, वास्ते उन्ही महाशयजीका विनय करना जब गुरुजीके पास जाना तब सचित्त पदार्थ न ले जाना, गुरुजीकों देखकर हाथ जोडकें नमस्कार करना, फिर पचाग प्रणाम करकें [इच्छकार सुहराइ सुहदेवसी सुख तप शरीर निराबाध सुख सयम यात्रा निर्वहो छोजी स्वामी शाता छेजी, भातपाणीनो लाभ देशोजी] ऐसा कहकर पीछे (इच्छाकारेण सदीसह भगवन अब्भुट्ठिओह अब्भिंतर देवसियं खामेउ) ऐसा कहकर गुरुजीकी आज्ञा मागकर, आज्ञा मिले कि [खामह] पीछे पचाग प्रणामपूर्वक अब्भुट्ठिओह अब्भितर खामना इच्छकार कहकर शाता पूंछकर अब्भुट्ठिओ खामनेसें कुछभी गुरुजीकी आशातना हुइ हो तो उसकी माफी मागनी है अब जितने वख्त

अब्भुट्ठिओमें आते हैं उतने बोल करनेसें गुरुकी आशातना होती है; वास्ते उतने शब्द त्याग करनेसें गुरुजीका विनय होता है, इस लिये अब्भुट्ठिओ खमानेका उपयोग रखना कि शायद कुछ भूल न हो जाय. फिर द्वादशावर्त्त वंदन गुरुजीकों करना वोभी गुरुजीका विनय है. [वो वंदन प्रतिक्रमणकी अर्थ सहित छपी हुइ किताबमें अर्थसह है वहांसें देखकर समझ लेकें उस मुजब करना.] फिर अरिहंतजीका पांच प्रकारसें विनय बतलाया है उसी तरह गुरुजीकाभी विनय करना-और वंदनभी करना. बाद गुरुजी धर्मकथा करते होवै तो सभा मोजूद होती है तो सभा अंदरके श्रावक श्राविकाओंकों प्रणाम करना. (अगर सभामें बैठे हुवे श्रोताओंसें आनेवाला पुरुष विशेष गुणवंत हों तो धर्मवंत-धर्मज्ञ-धनवंत हो तो वे बैठे हुवे श्रोताएं उन्हकों अव्वलसेंही प्रणाम करैं, और सामान्य हो तो आनेवाला प्रणाम करै ऐसी मर्यादा हैं. उसकी मतलब यही है कि चतुर्विध संघका विनय करनेका है, सो प्रथम विशेषका सामान्यवाला विनय करें और विशेष होवै वो पीछेसें करै.) फिर गुरुजीके पाससें जानेका दिल करै तबभी गुरुजीकों वंदना करके जाना. अगर गुरुजी घरपर पावन कदम रक्खै तो उन्होंके सन्मुख जाना, गुरुजीकों स्वच्छ-योग्य आसन देना, गुरुजीकों देखतेही नम्रतायुक्त नमस्कार करना, गुरुजीकों जिस चीजकी दरकार हो वो चीज हाजिर करना, कीमती चीज हो या अल्प-थोडी कीमतवाली हो सो वोभी अर्पण करना. मार्गमें गुरुजी मिल जाय तोभी नमन करना. गुरुजीकी तेत्तीस आशातनाएं दूर करनी सो नीचे मुजबः—

१ गुरुमहाराजके आगे बैठना, २ गुरुकी आगे खडा रहना, ३ गुरुके आगे चलना, ४ गुरुजीके पीछे नजदीकमें बैठना-५ या खडा रहना-६ अगर चलना, ७ गुरुजीके दोनु तर्फ नजदीकमें बैठना, ८ गुरुजीकी बराबरीसें चलना, ९ या बराबर चलना, (ये नौ आशातनाकी मतलब ऐसी है कि बैठते खडे रहेंते अपनी छिंक उबासी अधोवायुका सरना या श्वासका स्पर्श होवै वास्ते जिस तरह बैठने खडे रहेनेसें थूंक श्वासादिकका स्पर्श न हो सकै उस तरहसें बैठना-खडा रहना दुरुस्त है. अगाडी या बरोबर बैठनेमें गुरुजीकी बडाइ किस प्रकारसें समाली जावै? वास्ते बराबरीसें या, आगे बैठनेसेंभी आशातना होती हैं.) १० आपसें विशेष पुरुषोंकी साथ थंडिल जावै, और उन्होंसें पेस्तर आवै [तोभी आशातना है.] ११ गुरुके

साथ बहारसें आये हुवे शिष्य गुरुजीसें पहिले मार्गके दोष आलोवे (तो आशातना लगै), १२ रात्रिमे गुरुजी बुलावे कि कौन सोता है–कौन जागता है और आप जागता हो तदपि 'मैं जागता हु ऐसा न कहै [तो आशातना लगै.], १३ उपाश्रयमें श्रावक आवे उसकों गुरुजी या आपसें अधिक पुरुपने बुलाये पेस्तर आप बुलावे (तो गुरु हो तो गुरुकी और अधिक हो तो अधिककी आशातना लगै), १४ आहार ल्याकर आपसें अधिक याने बडे हो उन साधुजीकों आहार बतलाये बिगर दूसरे साधुओंको बतलावे, १५ आहारादिककी निमंत्रणा गुरुजीकों न करते दूसरोंकों पेस्तरसें करे, १६ गुरुजीकों पूछे बिगर दूसरे साधुवोंकों आहारकी निमंत्रणा करे, १७ गुरुजीकों पूछे विदून दूसरोंकों आहार देवे, १८ सरस और स्वादिष्ट आहार आप वापरे और गुरुजीकों न देवे, १९ गुरुजीके वचन सुन लिये परभी गुरुजीकों जवाब न देवे, २० गुरुजीके जैसे बडिलने बुलाये परभी कठोर वचनसें जवाब देवे, या कुछभी अवज्ञा होवे वैसा जवाब देवे, २१ गुरुजीने बुलाया तोभी अपने आसनपर बैठ रहकेही जवाब देवे, परंतु तुरत पास न आवे, २२ गुरुजीने पूछा तोभी आसनपर बैठेही क्या आज्ञा है ऐसा कहै, २३ गुरुजीकों या बडिलकों तूंकारेसें बुलावे, २४ गुरुजी कहवे उसी मुजब अविनय बोलकर जवाब देवे, २५ गुरुजी, साधु साध्वी ग्लान–रोगी उनकी सार संभाल लेनेका फुरमावे तब गुरुजीकों कहवे कि आपही सार संभाल कर लो (ऐसा बोलकर अवज्ञा करै.), २६ गुरुजी धर्मकथा कहवे वो शून्य चित्तसें सुने, कदाचित् सुने तो सुनकर गुरुजीका बहुमान न करे (अहा! गुरुजी! आप शास्त्रके परमार्थ क्या बतलाते हो!! धन्य है!!! ऐसा कहना चाहियें सो न कहै), २७ गुरुजी या रत्नाधिक धर्म उपदेश करते तब बोले कि ये अर्थ आप बराबर नहीं करते हो आपकों यथार्थ अर्थ करते नहीं आता है ऐसा कहे, २८ गुरुजी कथा फरमाते हो उस कथाका भंग करके आप दूसरोंकों (सुननेवालोंके आगे) कथा कहवे और समझावे, २९ गुरुजी कथा करते हो और गुरुजीकों और सभाकों कथासें आनंद हो रहा हो और चित्त लीन बन गया हो ऐसा जान लिये परभी शिष्य कहवे कि–महाराजजी! गोचरीका औसर हो गया है वास्ते कथा मोकूफ करो, पीछे गोचरी न मिलेगी [इसतरह बोलनेसें चढती धारा हो वो टूट जाय और व्याख्याका भंग होवे, इससे आशातना लगती है] ३०

गुरुजीने जो जो अर्थ कर बतलाया हो वही अर्थ व्याख्यान मोफ़क कर लिये बाद शिष्य सभाकों विस्तारपूर्वक अपनी हुंशियारी दिखलानेके लिये व्याख्यान करै, ३१ गुरुजीके संथारेकों, या गुरुजीके पाँवकों पाँवका स्पर्श हो जाय तो तुरंत क्षमा न मांगै याने न खमावै, ३२ गुरुजीके संथारे या आसन पर खडा रहवै, या बैठे या सो रहेवै, ३३ गुरुजीसें उंचे आसनपर बैठे या बराबर-समान आसनसें बैठे-इसतरह गुरुजीकी ३३ आशातनाएं हैं सो न करनी. और कोइ करता हो तो उसकों दूर करवानेका उद्यम करना. ये आशातनायें आपमें जबतक अहंकारदशा होवगी तब तकही होवेगी, और अहंकार दूर हो गया होगा तो सहजहीसें आशातना दूर हो जायगी; वास्ते मुरूयपनेसें मैं गुरुजीसें बहुत ज्ञानी हूं, ऐसा अहमेव हो तो दूर करना; कारण कि यदि गुरुजीसें आपमें विशेष ज्ञान होवै तोभी वो गुरुजीकी कृपासेंही हुवा है, तो जिन्होंकी कृपासें हुवा उन्होंकी बडाइ रखनेका खियाल दिलमें न आवै तो तबतक ज्ञान पढा हो तोभी फरशज्ञान नहीं हुवा. जब फरशज्ञान हुवा होवे तो उपकारीका उपकार न भूलै, वास्ते कदापि उपकार भूल गया हो तो याद कर आत्माकी भूल सुधार लेनी, और गुरुजीकी बडाइ चित्तमें ल्याकर विनय करके आशातना दूर करनी, यही आत्माकों हितकारी है. फिर गुरुका द्वादशावर्त्त वंदन करनेमें बत्तीस दोष लगते हैं-छपे हुए प्रवचनसारोद्धारजीके पत्र २९ में लिखा है कि-निम्न लिखित दोष दूर करकें वंदन करना:—

१ अणाढादोष उसें कहते हैं कि-आदरके सिवा गुरुवंदन करना याने आपकों वंदन करनेका हर्ष नहीं है; मगर कुल मर्यादसें करनेकी रीति है उस लिये करै, नहीं कि वंदन करनेसें महा निर्जरा होवेगी, मुझकों ऐसे महान् पुरुषकों वंदन करनेका मोका हाथ लगा है ऐसा भाव ला करकें वंदन करता है. और जबतक ऐसा भाव न आवै तबतक गुरुजीका आदर न हुवा; वास्ते महान् हर्ष और आदर सहित वंदन करना कि अणाढादोष दूर हो जावै.

२ स्तब्धदोष उसें कहते हैं कि-द्रव्यस्तब्ध याने गुरुजीकों वंदन करनेका भाव है; परंतु शूलादिक रोगकी पीडासें चित्त अस्वस्थ हो जानेके लिये चित्त प्रफुल्लित न होवै. भावस्तब्ध याने द्रव्यसें क्रिया करै; मगर अंतरंगका उपयोग वंदनमें बिलकुल न होवै; वास्ते ये दोनु द्रव्य और भाव स्तब्धताकों दूर करकें गुरुवंदन करना

३ मत्रीनदोप उसे कहते है कि –जैसें किराया देकर कोइभी मनुष्यकों कामपर लगाये परभी फक्त मजदूरीके पैसें तर्फही निगाह रखकर काम करे और ज्यौं त्यौं काम करकें चला जाय, वैसें वदन करते व्यवस्था रहित वदन पूर्ण किये विगर चला जावे

४ सपिंडदोप उसें कहते है कि –आचार्यजी, उपाध्यायजी और समस्त साधुजीओंकों इख्ठा वदन करे

५ गोलकदोप उसें कहते है कि –जैसें टीडी जानवर इधरसे उधर घूमते फिरे मगर एक जगह कायम न हो रहवे, वेसें वदनके वक्त आघा पीछा फिरे करे

६ अकुशदोप उसें कहते है कि- जेसें महावत हस्तीकों अकुशस तरफ अपनी मरजी मुजब फिराता है, वैसें गुरुजीकों फिरावे याने आचार्यजी खडे रहे हो या बैठे हो या कोइ कार्यमें हो, तोभी गुरुजीका कपडा पकडकर आसनपर बैठाकि वदन करे

७ कच्छपदोष उसें कहते है कि–वदन करनेके समय कछुवेकी तरह आगे पीछे नजर फिराता हुवा वदन करे याने गुरुमहाराजजी तर्फ दृष्टि न रखते चारो और नजर फिरावे

८ मच्छदोप उसे कहते है कि–मच्छ जैसें स्थिर न रहे वैसें शरीरकी अस्थिरतासें–विचित्रप्रकारकी चेष्टासहित वदना करे

९ मनप्रदुष्टदोप उस कहते है कि–आपके या दूसरेके वास्ते गुरुजी मारफत कार्य सिद्ध न होनेसें मनमें द्वेष होनेपरभी वदना करे

१० वेदिकाबधदोप उसें कहते है कि–दोनु हाथ गोठनके उपर रखकर या दोनु हाथोके बीच दो या एक गोठन रखकर वदन करे–गोदमें हाथ रखकर–दोनु हाथ गोदमें रखकर वदन करे–इसतरह पाच प्रकार वेदिका दोप है

११ भयदोप उसे कहते है कि–वादणे देनेके वक्त भय रक्खे कि नहीं वांदुगा तो गुरजीकों द्वेष होयगा और मुझकों निकाल देवेंगे–ऐसे भय–डरके मारे वदना करे

१२ भजतदोप उसे कहते हैं कि–दूसरे साधु आचार्यजीकों भजते हैं और मै न आउगा तो अच्छा न लगेगा ऐसे विचारसे भजे

ऐसी दशा न हुइ वहांतक ऐसी दशा प्रकट होवे वैसे गुरुजीके पास ज्ञान पढना, सुनना, निर्णय करना. शक्ति हो तो आपही पढे, आपकों जितना ज्ञान हुवा होवें उतना दूसरोंकों पढाना येभी ज्ञानका विनय है. फिर पुस्तक लिखवाना, ज्ञानवानोंका और पुस्तकका विनय करना. वंदन नमनादिक करना, पुस्तककी संभाल रखनी, ज्ञानवृद्धि होनेके काममें द्रव्यकी शक्तिके अनुसार खर्च करना; शरीरकी शक्तिसें ज्ञानवृद्धि होवे वैसी मिहनत करनी, दूसरोंकों ज्ञानके विनयमें सामिल कर देना, ये तमाम ज्ञानका विनय है. इसी तरह दर्शनका विनय करना सो सम्यक्त्व अंगीकार करना, शुद्ध श्रद्धा रखनी, वीतरागके वचनमें शंका न करनी, ऐसे श्रद्धावंत पुरुषका याने साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाओंका विनय उचित विनय करना कि जिससें उत्तम पुरुषकी कृपा होवें और कृपा होनेसें अपनी श्रद्धामें कसर हो सो मिट जाय और शुद्ध होवें-इसका विस्तार गुरुविनयमें लिखा है उस मुजब करना.

चारित्रका विनय सो-मुख्यतासें आत्माका चारित्रगुण है, जो आत्माकों आत्मस्वभावमें स्थिर होना, जो विभावमें अनादिकालका आत्मा स्थिर हुवा होवे वहांसें पलटा करके अपने गुणमें स्थिर होना. जितना जितना परभावका प्रवर्त्तन रुकेगा उतना उतना चारित्रगुण प्रकट होवेगा-यही चारित्रका विनय है. अब ऐसे गुण प्रकट नहीं हुवे वो प्रकट करनेके लिये पंचमहाव्रतरूप चारित्र अंगीकार करना. और वो न बन सके तो श्रावककों बारह व्रतरूप देशविरति चारित्र अंगीकार करना. ये अंगीकार करनेसें अंतरंग चारित्र प्रकटैगा. फिर उतनी दशा ल्यानके वास्ते ऐसे सर्व चारित्रवंत या देशचारित्रवंतका विनय करना. उसकी संगति करनी कि उत्तम पुरुषके संगसें उत्तमता आवे; वास्ते चारित्रवंत पुरुषका विनय शास्त्रमें विस्तारसें कहा हैं उस मुजब करना-वो चारित्रका विनय है. इसी तरह तप धर्मकाभी विनय करना-याने तप अंगीकार करना और तपस्वीका विनय करना सो विनयनामक अभ्यंतर तप कहा जाता है.

वैयावच्च तप सो-जो अरिहंतजी-सिद्धजी-आचार्यजी-उपाध्यायजी-तपस्वीजी-साधुजी-कुल-गण-संघ-नवदीक्षित और रोगीसाधु इत्यादि गुणवंतपुरुषोंका वैयावच्च करना. आहार-पानी-वस्त्र-पात्र-मकान-संथारा वगैरः पाट पटले आदि धर्मोपकरण वस्तु उत्तमपुरुषकों हितकारी जो जो वस्तु चाहियें वो देनी चाहियें,

वो दूसरेके पाससें दिलवानी चाहियें, अगर आप खुदकों ऐसे उत्तमजनोकी पाँवचपी वगैर' चाकरी करनी चाहियें या ऐसे पुरुषोंकी स्थापना-मूर्ति हो उनकी भक्ति-नमन-विलेपनादिकसें करनी योग्य है और वो वैयावच्च है उपर कहेहुवे पुरुष उपकारी है. वे उपकारीओंने आत्माकों कर्मसें मुक्त होनेका उपाय बतलाया है फिर उन्हाकी ज्यों ज्यों सेवाभक्ति करेंगे त्यों त्यों अपनेमें योग्यता आवेगी, और त्यों त्यों गुरुजी विशेष उपाय बतावेंगे उससें विशेष बोध होवेगा और गुन प्रकट होनेमें सहायकारी होवेंगे ये उपकार करनेहारे पुरुषोंकी जितनी वैयावच्च करे उतना आत्मा सफल होता है, क्यों कि उपकारीका उपकार भूलना सोंही मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व गये बिगर आत्माका कार्य होनेकाही नही, वास्ते जितनी जितनी वैयावच्च करेंगे उतना उतना मिथ्यात्व दूर हठेगा और समकित शुद्ध होवेगा. सम्यक्त्व शुद्ध हुवा कि आत्मगुण प्रकट हो चुका इसी लिये वैयावचरूप लाभ होनेका अतराय न टूटा है वहांतक वैयावच्च करनेका दिल न होवेगा, और मन हो आयगा तोभी अतरायके योगमें ऐसे पुरुषोंका योग न बन सकेगा योग बनेगा तो आलस वगैर' बीचमें विघ्न आवेंगे और वैयावच्च न बन सकेगा परतु उद्यम करतें करतेंही अतराय तूटेगा, वास्ते शक्ति समय मुजब वैयावच्च करनेमें वीर्य स्फुरायमान करना-वही कल्याणकारी है

सज्झायतप सो-सज्झाय ध्यान करना, वो पाच प्रकारसें है वाचना याने गुरुजीशास्त्र वाचना देवे उससें गुरुजीकों वाचना देनेरूप वाचनातप होवे और शिष्यकों वाचना लेनेसें वाचनातप होवे पृच्छना याने आप पढे होवे उसमें शका पडे तो गुरुजीकों पूँछकर उसका यथार्थ निर्णय करना [किसी मनुष्यकों खष्ट करनेके लिये न पूँछना-और पूँछे तो वो पृच्छनातप नहीं कहा जाता है] परावर्त्तना याने पढाहुवा हो उनकों पुन पुन याद करना कि जिस्सें भूल जानेका डर न रहवे-और भूलभी न पडे, वास्ते जो पढ लिया हो वो हमेशा याद करना हररोज याद करनेका वक्त न मिले तो एक दिनांतरमें याद करना नया पढना जारी रहवे और पुराना विस्मृत होनाभी जारी रहवे तो जानबूझकर ज्ञानके आवरण लगनेका वक्त हाथ लगे, वास्ते ज्यों पढाहुवा विस्मृत न होवे त्यों, करना चाहियें अनुपेक्षा याने पढी या सुनी हुइ वस्तुके तत्त्वबोधका विचार करना, और वस्तुके परमार्थका अनुभाग-प

निर्णय करना. इसमें विशेष अनुमानशक्ति होवे तो हो सके. जिसने भगवंतजीके वचनोंका अनुभवगम्य निर्णय किया है उसको फिर शंका नहीं रहती. और दुर्बुद्धिवाले उसका मन नहीं फिरा सकते. सज्झाय-ध्यान याने जिसको सम्यक्त्व प्राप्त हुवा हो वही पुरुष सज्झायध्यान कर सके और वही करनेकी जरूरत है. अनुपेक्षा ज्ञानवालेको आत्मा अरूपी है तोभी वो साक्षात आत्मा देखता हो वैसा निर्द्धार हो जाता है. हरएक पुस्तक वांचकर विचार करना वही अनुपेक्षा है और यों किये विदून वांचे हुवे और पढे हुवेका बराबर फल नहीं मिल सकता है; परंतु जब ज्ञानावरणी कर्मका क्षयोपशम होवे तब बन सके. बहुतभी पढे हुवे, क्रिया करते हुवे नजर आते हैं; मगर यह क्या कहा? मेरे किस लिये करना? वो नहीं जानते है, और यह क्रिया किस वास्ते की वोभी नहीं जानते हैं. उसका सबब कि निर्णय करनेकी बुद्धि जाग्रत न हुइ; लेकिन वो बुद्धि जाग्रत करनेकी आवश्यकता है. दुनियांमें कहनावत चलती है कि-" पढे, मगर गुने नहीं." वास्ते वैसा न होना चाहियें. हरएक बातका निर्णय करनेकी बुद्धि रखनी. ऐसी बुद्धि जाग्रत हुइ हो तो उसमें हरएक वस्तु अनुभवगम्य होती है. [उसें अनुपेक्षा कही जाती है.] ऐसे अनुभववाले पुरुष धर्मोपदेश करते हैं वो धर्मकथा कही जावे. धर्मकथा करनेसें परजीव संसारकी उपाधिसें मुक्त होवे, विषयकषाय शान्त होवे, तत्त्वज्ञान होवे, अपना आत्मतत्त्व प्रकट करनेका कामी होवे, या प्रकट करे. वैसा उपदेश देना, या वार्त्ता कहनी अगर सुननी, उसीका नाम धर्मकथा है. जो कथावार्त्ता कहनेसें विषयकी वृद्धि होवे, तथा तृष्णाकी, मोहकी, हिंसा-झूठ-चौरी वगैरःकी वृद्धि होवे उसका नाम धर्मकथा नहीं; मगर पापकर्मकथा है.

"यह पांचों प्रकारके सज्झायध्यानका नाम तो ज्ञान है और इसका नाम तप क्यौं कहा?" ऐसी शंका हो आवे तो उसके परमार्थका तो प्रथम अभ्यंतरतपका वर्णन किया है, वहां दर्शाव किया है उसमें लक्ष देनेसें समझमें आयगा. तोभी सहजसें इस जगहभी दर्शाता हुं कि-तप इसका नाम है कि-कर्मको क्षय करे. तो वांचना प्रमुख करनेसें महा अज्ञानरूप जो कर्म उनका नाश हो जाता है-नाश करनेकी सन्मुखता होती है. फिर अज्ञानपनेसें कर्म नहीं क्षय होते हैं. जब ज्ञानदशा हो सभी कर्मक्षय होते हैं. बाह्यतपके साथभी ज्ञान होवे तो कर्मक्षय होता है, तो ज्ञानमेंही वर्त्तन रखे तो उसमें कर्मक्षय होवे इसमें नवाइ जैसा नहीं है! वास्ते ज्यौं बन सकै

त्यौं सज्झायध्यानमेंही समय निकालना–इससेंही तमाम वस्तुकी प्राप्ति होयेंगी.

अब ध्यान नामक तप–सो ध्यान किसकों कहा जावे? जिसमें मन, वचन, कायाकी एकाग्रता होवे उसें ध्यान कहा जाता है उसमें धन, कुटुंब, व्यापारादि पुद्गलीक पदार्थमें एकाग्रता होवे उसे अशुभध्यान कहा जाता है और त्याग करने योग्य है, लेकिन वो तो सदाकाल जीवकों हो रहा है. वो ध्यान छोडकर आत्मतत्त्वके अंदर एकाग्रता करकें उसमें लीनतासें वर्त्तना वो ध्यान तपमें गवेषन किया है वो ध्यान बहुतसे प्रकारका है उसमें मुख्य धर्मध्यान और शुक्लध्यान कहे हैं और जो जो ध्यान ध्याना वो अभ्यंतर तप है इसका स्वरूप प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें विस्तारसें है सो वहांसें देख लेना यहा पर तो सामान्यतासें कहा गया है

प्रथम धर्मध्यानके चार पाद हैं याने आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और सस्थानविचय. उसमें आज्ञाविचय सो–परमात्माकी आज्ञाका विचारना, जैसी जैसी आज्ञा है वैसा वर्त्तनेकी भावना करनी अपायविचय याने आत्माका जो स्वरूप है सो स्वरूप नहीं वर्त्तता, उसका सबब कि मिथ्यात्वादिकके त्याग करनेमें एकाग्रता करनी विपाकविचय सो कर्मका स्वरूप विचारना–कर्मसें मुक्त होनेका शोचना सस्थानविचय सो चादराजलोकका स्वरूप शोचना

शुक्लध्यानकेभी चार पाद हैं याने पृथक्त्ववितर्क सविचार, एकत्ववितर्क अविचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती, और उच्छिन्नक्रियानिवृत्ति ये ४. शुक्लध्यानके पादमेंसें पहिलेके दो पाद केवलज्ञान प्राप्त होनेके पेस्तर प्रकट होते हैं और दूसरे पिछले दो पाद केवलज्ञान पाये पीछे सिद्धि जानेके करीब वख्तमें प्राप्त होते हैं पहिले पादमें भेदज्ञान होता है, दूसरेमें अभेदज्ञान होता है, तीसरेमें बादरयोग रूका जाता है और चौथेमें सूक्ष्मयोग रूद्ध होता है इसतरह वर्त्तना होती है.

वर्त्तमान समयमें शुक्लध्यान तो हो सके ऐसा नहीं है, कारण कि पूर्वका ज्ञान हो उसें होता है. परंतु इस समयमें धर्मध्यान बन सकता है फिर समाधि प्रमुख है उससें बाह्यके बहुतसें कारण रूके जाते हैं, और विषयसें विमुख हुवे विगर समाधि नहीं बनती है इस कामका अभ्यास करनेके समयसेंही खट्टे, खारे, तीखे, विषयरूप स्वाद त्यज करने चाहियें क्योंकि विषयकाभी त्याग करना चाहियें तथा बाह्यके गप्पे आदि निकम्मी वार्ते करनेकाभी त्याग करना चाहियें. ये तमाम कारण

बंध करकें और श्वासोश्वास रोक करकें एक परमात्मापदमें लीन होनेसें उसीमेंही उपयोग रहता है वास्ते ये समाधि उत्तम है. फिर सहज समाधि होवे वो तो बहुतही उत्तम है; क्यों कि सहजसें दूसरे जडभावमें उपयोग नहीं रहता है और आत्मभाव स्थिर हो जाता है. ये समाधी तो धर्मध्यानके पेटेमेंही है. पुनः कितनेक अक्षरोंका ध्यान करनेकी रीति है वोभी योगशास्त्रमें हेमचंद्राचार्यजीने बतलाइ है, उस परसें प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें दाखिल की है. इससें यहांपर फैलाव नहीं किया, दरकार हो उसमेंसें देख लेवे. परंतु मुक्तिका समीप साधन है वास्ते आत्मार्थिजनोंकों ध्यान-का लक्ष रखना बहुतही उत्तम है. जिस तरह पघडीके अंतमें किसबी पल्ला अच्छा लगता है विसी तरहसें धर्मसाधनमें ध्यान (उसी मुजब) अच्छा मालूम होता है; इसी वास्ते ध्यानका साधन करनेके लिये अभ्यास करनेकी अत्यावश्यकता है. परंतु ध्यानकों अटकायत करनेहारे उपाधिके कारण हैं, वे कारण जब तक है तब तक सहजसें समाधी न हो सकेगी; क्यों कि एकांतमें विचार करनेमें वे कारण याद आवेंगे कि जिस ध्यानमें स्थिर होना होवेगा उसीमें न हुआ जायगा; वास्ते ध्यान करनेकी इच्छावालोंकों ज्यों बन सके त्यों बाह्यके कारणोंका त्याग करना चाहियें, और बहुत जनका परिचयभी त्याग कर एकांतमें मुख्यत्वतासें रहना चाहियें, तब ये ध्यान होना सुगम पडता है, और विशुद्धता हुवे पीछे तो एकांतबीभी दरकार नहीं रहती है. जिन पुरुषका चित्त जडभावसें दूर हो जाता है और अपने स्वभावमें स्थिर हो जाता है, वैसे पुरुष तो सदाकाल जगतका तमाशा देखते है. आत्माका ज्ञानगुण है सो जाननेका है. परंतु जबतक मिथ्यात्वभाव नहीं गया है वहांतक राग-द्वेष सहित देखते हैं, और जो जो देखते हैं उसमें राग या द्वेष हुए विगर नहीं रहता; मगर मिथ्यात्वकी वासना हठ गइ है, जड, चेतन पदार्थका यथार्थ ज्ञान हुवा है और वस्तुधर्मका ज्ञान हुवा है उसके प्रभावसें जिस पदार्थका जो स्वभाव है वो जा-नते है कि पीछे रागद्वेष नहीं होता. ये दशा पाइ है उन्होंकों तो एकांत और वस्ति सब समान है–उन्होंकों ध्यानके लिये एकांत स्थलकी कुछ दरकार नहीं–ये ध्यान तपका स्वरूप कहा है.

काउस्सग्ग नामक तप सो–कायाकों वोसिराके एक स्थानमें रहना और जितनी देर की स्थिरता हो उतनी देर तक प्रभुजीका स्मरण करना.

इस प्रकारके छः अभ्यतर तप हैं दोनु [बाह्य अभ्यतर] तप मिलकर बारह प्रकारसे तप कहा है वो तपका लाभान्तराय मिटनेसें तपा चारकी प्राप्ति होती है, उस तपका अतराय काहेसें होता है ? जब तप करनेसें कुछ शरीर बीमार होवे तब मनुष्यके मनमें आवे कि तप किया जिससें मुझकों पीडा हुइ, अब मैं तप नहीं करुगा ऐसा भाव आनेसें जीव तपका अतराय कर्म बाधता है, तो फिर तप करनेका भाव नहीं होता है लेकिन सच्चा कारण तो अशाता वेदनीकर्म जो पूर्वकालमें बाधा है वो उदय आता है तब शरीरकों बीमारी होती है. जिसने अशातावेदनीकर्म नहीं बाधा है वो तो अच्छी तरहसें तप करता है, परतु उनकों रोग या पीडा नहीं होती वास्ते तप किया और कभी बीमारी हुइ तो ज्ञानीपुरुष शोचे कि मैंनें कोइ जीवकों तप करनेमें अतराय किया होगा कि उससें मुझकों तपस्यामें वेदनी कर्मका उदय आया, जिससें तपस्याकी वृद्धि न हो सकेगी अब तो वेदनीकर्म क्षय करनेकों तैयार हुवा हु, वास्ते वेदनीकर्म समभावसें भुक्तना कि फिर नया कर्म न बधा जाय ऐसें समभावमें रहकरकें तपस्यामसें चित्तकों नहीं हठाते हैं वैसें पुरुषकों तपका अतराय टूटता है और तपाचारका लाभ होता है और जो ऐसा शोचता है कि तप करनेसें बीमारी हुइ तो वो कठीन कर्म बाधता है. साविर्तीके लिये छपी हुइ अर्थदीपिकाके पत्र ७२ में रज्जा साध्वीकी कथा है कि.—

भद्राचार्यके गच्छमें पाचसो साधुजी और बारहसो साध्वीजीए हैं उनके गच्छमें-कांजीका पानी, चावलका ओसामन और तीन उबालेका पानी ये तीन प्रकारके पानी सिवा और कोइ प्रकारका पानी नहीं वापरते हैं कर्मयोगसें रज्जासाध्वीके शरीरमें गालित कुष्ट हुवा उस वखत दूसरी साध्वीओयोंने कहा कि–' दुकर! दुकर!" ऐसा सुनकरकें रज्जासाध्वीने कहा–" ये क्या मुझकों कहते हो ? इस प्रासुक जलसेंही मेरा बदन बिगडा है." ऐसा वचन सुनकर दूसरी साध्वीओंके मनमें आया कि–"सायद हमकोंभी प्रासुक जलसें गलित कुष्ट न हो आवे !" ऐसा भाव मालूम हुवा परतु एक साध्वीके मनमें आया कि–" कभी मेरा शरीर अभी या पीछे सडकर टुकडे हो जाय तोभी मैं उष्ण जलही पीउंगी उष्णजल पीनेसें शरीरका नाश नहीं होता, परतु पुर्वकृत अशुभ कर्मोदयसेंही शरीरका नाश होता है–या रोग होता है " ऐसा शोच करकें खेद करते लगीं कि–" मुझकों धिकार हो ! इस पापिणीने न बोलने योग्य वचन कहा जिससे

आपने पाप बंध बांधा और औरोंको कर्मबंधनकी कारणीक बनवाइ. ऐसा भावनेसें शुद्ध अध्यवसायकी गाथा चिंतवन करते घातीकर्म नाश करकें केवलज्ञान प्राप्त किया. और केवलज्ञानके प्रभावसें समस्त साध्वीयोंका संदेह दूर हो गया. पीछे रज्जा आ- र्याका संदेह पूँछा कि इसकों किस सबबसें कुष्ट रोग हुवा ? " केवली साध्वीजीनें कहा कि " इस बाइने मकडीके सहित स्निग्ध भोजन किया उसके प्रतापसें रक्तपित रोग हुवा. फिर सचित्तजल ले करकें श्राविकाकी लडकीका मुँह प्रक्षालन किया उससें शासनदेवीने इस रज्जा साध्वीपर गुस्सा करकें शिखावन देनेके लिये आहारमें कुष्ट रोग हो आवे वैसा चूर्ण डाल दिया, उसके मारे कुष्ट पैदा हुवा: परंतु प्रासुक पानीसें नहीं हुवा है. " ऐसा केवलज्ञानी साध्वीजीका कथन सुनकर रज्जासाध्वीने कहा-" हे भगवती ? मुझकों आलोयण दो कि मै शुद्ध होउं." केवलज्ञानी साध्वीजीनें कहा-" तुं शुद्ध हो सकै ऐसा कोइ प्रायश्चित नहीं है; क्यौं कि तूने क्रूर वचन कहे हैं उससें निकाचित कर्मका बंध हुवा है-उस कर्मके मारे कुष्ट, भगंदर, जलोदर, दमा, अतिसार, कंठमाला आदि महान् दुःख अनंत भव तक तुझकों भुक्तने पडेंगे. " 'इस तरह कह कर दूसरी साध्वीजीयोंकों आलोयणा दी, उससें साध्वीजीएं शुद्ध हुइ. और रज्जा बहुत भवभ्रमण करैगी. ' दिखिये ? जैसें पानीका दूषण निकालनेसें बुरे हाल हुवे और भवभ्रमण बढ गया वैसाही तपकों दूषण देनेसें होता है ये खूब समझ लैना, दुःख सुख सब कर्माधिन हैं और कर्माधिनता विचारनेसें एक साध्वी केवल- ज्ञान पाइ, एक साध्वीने कर्मविचार न किया और पानीका दूषण चिंतवन किया तो निकाचित अशुभकर्म उपार्जन किया; वास्ते ऊपर कही सो कथा याद रखकर तपकों दोष न देना. तप है सो तो कर्मक्षय करनेवाला है. उसकों अज्ञानतासें उलटे मार्गपर जोड देनेसें उलटा होता है; इस लिये वैसा जीवमें विकल्प संकल्प न करना. शरी- रकी निर्बलतासें तप न हो सकै तो चिंतवन करना कि मेरा तप अंतरायकर्म कब टू- टैगा कि मैं तप करुं. ऐसी भावनासें अंतराय कर्म टूटैगा, और तपाचारका लाभ होगा. इस तरह बारह प्रकारसें तपाचार है.

वीर्याचारका अंतराय टूटनेसें वीर्याचारका लाभ होवै, उससें दूसरे चारों आ- चारमें वीर्य स्फुरायमान होवै. और पीछे जो जो धर्मकरणी करै वो उत्साहपूर्वक और हर्षपूर्वक करै-वेंठरूप न करै. और जिसकों वीर्यके लाभका अंतराय होवै

उसको वीर्यशक्ति हो तोभी धर्मकरणीमें वीर्य स्फुरायमान न कर सके धर्मकरणीके वक्त कहेगा कि–'मेरेमें ताकत नहीं' और संसारीकाम करना हो उसमें तत्पर होवे. जैसें कि तमाशा देखना हो तो दो घंटे तक खडा रहकर तमाशा देखे, और प्रतिक्रमण खडे खडे करना हो तो वदमाश वहेलकी तरह ताकतदार होनेपरभी वैठकर प्रतिक्रमण करे, और कहवे कि मेरेमें शक्ति नहीं, शास्त्रमें तो बेठकरके प्रतिक्रमण करनेवालेको आयंबिलका प्रायश्चित कहा है, वैसा जानबूझकर वैठे हुवेही प्रतिक्रमण करे गुरुजी कहवे तोभी प्रमाद न छोडे गुरुजीको या प्रभुजीको वंदन करनेका या खमासमण देनेका जैसे शास्त्रमें कहा है वैसे न देवे, और कभी देवे तो सत्तरह जगह पूजनेका (आपके अगम) कहा है वैसें न पूजे पापध सामायकमें ध्यान करना चाहिये सो न करे प्रतिक्रमण भणाना हो तो कहेगा कि पूरा मेरेसे न भणाया जायगा, इसतरह प्रमाद करे पुन ज्ञानाभ्यास करना हो तो प्रमाद करके न पढे–न वाचे या न किसीको सुनावे या न आप सुने ये तमाम वीर्याचारके लाभांतरायका उदय है. इसतरह प्रमाद करनेसें या दूसरा धर्मका उद्यम करता होवे उसको रोकदेनेसेंभी अंतरायकर्म नया बंधा जाता है उसी तरह मंदिरमें, धर्मशालमें, स्वामीवत्सलमें और विद्याशालामें कुछ काम करना हो तो उसमें प्रमाद करे, और सांसारिक कार्यमें कटिबद्ध रहवे–येभी अंतरायकेही फल हैं और जिसका अंतराय टूट गया है वो तो जो जो काममें आत्माका कल्याण होवे, आत्मगुण प्रकट हो सके उसीमें वीर्य स्फुरायमान करे, और अति प्रसन्नतासें देवगुरुके हुक्म मुताबिक धर्मकरणी [यथार्थ] करे, वीर्यशक्ति न छुपावे जो जो काम करने है उसमें मनको बलिष्ठताकी आवश्यकता है तपस्या करनी ये दुष्कर है, क्यों कि तपस्यामें शरीर थोडा या बहुत नरम पडे विगर न रहेगा मगर तपस्या करनेमें वीर्यशक्ति स्फुरायमान होती है तो उससें मन बलिष्ठ रहता है, उससें करके कष्टपर लक्ष नहीं जाता और सुखसें तप होता है वास्ते मनकी बलिष्ठता होवे तो जो किये जाय मन निर्बल हो तो शरीर बलवान होनेपरभी वो मनुष्य तपस्या न कर सकेगा परंतु ये तमाम कब होता है कि वीर्याचारका लाभांतराय टूट गया होवे तभी धर्मकार्यमें वीर्य स्फुरायमान कर सकता है, क्यों कि धर्मकार्यके लाभका अंतराय टूटे विगर धर्मकार्यमें वीर्य स्फुराया नहीं जाता लाभांतराय सद्गुरुजीकी मेहरबानीसें टूटता है, वास्ते प्रथम तो उत्तमजनोंकी

संगत करनी उसमें वीर्यांल्लास लाना चाहियें. जो पहिले तो घुणाक्षर न्यायसें होगा याने किसी जगह किसी वस्त लकडेमें जानवरके जरियेसें अक्षर पड जाते हैं वो स्वाभाविकतासे पड जाते हैं—घुणा नामक लकडेमें एक जातका कीडा होता है उसके योगसें अक्षर जैसा आकार पडता है, वैसें स्वाभाविकतासें वैसे पुरुषका भवितव्यताके योगसें संयोग-मिलाप होता है और कुछभी सबबसें जानाआना होनेसें प्रीतिभाव [आग्रसें] होता है, फिर उनकी अमृत जैसी वानी सुननेसें जो मिथ्यात्वमार्ग है देखे तो विशेष प्रीतिभाव पैदा होता है; और ऐसी प्रीतिसें शिथिल अंतराय हो तो दूर हो जाता है. और संसारमें वीर्य स्फुराता हो तो वहांसें परावर्त्तमान हो करके धर्ममें वीर्य स्फुराया जाता है त्यों त्यों अभ्याससें कर्म टूट-टूट जाता है. इस प्रकार वीर्याचारकी वृद्धि होती है—उस मुजब स्वरूप कहा. ये पांच आचारमें जिस जिस आचारका लभांतराय टूटा होवे उस आचारके लाभकी प्राप्ति होती है. संपूर्ण आचारकी प्राप्ति तो जब क्षायकभावयुक्त सब प्रकारसें अंतराय टूट जाय तब होती है और केवलज्ञान होता है. उसके पहिले क्षयोपशम भावसें क्रमसें करके बारह गुणस्थानककी प्राप्ति होती है, और उसमें क्रमसें करके आचारकी वृद्धि होती है.

दान और शील इन दोनुका स्वरुप कहा. तपका स्वरूपभी तपाचार में बहुत विवेचनके साथ बतलाया, अब भावका स्वरूप कहता हुं. भाव पांच प्रकारके हैं—याने उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायकभाव, परिणामिकभाव और उदायकभाव—ये पांच प्रकारके हैं उसके ५३ भेद हैं—वो प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें पत्र १३३ में कहे हैं. वहांसें देख लिजीयें. अगर तो भावप्रकरण नामक ग्रंथ है उसमें गुणस्थानकके अंदर विवेचन किया है वहांसें पढ लीजीयें. यहां तो नाम मात्र कर्मग्रंथके आधारसें और अनुयोगद्वारजीमेंभी इसका विस्तार है उन सभीपर लक्ष रखकर लिखता हुं:—

पहिले उपशम भावसें मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायके दल उदय आये हुवे क्षय करै, उदय न आये हो तो उन कर्मके दल उदीरणा करके उदय लाकर क्षय करैं, उदीरणासेंभी उदय न आवे वैसें कर्मका अध्यवसायकी विशुद्धिसें उदय न आ सकै वैसे कर रक्खै. अब पेस्तरके तीन भावमें कर्मके दल उदय आये क्षय करना, उदीरणा कर उदय लाकर क्षय करना, विशुद्धिसें उदय न आ सके वैसे कर डालना, और उपशमाना, ये सब बातनोंका होना कृत्रिम नहीं; परंतु स्वाभाविक आत्मा-

की विशुद्धतासें हो जाता है परमात्माजीके बनाये हुवे तो तत्त्वकी श्रद्धा हुइ और जडभावपरसें मोह ज्यौं ज्यौं उतरता हे त्यौं त्यौं आत्म स्वरूपका ज्ञान होता है, और जो ज्ञानके प्रभावसें आत्माके सुखका आस्वादन होता है और वो सुखका आस्वादन होनेसे धन-कुटुंब-स्त्री-शरीरपरसें मेरेपनेका ममत्वभाव हठ जाता है शत्रु मित्रपर समदृष्टि हो जाता है, विषयसें उदास रूचि है. ऐसी विशुद्धि होनेसें मिथ्यात्व अनुतानुबंधीका उपशम होता है उससें अंतरंग शुद्ध होता है आत्म विचारके सिवा दूसरी चीजपर राग नहीं होता आत्मामें रमण करने सिवा दूसरा सुख मनकों नहीं रुचता है, मन बहुत निर्मल हो जाता है वो उपशमभावके समकितका काल अंतर मुहूर्त्तका है उपशमभावकाभी चारित्र होता है-जो आठवेंसें ग्यारहवे गुणस्थानकमें होता है, उसकाभी काल अंतर्मुहूर्त्तका है फिर उपशम चारित्र रहेता नहीं,, उतनी वेर वीतरागदशा पाता है-राग द्वेष सहित होता है ऐसे जो स्वभाविक विशुद्धभाव सो उपशमभाव, वोभी शुद्धभाव भावचक्रमें पाच वेर होता है ऐसे भावकी प्राप्ति लाभान्तरायकर्मके क्षयोपशमसें होती है.

दूसरा क्षयोपशमभाव-वोभी जो जो कर्म उदय आये हैं वो क्षयकरता है और उदय न आये हो तोभी उदय आने जैसे हो उसकों उदीरणा करकें उदय स्याकर क्षय करता है जो उदीरणासेंभी उदय न आ सके वैसे हैं तो उसकों उपशमाता है-उसका नाम क्षयोपशमभाव है ये क्षयोपशमभाव चार कर्म (ज्ञानवरणी, दर्शनावरणी, मोहनी और अंतराय ये चार) का क्षयोपशम होनेसें आत्माकी विशुद्धि होती है, जैसें वादलसें सूर्य छा गया-आच्छादित हो गया हो वो ज्यौं ज्यौं वादल दूर हटते है त्यौं त्यौं प्रकाश प्रकाशमें आये जाता है, वैसें ज्ञानावरणीकर्मके आवरण ज्यौं ज्यौं हठते जाते है त्यौं त्यौं ज्ञानका प्रकाश विशेष उपयोगरूप होता जाता है और दर्शनावरणी कर्मके आवरण हठनेसें सामान्य उपयोगरूप दर्शनका उपयोग निर्मल होता है मोहनीकर्मकी दो प्रकृति हैं याने दर्शनमोहनी और चारित्रमोहनी उसमें जब दर्शनमोहनीका क्षयोपशम होवे तब समकित-शुद्ध यथार्थ श्रद्धा होती है, और उसका आवरण लगनेसें विपरीत श्रद्धा होती है, वो आवरण ज्यौं ज्यौं हठ जाते है त्यौं त्यौं शुद्ध श्रद्धा होती है वस्तुका निर्णयभी यथार्थ होता है फिर चारित्रमोहनीका क्षयोपशम होनेसें इच्छायें रुकती जाती है, कषायकी परिणति शांत होती हैं, विरति

प्रमुखके भाव जाग्रत होते हैं, जो जो वस्तु त्यागता है उस परसें इच्छा हठ जाती है, अंश अंशसें आत्मभावमें स्थिरता होती है और अंतमें पांचवे गुणस्थानसें लगाकर दशमे गुणस्थान तक क्षयोपशमभावका चारित्र है. इसतरह मोहनीकर्मका क्षयोपशम होता है, तब अंश अंशसें वीर्यादिशक्ति (आत्माकी) जाग्रत होती है, उसके प्रभावसें आत्माका वीर्य आत्मधर्म प्रकट करनेके काममें स्फुरायमान होता है. मलीन क्षयोपशमसें संसारी काममें शक्ति स्फुरायमान होती है. इसतरह जब कर्मका क्षयोपशमका भाव होता है वो क्षयोपशम शुद्ध होनेसेंही आत्माकी परिणती जाग्रत होती है और वो जाग्रत होनेसें जो जो धर्मकरणी होती है वो भाव सहित होती है. पीछे भावके भेद बहुत हैं. संयमके असंख्यात स्थानक है उनमेंसें जितना जितना क्षयोपशमभाव होवे उतने संयमस्थानक प्रकट होते हैं. इसतरह अल्पमात्र क्षयोपशमभावका स्वरूप लिखा है.

क्षायकभाव वो तो कर्मका बंध, कर्मका उदय, और कर्मकी सत्ता ये तीन प्रकारसें कर्मका नाश करता हैं. ये क्षायकभावका प्रथम समकित जब प्राप्त होवे तब अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, समकितमोहनी, मिश्रमोहनी, मिथ्यात्वमोहनी यह सातों प्रकृतियें सत्ता, उदय और बंधमेंसें नाश पाती हैं, तब क्षायकभावका समकित प्रकट होता है और वो प्रकट हुवे बाद नहीं जाता है. परंतु ऐसी विशुद्धि तो उपशमभाव, और क्षयोपशमभाव ये दोनुसें विशुद्धि होती है. उसबाद जब केवलज्ञान पानेके हो तब वो पुरुष क्षपकश्रेणी याने कर्म खपानेकी—क्षपक करनेकी पंक्ति, एक पीछे दूसरी प्रकृति क्षय करनी, अनुक्रमसें चारों कर्मका नाश करना वो श्रेणी कोइ चौथे—पांचवे—छट्ठे—सातवे—आठवे गुणस्थानकसें करे सो बारहवे गुणस्थानक तक क्षायकभावसें कर्म क्षय करते हुवे चले जाते हैं. क्षयोपशमभाव तो चलायमान होता है और पुनः कर्म बंधे जाते हैं. क्षायकभाव याने जो कर्म क्षय किये वो पीछे पुनः नहीं बंधे जाते हैं, वैसी क्षायकभावकी विशुद्धि है; वास्ते हरएक प्रकारसें क्षायिकभाव होवे तो कल्याण होवे. क्षायकभाव चार कर्मका नाश करता है; तब केवलज्ञान प्रकट होता है. अष्टकर्म नाश होवे, तब कर्मरहित होके सिद्धपद पाता है—पुनः संसारमें आनाजाना होताही नही, ऐसे विशुद्धपदकी प्राप्ति होती है. इन तीन प्रकारके भावमेंसें जो कोइ भाव प्रकट होवे वो जब ये भाव पानेका लाभांतराय टूट गया हो तब प्रकट

होवे. और जिसको ये गुण प्रकट होनेका लाभांतराय है वहांतक उसको ये भावमेंसे कोइ भाव प्रकट नहीं होवेगा. इनमेंसे कोइ भावकी प्राप्ति हुवे बिगर जो जो धर्मकरणी करेगा वो द्रव्यक्रिया है और द्रव्यक्रियाके प्रभावसें पुन्य बधेगा–ससारीसुख पावेगा; मगर मुक्तिमेहेलमें रमण करनेका उससें न हो सकेगा जब क्षायकभाव आवेगा तबी मुक्तिरूप स्त्रीकी मुलाकात करेगा क्षयोपशम क्षायकभावके कारणरूप है, उससेंभी कर्म नाश होवेंगे और उपशमभावसेंभी कर्म क्षय होवेंगे. इन दोनुमेंसें एकभी भावका समकित आनेसें निश्चेयसें मुक्ति तो होवेगी. और ये भाववालेको अंतमें क्षायकभावभी आनेका तो सही, वास्ते ये भावभी होवे तो कल्याण होवे इन तीनों भावमें समकित पाये बिगर पूर्वकालमें मेरुपर्वत जितने ओघे, मुंहपत्ती धारण की, मगर जीवको मुक्ति न मिली ये भाव बिगर शुभ भावसेंभी जीव नौ ग्रैवेयक तक जाता है, और पुद्गलीक सुख भुक्तता है वास्ते पुद्गलीक सुख भुक्तनेका भाव आवे, परंतु मुक्तिसुख भुक्तनेका भाव आना दुष्कर है मुक्तिसुख भुक्तनेरूप भाव आया कि न आया उसकी पक्की परिक्षा तो न हो सके, मगर आत्मिकभाव आनेवालेके लक्षण शास्त्रमें बतलाये हैं वो देखनेसें अनुमान हो सकेगा

ये तीन भाव हैं सो आत्माको निर्मल करनेहारे हैं चोथा उदयीक भाव है सो कर्मके उदयसें प्राप्त होता है और उसके एकीस भेद हैं ये भावसें अशुभकर्म बंधे जाते हैं. और आत्मा मलीन हो मिथ्यात्व, अज्ञान, कषाय, लेश्या, इत्यादि ये सब होते हैं वो भावका यहां प्रयोजन नहीं है परिणामिक भाव है वो तो स्वाभाविक है वो सुख या दुःख कुछभी करता नहीं भावकी संपूर्ण प्राप्ति तेरहवे गुणस्थानसें आत्माको संपूर्ण लाभांतरायका क्षय होनेसें होती है ये प्राप्ति न होनेके सबब कि जीव अपने अहंकारमें गुल्तान हो आत्मिकगुण प्रकट करनेकी इच्छा नहीं करता है, और जो जीव आत्माके गुण प्राप्त करनेमें सन्मुख हैं या हुवे हैं उनको रोक देता है, उनकी निंदा हीलना करते हैं–ऐसे जीव लाभांतरायकर्म बांधते हैं फिर ससारमें धन वगैरः कोइ दातार हो किसीको दे देता नहीं तो उसको न देने दे, लेनेवालेके दूषण हो न हो तोभी वो तो दूषणही बतला करके उनको देनेमें अंतराय करे उससें लाभांतराय कर्म उपार्जन करे जैसें भिखारी मुठीभर जुवारीके लिये दरबदर फिरता है; मगर लाभांतरायसें मिल नहीं सकता. वैसी तरह जो मनुष्य एसे मनुष्यको देनेमें अंतराय करवाते हैं उनको भीख मागनेसेंभी लाभ न मिलेगा वास्ते हरएक मनुष्यको

कोइभी जीव दुःखी हो तो उसकों सुखी करनेकी इच्छा रखनी, और अपनी जितनी ताकत हो उस मुजब उसकों दे करकें संतोष देना. पुनः दूसरे अपने मिलापीकों कहनेसें उसका दुःख दूर होता होवे तो उसकों कह करकें कुछ दिलवा करकें उसका दुःख दूर करना. फिर सुपात्र पुरुषके अंदर उत्साह दान देनेके लिये रखना और वैसेकों अवश्य दान देना, जिस्सें लाभ मिलना बहुत सुलभ होता है. एककों राजा और एककों रंक देखते हैं, उस नफावतका सबब येही है कि उसने पूर्वभवमें सुपात्रकों देखकें दान दिये हैं उससे राज्यपद मिला है. और जिसने पिछले भवमें कुछ सुपात्रमें न दिया हो और लाभांतरायकर्म बांधा हो उससें उनकों कुछभी न मिलता है. कितनीक दफे देनेवालेका देनेका भाव हुवा है, तोभी लेनेवालेनें लाभांतरायकर्म बांधा है उसके प्रभावसें लेनेमें विघ्न आते हैं, और लाभ नहीं मिल सकता है. ये लाभांतरायकर्मका फल है. वास्ते ज्यों बन सके त्यों लाभांतराय टूट जावे वैसा करना; मगर नया न बंधा जाय उसका खूब खियाल रखना.

अब तीसरे भोगांतरायका स्वरूप लिखता हुं:—भोगांतरायकर्म जीव अनादिसें बांधता हुवाही आया है, उसके प्रभावसें आत्माके स्वभाव रहना वो रूप भोग नही भुक्त सकता है. वो भोगांतरायकर्म बारहवे गुणस्थानके अंतमेंही क्षय होता है, तब सदाकाल आत्माकेही भोगकों भुक्तता है, उसका सर्वथा प्रकारसें भोगांतरायका त्याग हो जाता है. क्यों कि विभाव वासना नहीं रहती. यहांपर किसीकों शंका हो आवैगी कि—"केवलज्ञानी महाराज समोवसरणमें विराजमान होते हैं, देवकृत वगैरः अतिशय प्राप्त होते हैं, आहार करते हैं, सुंदर हवा आदि आती है इत्यादि भोग है या क्या है?" उसके संबंधमें ऐसा समझना कि—तीर्थंकरमहाराजजीने तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन किया है, उस पुन्यके प्रभावसें बहुतसी वस्तुयेंकी प्राप्ति हुइ है या होती है; परंतु उसमें भगवंतजीकों न राग न द्वेष है. ज्ञानसें जानते है कि शुभाशुभ कर्मका उदय है वो उदयके प्रभावसें होता है, वो मात्र कर्म भुक्त लेने रूप है. उन वस्तुओंमें लेशमात्रभी राग नहीं. फक्त चार कर्म रहे है वो भुक्तकर निर्जराते हैं; वास्ते तीर्थंकरमहाराजजीका या केवलीजीका जो भोग है वो भोग नहीं जैसा है. और छद्मस्थ जीवकों जो जो पुद्गलके भोग करनेके हैं वो राग द्वेष संहित हैं. उसमें उन्होंकों

कर्मबंधका कारण रहा है, उससें आत्मिक भोग भुक्त नहीं सकते आत्मिक भोग भुक्तनेके अंतरायकर्मका उदयभी दूर नहीं हुवा 'वहांतक आत्मिक भोग नहीं भुक्त सकते हैं. संसारी जीवकों रात और दिन भोगकी इच्छायें इतनी सारी बढ गइ हैं कि—जो जो पदार्थ जगतमें हैं ते रूपी देखते हैं या सुनते हैं उसकी इच्छा होती है, परन्तु उसकी प्राप्तिका अंतरायकर्म बांधा है उससें नहीं मिल सकते हैं और जिनके अंतरायकर्मका क्षयोपशम हुवा है उनकों वो सब मिलते हैं और उसका उपभोगभी लेते हैं मगर जो वे उसपर बहुत राग रक्खे तो या बहुत रागसें भुक्त तो उससें पुनः नया भोगांतराय कर्म बांधते हैं, उसीके लिये फिर मिलनेमें हरकत आवेगी किस तरह आवेगी ? भोगकी वस्तु हाजिर है, मगर कृपणता आनेसें वो वस्तुका भोग नहीं कर सकता, या तो शाक आ पडेगा, या रोग होगा और वही चीजका उपयोग न करनेका वैद्य फुरमायगा जिससे उपयोग न कर सकेंगा या हरकोइ प्रकारका कारण आ जायगा, जिस्सें इच्छा है, वस्तु है, मगर भोगांतरायकर्मके उदयसें भुक्त न कर सकेंगा. सम्यक् ज्ञानीपुरुष हैं वे तो ऐसे अंतराय आनेसें शोचते हैं कि पूर्वभवमें भोगांतरायकर्म बांधा है वो उदय आया है, वो समभावसें भुक्तुंगा तो कर्म न बंधेगा ऐसी भावना प्रकट हुइ है उसके प्रभावसें वे तो अंतरायकर्मकी निर्जरा करते हैं नये नहीं बांधते और जिनकी ऐसी दशा जाग्रत न हुइ है वे जीव बिचारे दूसरोंकों भोगका उपभोग करते देखकर अनेक प्रकारके कर्म बांधते हैं ये अज्ञानताके फल हैं इस भवमें भोग मिलते नहीं और फिर भोग भुक्तनेके विकल्प करकें नये कर्म बांधते है उसकों आते भवमेंभी भोग न मिलेंगे ऐसे जीवका मनुष्यभव व्यर्थ जाता है वर्त्तमान और आगत ये दोनु भव बिगडते हैं विकल्प करनेसें, किसीकी अदेखाइ करनेसें कुछ भोग तो नहीं मिलते हैं, और नाहक मात्र कर्म बांधकर दुर्गतिमें जानेका मोका हाथ लगता है देखियें—रामचंद्रजी बलदेव और लक्ष्मणजी वासुदेव जैसेकोंभी भोगांतरायसें करकें वनवासमें रहना पडा, 'पांडवोंकोंभी वनवास भुक्तना पडा और ब्रह्मदत्त चक्रवर्तिकोंभी जहांतक भोगांतराय था वहांतक भागते हुवे फिरना पडा, वास्ते कर्म किसीकों छोडता नहीं जो जो कर्म उदय आया वो जीवकों भुक्ते विगर छुटकाही नहीं होता समभावसेंभी भुक्तना और विकल्प करकेंभी भुक्तना, तो समभावसें भुक्ता जायगा तो नये कर्म न बंधे जाय फिर

समभावके जोरसें शिथिल अंतरायकर्म होवैगा तो सहजहीसें नष्ट हो जायगा तो इस भवमेंभी भोग प्राप्त होवैंगे और आते भवमेंभी सहजहीसें भोग मिल सकेंगे. और ज्यौं ज्यौं विशुद्धि होवैगी त्यौं त्यौं बाहर जडके भोगकी इच्छा हठ जायगी और अपने आत्मस्वभाविक भोगकी इच्छा होवैगी. और उसके साधनभी करैगा-संसार छोडकर संयम लेवैगा उसमेंभी तप संयम अच्छी तरहसें पालन करकें आत्मज्ञान मिला, आत्मध्यानमें प्रवर्त्तकर शुकल धर्म ध्यान पावेगा. उसकों पा करकें सर्वथा अंतरायकर्म नाशकर्मे केवलज्ञान पावेगा—वो निजगुण भोगी होवैगा तवी आत्म कल्याण होवैगा.

उपभोगांतराय सो—जो जो वस्तु वार वार भुक्तनेमें आवै वो उपभोग कहा जाता है याने मकान, दुकान, चोपाइ, पटले, चोकी, कॉच, कुरसी, गद्दी, तकिये, तलाइ, पहनने ओढनेके वस्त्र, सुने चांदीके जेवर, हीरे, मानक, मोती, स्त्री वगैरः सव वस्तुकी प्राप्तिमें अंतरायकर्म वांधा होवै तो वो उदय आवै तव ये तमाम उपभोगके पदार्थ न मिल सकैं. ये जीव अनादिके उपभोगांतरायकर्म वांधता है और भुक्तता है. जव जीव शुभ काम करता है, शुद्ध अध्यवसाय होते हैं, तव कुछ अंतरायकर्मका क्षयोपशम होता है. जव उतनी वस्तु मिलती हैं. धर्मकी वर्त्तना हुवे सिवा कर्म नहीं टूटता है. अंतरायकर्म काहेसें पुनः वंधा जाता है? उसके खुलासेमें यही है कि अधर्मप्रवर्त्तिसें उस अधर्ममेंभी मुख्य कोइ जीव उपभोगकी वस्तु किसीकों देता हो वो न देवै वैसी वातें करै या उसकों समझावै कि 'तूं मत दे.' या देनेवालेकी हंसि—मश्करी—दिल्लगी करे, या निंदा करै, या उपभोग करता हो तो उसकों कोइ दूसरा काम सुपर्द करकें वो काममें भंग करै—ऐसे कारणोंसें करनेसें या हिंसादिक काम करनेसें जिस जिस जीवके प्राण गत हुवै उसकों इस भव संवंधी उपभोगांतराय हुवा. इस तरहके काम करनेसें जीव उपभोगांतरायकर्म वांधता है. वास्ते प्रथम उपभोगांतराय न वंधा जाय वैसी जीवकों प्रवर्त्तना करनी. और पीछे पूर्वके वंधे हुवे कर्मका क्षय होवै वैसा उद्यम करना. अव वो उद्यम क्या करना सो वतलाता हुं. पूर्वकालमें श्री वीतरागजीनें जो जो उद्यम किया है और वो आगमोंमें वतलाया है सोही करना. यदि वन सकै तो संयम लैना, वो न वन सकै तो श्रावकधर्म अंगीकार करना, वो न वन सकै तो सम्यक्त्व अंगीकार करना. और वोभी न वने

सके तो मार्गानुसारीपना शुरू करना. जितना धर्म अंगीकार किया जावेगा उतनाही कर्म टूटेगा.

उपभोग दो प्रकारका है याने पुद्गलीक और आत्मिक-इन दोनुका अंतराय है, उनमें पुद्गलीक मिलने तो सहल हैं, मगर आत्मिक मिलने बडे दुष्कर हैं; और उसके साधनभी मिलने बडे मुश्किल हैं जबतक संसारके उपभोगकी लालसा है वहांतक आत्मिक भोग नहीं मिलनेके हैं, वास्ते आत्मिक धर्म क्या है वो समझकरके जब सांसारिक उपभोगकी इच्छा साफ दूर हो जायगी तब आत्मिक भोगकी इच्छा हो आवेगी, और प्रकट करनेकाभी दिल होवेगा उसका उद्यम-तप संयम आदिका ऐसा है कि-इच्छा तो आत्मभोगकी है, मगर संसारमें रहे हैं वहांतक पुद्गलीक और आत्मिक ये दोनु उपभोग मिलेंगे और पुद्गलीक भोगकी इच्छासें ये दोनु न मिल सकेंगे-सिर्फ पुद्गलीकही मिल सकेंगे, और आत्मिक उपभोगका अंतराय होवेगा अपना आत्मिकसुख छोडकर जडसुखकी इच्छा करे यही विपरीत है फिर सांसारिक उपभोग बाधकरकें ज्यों ज्यों आनंदित होवे त्यों त्यों आत्मिक और पुद्गलीक ये दोनु उपभोगका अंतराय होवे, वास्ते संसारी उपभोगमें आत्मार्थी जीव आनंदित नहीं होते हैं, और वो भोगकी इच्छाभी नहीं करते हैं पुद्गलीक सुखकों तो जबसें जीव समकित पाता है तबसें सुखरूप नहीं मानता है पूर्वकी पुण्य प्रकृतिसें मिला है वो समभावसें भुक्त लेता है, मगर उसमें राग नहीं धारण करते-इसतरहसें श्री तीर्थंकरजी वगैरः चलकरकें आत्मार्थिकों चलनेकी आज्ञा फुरमा गये हैं, उस मुजब चलना कि जिससें प्रथम उपभोगांतरायका क्षयोपशम होवे और पीछे विशेष विशुद्धिसें क्षय होवे और केवलज्ञानादिक अपनी आत्मिक ऋद्धि प्रकट होवे उसकेही उपभोग हरहमेशां अवस्थित होवें उपभोगांतरायकर्म सत्ता, बंध, उदयसें क्षय होवे तब सहज स्वभाविक उपभोग होवे जिसका वर्णन करनेमें कोइ शक्तिमान् नहीं हो सके

वीर्यांतरायकर्म वही है कि जिसके प्रभावसें जीवकी अनंती वीर्यशक्ति है-वो आच्छादित हो गइ है उससें, जीव आत्मवीर्य स्फुरा नहीं सकता वीर्यांतरायकर्मके क्षयोपशमसें बालवीर्य और बालपंडितवीर्य ये दोनु वीर्य प्रकटते हैं उसमें बालवीर्य प्रकटता है उसके प्रभावसें संसारमें प्रवर्त्तनेकी शक्ति आती है-संसारी काम कर सकता है ये वीर्यका क्षयोपशमभी विचित्र प्रकारसें है-जैसें कि कोइ लडनेमें वीर्य

फैला सकता है, कोइ व्यापारमें, कोइ विषयमें, कोइ नाचमें, कोइ गानेमें और कोइ लिखने-पढने-काव्य बनाने या हुन्नरमें वीर्य स्फुरायमान कर सकता है-याने ऐसे अनेक प्रकारकी अलग अलग वीर्यशक्ति प्रकटती है. उसमें जिनके जिस बाबतमें विशेष आवरण हैं उनको उस बाबतमें वीर्य स्फुरानेकी ताकत प्राप्त नहीं हो सकती. जिसे काम संबंधी आवरण हट गये है उस काममें शक्ति स्फुरा सकता है. अब उसमेंभी कितनेक जीव मद करते है कि-'मेरे समान कौन बलवान है? में दश आदमियोंको अकेलाही मार डालुं.' ऐसा मद-गर्व करके पीछा नया वीर्यांतरायकर्म बांधता है, वो जीवको पुनः उतनीभी वीर्यशक्ति प्रकट न होवेगी. फिर जिन जिन हुन्नरमें जिसकी शक्ति चलती है उन उन बाबतका गर्व अज्ञानीजीव करते हैं, उसके प्रभावसे वीर्यांतरायकर्म बंधा जाता है. और इसी तरह अनादिकालसे जीव वीर्यांतरायकर्म बंधेही करता है और वो कर्म भुक्तेही करता है; परंतु जब जीवकी भवस्थिति परिपक्व होती है तब मोक्ष पानेका वक्त नजदीक आता है तब अच्छी नीतिमें वर्त्तना-सत्संग-सुगुरु प्रमुखका योग होता है और धर्म सुननेकी योगवाइ मिलती है. वो सुननेमे जीव वीर्य स्फुराता है और ज्ञान ग्रहण करता है. वीतरागजीके ज्ञानपर प्रीति जाग्रत होती है और धर्मके सन्मुख हो रहता है. संसारमें वीर्य स्फुरायमान करनेकी बुद्धि कमती होती है तब धर्ममें बुद्धि स्फुराइ जाती है और सम्यक्गुण तथा श्रावकपनेके गुण प्रकट करनेको तत्पर होता है, तब वीर्यका क्षयोपशम होता है. सम्यक्पनेमें और श्रावकपनेमें जो जो त्याग देने लायक है,वो छोड देता है, आदरणीय हो जो आत्मधर्म उसे आदरनेमें वीर्य स्फुरायमान होता है. श्रावकके बारह व्रत और ग्यारह प्रतिमा अंगीकार करता है, वो तप पालन करनेमें वीर्य स्फुराता है, तपस्या प्रमुखमेंभी वीर्य स्फुराता है और क्षयोपशमसे जितना वीर्य प्रकट हुवा है तदनुसारसे धर्ममें वीर्य स्फुराता है; परंतु संयम पालन करने जैसा क्षयोपशम नहीं हुवा वहांतक संयम न ले सकता है, और न संयममें वीर्य स्फुरा सकता है संसारमें रहा है उससे संसारमें वीर्य स्फुराता है; वास्ते उसको बालपंडितवीर्य कहा जाता है. पंडितवीर्य जब प्रकट होता है तब तो सभी पुद्गलीक वस्तुपरसे मोह उतर जाता है और सर्वथा संसारसे निकलकर एक आत्मगुण प्रकट करनेमेंही वीर्य स्फुराता है. और निज स्वभाविक सुखमेंही वर्त्तनेका कामी बनकर सर्वथा प्रकारसे वीर्यांतराय कर्मको क्षय

करीकें केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रकट करता है, उनकों वीर्यांतराय कर्म सत्ता, बंध, उदयसेंभी न रह सकता हे निजस्वभावमेंही अनंत वीर्य गुण है सो प्रकट होता है भगवंतश्रीने इसतरह सर्वथा वीर्यांतराय कर्मका क्षय करकें आत्मिकगुण प्रकट किये और मेरा आत्मा तो वीर्यांतराय सहितही रह गया, वास्ते हे चेतन! जिस तरह भगवंतजीने वीर्यांतराय क्षय किया वोसी तरह क्षय करनेका उन्होंने बतलाया है इस लिये उस मुजब मेंभी चलु ऐसी भावना स्थाकरकें आत्मगुण प्रकट करनेके कारण [ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप] उत्साह सह मिलाना उत्साहसें धर्मकरणी सफल होती हैं और वीर्यके आवरण क्षय होते हैं-वीर्य स्फुरायमान होता है जैसें मुनिमहाराज उत्साहसें तप संयमादिक पालन करते है, तो उसके प्रभावसें अट्ठाइस लब्धियें उत्पन्न होती हैं, वो वीर्यांतरायके क्षयोपशमसें होती हैं ऐसा योगशास्त्रमें हेमचंद्राचार्यजीने कहा है और वैसेही प्रवचन सारोद्धारके बालावबोधमे पत्र ५३९ के अंदर अट्ठाइस लब्धियें वीर्यके क्षयोपशमसें होती हैं वो बतलाई है. उसी तरह यहांपरभी बतलाता हुं —

प्रथम-आमर्षौषधि लब्धिः-लब्धि शब्दसें शक्ति समझनी ये लब्धि जिस मुनिकों प्रकट होती है, उसके प्रभावसें वो मुनी रोगीकों हस्त स्पर्श करै कि फौरन रोग नाश हो जावै-सर्व रोगोंकी शांति होवै

दूसरी-विप्रौषधि लब्धि-उसके प्रभावसे मुनिमहाराजजीके मलमूत्रसेंभी रोगीके रोगोंकी शांति होती है ये तपके प्रभावकी शक्ति हे

तीसरी-खेलौषधि लब्धि-उसके प्रभावसें मुनीके श्लेष्मसेंभी रोगीके रोग जाते है

चौथी-जल्लौषधि लब्धि-वो जिन मुनीकों उत्पन्न हुइ है उसके प्रभावसें दांतोंका, कानोंका, नासिकाका, नेत्रका, जीभका और शरीरका जो मैल होता है वो खुशबुदार होवै और उसी मैलसें रोगीके रोग जावें

पांचवी सर्वौषधि लब्धि-जिस लब्धिके प्रभावसें लब्धिवंतके स्पर्शित जलमें समस्त रोग शांत होवै लब्धिवंतकों स्पर्श किया हुवा पवन जिसके शरीरकों स्पर्श करे उसकेभी रोग मिट जावें, और उसी पवनसें करकें विष संयुक्त अन्न, तथा विषसे करकें मूर्छित हुवे प्राणी निर्विष हो जाते है उनके दर्शनसें या वचन सुननेसे रोग, विष दूर हो निरामय होते है ऐसी प्रबल आत्माकी वीर्यशक्ति तपके प्रभावसें होती है

छट्ठी-संभिन्नश्रोत लब्धि-वो लब्धिवंतकों पांचों इंद्रियोंके अलग अलग विषय है; तथापि लब्धिके प्रभावसें एक इंद्रिसें करकें पांचों इंद्रियोंका विषय ग्रहण कर जान सकै; जैसें कि आंखें देखनेका काम करती है; मगर दूसरी चार इंद्रियोंके काम नहीं कर सकती; परंतु उस लब्धिवाला आंखसेंही पांचों इंद्रियों काम कर सकै-याने हरकोइ इंद्रिसें हरकिसी इंद्रिका काम बजा लेवै. पुनः चक्रवर्त्तीकी सेनामें सोरगुल मच रहा हो उसमेंसें एकही साथ जौ जो जातिका शब्द होता हो वो कुल्ल अलग अलग ज्ञान ले सकै.

सातवी-अवधिज्ञान लब्धि-इस लब्धिके प्रभावसें इंद्रियोंकें वल सिंवा रूपी पदार्थका ज्ञान आत्मासें कर सकते हैं-नजरसें देखनेकी जरूरत नहीं.

आठवी-ऋजुमती मनःपर्यव लब्धि-उस लब्धिसें अढाइ द्वीपमें न्यून संज्ञी पंचेंद्रिके मनमें चितवन किये गये भावकों सामान्यतासें जान लेवै; मगर घट चिंतवन किये गये द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसें विशेष करकें न जान सकै.

नौमी-विपुलमती मनःपर्यव ज्ञान लब्धि-ये लब्धिवाला अढाइ द्वीपमें संज्ञीके मनमें चितवन किये हुवें द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावें-समस्त जान सकै और उसी भवमें मुक्ति पावै.

दशवी चारण लब्धि-वो विद्याचारण, जंघाचारण लब्धि-उसके प्रभावसें आकाशमार्गमें जा सकें. उसमें विद्याचारण लब्धि विद्याके प्रभाव-बलसें प्राप्त होती है उस लब्धिवंतकों धीरे धीरे लब्धि बढती है, उसे पहिलें अपने स्थानसें उडकर मानुषोत्तर पर्वतपर जावै और दूसरी वक्त उडकर आठवे नंदीश्वर द्वीपकों जावै और वहांसें पीछे लौटनेके वक्त एकही सपाटे अपने स्थानपर आ सकें. और जंघाचारण लब्धि, तपस्या तथा शुद्ध चारित्र पालनेसें पैदा होती है-इस लब्धिवंतकों अवल्लसेंही शक्ति बढती है, वापिस लौटनेके वक्त कम हो जाती है. पहिले उतपातसें तेरहवे रूचकद्वीपमें जाता है और पीछे लौटते शक्ति कम हो जानेसें पहिले उतपातसें नंदीश्वर द्वीप तक जाता है और वहांपर विश्राम लेकर दूसरे सपाटे अपने स्थानपर आसक्ता है फिर ये लब्धिवाले मुनिराज प्रतिमाजीकों वंदना करते हैं-ऐसी बाबत भगवतीजीमें है.

ग्यारहवीं–आसी विष लब्धि–उस लब्धिके प्रभावसें शाप देवै उसी मुजब अमल होवै.

बारहवीं–केवलज्ञान लब्धि–उनसें समस्त भाव जान सकै

तेरहवीं–गणधर लब्धि–श्री तीर्थंकरजी त्रीपदी फुरमावै उससें द्वादशांगीका ज्ञान हो जावे और भगवानजीकी गद्दीपर वेही विराजमान होवे

चौदहवीं–पूर्वधर लब्धि–उसके प्रभावसें पूर्वधरकी पदवी पावै

पंद्रहवीं–तीर्थंकर लब्धि–उसके प्रभावसें तीर्थंकर पदवी पावै.

सोलहवीं–चक्रवर्तीनी लब्धि–उसके प्रभावसें छ' खंडका स्वामी होवै.

सत्तरहवीं–बल्देव लब्धि–उसके प्रभावसें बलदेव होवै.

अठारवीं–वासुदेव लब्धि–उसके प्रभावसें तीन खंडका राज्य करे

उन्नीसवीं–खीराश्रवलब्धि–उस लब्धिके प्रभावसें बोला गया वचन दूधके मुवाफिक मीठा लगे और म ध्वाश्रव लब्धिके प्रभावसें मिसरीके समान वचन मीठे लगे.

बीसवीं–कोष्ट बुद्धि लब्धि–उसके प्रभावसे जो जो परोपदेशके लिये सूत्र अर्थ धारण किये हो उसकी विस्मृति न होवै विगर याद कियेभी याद रहवै

इक्कीसवीं–पदानुसारिणी लब्धि–उसके प्रभावसें श्लोकका पीछेका या पेस्तरका पद जाननेमें आवै तो दूसरे तीन पदोंका ज्ञान हो जावै जैसें अभयकुमार प्रधान भगवतजीको वंदन करकें वापिस आते थे और एक विद्याधर आकाशमें चढकर पड जाताथा, वो देखकर अभयकुमारने पूँछा कि "ऐसा क्यों होता है?" विद्याधरने जवाब दिया–"विद्याका एक पद भूल गया हु याद नहीं आता–इससें नहीं उड सकता हु" अभयकुमारने कहा–"तुम विद्याका पाठ बोल बतलाओ" विद्याधर पाठ बोला कि कम रहताथा सोही पद आपने पूर्ण कर दिया आप पहिले कुछभी पढे हुवेभी न थे; तोभी पद पूर्ण इस लब्धिके जरियेसें किया, और विद्याधर आकाशमें चला गया

बाइसवीं–बीजबुद्धि लब्धि–इसके प्रभावसें–जैसें एक बीज बोया जाता है और बहुत कण पैदा होते है, वैसें ज्ञानावरणीकर्मके क्षयोपशमसें एक अर्थरूप बीजका ग्रहन लेनेसें बहुतसे अर्थोका ज्ञान हो जाय जैसे गणधरमहाराजको भगवतजीने त्रिपदी कह दी उससें उत्पात,–व्यय–ध्रुव ये तीन पद सुननेही सारी द्वादशांगीका ज्ञान हुवा,

वैसें ज्ञान होवै. पदानुसारिणीमें एक पद सुननेसें दूसरे पदोंका और वीजबुद्धिवालेकों एक पदअर्थका ज्ञान होनेसें वहुतसे पदार्थोंका ज्ञान हो सकै यह तफावत है.

तेइसवी—तेजोलेश्या लब्धि—उसके प्रभावसें किसी जीवके उपर खेद आ जाय और तेजोलेश्या छोडे ता स्हामनेवाले जीवकों जलाकर खाक कर देवै.

चोइसवी—आहारक लब्धि—उसके प्रभावसें आहारक शरीर मुंडे हाथका (पौने हाथका ?) शरीर करकें श्री सीमंधिरस्वामीके पास या विचरते हुवे तीर्थंकरजीके पास भेज सके. और वो इतनी ताकीदीसे जवाब ला सके कि व्याख्यान करते हो उसमें संदेह पेदा हो तो वो शरीर भगवानजीकों खुलासा पूँछकर फौरन आकर कह दे शंका निवृत्तन करै.

पचीशवी—शीतलेश्या लब्धि—उसके प्रभावसें किसीने तेजोलेश्या भेज दी हो तो उसपर (शीतलेश्या) छोडनेसें शीतलता कर होवे और तेजोलेश्या हत हो जावै.

छाइसवी—वैक्रिय लब्धि—उसके प्रभावसें आपका शरीर छोटा वडा जैसा करना हो वैसा कर सकै. देवके भवमें ये लब्धि भव प्रत्ययी होवै, और मुनिकों तप, चारित्रके प्रभावसें होती हैं.

सत्ताइसवी—आक्षिण माहानसी लब्धि—उनके प्रतापसें अल्प वस्तु हो जिसमें एक मनुष्य भोजन कर तृप्त हो सकै उतनेही पदार्थमें हजारोंकों जिमा सकै—जैसें गोतमस्वामीजीने एक पडघेभर क्षीरमें पंद्रहसो तापसोकों जिमाये.

अठ्ठाइवी—पुलाक लब्धि—उसके जरियेसें कोइ संघका कार्य होवै तो चक्रवर्तीकों भी चूर्ण कर देवै.

मुख्यातासें ये अठ्ठाइसें लब्धि कही गइ हैं; मगर तपके प्रभावसें औरभी लब्धियें प्राप्त होती हैं—याने प्रकष ज्ञानावर्णी वीर्यांतरायकें क्षयोपशमसें करकें समस्त श्रुत समूह अंत मुहूर्तमें अवगाह लेवै उसके अंदर जिनका मन हो उसकों मनोवल लब्धि कही जावे. इसी तरह अंतरमुहूर्त्तमें सर्व श्रुतका विचार करनेकी शक्तिसें करकें जो सहित होवै और पद वचन अलंकार सहित वचनको उंचे स्वरसें निरंतर वोलता रहवे तथापि स्वर न वैठे वो वचनवल लब्धि कही जावै. फिर वीर्यांतरायके क्षयोपशमसें प्रकट हुवा वल याने जैसें बाहुवलजी वर्ष दिन तक काउस्सग्गमें रहे तोभी शक्ति कम न हुइ-शरीर थक न गया, एसी प्रकारसें ये लब्धिवंत कायवल

लब्धिके प्रभावसे थक न जाय जो कायवल लब्धि कहा जावे पुनः बहुत कर्मके क्ष-योपशमसें प्रज्ञाका प्रकर्ष होवे जिस्से चौदह पूर्व पढे विगरभी कठीन विचारोंके अंदर निपुण बुद्धि होवे और उनकों यथार्थ विचार होवे इत्यादि बहुत प्रकारकी लब्धियें है, और हेमचंद्राचार्यजीने स्वकृत योगशास्त्रमें दर्शाय दी है इस समयमें पाश्चिमात्य प्रदेश-इंग्लेंड-अमेरीका-जर्मनीमें बहुतसे युरोपियन विद्वान शोधक हेमचंद्राचार्यजी कृत योगशास्त्र पढते है ओर उस शास्त्रके कर्त्ताकों सर्वज्ञका विरुद देते है येभी ज्ञानका क्षयोपशम है. एक समय हेमचंद्राचार्यजी राजसभामें तीन पटले धर करके उसपर विराजमान हो करके धर्मदेशना देते थे और दरम्यान कुमारपालराजपिता पधारना हुवा तब तीन पटलेको दूर करा लेकर अद्धर बैठ धर्मोपदेश देना जारी रख्खा-येभी योगसाधनकी शक्ति है ऐसी ओर प्रकारकी शक्तियें वीर्यांतरायके क्षयोपशमसें होती है, ओर वे शक्तियें आत्महितके कार्यमें उपयोगमें लेवे उपकारार्थ या शासनो-न्नतिके अर्थ स्फुराते है पूर्ण वीर्यांतरायका क्षय होता है तब पूर्ण वीर्य प्रकटता है उ-सकों केवलज्ञान प्रकटता है, जिस्से करके तमाम लोकके भाव एक समयमें जानते हैं अतीत-अनागत-वर्त्तमानके भावभी जानते है ऐसी आत्माकी पूर्ण शक्ति जाग्रत होती है. वास्ते हरएक प्रकारसें वीर्यांतरायका क्षयोपशम या क्षय होवे वैसा उद्यम करना वीर्यकी रीति ऐसी है कि अभ्यास करने करनेसें वीर्य स्फुरायमान होता है इस लिये वीर्य स्फुरानेका हरहमेशां अभ्यास करना जेसे मनुष्यके वहां धेनु विहाइ-बछडा दिया उसी बछडेकों उसी रोज उठाकर एक वक्त मजलेपर ले गया याने इसी तरह उस बछडेकों उठा उठाकर माल-मजलेपर चढ जाने लगा, और इसी अभ्याससें वो बछडा बडा होकर बेहेल हो गया तोभी उसकों उठाकरके मजलेपर चढ जाताथा इसी तरहसें अभ्यास करनेसें मनोबळ-वचनबळ-कायबळ बढता है तप, संयम और ज्ञानका हमेशा अभ्यास करना कि उससें वीर्यांतरायका क्षयोपशम होवेगा और वीर्य वृद्धि पावेगा यदि जीव सांसारिक कार्यमें वीर्य स्फुरायगा और धर्मके कार्यमें प्रमाद करेगा तो नया वीर्यांतरायकर्म बांधेगा और इस भवमें जितना वीर्य-शक्ति है उतनाभी आते भवमें न मिल सकेगा और अनादिकालका वीर्यांतराय बंधा हुवा है उसींसेंही आत्मगुण प्रगट नहीं होते हैं, वो बडा दोष है

इस तरह पांच प्रकारके अंतरायकर्म भगवतजीने क्षय करके आपके आत्मगुण प्रगट किये है,, और अपने जीवोंकेभी इसमें उद्यम करना चाहिये। उसमें आहिका प्रकारमें

रुलता है–और जन्म मरणके दुःख भुक्तता हैं उन दुःखसें मुक्त होनेके वास्ते भगवंत-जीके हुकम मुजब चलना कि जिस्सें आत्माके गुण प्रकट होवै–इस तरह पांच दूषण बतलाये.

छट्ठा हास्य नामक दूषण हैं, उस दोषसेंभी भगवान्‌श्री रहित हैं. और संसारी जीव इस दूषणसें करकें सहित है. हास्य दोषसें बनसें अनादिका जीव ससारमें भटकता है और जब तक हास्यसें मुक्त न होगा तब तक आत्माका काम न होवेगा. हास्यसें संसारमेंभी कितनेक है वो सब मनुष्य जानतेही हैं; तोभी जाग्रत करनेके लिये लिखता हुं कि–कितनीक दफै हास्य–दिल्लगी करनेसें या हंसी करनेसे–हंसीसें आपके जावडे दुःखने लगते हैं, हंसीकों रोकना चाहे तो नहीं रूकी जाती है. फिर जिसकी हंसी–मस्करी करै वो मनुष्य उस वक्त न बोलै याने मुँहपर साफ साफ न कह दे मगर अंतःकरणमें उसकों कितना दुःख होता है! वो जो मनुष्य आप विचार करै कि कोइ मेरी हंसी करता है उस वक्त मुझकों अंतरंगमें कितना दुःख होता है? इसी तरह स्हामनेवालेकोंभी दुःख होता होगा; वास्ते दूसरे जीवकों दुःख–कलेश देना उससें जियादे बुराइ कौनसी है? फिर वो मनुष्य जोरदार हो तो फिसाद खडा होकर मारामारी या गालागाली होवै उससें नया वैर बंधा जाय–ये प्रत्यक्ष दुःखं है. फिर जितनी वक्त हास्यमें प्रवर्त्तै उतनी वक्त सात आठ कर्मोंका बंध होवै सो उदय आवै तब उन्होंके दुःख भुक्तने पडते हैं. जैसें कि–"कुमारपाल राजेंद्रकी भगिनी–भेण अपने पतिके साथ चोपटबाजी खेलतीथी. उसमें सोगठी मारनेके वक्त विधर्मीपतिने कहा कि–'मार कुमारपालके मुंड–साधुकों.' यह शुकन सुनतेही उसकी धर्मपत्नि नाराज हो गइ और उंसी वक्त रिसाकर भाइके घर चल गइ. और वो हकीकत कुमारपालकों कह सुनाइ, उससें अपने साधु मुनीराजजीकी हांसी–हीलना करी जानकर बडा गुस्सा आया, और पण–किया कि–'जिस जबानसें मेरे गुरुकी हांसी की है उसी जीभकों नौ चलुं जब उसकों छोडूं.' ऐसा निश्चय करकें बेन्होइके साथ युद्ध किया और उसकों पराजित किया. अंतमें प्रधानोंने कुमारपाल महाराजाकों युक्तिसे–दयाभावसें समझाकर जीभ नौम लेनेका मोकूफ करवा कि पहननेके जामेपर जीभकी आकृति पिछले भागपर रखनेका ठहराव करवाया और वैसाही करनेसें उसकों छोड दिया." दिखीएं हांसीके कैसे फल है!

और इस सिवाभी हासी-दिल्लगीसें बहुत नुकसान हैं. जिसकों ठठ्ठाबाजी-दिल्लगी-खोरी-हासी करनेकी आदत होती है उसकों लोगभी दिल्लगीबाज-मश्करा कहते हैं. फिर आत्मस्वरूपका विचार करनेसें हासी आत्मगुणसें विपरीत प्रवृत्ति है ये प्रवृत्तिमें वर्त्तनेसें आत्मा मलीन होता है पुनः आत्मा निर्मल करनेके कारण व्रतादिकर्मेभी इस्सें अनर्थ दंड व्रतके दूषण लगते हैं, वास्ते ज्यौं बन सकें त्यौं आत्मा निर्मल करनेका इरादा रखनेवालोंनें हासीसें मुक्त-दूर रहना कि जिससें आत्म निर्मल होनेका उद्यम होवै सब हास्य मोहनीका क्षय भगवतजीने किया है उस दशाकों पा सकें वैसा उद्यम करना

छठ्ठा रति नामक दूषण याने हरएक पुद्गलीक पदार्थके अंदर जो अनुकूल मिलै उसमें राजी होना प्रतिकूल मिलै उसमें दिलगीर होना ऐसा जडकी संगतिसें जीवकों अनादिसें अभ्यास है, उसके जोरसें जीव उसी तरह वर्त्तन रखता है और कर्मबंधन करता है और उसी कर्मबंधनसें अनादिका जीव जन्ममरणके दुःख भुक्तता है जो जो पदार्थकों जीव अनुकूल मानता है वही अज्ञानता है, कारण कि जो जो जडपदार्थ है सो विनाशी है और आत्मा अविनाशी है-वो आत्मा और जड दोनु भिन्न पदार्थ हुने, तो भिन्न पदार्थकों अपना मान लेना यही मूढता है फिर जो वस्तु देखकर रति-आनंद करे छे वो वस्तु हरहमेशां कायम रहनेकी नहीं कितनेक खानेके पदार्थ हैं वै खानमें रति करता है, मगर वही पदार्थसें पुद्गलकों उपाधि होती है और रोग होते हैं फिर कर्मबंधन होवै सो तो अलग इसी वजरसें गरेना-आभूपण पहन करभी खुशी होना, मगर शरीरकों भार लगता है उसका विचार नहीं, और जोखम समालना पडे या जीका जोखम होनेका मोका हाथ लगै वो तो फिर अलग कुटुंबके संयोगसें राजी होता है, मगर वो मनुष्यकी मरजीसें विरुद्ध कुछ वर्त्तन हुवा तो वोही शत्रुपना बतलावैगा, तो ऐसे अनित्य स्नेहसें राजी होना वो मूढता नहीं तो फिर क्या है? धन है उसकों देखकर राजी होता है, परंतु ये धन कितने समय तक कायम रहवैगा, उसका लक्ष देगा तो रति नहीं होवैगा, क्यौं कि अपना धन कितनी वक्त आया और चला गया कभी किसी मनुष्यका अभी न गया हो तो दूसरे कितनोंका गया नजर आयगा, वास्ते नाशवंत है ये स्वभावपर लक्ष देना चाहियें. अस्थिर पदार्थपर राजी होवैगा और वो धन नष्ट हो जायगा तब

दिलगीर होनाही पडेगा. मगर धनकी संचलतापर लक्ष देवैगा तो धन आनेसें राजी और जानेसें दिलगीर न होवैगा. धनकों अपन छोडकर जायेंगे—या धन अपनकों छोडकर चला जावैगा—ये धनका स्वभाव है. इस लिये जो ज्ञानी हैं वे तो धनका त्याग करकें संयम लेते हैं और धन कुटुंबादि पदार्थोंको जलांजलि देते हैं—शरीरमें रहते हैं; परंतु शरीरकों मेरा नहीं जानते हैं, उससें शरीरके सुख दुःखमें रति अरति नहीं करते है एक अपने आत्मतत्त्वमें रमण कर रति मोहनीका नाश करकें स्वात्मगुण प्रकट करते हैं. और क्रमशः सिद्ध सुख भुक्तते हैं. आत्मार्थीकोंभी इसी तरह रति मोहनीका नाश करना यही कल्याणकारी हैं.

सातवा अरति मोहनी दूषण है वोभी रतिके मुजबही है; वास्ते इस जगहपर अलग विस्तार करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं हैं. जैसें रतिके लिये है वैसेंही अरतिके लिये समझकर अरतिकाभी त्याग करना. जो जो अरतिके कारण है वो जड पदार्थ हैं और पूर्व भवमें विषय कषाय और अरतिमें वर्त्तनेसेंही कर्म बंधे हैं उसीसें अरतिके कारण उत्पन्न हुवे हैं ऐसें समझना. ज्ञानीपुरुष तो कर्मका स्वरूप जान गये हैं उससें समझते है कि—'पूर्व भवमें अशुभ कर्म बंध है उसके लिये अरतिके कारण आ मिले हैं. फिर विकल्प करुंगा तो इससेंभी कठीन कर्मबंध जायेंगे और अरति पैदा होवैंगी जैसें किसीका कर्जह होवै, वो न देवैं तो वेशक लहेनदार फारियाद करैगा, तो फिर विशेष दुःख भुक्तना पडेगा. वास्ते जो अशाता वगैरः दुःखके कारण उत्पन्न हुवे हैं वो समभावसें भुक्त लैना. ऐसा सोच करकें समभावमें रहते हैं, और उससें विशेष विशुद्धि होती है, और ए रतिमोहनीका नाश कर अपना आत्मस्वभाविक गुण प्रकट करते हैं—वही भगवंत होते है—याने इसी तरहसेंही हुवे हैं. जिस तरह भगवतजी चले उसी तरह आत्मार्थी पुरुष चलेंगे, तो वैभी भगवंत हो जावेंगे, और अरति नाश हो जावैगी.

आठवा भयनामक दूषण है. वो भय सात प्रकारकें हैं याने इह लोक भय, परलोक भय, आदान भय, अकस्मात् भय, आजीवीका भय, मरण भय, और अपकीर्तिं भय ये सात हैं. संसारी जीव इन सात भयके मारेही सदा भयभीत रहता है. और परमात्माश्रीजीने तो अपने आत्माका स्वरूप जान लिया है कि आत्मा अरुपी है—आत्माका विनाश होनेवालाही नहीं, उससें कोइ प्रकारका भय रखखाही नहीं, उसी

लियेही अपना आत्मपद स्वाधीन कीया है. संसारी जीव सात तरहका भय रखते हैं उसका अब विवेचन करता हु.

इह लोक भय सो—जो जीव जिस गतिमें हो उसी गतिके दूसरे जीवोंका भय रखना—याने मनुष्य दूसरे मनुष्यका डर रक्खे, कि दूसरे मनुष्य मुझको मारेंगे, या मार डालेंगे, या झहर खिला—लगा देंगे, या शस्त्र अस्त्र मारेंगे, या मंत्रादिसें मारेंगे, या मुझको रोग पैदा होवेगा, ऐसे भय रक्खे वो इहलोक भय कहाजाता है यह भय जीव अज्ञानतासें रखता है जो ज्ञान हुवा होवे तो समझा जाय कि आत्मा अविनाशि है, विनाश होवेगा तो पुद्गलका होवैगा, वो पुद्गल मेरा नहीं है, तो मेरे किस प्रकारका या किस लिये भय रखना चाहियें ? पुद्गलकी स्थिति, विनाशभी कर्मोदय मुजब होनेका है, वास्ते भय क्यों रखना संसारमेंभी जो मनुष्य भयभीत होता है उससें उद्यम नहीं हो सकता और भयके कारण दूर नहीं कर सकता परंतु जिसका वीर्य स्फुरायमान हुवा है वो वीर्यके बलसे हीम्मत रखकर अपना आत्मधर्म साध सकता है, वास्ते उद्यम करके ज्यों वन सके त्यों भय सज्ञा दूर कर देनी, क्योंकि भय उद्यमसेंही दूर होता है आठ दृष्टिमें दूसरी दृष्टि प्रकट होती है तब चार सज्ञायोंका विष्कभ होता है—याने स्थभितपना हो जाता है ऐसा योग दृष्टिसमुच्चयमें हरिभद्रसूरिजी कहते है, इस लिये भयकी शांति होवे वैसें करना क्रमश ज्यों ज्यों विशुद्धि होवेगी त्यों त्यों सर्व प्रकारसें भयरहित होवेगा और दूषण दूर होवेगा

परलोक भय सो—तीर्यचका और देवताका भय धारण कर फिकर करे याने शायद मुझको सिन्ह—साप—शेर और व्यतरादि देव पीडा करे ! इस भयका स्वरूप उपर मुजबही आत्मार्थी पुरुष चितवन कर भयरहित हो निज निर्भय गुण उत्पन्न करते है

आदान भय सो—अपने घरमें जा जो पदार्थ याने धन—आभूषण—वस्त्रादिक वस्तुयें हैं, वो वस्तुको शायद कोइ ले जावेगा ! चोर आकर चोर ले जावगा ? या विनाश पावेगा ?, या किसीको व्याजसें दीयेगा तो रूपे वापिस देवेगा या नहीं ? या व्यापारमें नुकशान जायेगा ? इस तरहके भयकी चिंता करे ऐसा भय रखना अगर उसका चितवन करना उसीको ज्ञानीपुरुष आर्त्त या रौद्र ध्यान कहते है और ये ध्यानसे जीव नरक तीर्यचकी गति पाता है इसी वास्ते ज्ञानीपुरुष होवे सो सोचते

है कि-' ये वस्तु मेरी नहीं. कर्मके संयोगसें अज्ञानदशा हुइ है उस अज्ञानदशासें करकें ये वस्तुपर ममत्वभाव हुवा है वो ममत्वभावसें भय हुवा करता है वो मेरे करने योग्य नहीं.' ऐसा चिंतवन कर भयसंज्ञा दूर करता है कि-' ये धनादि वस्तुका स्वभाव अस्थिर है. जहांतक पुन्य वलवान् है वहांतक जानेका नहीं, और जब पापका उदय हो आवैगा तब वडे बंदेवस्तसें रख्खा हुवा धनभी नहीं रहना है; वास्ते जीव! किस लिये ममत्वभाव करता है.' इस मुजब चिंतन करकें भयसंज्ञासें निर्भय हो जाता है. विशेष ज्ञान होवे तब संसारका त्याग करता है, संयम लेता है, उस लिये ऐसी वस्तु छोड देनी कि भयथी दूर हो जायगा. आपके पास धर्मोपकरण या पुस्तक होते हैं उसकाभी भय नहीं रखते हैं. और अपने आत्माकों भावनेसें सर्वथा भयसंज्ञाका नाश करते हैं और आत्माके गुण संपुर्णतासें प्रकट करते हैं.

अकस्मात् भय सो-बाह्य कारण सिवा अचानक मनमे भयभ्रांत होवे-डर लगै ये कर्मोदय प्रभावसें हैं. ऐसे भयभी कर्मकी बाहुल्यतासें होते हैं. जिसको आत्मगुण प्रकट हुवे हैं उसकों ऐसे भय नहीं लगते हैं.

आजीविका भय सो-समवायांगजीमें कहा है और ठाणांगजीमें वेदना भय कहा है वास्ते वो भयका स्वरूप लिखता हुं:-अपणा उदरपोषण संबंधी जीव भय कर रहे हैं; मगर इस दुनियामें धनवान और गरीब-मौताज कोइभी अन्न खाये बिगर नहीं रहता है. आजीविका पूर्ण होना वो तो पूर्वकर्मानुसार बननेका है; परंतु उस कर्मका ज्ञान नहीं उससें फिक्र करता है. हरएक कार्य उद्यमसें बनते हैं; वास्ते उद्यम करना. मगर भय रखना ये मूढता है. और ये मूढतासें करकें काम करनेका हो सो नहीं कर सकता और नये नये विकल्प कर कर्मबंधन करता है. फिर धनवान् पुरुष हैं उनकों कुछ आजीविकाकी कसर नही; तोभी आगामिक समय संबंधी विचित्र प्रकारकी चिंता किये करता है, वारिशकी खींच हुइ है तो क्या खायेंगे? वारिश न आया तो क्या खायेंगे? रसोइया भाग गया तो क्या खायेंगे? कोइ चीज महेंगी हुइ तो क्या खायेंगे? ऐसे विचित्र प्रकारका आजीविकाके संबंधी भय धारण करकें कर्म बंधता है. धनवान मनुष्यकों बदवक्तमें और अच्छी वक्तमें धनसें करकें सब चीज बन जाती है; तथापि अज्ञानताके लिये भयभीत रहता है. ज्ञानवंत पुरुषोंकों तो थोडा ज्ञान हुवा है; मगर स्वपर ज्ञान हुवा है. उस ज्ञानके प्रभावसे प्रथम तो क-

र्मकी प्रतीति है उसमें उन्होंकों भय नहीं रहता है दूसरी तरह अशुभ कर्मका उदय हुआ उससें आजीविकामें हरकत पडती है, तो विचार करे कि पूर्वसमयमें कर्म बधे हैं उनके फल है विकल्प करनेसे क्या फायदा? ऐसा शोचकर भय नहीं रखते, और बन सके सो उद्यम करते है और अतिशयसें विशुद्धि है वो तो बिलकुल भय नहीं रखते है अपनी आत्मभावना विचारते है जैसें ऋषभदेवस्वामीकों वर्ष दिवस तक आहार मिला नहीं तोभी उसके लिये विकल्प न हुवा उसके स्मरणार्थ वरषी तप प्रकट हुआ और अतमें भयमोहनी क्षय करके निर्भय गुण प्रकट किये उसी मुताबिक आत्मार्थी पुरुषोंकोंभी करना, कि भयमोहनी नाश हो जावै अब वेदनीभय सो-रोग आनेसे दुःख सहन न हो सके उससे अनादिका जो भय है वो प्रकट हो आवै कि शायद रोग न बढ जाय! रोग न हो तो रोग आनेका भय रहवै ऐसे भयके बदलेमें तपस्या प्रमुख नहीं करता है तपस्या करनेसें नया वेदनीकर्म उदय आनेका हो वो क्षय हो जाता है, और उस बदल उलटे विचार करै वो मूढताका लक्षण है. आत्मार्थी जीव तो वेदनासे डरतेही नहीं वेदना होवै तो शोचते है कि पूर्वकालमें जो जो वेदनीकर्म बाधा है वो ऐसे ज्ञानके [बोधके] वक्तमें उदय आयेंगे तो समभावसें भुक्तेंगे, और बहुत काल दुःख भुक्तनेका वो थोडे कालमें भुक्ता जायेगा— नया कर्मबध न होवैगा पुन॰ विशेष विशुद्धिवत तो जानते हैं कि वेदना होती है वो शरीरकों होती है-मेरा आत्माकों नहीं होती इसी तरह महावीरस्वामीजीकों सख्त उपसर्ग सगमदेवने और व्यतरोंने किया, परतु किंचित्भी भय धारण न किया, और वेदनाका दुःखभी ध्यानमें न लिया, तो अपने आत्माका गुण केवलज्ञानगुण प्रकट किया इसी तरह जिसकों अपने आत्माका कल्याण करना है उसकोंभी महावीरस्वामीजीका मार्ग धारण कर लेना कि कोइ तरहका भय रहने नहीं और निर्भयदशा प्रकटै

छठ्ठा मरणभय सो तो—जगजाहिर है अनादिकालकी मरण होनेकी सज्ञा चली आती है, उसके प्रभावसें देवताभी आते भवका छ महीने पस्तर बध करै तबसें कल्पात करै मनुष्यकी समजदार उम्मर होवै तबसें मरणभयकी विचारणा करता है ज्ञानीपुरुष तो अशमात्रभी मरणका भय नहीं करते, कारण कि आत्मा मरता नहीं मरता है सो पुद्गल है तो जितनी आयुकी स्थिति है वहातक यह शरीरमें रहना

है, तो भय किस लिये करना. कदापी संज्ञासें चित्तमें आवें तो शोचैं कि आयुकी चंचलता है, तो धर्मसाधन करनेमें प्रमाद न करना; क्यौं कि धर्मसाधन मोक्ष संबंधी करना है वो तो मनुष्यकी गतिमें हो सकता है. दूसरी गतिमें ऐसा साधन होनेका नहीं; वास्ते ज्यौं बनै त्यौं अप्रमादपणेसें धर्म करनेमें तत्पर रहना. आते कलपर करनेका विचार करेगा; मगर आते कल क्या होगा वो खबर नहीं है; इस लिये जैसें उत्तराध्ययनजीमें कहा है कि–'हे गौतम! समय मात्र प्रमाद न कर.' ये उपदेश धारण कर कि जिस तरह आत्माकी निर्मलता होवें वैसा उद्यम करना और संयम साधतें शरीर नरम पडता है या देवादिकके उपसर्ग होते हैं तोभी मरणका भय नहीं करते हैं. आत्माकों सोहाते हुवे विचरते हैं. परिसहकी फौजसें नही डरते, आप अपने ध्यानमें तत्पर रहते हैं, विसी तरह आत्मार्थीयोंकों रहना योग्य है. भगवंतजी ये भय क्षय करकें सिद्धि सुखकों पाये हे और उन्होंकी जैसी आज्ञा है उसी मुजब चलेंगे तो मरणका भय नाश होवैगा.

सातवा अपकीर्ति भय सो–शक्ति उपरांत कीर्तिकी इच्छा करे और काम अपकीर्तिके करै. कीर्ति तो क्रियासें होती है. जो लुच्चाइ, चोट्टाइ, चोरी, जूँठ बोलना, परदारागमन, परनिंदा, परकों दुःख देना, पिराया खा जाना, व्यौपारमें अन्यायसें बोलना, बांका बोलना, ये कृत्य न करै. और दुःखीकों सुखी करना, परकार्यमें तत्पर रहना, द्रव्यानुसार दान देना, कितनेक जन तो ऐसा दान देवैं कि आप न खावै; मगर दूसरोंकों देनेमें तत्पर रहवैं, ऐसी वर्त्तना करै तो सहजहीमें कीर्ति होवै. मगर धन होनेपरभी भिखारी पोकार कर मरै तोभी बिलकुल दान न देवे और अपकीर्तिका भय करै. अपकीर्तिका भय रखकर बुरी विचारणा न करै तो उत्तम है. अज्ञानतासें अपकीर्ति होवै वैसाही कारण करै; परंतु ज्ञानीजन तो अपने आत्माके दानादिक गुण है वो प्रकट करनेमें उद्यमवंत हुवे हैं, कितनेक गुण प्रकट हुवे हैं उसमेंभी कीर्तिकी इच्छा नहीं और अपकीर्तिका भय नहीं. इसी तरह उत्तमपुरुष किसी जीवकों दुःख होवै वैसी वर्त्तना नही करते, उसी तरह किसी जीवको दुःख होवै वैसी वर्त्तना न करनी कि सहजहीमें अपकीर्तिका भय दूर हो जावैगा. इस तरह सप्त भयको ध्यानमें लेकरकें जैसें महात्मापुरुषोंनें निर्भयदशा प्रकट की वैसें करना. आत्मगुण प्रकट किया कि वो गुण जानेका भय रखना न पडैगा, वो नीत्य गुण है.

अनित्यगुणका मोह है वहातक जीवको भय रहवेगा; वास्ते त्याग करना कि सहजहीसे भय दूर हो जायगा

दशरा शोक नामक दूपण-सो ससारी जीवोंको हरदम लग रहा है कुटुबमेंसे कोइ बीमार हो आवे या मरजावे तो मनुष्य इतना सारा शोक करते है कि कितनेक तो अत्यत शोकके मारे मरजाते है, या बीमार हो जाते है, शरीर सूखा देते हैं, कितनीक स्त्रीओंकी छातीमेंसे (कूटनेके लिये छाती फट जाती है उससे) लोहु निकलता है-चादी पड जाती है, किसीकी छातीमें इसी सववसे दर्द होता है-ऐसी उपाधि [शरीरको] होती है उस तर्फ लक्ष न देकर रोना पीटना शुरही रखते है ये फल पानेका कारण अज्ञानता है फिर वाजारकी अदर-शरियाममार्गमें (जाहिर राहस्तेपर) भी इसी तरह रोना पीटना करके दूसरेके जीवकोंभी दु.ख देखकर दिलगीरी होती है अच्छे घरानेकी औरतेंभी बेमुलाहजेसे-बेहुदी सिकल बनाकर खुल्लेसीनेसे खडी रहकर कूटती पीटती रोती चिल्लाती है येभी बेइज्जतकी बात ह अभीके राज्यकर्त्ताकोंभी ये बात पसद नहीं है राज्यद्वारी-अधिकारी-अफसर-विद्वानवर्गकाभी बिलकुल ये रिवाज वाहियात मालम होता है, तौभी यह काम जारी रखते हैं. कितनेक मनुष्य तो यु मानते है कि अपन कूट-पीट-चिल्लाकर न रोवेंगे तो लोगमें अपना बुरा कहा जायगा वास्ते शोभा दिखलानेके लिये याने मरनेवालेके ऊपर बडा प्यार, या जिसके घर मैयत-मरण हुवा हो उसके साथ गाढ सबध दिखलानेके लिये जोरसें कूद कूद करक लबे हाथ कर चिल्लाके रोते पीटते हैं और शोभा कायम रही मानते हैं-यह कितनी भारी मूर्खता है ? इन बातोंसे इस लोकमेंभी नुकसान हासिल होता है और परलोकम पापके लिये नरक तिर्यचगते पाते हैं तो जब इस काममें उभय भव भ्रष्ट हो बहुत दु ख उठाने पडते है तब क्यों नहीं छोडना चाहियें ? ज्ञानी जन तो इतना शोच करते है कि जिस चीजका सयोग है उसका वियोगभी है यातो अपन कुटुब छोडकर या कुटुब अपनको छोडकर जाय इन दोमेंसे एक रीतिसें तो वियोग होगाही होगा जो जो वस्तुका जो जो स्वभाव है वो ध्यानमें लेकर बिलकुल शोक नहीं करते है. धन-गुमास्ता-वस्त्र-मकान आर ऐसीही इच्छित प्रिय वस्तु जानेसें शोक करते है उसमें शोचनेका है कि-इच्छित वस्तु पूर्वपुन्यसें स्थिर रहती है, पुन्य पूर्ण हुवा कि वियोग होता है पीछे गत वस्तुका शोक करनेस कुछ फायदा

नहीं है. कितनेक मनुष्य अपमान होनेसें शोकवंत होते हैं; परंतु अपमान तो न करनें योग्य काम या न बोलने योग्य बोलसें होता है, या पुन्यकी न्यूनतासें होता है; वास्ते वो काम छोड देवै तो अपमान न होवैगा. शोक करनेसें क्या फायदा? तोभी शोक करता है. इसी मुजब जिन जिन बाबतका शोक करता है उन उन बाबतोंसें पापकर्म बंधाते हैं. शोकसें शरीर नरम होता है, बुद्धिकीभी हानि होती है और शोकके कारण दूर करनेकाभी उद्यम नहीं हो सकता, उससें विशेष शोक पैदा होता है. इसतरह प्रत्यक्षतासेंभी अज्ञानीजन अज्ञताके मारे नहीं शोचते हैं. ज्ञानीजनको तो शोकके कारण उत्पन्न होते हैं तो चितवन करते है कि मेरे आत्माके सिवा दूसरा मेरा पदार्थ हैही नहीं. जो पुद्‌गलीक वस्तुयें है वो तो संयोग वियोगसें करकें युक्त हैं तो मेरे किस लिये शोक करना? जो जो बनता है वो पूर्व कर्मबंधनानुसार बनता है; वास्ते जो जो कर्मउदय आये है वो समभावसें भुक्तने चाहियें कि जिस्से वो कर्मकी निर्जरा होवै और आत्माभी निर्मल होवै. ऐसी दशा बन जाय तो शोक [जीवकों] रहवैही नहीं या होवैही नहीं. भगवंतजी तो आत्मगुण सिवा दूसरी परभावदशा जो जो जडभावकी वर्त्ते उसमें राग द्वेष करतेही नहीं. उन्होंने तो शोकमोहनीकर्मका नाश करकें आपके आत्मगुण प्रकट किये हैं. लाजिम है कि जिसको आत्मगुण प्रकट करनेकी दर्कार हो तो उसकों प्रभुजीकी मिसाल चलना तो बेशक आत्मगुण प्रकट होवैं.

ग्यारहवा दुगंछा दूषण सो—कोइ खुशबुवाली चीज देखकर प्रसन्न होवै और बदबुवाली चीज देख दिलगीर होवै. अगर तो जो जो पदार्थ आपकों नापसंद हो वो पदार्थ दुगंछनीक लगै. यह प्रकृति जीवकों अनादिसें बनी हुइ है; परंतु ज्ञानवंत तो जिस वस्तुका जो स्वभाव है वो समझ लिया है इससें कोइभी वस्तुकी दुगंछा नहीं करते हैं. जो जो कारण मिलते है वो पूर्वकर्मोदय मुवाफिक मिलते हैं, उससें समभावमें रहकर उसके विकल्प नहीं करते- उनके मनसें तो जो जडपदार्थ आत्माकों घात करते हैं उनके उपर सहजसें दुगंछा होती है. और अज्ञानी जीव जिनकों जो पसंद पडै उसमें वो राजी खुसी होता है; परंतु विषयादिकके कटु फल ध्यानमें नहीं लेता है कि नरकमें इसके कितने और कैसे दुःख उठाने पडेंगे? और जन्ममरणकेभी कैसे दुःख उठाने पडेंगे? देखिये, जिसकों तुम देखकर दुगंछा करते हो उनको भंगी शिरपर उठाके जहां फेंकनेकी जगह हो वहां फेंकते हैं. ये काम किस लिये करना

पडता है ? पिछले जन्ममें न करने योग्य काम किये उसके फल है तो अपनेकोंभी विषय सेवन न करनेके लिये भगवतजीने फुरमाया है कि-' जो विषय भुक्तेंगे उनकों ऐसे दु.ख भुक्तनेही पडगे ' तो ये विषयादि दुगछनीक जानकर त्याग करना और आत्मगुणमें प्रवर्त्तना भगवतजीने इसी तरह चलकर दुगछामोन्नीका त्याग-नाश करके आपके सहज स्वभावसे स्वाभाविक गुण प्रकट किये जिसी तरह अपनेभी गुण प्रकट होवे

बारहवा कामदोष-दूषण सो सर्व दूषणोंका सरदार-अफसर है कामदेवके ताबे होनेसें पुरुषभी महापुरुष होनेकी तक पाकरके पीछे पड जाते है ससारी जीव अनादिकालके कामके वश पडे ह उसकी [काम] सज्ञा चली आती है बाल्यावस्था-मेंभी कामचेष्टा करते है ससार भ्रमणका कारण कामदव है कामदेवके मारे माता-पिता-भाइ-लडके-मित्र-बिरादर-ज्ञानी इन सबका स्नेह सबध तोड देता है कामके ताबे होनेसें धनकाभी नाश होता है शरीरभी निर्बल होता है, आयुकीभी हानि होती है, और अनेक रोग शोग होते है इनके दु ख तो जीवकों प्रत्यक्ष आजमायसमें आ रहेहै, मगर अनादिकालसें कामाधीन रहनेके मारे कामाध हुवा है जो अधतासें करकें कोइभी नुकशान या दु.ख नहीं देख सकता है कितनेक राजा महाराजा कामदेवके कैदी होनेसें राज्यभ्रष्ट-पदभ्रष्ट होते है वो अपनने देखाभी है और इतिहासभी बतलाही रहा है, तोभी जीवकों अक्ल नहीं-भानभान नही आती ए कैसी बडे आश्चर्यकी बात है ! ! कि कर्म किस प्रकार नाच नचाता है ! ! ! ! कामाधतासे कितनेक जन अपनी लडकी-भगिनी-जनेताकाभी शोच विचार नही रखते है, तो दूसरी सबधी औरतोंके वास्ते तो कहनाही क्या ? उनके लिये तो विचारही क्या रक्खें ? कितनीक कामातुर मातायें कामके ताबे होनेसें अपने पुत्रका, पतिका नाश कर देती है ऐसी कामदशा पीडती है, और उससे इस लोकके दु ख ऐसे अनेक प्रकारसें भुक्तने पडते है, और परलोकके दु ख श्रवण करने हो तो सुयगडांगजी सूत्रसें देख लेना भवभावके ग्रथसें देखो-नरकके अदर परमाधामी लोहेकी अगारेके समान तप्त हुइ पूतलीयोंमें लिपटवाते है नरकमें पॉव रखनेकी जगह है वो ऐसी है कि-जैसी तलवारकी धारपर पॉव रखाना [वनी ८] उष्णवेदना ऐसी है कि-हजारों मन लकडे जलते हो उसी जिनाम सुआय उससभी जियादे वेदना होती है शीतवेदना

ऐसी है कि उस जाडे-ठंडीका मुकाबला नहीं हो सकता-चाहे जीतनी आगमें शरीर शेक ले तोभी वो ठंडी निकलती नही. जन्मकी जगह ऐसी है कि राइ राइ जैसे टूकडे करकें उत्पन्न होनेकी जगहमेंसे बहार निकाले. वैक्रियशरीरका स्वभाव ऐसा है कि सब टूकडे इकट्ठे हुवे कि पारेकी मिसाल मिल जाय. (वैसे शरीर खडा हो जाय.) कि पीछे परमाधामी अनेक प्रकारकी वेदना करें. ऐसे दुःख मनुष्यके अल्प आयुमें मनुष्य उसमें अल्पकाल सुख माणते हैं मगर उस अल्प सुखके मारे बडे सागरोपमके आयु तक दुःख भुक्तनेके हैं ऐसा कितनेक जीव जानते है; तोभी कामांधतासें वे दुःख लक्षमें नहीं ल्याते विशेष कामांध हो रहते हैं. जो पुरुष या स्त्रीकी भवस्थिति परिपक्व हुइ है वो तो संसारका त्याग करकें अपने आत्मस्वरूपमें आनंदतासें रहते हैं. कितनेक पुरुष बाह्यसें स्त्रीका त्याग करते हैं; मगर अंतरंगमेंसें (स्त्रीपरसें) चित्त हठ नहीं गया होता है, तो पीछे संसारमें आते हैं-गिरते हैं. कितनेक संसारमें नहीं आते हैं; परंतु चित्त विगडा हुवा रहता है. कितनेककों राग रहता है और जब स्त्रीका मुँह देखें तब शांत चित्त रहता है. ऐसें अनेक प्रकारकी कामविटंबनायें हैं. मगर जिनका आत्मतत्त्वमें दृढानुराग हो रहा है याने सुदर्शनशेठके समान हो रहा हो उसकों अभयाराणी जैसी विचित्र प्रकारसें शरीर स्पर्श, अवाच्य (गुह्य) प्रदेशकों बहुत विटंबना करें; तोभी काम प्रदीप्त न होवें. अभयाके प्रपंची प्रबंधसें सुदर्शनशेठकों राजाने शूलीका हुकम फुरमाया और शूलीपर चडानेकों ले गये तो सत्य-अखंड-अनन्य शीलके प्रभावसें शूली मिटकर सुवर्ण-सिंहासन हो गया-ये महीमा कामदेवकों जीते उनका है! चक्रवर्तीराजाकों एक लक्ष बाणु हजार स्त्री होती है, उनकोंभी जब ज्ञानदशा जाग्रत होती है तब उन स्त्रीओंके स्हामनेभी नहीं देखते. इसतरह कामदेव जीतते हैं. उसी तरह भगवंतजीनें सर्वथा कामकों जीत लिया है, उससें काम दूषण नष्ट हुवा है और भगवंत हुवे. इसी मुताबिक जिनकों आत्माके गुण प्रकट करनेकी दर्कार हो उनकों कामेच्छासें मुक्त होनेका अभ्यास करना. अभ्याससें सभी चीज बनती हैं. कामसेवन करना यह जडधर्म है-आत्मधर्म नहीं आत्मस्वभावमें बहार नहीं वर्त्तन करना ऐसे भाव आनेसें सहजसें काम जीता जाता है याने उसका पराजित किया जाता है. जीनने कामदेवकों जित लिया उननें दुनियांमें सबपर जीत मिलाइही समझ लैना याने कामदेव जीत लिये बाद सबकों जीतना सुलभ-सरल है. जिन जिन

पुरुषोंने कामका पराजय किया है उनके चरित्र वाचनेका उद्यम करना, शिलोपदेश-माला वाचनेसें काम जीतनेका फायदा—लाभ समझा जायगा मुक्तिप्राप्तिका सर्वोत्तम समीप उपाय काम जीतना यही है

१ तेरहवा अज्ञान नामक दूषण है—ये अज्ञान दोषभी अनादिका है, उससें करके आत्मा क्या चीज है? शरीर क्या है? दु ख सुख काहेसें आते है? उनका चाहियें वैसा ज्ञान नहीं हो सकता शरीरके दु खसें दु खी होता है, सुगुरुकों कुगुरु मानै, कुदेवकों सुदेव मानै, और सुदेवकों कुदेव, और कुधर्मकों सुधर्म माने यातो सुधर्मका कुधर्म मानै, शाताके कारणोंके अशाताके और अशाताके कारणोंकों शाताके कारण मानै, जो जो प्रकृति जडकी करें वो अपनीही मानै, धर्म प्रवृत्ति करें तो अधर्म होवै वैसी करें, धन कुटुंबका मिलाप सो परवस्तु है उसकों अपनी मानकर आनंदित बनें, ज्ञानवंतका ज्ञानवान् न जानै, तत्त्वज्ञान होवे वैसा उद्यम न करे, अज्ञानके जोरसें पचेंद्रियके तेइस विषय है उसमें लुब्ध हो बस, ज्ञानीजनने बतलाये हुवे षट् द्रव्य पदार्थ, उसके गुण पर्याय, उसका ज्ञान धारण न करें, उसका नौ तत्त्वका ज्ञान न होवै, और अष्ट कर्मकाभी स्वरूप नही जानै कितनेक धर्म—मजहबवाले कर्मकों मानते है, मगर कर्म किसतरह या काहेसें उदय आवै? कर्म क्या पदार्थ है? कर्म काहेसें बंधे जाते है? और कर्मकी निर्जरा करकें आत्मा किस प्रकार निर्मल होवै? वो अज्ञानतासें करकें नहीं जानते है, ये अज्ञानका महात्म्य है कितनेक बुरे कर्मके जोर प्रत्यक्ष है, तोभी अज्ञानताके जोरसें वो लक्षमें नहीं आते किसी जीवको कोइ मार डालै तो सरकार उसें फासी देती है, वो प्रत्यक्ष दिखता है, तथापि फासी जानेका डर मनुष्य नहीं रखते है और बदकाम करते हैं झूठ बोलनेसें जूठी प्रतिज्ञाका काम—(केस—मुकदमा) चलता है चोरी करनेसे कैद मिलती है छिनाला करनेसेंभी कैद दडकी शिक्षा होती है याने ऐसी ऐसी बात सबके समझनेमें है तोभी उन बाबतोंके ऊपर अज्ञानतासें दुर्लक्ष दिया जाता है, और वैसे बदकाम कियेही करता है अज्ञानतासें राजाके विरुद्ध आचरणभी करता है ये अज्ञान दूर करनेका भाव हो आवै तो ज्ञानाभ्यास करना, शास्त्र पढना,—श्रवण करना, तो षट्द्रव्यका ज्ञान होता है वो षट्द्रव्य नीचे मुजब है —

१ धर्मास्तिकाय सो अजीवद्रव्य, अरूपी, अचेतन, अक्रिय, चलन साह्यगुण

सो जीव तथा पुद्गल चले उसकों सहाय करनेका धर्म है. यहांपर किसीकों शंका होवैगी कि चले उसकों सहायता क्या करनी है? उसका समाधान यही है कि मछली पानीमें तिरती है. अब तिरनेकी शक्ति तो आपकी है मगर पानीकी मदद चाहिती है. पानी बिगर नहीं तिर सकती है, उसी तरह जीव और पुद्गल चले उसकों धर्मास्तिकायकी सहाय चाहियें.

२ अधर्मास्तिकाय–इसका स्वभाव धर्मास्तिकायसें विपरीत है. स्थिर रहनेकों सहाय करता है. मनुष्य, पानी हो और तिरते आता हो तो वो तिरता है; मगर थक जाता है, तो कोइ टेकरी या किनारा हाथ लग जाय तो स्थिर रह जाता है; परंतु जो ऐसी सहाय न मिले तो स्थिर न रह सकता है. फिर धुपमेंसें आते थक गया हो तो वृक्ष या विश्राम स्थळ मिलता है तो बैठता है, उसी मुजब अधर्मास्तिकायकी सहायता–मददसें जीव, पुद्गल स्थिर होते हैं. इस द्रव्यकेभी चार गुण हैं याने अ-मूर्ति अर्थात् रूप नहीं, अचेतन अर्थात् जीवरहित, अक्रिय अर्थात् विभाविक कुछभी क्रिया न करनी, और स्थिर सहायगुण सो ऊपर मुजब स्थिर पदार्थकों सहाय करता है.

३ आकाशास्तिकाय–सो–लोक, जिसमें छ द्रव्यपदार्थ रहे है उसकों लोक कहा जाता है, अलोक, जिसमें आकाश सिवा पदार्थ नहीं. ऐसे लोकालोकमें व्याप्त होकर आकाशद्रव्य रहा है उसकेभी चार गुण है–याने अरूपी अर्थात् रूप नहीं, अचेतन अर्थात् जीवरहित, अक्रिय अर्थात् कोइ जातिकी क्रिया न करनी, और अवगाहना-गुण अर्थात् जीव पुद्गल पदार्थकों रहनेकी जगह देता है; कारण सारे लोकमें जीव पुद्गल भरे हुवे हैं. उसमें जगह नहीं वो आकाश जगह कर देता है. यहां शंका होगी कि जगह नहीं वो किस तरह कर देता है. इसका जवाब यही है कि दीवालमें बिलकुल जगह नहीं होती; मगर खीला ठोके तो दाखिल हो सकता है उसी तरह आकाशास्तिकाय जगह कर देता है.

४ कालद्रव्य उसमें पहेला वर्त्तनाकाल सूर्यकी चाल ऊपरसें गिना जाता है, जैसें कि–सूर्य अस्त होवै और उदय होवै उसके ऊपरसे गिनती होती है. वो गिनती संबंधी काळ है. उसका माप सात श्वासोश्वाससें एक स्तोक होवै. सात स्तोकसें एक लव होता है. ७७ लवसें एक मुहूर्त्त (दो घडी) होता है. ३० मुहूर्त्तका दिवस, ३० दिनका महीना, १२ महीनेका एक वर्ष होता है. ऐसे पांच वर्ष होनेसे एक युग,

और २० युगसें १०० वर्ष होते हैं दश सोसें १ हजार, सो हजारसें १ लाख, ८४ लाख वर्षसें एक पूर्वांग, ८४ लाख पूर्वांगसें एक पूर्व, एक पूर्वके अंक ७०५६००० ०००००००, चोराशी लाख पूर्वसें करकें एक त्रुटितांग और ८४ त्रुटितांगसें एक त्रुटित, ८४ लाख त्रुटितसें १ अडडांग, ८४ लाख अडडांगसें एक अडड होता है ८४ लाख अडडसे १ अववांग, ८४ लाख अववांगसें १ अवव, ८४ लाख अववसें १ हुहुवांग होता है ८४ लाख हुहुवांगसें १ उत्पलांग, ८४ लाख उत्पलांगसें १ उत्पल, ८४ लाख उत्पलसें १ पद्मांग, ८४ लाख पद्मांगसें एक पद्म होवे ८४ लाख पद्मसें १ नलीनांग, ८४ लाख नलीनांगसें १ नलीन, ८४ लाख नलीनसें १ निपुरांग, ८४ लाख निपुरांगसें १ अर्थनेपुर, ८४ लाख अर्थनेपुरसें १ अयुतांग, ८४ लाख अयुतांगसें १ अयुत, ८४ लाख अयुतसें एक प्रयुतांग होता है ८४ लाख प्रयुतांगसें १ प्रयुत, चौराशी लाख प्रयुतसें १ चुलिकांग, ८४ लाख चुलिकांगसें १ चुलिका होती है ८४ लाख चुलिकासें १ शिर्षप्रहेलिकांग होवे और उसको चौराशी गुने करे तब शीर्षप्रहेलिका होवे वो गुणाकारका अंक १९४ अक्षरका होवे सो नीचे मुजब है —

७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४ ८०८०१८३१९६०००००००००००००००० ००००००००००००००००००००० ०००००० ०० ००००००००० ००० इस मुजब अनुयोगद्वार सूत्रजीकी टीकामें छपी हुइ चोपडीके पत्र २४५ में हैं १९४ अक्षरकी संख्या है उससें अधिक संख्या गिननी मुश्किल पडनेसें विशेष अंक नहीं दर्शाये है, परंतु दूसरी तरहसें संख्या मनमें समझी जावे–मुंहसें न बोली जाय, फिर विशेष न्युन समझा जाय उसके लिये बतलाया है कि एक कुवा चार गाउ उंडा ४ गाउ विशाल, और ४ गाउ लंबा हो उसमे युगलीएके सात दिनके बचेके केस लेकर उसके असंख्यात टूकडे करे, और उन टूकडोंसें वो कुवा भरकर उसपर हो चक्रवर्तिका लश्कर चला जाय तोभी वो दबाये हुवे बालके टूकडे न दब जाय वैसे भरे और, हरहमेशां उन उसमें पानी प्रवेश न कर सके ऐसा सज्जड भर दे पीछे उनमेंसें सो सो वर्ष हुवे बाद एक एक टूकडा निकालना यु करनेमें कुछ बालोंके टूकडे निकल

गये बाद कुवा खाली हो जाय तब एक पल्योपम होवै. ऐसे दश कोटाकोटी पल्योपमसें एक सागरोपम होवै. वैसे सागरोपमके देव और नरकके आयु हैं. दूसरीभी गिनतियें काम लगती हैं–ये कालका स्वरुप जगतजीवोंके आयु वगैरःकी गिनतियें आता है. ये चंद्र सूर्यके आधारसें काल कहा जाता है. उसको काल द्रव्यमें स्वाभाविक नहीं गिनते है. अब कालद्रव्य किसको कहा जाय वो कहता हुं. छहुं द्रव्यके अगुरु लघु पर्यायकी वर्त्तना होती है वो वर्त्तना एकसें दूसरी होती उसका नाम समय है. वोही कालद्रव्य उपचरित है. पदार्थरुप नहीं. कारण कि द्रव्यकी वर्त्तना अपेक्षित है उससें पदार्थरुप नहीं. कालका गुण नइ वस्तुको पुरानी करनेका है. कल जो वस्तु तैयार हुइ वो आज पुरानी कही जायगी. आज की सो नइ कही जावैगी. ये काल अपेक्षित कहा जाता है. काल अरुपी है. अचेतन अक्रिय नये पुराने गुण है. ऐसा कालद्रव्यका स्वरुप जानना.

५ द्रव्य पुद्गलास्तिकाय. उसके चार गुण हैं याने मूर्त्त अर्थात् नजर आते हैं. अचेतन अर्थात् जीवपना नहीं. सक्रिय अर्थात् मिलने विखरनेरूप क्रिया करता है–जीवकी साथ रहकर क्रिया करता है वास्ते क्रिया सहित है. और मिलन विखरन गुण है. जो पुद्गल परमाणुको पुद्गल द्रव्य कहते हो वो परमाणु कैसा सूक्ष्म है? जलाया हुवा जले नहीं, छेदनेसें छेदा न जाय, दृष्टिसें अगोचर है. असें दो परमाणु मिलकर खंध होता है, उसें द्वीप्रदेशी खंध कहते है. असे तीन चार आदि परमाणु मिलकर खंध होता है वो खंध दृष्टिगोचर नहीं होते. अनंत परमाणु मिलकर खंध होवै वो नजर आता है. उसें व्यवहार परमाणु कहते हैं. निश्चय नयसें तो खंध कहै. व्यवहारसें परमाणु कहनेका सवव यह है कि वैभी जलानेसें नही जलैं, शस्त्रसें छेदन न हो सकै और एक परमाणुमें एक वर्ण. एक गंध–एक रस–और दो स्पर्श रहे हैं. वर्त्तना मुजब और सत्ता मुजब तो पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श रहे हैं उससें परमाणुके पर्यायका पलटन पना होता है वो पलटन पनेसें सत्तामेंसें वर्त्तना रुप कालेका पीला होवै, पीलेका लाल वगैरः होवै–असें फेरफार होवै. यह अधिकार अनुयोगद्वारजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र २७० में है वहांसें देख लेना. असा प्रमाणुका स्वभाव है, उसस एक छुट्टे परमाणुका निश्चय परमाणु कहा है, और दूसरोंको व्यवहार परमाणु कहा जाता है. निश्चय नयसें तो खंध कहा जावै. व्यवहारसें परमाणु कहनेका

सबब यही है कि दृष्टिसे अगोचर है वैसी जलानेसें न जले-शस्त्रसें छेदे न जाय ये व्यवहार परमाणु अनतमें उतश्लक्ष्ण श्लक्ष्णिका, वो आठसें करके श्लक्ष्ण श्लक्ष्णिका कहे, उससें अष्टगुणेका नाम उर्द्धरेणु, वैसी अर्द्धरेणुसें एक त्रसरेणु यान जो सूर्यप्रकाशसें छप्परके अदर छिद्रद्वारा मालूम होता है वो त्रसरेणु वैसी ८ त्रसरेणुसे १ रथरेणु (रथ चलनेसें जो आकाशमें उडे वो रथरेणु कही जावे) ८ रथरेणुसे एक देवकुरुके युगलियेका [मनुष्यका] वालाग्र होवे ८ वालाग्रसें १ हरिवर्षके मनुष्यका वालाग्र होवे असे ८ वालाग्रसे हेमवतके मनुष्यका वालाग्र होवे, असे ८ वालाग्रसे महाविदेहके मनुष्यका वालाग्र होवे असे ८ वालाग्रसें भरतक्षेत्रके मनुष्यका वालाग्र होवे. असे आठ वालाग्रसें १ लीख होवे. ८ लीखसे १ जू, ८ जूसें १ यवमध्य होवे ८ यवमध्यसें १ अगुल होवे ६ अगुलका १ पाद, १२ अगुलसे १ विंहस, २४ अगुलसें १ हाथ, ४ हाथसें १ धनुष्, असे दो हजार धनुषसे १ गाउ होवे चार गाउका १ योजन, इसके तीन प्रकारके मान है वो अनुयोगद्वारजीकी प्रतमें पत्र १९५ के अदर देख लेना इस मापकी बीचमेंके खध और इससें वडे खध अनेक प्रकारके होते है विचित्र सस्थान विचित्र मापके है परमाणु बहुत और अवगाहना छोटी परमाणु इससेंभी कम और अवगाहना वडी कितनेक खध नजर आवे-हाथमे पकडे न जाय कितनेकके स्पर्श मालूम होवे, मगर नजर न आ सके कितनेक गधसें मालूम होवे, परतु नजरमें गध मालूम न होवे-असे विचित्र स्वभावके पुद्गल पुद्गलस्कध होते है और स्वभावसें विचित्र रीतिके पदार्थ वनते है-पीछे विखरभी जाते है वो देखनेमें आवे, और कामभी विचित्र प्रकारसें करे जितने पदार्थ नजर आते है वो पुद्गल है अपन जिसकों जीव कहते है वो जीव नजर नहीं आता, मगर जीवके ग्रहण किये हुवे शरीर नजर आते है, इस लिये समाधितत्रमें यशोविजयजीने कहा है कि-"दरसै सो चेतन नहीं, चेतन नहीं देखाय, रोप तोप किनसों करे, आपो आप बुझाय." वास्ते कहनेकी मतलब इतनी है कि चेतन नजर नहीं आता देखते हो सो चेतन नहीं मगर जड है-याने पुद्गल है पुद्गलके लक्षण नौतत्वमें दश कहे है याने वर्ण, गध, रस, फरस, शब्द, अधेरा, उजाला, धूप-ताप, प्रभा, और छाउ-इन दश लक्षणोंमसें कोईभी लक्षण नजर आवे उसका नाम पुद्गल समझना और पाच द्रव्य है वो नजर नहीं आते ऐसे पुद्गल पदार्थका ज्ञान हो ता विचारता है कि-मेरा आत्मा अरूपी और ये रूपी पदार्थ इसे मेरा कहता हु यही अज्ञान है और ये अज्ञान गइ नहीं

यहांतक पुद्गलीक पदार्थकी इच्छा नहीं. मिटती. और जड पदार्थकी इच्छा है वहांतक जीवकर्मसें मुक्त नहीं होता. ये पुद्गल पदार्थका ज्ञान भगवतीजीमें बहुत विस्तारसें है अनुयोगद्वारजी वगैरः सूत्रोंमेंभी है वो सुनोगे तब विस्तार पूर्वक समझ पडेगी. कर्म जो बंधे जाते हैं वोभी पुद्गल पदार्थ है. पवन दृष्टिगोचर नहीं होता; मगर स्पर्श होता है वो पवनके पुद्गलोंका होता है. इस तरह कितनेक सूक्ष्म पदार्थ दृष्टिपथमें नहीं आते– जैसें कि अंधेरा, उजाला–इनको पकडे तो पकडे नहीं जाय; परंतु रुप नजर आता है; वास्ते पुद्गल पदार्थ समझना. बादर पदार्थ जाननेसें सूक्ष्म पदार्थका अनुमानसें निर्णय करना.

६ जीवद्रव्य सो अरुपी याने जीवका स्वरुप नहीं. सचेतन–शक्ति है, (चेतन याने चैतना–जानना) जाननेकी शक्ति जीव विदून दूसरे कोइ पदार्थमें हैही नहीं. अक्रिय–कोइभी क्रिया करनेका चेतनका धर्म नहीं, जो क्रिया होती है अनादिकालके जीव कर्मका संबंध है उन कर्मके संयोगसें अपने आत्माका स्वरूप भूल गया है. जैसें मदिरा पी करकें मस्त हो जाता है तब क्या करने योग्य है और क्या अयोग्य है ये ज्ञान मदिरा पीनेवालेकों नहीं रहता है, और अपना जातिस्वभाव नीति छोडकर वर्त्तता है, वैसे आत्मा अपना स्वभाव छोडकर विभाववर्त्तनाकी क्रिया करता है. स्वाभाविक वर्त्तनाका नाम क्रिया नहीं–विभावमें वर्त्ते उसें क्रिया कही जावै; वास्ते स्वाभाविकधर्म अक्रिय है; मगर अज्ञानदशाके योगसें जीवका स्वभावही भूल गया है–शरीर है सोही मैं हुं ऐसा जानता है–शरीरके दुःखसें दुःखी होता है और शरीरके सुखसें सुखी मानता है, धन पुत्र परिवारकों देख करकें आनंदित होता है. ये सब पदार्थ आत्मासें भिन्न है; परंतु अज्ञानताके मारे नहीं जान सकता है. आत्माके छः लक्षण कहे हैं–याने अनंतज्ञान सो जगतमें अनंत जीव हैं–अनंत पुद्गल पदार्थ हैं, एक एक पदार्थमें अनंत गुण पर्याय रहे है उनकी त्रिकालवर्त्तना होती है वो सब एक समयमें जान सके इतनी आत्माकी शक्ति है; मगर जडसंगतिसें आच्छादित हो गइ है, उससें जीव नहीं जान सकता है. अपने शरीरके अंदर सर्व व्यापी हो आत्मा रहा है उसेंभी प्रत्यक्षतासें नहीं जान सकता है. और अंदर [शरीर अंदर] के विभागमें क्या क्या पदार्थ रहे हैं वोभी आत्मा नहीं जान सकता सो ज्ञान आच्छादित हो गया उसका फल है. जब जीवका भाग्योदय होता है तब सर्वज्ञके वचनकी प्रतीति

होता है और आवर्ण क्षय होनेका उद्यम करता है तो क्षय हो जाता है, तब वो वस प्रत्यक्ष मालूम होता है जो ज्ञानगुण सर्वथा तो ज्ञानावरणी कर्म क्षय होवे तब प्रकटता है और थोडे थोडे कर्मका क्षयोपशम याने कितनेक क्षय पाये हैं-कितनेक उपशांत हुवे हैं इससे सत्तामें अभी उदय न आवे ऐसे किये हैं, उसको उपशम कहा जाता है इसतरह क्षयोपशम होनेसे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान ये चार ज्ञान होते हैं सर्वथा प्रकारसें विशेष विशुद्धि हो कर्मका क्षय होनेसें केवलज्ञान होता है ऐसे ज्ञान प्रकट न हुवे उससें अज्ञानपना रहा है इसी मुजब आत्माका दर्शन गुण है दर्शन और ज्ञानमें क्या भेद-तफावत है? ज्ञानका विशेष उपयोग और दर्शनका सामान्य उपयोग-इस प्रकार दर्शन लक्षण है उसकेभी आवरणके लिये दर्शन गुण प्रकट नहीं होता, जैसें कि चक्षुका विषय १ लाख योजनका है, तोभी इतने दूर रहकर नहीं देख सकते, वो आवरणका जोर है इसी मुजब पांचों इंद्रियोंकी शास्त्रमें शक्ति कही है उतनी नहीं चलती वो आवरणका प्रभाव है फिर केवलदर्शनसें सामान्य बोध सब पदार्थका होता है वो केवलदर्शनको आवरण लगनेसें दर्शनगुणका लक्षण नहीं वर्तता-वो लक्षण सर्वथा आवरणके क्षय होनेसें प्रकटेगा चारित्रलक्षण सो आत्मा आत्माके स्वभावमें स्थिर रहवे अब वो स्थिरता आच्छादित होकें विभावमें स्थिरता हुइ है, और मोहनीकर्मका नाश होवेगा तब आत्मस्वभावमें स्थिरता होवेगी। उसके कारणरूप पांच चारित्र हैं और जितना जितना कषाय क्षय होवेगा उतना उतना चारित्रगुण प्रकट होवेगा संपूर्ण क्षयसें संपूर्ण चारित्र लक्षण प्रकट होवेगा तप लक्षण सो आच्छादित होनेसें तपस्या होती नहीं और विचित्र इच्छाएं वर्तती है और अंतरायकर्म क्षय होनेसें सर्वथा पुद्गल पदार्थकी इच्छायें नाश होवेगी, उसके पेस्तर अंश अंशसें इच्छायें रुकी जायगी उतना उतना तपलक्षण प्रकट होवेगा पांचवा वीर्यनामक लक्षण सो आत्माकी अनंत वीर्यशक्ति है, मगर सो आच्छादित हो गइ है जितना जितना वीर्यांतरायका क्षयोपशम होता है उतनी उतनी आत्माकी वीर्यशक्ति शरीरमें रह करकें चलती है जैसें कि श्रीमान् वीराधिवीर वीरप्रभुजीनें एक दिनकी उमरमेंही पांवकी अंगुलीसें (अंगूठेसे?) मेरुगिरिको चलित किया इतनी शक्ति कहांसें जाग्रत हुइ? किसी जीवको दुःख नहीं दिया और आपको किसिनें दुःख दिये है सो सहन किये और दुःख देनेवालेकी फिर क्या क्या करुं उसको प्र

निरोध किया. ऐसिये चंडकोशि सर्पने दंश दिया तो उसको प्रतिबोध देकर अनशन कराकर देवलोकमें वैमानिक देव बनाया इसतरह दयाके परिणामसें शक्तियें प्रकटकी. अपनी शक्ति नाश हो गइ है वो दयाके परिणाम नष्ट होनेसे-हिंसाकी प्रवृत्ति करनेसें वीर्यबल नष्ट हो गया है वो फिर दयाके भावमें वर्त्ते तो वीर्यशक्ति जाग्रत होवे. वो दया दो प्रकारकी होनी चाहियें याने द्रव्य दया और भाव दया. द्रव्य दया उसे कही जाती है कि एकेंद्रि जीवसे लगाकर पंचेंद्रि तक कोइभी जीवकों न मारना. न किसी प्रकारका उन्होंकों दुःख देना. भाव दया उसें कही जाती है कि-ऐसे जीवोंकों दुःख देनेकी वर्त्तना करनी सो आत्माका धर्म नहीं, आत्माको आत्माके स्वभावमें रहना वो न रहनेसें आत्माके भाव प्राणकी हानी होती है आत्माका भाव प्राण ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य यह चार कहे हैं. सो जितनी विभाव दशाकी वर्त्तना हो वेगी उतनी नाश होवेगी. जितनी जितनी विभाव दशा त्याग होवेगी उतनी भाव दया हो आवेगी. सो ऐसी भाव दया जितनी प्रगट होवेगी उतनी उतनी वीर्यशक्ति जाग्रत होवेगी. और संपूर्ण वीर्य गुण सब प्रकारसे कर्म नाश होवेगा तब प्रकट होवेगा वही वीर्यका लक्षण है.

६ उपयोग लक्षण—याने उपभोग क्या है वो जाननेकी शक्ति है; परंतु जाननेके लिये चित्त चहोटाना उस रुप उपयोग नहीं करते वहांतक नही जान सकते है. वो उपयोग ज्ञान दर्शनके भेदसे बारह प्रकारका है वो कर्मग्रंथसें जान लेना.

यह छः लक्षण जीव द्रव्यके हैं. वो जब तक जीव नहीं जानता है तब तक उसकों अपनी पराइ वस्तुकी खबर नहीं पडती है, वो सब अज्ञानताके फल है जीव सदा अविनाशी है, वो अपना स्वरुप न जाननेसें हमेशां मरनेका भय रखता है. ऐसे अनंत गुण आत्माके हैं वो केवलज्ञानी महाराज सिवा दूसरे जीव नही जान सकते है. जीवके १४ भेद, अगर ५६३ बतलाये हैं. वो कर्म संयोगसें करकें शरीर, इंद्रियें वगैरः के तफावतका है. बाकी कर्मरहित सत्तासे सब समान हैं. भेद नहीं; तोभी भेद जानना, वो अधिक न्यून व्यवहारमें है उसकी समझके लिये लिखता हुं.

१, एकेंद्रि सूक्ष्म सो—चर्मचक्षुसें मालूम नहीं होते, २, एकेंद्रीबादर सो—मालूम हो सकें. ३, बेइंद्रि—दो इंद्रिवाले, ४, तेइंद्रि—तीन इंद्रियाले, ५, चौरेंद्रि—चार इंद्रि-

वाले, ६,असंज्ञि पचेंद्रि सो मनरहित, और ७ संज्ञि पचेंद्रि सो मन सहित

यह सात जातिके पर्याप्ते याने पर्याप्ति पूर्ण की हुइ और अपर्याप्ते याने अपनी पर्याप्ति पूरी न की हुइ अर्थात् ये सात पर्याप्ते और सात अपर्याप्ते मिलकर १४ भेद जीवके होते है. अंवे इसके ५६३ भेद विस्तारसें कहता हु.—

१९८ देवताके भेद इस मुजब है कि, १० भुवनपति, १५ परमाधामिके देव, १६ व्यंतरजातिके देव, १० तिर्यक् जंभकदेव, १० योतिषिकी जातिके देव, १२ देवलोक–वैमानिककी जातिके देव, ३ किल्बीषियेकी जातिके (भंगी जैसे) देव, ९ लौकांतिक जातिके एकावतारी देव, ९ ग्रैवेयक जातिके देव और ५ अनुत्तर विमानके देव ये-कुछ ९९ जातिके देव सो पर्याप्ते अपर्याप्ते मिलकर १९८ हुवे इन्ह देवोंकों कवल आहार नहीं, अपनी मरजी मुजब आहारका स्वाद आता है, [कितनेक हीन पुन्यवाले होवै उन्होंकों मरजी मुजब नहींबी बन सके] देवताकी जातिकों वैक्रिय शरीर है, उससें रोगादि पैदा नहीं होते हैं. मनुष्यके आयुकों उपक्रम लगता है वैसे देवकों न लगे–पूर्ण आयुपें मरें. एक दूसरेकी ऋद्धिमें फेरफार बहुत होता है, व्यापार रोजगार करनेकी कुछ जरूर नहीं पडती ये सामान्यपनेसें देवकी जाती कही

३०३ मनुष्यकी जाती हैं वो गिनाता हु. (और उसमें तीन जातिके होते है.) १५ कर्मभूमिके मनुष्य कर्मभूमि किसकों कहते हैं? जहांपर असि याने हथियार–तलवार–भाला–छुरी–तोप–कुल्हाडे–औजार इन वस्तुयोंकों असि (जीव वध होनेका आधार) कहीजाती है और जहां इनकी बपरास होती है. तथा मसी याने शाहीसें चोपडे–ही लिखनेमें आती है, और कृषि याने खेतीवाडीका काम होता है–ये तीन जातिके कर्म जिस क्षेत्रोंम करनेका हो उसकों कर्मभूमि कहते हैं और वैसी भूमिमें रहनेवालोंकों कर्मभूमि मनुष्य कहेजाते हैं याने ३ जंबुद्वीपमें मनुष्य, १ भरतक्षेत्र, १ ऐरवतक्षेत्र, १ महाविदेहक्षेत्र ६ धातकीखंडद्वीपमें मनुष्य, २ भरतक्षेत्र, २ ऐरवतक्षत्र, २ महाविदेहक्षेत्र ६ पुष्करावर्त्तद्वीपके अंदर मनुष्य, २ भरतक्षेत्र, २ ऐरवतक्षेत्र, २ महाविदेहक्षेत्र. ये १५ क्षेत्रमें रहनेवाले मनुष्य १५ जातिके हैं, उसमें भरतक्षेत्र तथा ऐरवतक्षेत्रके मनुष्यकी रीति समान है, कालस्थितिभी समान है, छठ आरेकी हकीकत समान है. पांच महाविदेहक्षेत्रमें सदा तीर्थंकरजी विचरते प्राप्त होते हैं कममेंकम एक महाविदेहमें चार तीर्थंकरजी होने चाहियें–ऐसा जंबुद्वीपपन्नतिमें अधिकार है कोइ प्रथमें

दोभी कहे हैं. ऐसा प्रवचनसारोद्धारमें कहा है. तत्त्वकेवलीगम्य. पुनः उत्कृष्ट कालमें एक महाविदेह क्षेत्रमें ३२ विजय हैं उन सब विजयमें एक एक तीर्थंकरमहाराज होवै उसमें एक महाविदेहमें ३२ तीर्थंकर विचरते प्राप्त होवै. फिर केवलज्ञानी सदाकाल प्राप्त होवै. मोक्षमार्ग हमेशां चलता रहै, जैसें भरत, ऐरवृतमें मोक्षमार्ग तीन आरेमें होता है (खुल्ला होता है.) और दूसरे आरेमें मोक्षमार्ग बंध हो जाता है. वैसें वहां नहीं. आयुके अंदरभी भरत ऐरवृतमें कम वर्त्तना है. वैसें वहां नहीं. सदा क्रोड पूर्वका आयु है. शरीरमान पांचसो धनुष्यका है–यह तफावत है. दूसराभी तफावत शास्त्रसें देख लेना.

३० अकर्मभूमि और छपन्न अंतरद्वीपके मनुष्य युगलिये हैं, वो मनुष्योंको व्यापार, रोजगार, रसोइ बनाना, खेती करना, कोइभी जातके औजार बनाना, वस्त्र पहनना, ये कुछभी करनेका नहीं. मतलबमें असी–मसी–कृषि ये तीन कर्मभूमिके मनुष्य हैं वैसे वहां नहीं. फकत कल्पवृक्ष फल देवै सो खाना, कल्पवृक्षसें घर बन गये हुवेही रहते हैं–उसमें रहते हैं. जिसकी जितनी मर्यादा है उस प्रमाणसें आहारकी इच्छा होवै उस वक्त मरजी मुजब कल्पवृक्ष फल देवै, आयु, शरीरभी बडे हैं, वो हरएक क्षेत्र अपेक्षित है [सो आगे कहा जायगा.] और वहांसें मरके देवता होवै. दूसरी गतिमें न जाय; क्यौं कि सरल स्वभावी हैं. कठीन रागद्वेष नहीं.

१० हैमवंत और ऐरवृत युगलियोंके क्षेत्र, २ जंबुद्वीपमें, ४ धातकीखंडमें और ४ पुष्करार्द्धमें. ये दश क्षेत्रोंमें युगलिये मनुष्य होते हैं उन्होंका शरीरमान १ गाउका, आयु १ पल्योपमका, एक रोजके अंतरसें आवलेप्रमाण आहार करैं, आयुष्यके अंतपर एक जोडेकी स्त्री गर्भधारण करैं, उनका जन्म हुवे बाद ७९ दिन तक उस बालक बालिकाकी माता पिता प्रतिपालना करैं, पीछे माता पिता मरणके स्वाधीन हो देवलोकमें जाते हैं.

१० हरिवर्ष और रम्यक ये दोनु क्षेत्र नीचेके द्वीपमें हैं. २ क्षेत्र जंबुद्वीपमें, ४ पुष्करार्द्धमें, ४ धातकीखंडमें. इन दश क्षेत्रोंके युगलियोंका देहमान दो गाउ, आयु दो पल्योमका, दो दिनके अंतर आहार बेर प्रमाण करैं और ६४ दिन बालकोंकी प्रतिपालना करैं.

१० देवकुरु, उत्तरकुरुके युगलियोंका क्षेत्र, २ जंबुद्वीपमें, ४ पुष्करार्द्धमें, और

४ धातकीखंडमें हैं इन दश क्षेत्रके युगलियोंका देहमान ३ गाउका, आयु तीन पल्योपमका, तीन दिनके अंतर अरहरके जितना आहार करैं [कल्पवृक्षके फलका आहार करैं] और ४९ दिवस बालकोंकी प्रतिपालना करके काल कर जाँय. और देवता होवें ये तीस क्षेत्रके मनुष्यकों अकर्मभूमिके मनुष्य कहेजाते हैं.

५६ अंतरद्वीपके मनुष्य सो–जंबुद्वीपकी जगतीके कोटकी नजदीक हेमवत और शिखरी पर्वत हैं, उन दोनु पर्वतोंमेंसें दाढाए निकलती हे ओंर वो कोटके ऊपर होकर समुद्रमें गइ हैं ये दाढाए चार चार होतीं हैं, ओंर एक एक दाढाके ऊपर सात सात द्वीप हैं, तो दोनु पाहाडकी ८ दाढायोंके ऊपर ५६ द्वीप हुवे उस द्वीपोंको अंतरद्वीप क्यों कहाजाता है? लवण समुद्रपर अद्धर रहे हैं उसीसें अंतरद्वीप कहेजाते हैं, ओंर उस अंतरद्वीपपर रहनेवाले युगलियोंको अंतरद्वीपके मनुष्य कहेजाते हैं उन मनुष्योंका शरीरमान ८०० धनुषका, आयु पल्योपमके असंख्यातमें हिस्सेका ओंर आहार कल्पवृक्षके फलका होता है ये कुल १०१ क्षेत्रके मनुष्य पर्याप्ता अपर्याप्ता ये दोनु भेद गर्भजके गिननेसें २०२ भेद हुवे इसमें १०१ भेद सम्मूर्छिम मनुष्यके दाखिल करना जिस्सें कुल ३०३ भेद मनुष्यजातिके होते हैं समूर्छिम मनुष्य किसकों कहेजाते हैं? मनुष्यके मलमूत्र, लीट, वमन, थूक, रुधिर, माम, वीर्य, चमडी वगैर' मनुष्य अंगके पदार्थमें उत्पन्न होवैं आयु अंतर्मुहूर्त्तका, अपर्याप्ति अवस्थामेंही मर जावें–पर्याप्ति पूरी करेंही नहीं. शरीरमानभी अंगुलके असंख्यातवे हिस्सेका होता है, जिस्सें देखनेमेंभी न आ सके ये ७–८ प्राण धारतेहीं मरण पावें

तीर्यचके ४८ भेद हे याने एकेंद्री सो जिसके एक स्पर्शेंद्रि है उसकेभी भेद इस मुजब हैं कि–पृथिवीकाय सो मिट्टी, पाषाण, रत्न, सुन्ना, धातु यें, मोती–ये पृथ्विकाय कहेजावें (मोतीकों अनुयोगद्वारजीकी टीकामें पृथ्विकाय ओर अचित्त क हैं) इस बाबतमें शंका होवे कि 'सीपके बदनमें पृथ्विकाय क्यों होवे?' तो हम खुलासा करते हैं कि–मनुष्यके शरीरमें पथरी–पहाणनी होती हे वो पृथ्विकाय है, उसी मुजब मोतीकाभी समझ लेना ये पृथ्विकायके पत्थर बडे बडे नजर आते हैं तोभी ये असंख्याते जीवपिंड हैं एक आवलके जितनी मिट्टी या पत्थर लिया हो उसमें असंख्यात जीव हैं एक जीवका शरीर अंगुलके असंख्यातवे भागका हे जो सबका पिंडभूत है. ये जीवके शरीर कल्पनासें कबूतरके समान करें तो एक लाख

२ दोइंद्रिवाले जीव सो बेइंद्रि याने शंख, कोडी, कोडे, गंडोले, भूसपें, मेहर, सूक्ष्म कृमिजंतु, वडे कृमि वगैरः जीव कि जिनकों शरीर और मुँह ये दो इंद्रि हैं वो, और वोभी पर्याप्ते, अपर्याप्ते एसे दो भेदवंत हैं. वो जीवोंका शरीर वडेमें वडा वारह योजनका होवे. उस समयमें मनुष्यका शरीरभी वडा होता है. कितनेक जीवोंकों भगवंतवचनोंकी प्रतीति नहीं होती उसकों इन वातोंसें व्यामोह होता है कि इतना वडा शरीर क्यौं करकें होय ? मगर बुद्धिमानोंकों और प्रभुवचनकी श्रद्धावालोंकों शंका नहीं होती; कारण कि अभी एक अखवारके अंदर पढनेमें आयाथा कि एक छिपकलीकी हड्डीये सवा गजकी थी. और यहां तो ४ तसुकी नजर आती है, हड्डीयें इतनी वडी नजर आती है ! कोइ वक्त ऐसी वडीभी होती होगी वैसा हड्डी देखनेसें निश्चय होवै. देशकी तफावतसेंभी वडे छोटेका तफावत नजर आता है. काकरेची वहेल जैसे वडे होते हैं वैसे वडे वहेल इस प्रांतमें नहीं होते है. घोडे विलायतसें आते है याने आस्ट्रेलियन, अरेवियन हॉर्स आते हैं वो इतने वडे आते हैं कि वैसे इस देशमें (गुजरातमें) पैदा नहीं होते हैं. मनुष्यभी पंजावमें कदावर मजबूत होते हैं वैसे गुजरातमें नहीं होते. इसका सवव यही कि हवा पानीके तफावतसें करकें छोटा वडा और सवल निर्वल प्राणी होता है. उसी तरह समयके फेरसें तफावत हुवा होगा ऐसें समझकर बुद्धिवंतोकों शंका नहीं होती. ये वेइंद्रि जीवोंका आयु वारह वर्षका होता है.

२ तेइंद्रि जीवके दो भेद है याने पर्याप्ते और अपर्याप्ते हैं. ये जीव खटमल, कीडे, चींटी, मकोरे–वगैरः समझ लैना. इन जीवोंका शरीर वडेमें वडा ३ गाउका होता है. उत्कृष्ट आयु उनपंचास (४९) दिनका कहा है, वोभी पर्याप्तेका, और अपर्याप्तेका तो अंतर्मुहूर्त्तकाही होता है.

३ चोरेंद्रि जीवभी दो प्रकारके है याने पर्याप्ते और अपर्याप्ते. इन जीवोंकों पांच पर्याप्ति हैं वो पूरी करै तव पर्याप्ते और उसमेंसें अपूर्ण पर्याप्ति होवै वो अपर्याप्ते मख्खी, मच्छर, विच्छू, प्रमुखजीव समझ लैना. इन जीवोंकों स्पर्शेंद्रि, रसेंद्रि (जीभ), घ्राणेंद्रि (नाक), चक्षुइंद्रि [आंख]–ये चार इंद्रिये होती हैं. उत्कृष्टायु छः महीनेका और उत्कृष्ट शरीर एक योजनका होता है.

पंचेंद्री तिर्यचके २० भेद है याने [1]जलचर सो–मच्छ, मच्छी, ग्राह वगैरः जलमेंही रहनेवाले, [2]थलचर सो–गैयें, भैंश, वहेल, वकरी, हथ्थी घोडे इत्यादि. [3]खे-

चर सो-पखी-आकाशम ऊडनेवालोंकी जाती. ४उपेरिसर्प सो-पेटके सहारेसें चले-वैसे-सर्प आदि ५भुजपरिसर्प सो-भुजाके सहारेसें चले-वैसे नकुल, खिलकूडी वगैर ये पांच प्रकारके तिर्यच सो गर्भसें उपत्न्न होवे वो गर्भज-याने स्त्री पुरुषके सयोगसें पैदा होते हैं इन जीवोंके शरीरका मान, आयुष, क्षेत्र, काल, जीव अपेक्षासें अलग अलग है वो पन्नवणाजीमें, जीवाभिगमजी या जीवविचारसें जान लिजीयेजी ये जीव कर्मभूमिमें और अकर्मभूमिमें पैदा होते है दूसरा भेद समूछिम तिर्यच वो स्त्रीके सयोग सिवा पैदा होते हैं, जैसें कि मेंढक मर गया हो और उसका कलेवर पडा होवै उसमें मेघवृष्टिकी बुद पडनेसें फिर नये मेंढक फौरन पैदा हो आते है. बिच्छुके कलेवरमे बिच्छू पैदा हो आते है गोबरमेंभी बिच्छु उत्पन्न होते हैं. और कितनीक वस्तुओंके प्रयोगमें [सयोगसें] जीव पैदा होते हैं, उसे समूछिम कहा जावै येभी पच प्रकारक होते है इससें गर्भज और समूछिम मिलकर दस भेद हुवे उस गर्भजके छः पर्याप्ति हैं और समूछिमके पाच पर्याप्ति है उस मुजब पर्याप्ति करै उसे पर्याप्ते कहेजावें पर्याप्ति पूर्ण न की वहातक अपर्याप्ते कहेजाते हैं इसतरह ये दो भेदसें गिननेसें २० भेद होवें, वो वीस प्रकारके तिर्यच पचेंद्रि समझ लेना एकेंद्रियसें लगाकर तिर्यच पचेंद्रि तलकके भेद इकठे करनेसें ४८ भेद कुल तिर्यचके हुवे

अब नरकके जीव चौदह प्रकारसें नॉव भेदसें होते हैं याने रत्नप्रभा नरकके नारकी १, शर्कराप्रभा नरकके नारकी २, वालुकाप्रभा नरकके नारकी ३, पकप्रभा नरकके नारकी ४, धूमप्रभा नरकके नारकी ५, तम प्रभा नरकके नारकी ६ और तमतमा प्रभा नरकके नारकी ७ इन सातों नरकोंमें जीव पैदा होवे उस नारकी कही जावे

पहिली नरकसें दूसरी नरकमें ज्यादे दु ख, आयुष्य और शरीर होते हैं याने इसी तरह एकसें एक नरकका दु ख, आयु, शरीरमान ज्यादे ज्यादे होते हैं. उन नरकके दु ख ऐसे हैं कि उसके मुकाबिलेके दु ख मनुष्यलोकमें हैइ नहीं. कितनीक नरकोंमें परमाधामीकी की हुइ वेदना है, और कितनीक नरकोंमें स्वभाविक क्षेत्रप्रभावसें वेदना है जो जो कठीन पाप किये जावे उनके फल नरकमें भुक्ते जाते है ज्यादेमें ज्यादे आयुष्य तेत्तीस सागरोपमका है उसमें असख्याता काल चला जाता है, उतने काल तक दु ख भुक्तनेका है और मनुष्यमें विषयका अल्पकाल सुख माना हुवा भुक्तनेका है, वस्तुतामें तो विषयम सुख नही, मगर अज्ञानतासें सुख मानकर विषयसुख भुकता

है और उसके फलसें जीव नरकमें जाकर अकथनीय दुःख भुक्तता है, उन नरकके जीवोंके दस प्राण हैं. छः पर्याप्ति हैं. वो बांध न रहा होवें वहांतक अपर्याप्ता कहा जाय, और पूर्ण बांध लेवें तब पर्याप्ता कहाजाय. वो पर्याप्ते अपर्याप्ते मिलकर चौदह प्रकारके नारकी हुवे.

एकेंद्रिसें लगाकर पंचेंद्रि तकके कुछ भेद इकठे करलेवें तब चारोंगतिके कुल ५६३ भेद होवें सो निम्न संख्या मुजब हैः—

१९८	देवताके,	३०३	मनुष्यके भेद,
४८	तिर्यंचके,	१४	नारकीके.

यों सब मिलकर सामान्यतासें जीवके ५६३ भेद होते है. विस्तारसें तो जीवके भेद और जीव स्वरूप वर्णन करनेसें आयुष्यभी खतम हो जाय इतना वर्णन शास्त्रमें कहा गया है; वास्ते विस्तार समझनेके लिये रुचिवंत जीव शास्त्राभ्यास करकें जान लेवें, मगर जहां तक अज्ञानकी प्रबलता है वहां तक जीवकों वीतरागभाषित शास्त्र देखनेकी या सुन्नेकी रुचिही न हो आवेगी. युं करतें जोराइसें या शरमसें सुन लेवे तो उन वचनोंमें श्रद्धा न करै; क्यौं कि जो पूर्वजन्मकी विपरीत श्रद्धाकी संज्ञा चली आती है उनके जोरसें सच्ची वस्तु नहीं रुचती है. उन्मार्गकीही रुचि होवै. विपरीत वस्तुपर कल्पित न्याय जोड कर उसकी श्रद्धा करै. दूसरे जीवोंकोंभी कुयुक्ति कर समझाकें उन्मार्गमें गिरावै. और इसी तरहसें करनेके सबबसें अनेक धर्म–मत हो गयें हैं. और जो मनुष्य जिस धर्मकों मानता है उस धर्ममें क्या फरमाया है वोभी नहीं जानता है. आप जिसकों देव मानता हैं वो देव किस सबबसें मानता हुं, उन देवमें देवके लक्षण है या नहीं, वोभी नहीं देखता. कितनेक ब्राह्मणोंनें क्रिश्चियनी धर्म अंगीकार करकें वेद धर्मको छोड दिया है; लेकिन वेदमें क्या भूल है उसकों वो नहीं जानते हैं. एक क्रिश्चियनसें पूँछा गया था तो उसकी तर्फसें संतोपकारक जवाब याने भूल न बता शका था. उसका सबब इतनाही है कि स्त्री और धनके लोभसें ख्रिस्ती धर्म स्वीकारते हैं, उसकों पीछे कुछ धर्म जाननेकी जरूरत नहीं रहती है. अज्ञानके जोरसें सत्य ढूंढनेका दिल नहीं होता. कितनेक ब्राह्मन जैनकी निंदा करते हैं वो इतने तककि वैस्याके घरमें जाना; लेकिन जैनमंदिरमें न घुसना. यह कथन कितना भूल भरा हुवा है सो नीचेकी हकीकतसें सहज समझमें आयगा.

माननीय महाभारत शास्त्रमें फरमाया है किः—

युगे युगे महापुण्य दृश्यते द्वारिकापुरि ॥
अवि तीर्णो हरिर्यत्र, प्रभासे शशिभूषण. १
रेवताद्रौ जिनो नेमि र्युगादि र्विमलाचले ॥
ऋषिणामाश्रमा देव. मुक्तिमार्गस्य कारणम् २

इस मुजब कल्यावतार वेदव्यास विरचित महाभारतमें श्लोक हैं, इन श्लोकमें जैनका तीर्थ जो रैवतगिरि कहा है उसें आधुनिक समयमें गिरनार, कहेते हैं और वहां नेमिनाथजी महाराज बाइसवे तीर्थंकर हैं उनकाही महीमा जैनी मानते हैं, यही तीर्थका और नेमिजिनका बहुतमान पूर्ण किया है. फिर विमलाचल कि जिसें अभी शत्रुंजय कहेते हैं, यहा युगादिजिन हैं याने श्रीऋषभदेवजीकों जैनमें युगादिजिन कहे हैं–ऐसाही भारतमें कहा है ये दोनु तीर्थोंकों मोक्षका कारण इस श्लोकमें बतलायें हैं उन भारतकोंही माननेवालेकों ये जिनतीर्थोकी और जिनदेवोंकी मोक्ष कारणभूत सेवना करनी चाहियें या निंदा करनी चाहियें ? भारत तो हमेशा. बांचा जाता है, तथापि ये बात निगाहमें न रखतें उलटा रस्ता पकडते हैं यो अज्ञानकी राजधानीका फल है, परतु जिनका कुछ अज्ञान पतला पड गया होवे उसके कान खोलनेके लिये यह वार्त्ता जाहिर की हैं दूसरी जगहभी कहा है कि —

ऋग्वेदका मंत्र.

ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थंकरान् ऋषभाद्यान् वर्द्धमानांतान् सिद्धान् शरण प्रपद्ये

यजुर्वेदका मंत्र.

ॐ नमोर्हतो ऋषभाय, ॐ ऋषभपवित्र पुरहुतमध्वर यज्ञेषु नग्न परममाह संस्तुतावार शत्रुंजय त सुरिंद्रमाहुतिरिति स्वाहा

यजुर्वेदका दूसरा मंत्र

ॐ त्रातारमिन्द्र ऋषभवदति अमृतारमिन्द्र हवेसुगत सुपार्श्वमिन्द्र हवेसक्रम जित तद्वर्द्ध मानपुरहुतमिन्द्र माहुतिरिति.

तीसरा मंत्र.

ॐ नग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भसनातनं उपैमिवीरंपुरुषमर्हंतमादित्यवर्ण तमसः पुरस्तात स्वाहा–

पुनः ऋक्वेद–मंत्र १, अ. १४ सू. १०

स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः

इस तरह वेदमें मंत्र हैं वो दयानंदछलकपटदर्पन नामक कितावमें मैंने पढे हुवे हैं. [पत्र २१९ वेमें हैं.] उसपरसें वेदके जाननेवाले शास्त्रीकों मैंने वतलाये और पूँछा कि–'ये मंत्र तुमारे वेदमें है?' शास्त्रीजीने सत्यदशा ग्रहण कर कहा कि–'हम हमेशाः वेदाध्ययन करते हैं उसमें ये मंत्र आते हैं.' उन शास्त्रीके कथनसें प्रतीति हुइ कि वेद अंदरकेंही हैं. उससें इस कितावमें दाखिल कीये हैं. जो हठ विगरके होंवें उसें समझा जॉय कि जैनके देवकोंभी वेदवालोंने मान्य किये हैं, तो उन्होंकी निंदा क्यौं कर करुं? फिर जैनधर्म नया है अैसा जिनके दिलमें हो तो शोचो कि जैनके ऋषभदेवजीसें लगाकर चोइसवे महावीरस्वामी तक चोइस तीर्थंकरकों वहुत मानपूर्वक नमस्कार किया है. तो ये जैनधर्मके देव हुवे वाद वेद हुवे या पेस्तर? जो वेद अनादि होता तो इन देवोंका स्मरण न होता, [क्यौं कि ये नाम तो इन चोवीसीके देवके हैं ऐसी तो अनंत अनंत चोवीसी हुइ हैं. यदि वेद पुराना होता तो वो वात उसमें आती; मगर वो नहीं है; वास्ते इन वर्त्तमान चोइसीके पीछे वेद रचा गया होना चाहियें ऐसा प्रमाण मिलता है.] वास्ते जैन अनादि हैं यह वेदसेंही निश्चय हो जाता है; मगर यह वात जिनका मिथ्यात्व पतला हो गया होवै उसकोंही समझमें आयगी; परंतु जो हठवादि कदाग्रही हैं–अज्ञानका पूर्ण जोर है वैसे मनुष्यकों सत्य विचार करनेकी वुद्धिही जाग्रत नहीं होती, और सत्य समझनेमें आताही नहीं. 'करते आये हैं वही करना'–इतना सिर्फ समझ रख्खा है. जव अज्ञान दूर हो जायगा तव सच्चा या झूठा ढुंढनेकी वुद्धि जाग्रत हो आयगी, और सत्य अंगीकार करेगा. जो जो मनुष्य अपना देव मानते हैं और उन देवोंने धर्म वतलाया है उन मुजव वो देव धर्ममें चले हैं या नहीं? उस वास्तेही देवोंके चरित्र शास्त्रोंमें वतलाये हैं, वो देख लेने चाहियें. और उन चरित्रोंमें जिस मुजव अपनकों नीति रीति रखनेके लिये फरमाया गया है उसी मुजव वै पुरुष आपकी नीति रीति–वर्त्तन रखते थे या नहीं? और

सर्वज्ञपणा माना जाता है वो चरित्रोंके उपरसें सिद्ध-साबित होता है या नही ? और उसकी सचूती न मिलै तो पीछे उन्होंकों देव किस लिये मानने चाहियें ऐसा विचार अज्ञान दूर हठनेसेंही आवेगा, मगर उस विगर न आवेगा फिर गुरुपणा धराते हैं और लोगोंकों धर्मोपदेश देते हैं कि अहिंसा धर्म (दया) सभीमें मुख्य है यों समजाते हैं, मगर आप खुद हिंसाका त्याग करते नहीं झूठा न बोलना यह बात षट्दर्शनवालोंकोंभी मान्य है, तोभी गुरु होकर झूठ बोलनेमें बिल्कुल नहीं डरते हैं, चोरी करनी नहीं, किसीकों ठग लेना नहीं क्यों कि ये जगतमें निंदनीक है और उसका कुल धर्ममें निषेध किया है, तदपि गुरुनाम धारण करकें चोरी, ठगाइ, कपटके काम करते हैं परस्त्रीका त्याग सब धर्मोंमें है और जगतमें अनिंदनीय है तथापि गुरु होकर सेवककी स्त्री, बहन, माता और लडकीके साथ मैथुन सेवनेमें नहीं डरते हैं साधुकों धन न रखना चाहियें, ये आर्यधर्मकी मर्यादा है, तोभी सेवकके पाससें धन लेते हैं फिर कपट लुचाइ करकें धन लेते है सेवकोंपर जुल्म गुजारकर धन हाथ करते हैं ऐसी वर्त्तना करनेवालेयों गुरु मान लेवै, उनकों हजारा रुपैये दे देवै ये तमाम अज्ञानदशाकी प्रबलता है ऐसेकों गुरु माननेका विचार नहीं वो दूसरे सत्य असत्य धर्मकों क्या तपास लेवैगा ? अज्ञानतासें ऐसे अज्ञानी गुरुसें ठगाते हैं, इतनेसेंही बस नहीं होता, मगर आगतजन्ममें सचे धर्मकी निंदा करनेसें जो कर्म बधे जाते हैं उससें जन्मोजन्म दुर्गतिके दुःख भुक्तेंगे और जो पुरुष आत्मार्थी हुवा है अगर थोडा अज्ञान दूर हो गया है उसके प्रभावसें न्यायकी बुद्धि जाग्रत होती है उससें सत्यासत्य मार्गकी परीक्षा करकें खोटा मार्ग त्याग कर सचा मार्ग अंगीकार करता है जसें गौतमस्वामीजी श्रीमन्न् महावीरस्वामीजीकी महत्त्वता सुनकर बहुतही रोष और अहंकारमें व्याप्त हुवे थे, और भगवान्जीके साथ वाद करनेकों समोवसरणमें आये थे, लेकिन भगवतजीने वेदके अर्थ समझाकर सचा मार्ग गौतमस्वामी महाराजकों समझा दिया, वो गौतमस्वामीजीनें न्यायकी बुद्धिसें विचार करकें सत्य जानकर ग्रहण किया, और आपके असत्य धर्मका त्याग किया, और भगवान् सर्वज्ञ है ऐसा दृढ करकें आप भगवानजीके शिष्य हुवे भगवतजीने वासक्षेप किया, उतनेमें भगवानजीके प्रभावसें करकें आवरण क्षय होनेसें सवबसें द्वादशांगीके ज्ञाता हुवे क्रमसें करकें शुक्ल ध्यानमें स्थित हो घातीकर्म क्षय करकें केवलज्ञान पाये और मोक्षमें

पधारे, वैसें जो जो आत्मार्थी पुरुषोंने अज्ञान खपाकर ज्ञान प्राप्त करकें अज्ञान खपानेका मार्ग दर्शाया है, वो मार्ग अंगीकार करकें चलना कि सहजहीमें अज्ञान क्षय हो जायगा. जिन पुरुषकी अंदर अज्ञानका अंशभी नहीं रहा है वही पुरुष सर्वज्ञपणा प्राप्त करता है और भगवान्‌जी उनीकोंही कहे जाते हैं.

१४ मिथ्यात्व नामक दोष है सो मिथ्यात्व किसकों कहा जाय उसका खुलासा करते हैं. सच्ची वस्तुकों झूंठा मान लेवै, झूंठी वस्तुकों सच्ची मान लेवै, सत्यकों असत्य मान लेवै, असत्यकों सत्य मान लेवै, धर्मकों अधर्म मान लेवै, अधर्मकों धर्म, देवकों अदेव, अदेवकों देव, चेतनकों अचेतन, और अचेतनकों चेतन माने याने जो जो पदार्थ हैं उसके जो जो धर्म रहे हैं उससें विपरीत धर्म मान लेवै, या न्यायकों अन्याय और अन्यायकों न्याय मान लेवै ऐसी विपरीत बुद्धि होवें वो मिथ्यात्वकी राजधानी है. यहांपर कोइ शंका उठावेगा कि ‘अज्ञान नामक दूषण कहा गया उसमें और मिथ्यात्वमें क्या तफावत है?’ उन शंकाके समाधानमें यह खुलासा है कि अज्ञानसें करकें जडबुद्धि होती है और मिथ्यात्वसें करकें विपरीत बुद्धि होती है—यह तफावत है. जिसकों मिथ्यात्व है उसकों अज्ञानभी है, और जिसकों अज्ञान है उसकों मिथ्यात्वभी है. यह दोनु साथही रहते हैं उससें एकत्रता मालूम होगी; मगर दो शब्दके मायने अलग हैं और भावभी भिन्न हैं ये मिथ्यात्वकी बुद्धिवालेकों बहुत प्रकारके हैं वो समझाने लिये सिद्धांतकारने पचीश भेद कहे हैं. और वो पचीश प्रकारसें श्रावकके बारह व्रत अंगीकार कर लेवै तब सम्यक्त्व अंगीकार होतेही पचीश प्रकारसें त्याग करते हैं वो स्वरूप किंचित् यहां लिखता हुं.

१ अभिग्रह मिथ्यात्व सो कुगुरु, कुदेव कुधर्मका झूंठा हठ पकडा हुवा है वो मिथ्यात्वके जोरसें गर्दभ पुंछकी तरह छोड देवै नहीं, यह देखकर किसी पिताने पुत्रकों समझाया कि जो पकडना सो छोडना नहीं. उस बातका विशेष स्वरूप समझे लिये बिगर वो बात चित्तमें निश्चयतासें कायम करकें पीछे कोइ वक्त बाजारमें गया वहां गद्धा दोडता हुवा आया उसकों रोकनेके वास्ते उसका पुंछ पकड लिया. जब उस गद्धेने लातें मारनी शुरू की तब वे लातें खानीही शरू रख्खी; लेकिन पकडा हुवा पुंछ न छोड दिया. वो देखकर लोगोंकों दया आनेसें उसकों समझाया कि ‘पुंछ छोड दे, नहीं तो लातें खाकर मर जायगा.’ उसने एकही जवाब दिया कि–

'मेरे बापने मुजकों शिक्षा दी है कि जो कुछ पकड लिया सो कभी छोड देना नहीं, वास्ते मैं पकडा हुआ पुछ बेहोश होनेतक न छोडुगा.' ऐसा कहकर पुछ न छोडा और लातें खाकर दु:खी हुआ। वोसी तरह यह मिथ्यात्वके जोरसें सद्‌गुरु सचा मार्ग बतलावे-बहुत तरहसें समझावें, तदपि सुगुरुका वचन मान्य न करे और कहवे कि जो बापदादे करते आये हैं वही करना क्या बुढे दीवाने थे? ऐसे हठ पकडकर सची बात न समझे और प्रत्यक्ष कुगुरु अपनी औरत या माता भगिनीके साथ बुरी तरहसें चालचलन करता होवे तौभी बापदादाका हठ पकडकर कुगुरुकों न छोडे सो अभिग्रहिक मिथ्यात्व कहा जाता है

२ दूसरा अनभिग्रही मिथ्यात्व सो सच्चे देव और खोटे-जुठे देवकों, कुगुर सुगुरुकों, और सत्य धर्म असत्य धर्मकों-इन सबकों समान समझें, सुदेव और कुदेवकों भी नमस्कार करें, सच्चे झूठेका भेद न मानें, मुहसेंभी बोले कि, सर्व देवकों नमस्कार करना; मगर उसका परमार्थ नहीं जानता है कि देवकों तो नमस्कार करना योग्य है, लेकिन देवपना नहीं और उसमें देवपना कैसें मानना चाहिये, वैसा विचार नहीं, उससें गुणी निर्गुणीकों समान मानता है उसमें भाग्योदयसें सुगुरु मिला तो कल्याण, मगर वो मिल न सके यादि मिले तो जैसी बुद्धि रहवे नहीं, और एसी बुद्धि रही है तो उससें मालुम होता है कि कुगुरु मिले हैं और उसकी संगतीसें तत्त्वकों अतत्त्व मान लेवे उससें शुद्ध आत्मधर्म और आत्मधर्म प्रकट करनेके कारण न मिल सकै. और भवका विस्तार होवे नहीं, वास्ते आत्मार्थी सत्य असत्यकी परिक्षा करकें शुद्ध देवगुरु धर्म अंगीकार करना कि अनभिग्रहीक मिथ्यात्व दूर हो जाय

३ अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सो सत्य देवगुरुकों जाने, मगर मिथ्यात्वके जोरसें उसकों आदरे नहीं कोइ समझावे तो उसको कहवे कि बाप दादे मान्य करते हुवे आये है वो कैसें छोड दिया जावे? यदि छोड देवे तो नाककटी हो जाय, बाकी हम जानते है कि अच्छे तो नहीं हैं' ऐसा जवाब देवे और ममत्त्व करकें असत्य प्ररुपणा करे-खींचा तानी करे-उन्मार्ग बतलावे, आत्माकों कर्मबंधनका भय नहीं उससें वीतरागका मार्ग सत्यजाने तौभी वीमी तरह अपने अहंकारके लिये प्ररुपणा न करे. आप वर्त्तेभी नहीं और सत्यपर द्वेष करे. ऐसे हठवादी पार्श्वनाथजीकी परंपराके साधु गोशालादि साथ रहे हुवेथे उनोंकों श्रीमन् वीरपरमात्माजीके श्रावकने जाकर कहा

२ अधर्मको धर्म मान लेवै यानें अनादि कालका जीव अधर्मकों सेवन कर रहा है. फिर अधर्मीके कुळमें जन्म पाया है उससें उनकी बातें सुनकर वो रीतिकी श्रद्धा करै और हिंसा करकें धर्म मान लेवै; जैसें कि कितनेक लोग बिच्छु, सांप, सेर–सिंहादि हिंसक जीवकों मारडालनेमें धर्म है ऐसा मानते हैं. फिर बकरीदमें बकरे मारनेमें धर्म मानते हैं; इस तरह अज्ञानतासें जीवहिंसा करकें धर्म मान लेवै सो अधर्मकों धर्म मानते हैं ऐसाही कहा जायगा. पुनः लोगोमें आर्यलोग कहे जाय, दयाळुभी कहे जाय और कितनेक बकरे घोडे वगैरः जीव यज्ञ करकें उसमें होम देवै उसकों धर्म मानै, कोइभी जीवकों दुःख होवै तो उसका फल यही है कि उस पापसें अपनकों दुःख भूक्तना पडे ऐसा सब धर्म–मजहबवाले मानते हैं; तथापि ऐसे प्राणीओंकों दुःख देनेमें पाप नहीं मानते है ये अधर्मकों धर्म मान लिया कहा जायगा, वास्ते जो जो मनुष्य कोइभी जीवकों दुःख देना, जूठ बोलना, चोरी करनी, परस्त्रीगमन करना, धनकी तृष्णा रखना–इन वस्तुओंमेंसें कोइभी वस्तु करके धर्म मानै वो अधर्मकों धर्म मान लियाही कहा जायगा. यहांपर कोइ प्रश्न करेगा कि तुमारे जैनी घोडे गाडीपर बेठनेवाले, अच्छे आभूषण जेवरके पहननेवाले, ढोलीयेपर अच्छी शय्या बिछाकर सोनेवाले और हर हमेशां मिष्टान भोजनके करनेवाले सुखिये जीवकों संसार छुडा करकें दीक्षा दिलाकर नंगे पेरसें चलाते हो, खुल्ले शिरसें फिराते हो, जमीनपर सुलाते हो, घर घर भीख मंगवाते हो, जैसा (लूखा सूका) आहार मिलै वैसा खिलवाते हो और सुंदर विगय खानेका मना करते हो ये क्या ? उसकों दुःख देकर धर्म मान लिया है ऐसा न कहा जायगा? इस विषयमें खुलासा करेंगे कि हमारे जैनी मुनि महाराज किसीकोंभी जोराइसें–जबरदस्तीसें इस तरह नहीं करवाते हैं. और जबरदस्तीसें इस अंदरका कुछभी किसीकों करवावें और धर्म मानें तो वेशक तुम कहते हो वैसाही होवे; मगर हमारे मुनि तो संसारमें क्या क्या दुःख हैं, फिर संसारमें सुखकों दुःख माननेसें क्या फल होता है, मोक्षसाधन किस तरह किया जाता है उसका धर्मोपदेश देते हैं. वो धर्मोपदेश आत्मार्थीजन सुनकर जड शरीरमें रही हुइ अज्ञानताकी प्रवृत्ति अनिष्ट लगती है और आते जन्ममें विषय कषायके कटुफल जाननेमें आते है वो जानकर संसारका त्याग करकें ऐसी प्रवृत्ति अपनी प्रसंन्नतासें करते हैं, और वैसा करनेसें संसारमें जो जो धन पैदा करनेके दुःख हैं, रसोइ बनानेके, वस्तु त्यानें

के आभूषनका बोजा उठानेके और विषयभोगसें शरीर खराब–पायमाल करनेके दुःख दूर हो जाते हैं (विषय सेवनके समय शरीरको कितनी तकलीफ उठानी पडती है और सेवन कर रहे पीछेभी शरीरकी कैसी स्थिति हो जाती है ? वैसे कुल दुःख दीक्षाग्रहण करनेसें दूर हो जाते हैं.) क्रोडपतिकोंभी धन सबंधी कितनी फिकर करनी पडती है ? कुटुंब होवे तो उनके झगडेमें कितना दुःख ? उनकों अज्ञानपनेसें दुःख नहीं मानते है; लेकिन बुद्धिसह शोच किया जाय तो संसारमें प्रातःकालसें उठ खडा होवे वहांसें लगाकर फिर रात्रिमें सोने तक कितने दुःख भुक्तने पडते है, उनमेंसें एकभी दुःख साधुपनेमें नहीं है सदाकाल आनंदमेंही जाता है, नया नया ज्ञान प्राप्त होता है, उससें बुद्धिमान जन महान् प्रसन्नतामें रहते हैं, वास्ते जैनी लोग किसीकों दुःख देकर धर्म नहीं मानते हैं और जो जो आत्मार्थी जन हो उनोंकों उक्त कथित पांचों अधर्ममेंसें कोइभी अधर्म प्रवृत्ति करकें धर्म नहीं मानना, और जो मानेगा तो वो अधर्मकोंही धर्म मान लिया कहा जायगा

३ मार्ग जो मोक्षमार्ग है वो मार्ग साध्य करकें वीतरागपणेकों पाये हैं, आत्माका ज्ञान–दर्शन–चारित्र रूप गुण प्रगट किये है, केवलज्ञानसें करक जगतके भाव एक समयमें जान रहे हैं, वैसे पुरुषोंनें बताया हुवा मोक्षमार्ग याने मोक्षसाधन उस साधनकों उन्मार्ग मानें और उसका आराधन न करे, आराधन करनेवालेकी निंदा करे उस मार्गकों उन्मार्ग माननेरूप मिथ्यात्व जानना

४ हिंसा करनेकी बुद्धि देवे, झूठ बोले, लोगोंकों ठग लेनेमें न डरे, स्त्रीगमन करे, पैसेकाममत्व लोभ ज्यादे रक्खे, वैसे गुरुकी सेवा करकें धर्म मानें याने जगतके पदार्थका जिसकों ज्ञान नहीं, तदपि पदार्थका स्वरूप विपरीत बतलावे और बोले कि यह मोक्षमार्ग है पांच यम तो जगतप्रसिद्ध है, वो यमकों अच्छे कहवे, मगर आप पालन न करें विगर छाना हुवा [अनगल] पानी उपयोगमें लेवे, उसमें त्रस थावरजीवकी हिंसा होवे और नदीमें न्हानेमें पुन्य माने शोच करो कि महाभारतमें दुपट गलणा रखकर पानी गालनेका कहा है, तो नदीका पानी किसतरह छान लिया जायगा ? न छाना जाय तो हिंसा होयगी और पीछे कहने लगे कि नदीमें न्हानेका महा पुन्य है. यज्ञ करकें जीवहिंसा करनेका उपदेश देवें उसकों मोक्षमार्ग कहे फिर जैनी होकरभी मतानकी, धनकी, और परलोकमें राजा देवता होनेकी ... प-

मेंकरणी करै और उसकों मोक्षमार्ग मानै, यहभी उन्मार्गकों मार्ग माननेरूप मिथ्यात्व है. फिर मानके लिये, यशके लिये और लोगोंकों अच्छा बतलानेके वास्ते आत्महितकी बुद्धि विगर वीतराग मार्गकी अथज्ञानपणेसें जो धर्मकरणी करै वो उन्मार्गकों मार्ग माननेरूपही है. पुनः जो मार्ग वीतरागजीने शास्त्रमें निषेध किया है वैसी धर्मकी प्रवृत्ति करकें मार्ग माने, अविधिमें प्रवर्त्त कर दूसरेकों प्रवर्त्तना करावे वो उन्मार्गकों मार्ग माननेरूप मिथ्यात्व जानना.

५ जीवकों अजीव माने सो मिथ्यात्व; जैसे कि कितनेक नास्तिकमति तो जीवही नहीं मानते. पांचभूत मिलकर शरीर बनता है सो जीव है, उस विगर जीव अलग नहीं. पांचभूत विखर जाय कि कुछभी नहीं. परजीवभी नहीं, ये जीवकों अजीव माननेवाले सर्वथा प्रकारसें जानना कितनेक पंचेंद्रि तिर्यंचकों जीव मानें; परंतु पांच थावरकों जीव नहीं मानते हैं येभी जीवकों अजीव माननेका मिथ्यात्व जानना. जैनी लोग पांच थावरकों तो जीव मानते हैं; मगर कितनीक शास्त्रके बोधकी खामीसें सचित्त वस्तुकों अचित्त माननी होती है. जैसें कि गुलावजल कितनेक समयका हो उसकों कितनेक सचित्तके त्यागी अचित्त मानकर उपयोगमें लेते हैं. शास्त्रमें सबसें ज्यादे चूनेके पानीका काल है. चूनेके पानीसें गुलावजलमें कुछ ज्यादे गर्मी नहीं है कि उससें ज्यादे काल तक रहनेसें सचित्त न होवै. ऐसा विचार करनेसें सचित्त होवै ऐसा मालूम होता है, तथापि अचित्त मानना योग्य नहीं. और जो जो जीव पदार्थकों अचित्त माननेसें जीवकों अजीव माननेरूप मिथ्यात्व लगे; वास्ते सर्वज्ञमहाराजजीने जिसकों जीव कहे हैं उसकों जीव कहनेसें यह मिथ्यात्व दूर होता है.

६ अजीवकों जीव मानना सो मिथ्यात्व, वो सब शरीर है सो अजीव है सो मैंही हुं, युं करकें ममत्वभाव करना. पुनः वेसमझसें शास्त्रमें जिस वस्तुकों अचित्त कही होवै उसें सचित्त माने तौभी मिथ्यात्व लगे.

७ साधुकों असाधु मानना सो मिथ्यात्व है. जो मुनीमहाराज पंचमहाव्रत पालते हैं, प्रभुजीके हुकम मुजब चलते है, मोक्षमार्गमें तत्पर हो रहे हैं, स्त्री धनकी ममतासें दूर हैं और सावद्य वचन मात्र नहीं बोलते हैं ऐसे मुनीराजकों असाधु मानै. आपने संसार–धन–स्त्रीके अभिलाषी गुरुवोंकासंग किया है उनोंने बुद्धिकों विपरीत बना दी है, उससे सत्य साधुकों असाधु मानै ये मिथ्यात्व है. सच्चे झूंठेकी

परीक्षा ज्ञान हुवेसें होती है, उस विगर जिस जिस मजहबमे जो जो पडे है-फसे है वे दूसरे मजहबके साधुको खोटे-झूठे मानते हैं, और हरएक मजहब-पथमें रचनाभी ऐसी हो गइ है कि जिस्सें उत्तम पुरुषभी ऐसाही मानकर एकदूसरेकी निंदा करते हैं मगर इतना विचार करें कि पाच यम तो सब दर्शनवाले मानते है और यथार्थ प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन ओर परिग्रह यह पाचों वस्तुके सपूर्ण त्यागवाले कौनसे साधु है ऐसा जो दर्याफत करें तो जल्दी समझनेमें आ जाय, और उत्तमपुरुषकी निंदा करनी मोकुफ हो जाय

८ असाधुकों साधु माने सो मिथ्यात्व ह, यानें असाधु जो साधु नाम धारण किया है मगर धन और स्त्रीका त्याग नहीं किया है, जीवहिंसादि आरभकों तो नहीं छोडा है, व्यापार रोजगार करते हैं, मत्र यत्र करकें आजीविका निभाते हैं, लोगोंकों विपरीत समझाकरके पैसे लेते हैं, ऐसेकों साधु मानना सो, और कितनेक लोगोंको ठगलेनेके लिये बाह्यसें धनका त्याग बतलाते है, लेकिन चित्तमें पैसेकी इच्छा होवै वोभी असाधु कहे जाय कितनेक साधुपणा पालते है, परतु वीतरागजीके वचनकी श्रद्धा नहीं कितनेक परलोकके सासारिक सुखकी इच्छासें साधुपणा पालते हैं, मगर मोक्षके लिये उद्यम नहीं करते है पुन• कितनेक पचागीकों नहीं मानते है जिनप्रतिमा भगवतजीने मान्य करनी कही है-गृहस्थीकों पूजनेके लिये फरमाया है तथापि गृहस्थकों उपदेश करे कि जिनप्रतिमा पूजनी नहीं, पूजनसें पाप होता है ऐसी प्ररुपणाके करनेवालेभी असाधु कहेजाते है उनोकों साधु मानै सो असाधुको साधु माननेरूप मिथ्यात्व जानना दूसरी रीतिसे आपकी विभाव परिणति नहीं मिटी है, विभावमें [विषयकषायमें] मग्न रहवे ओर आपके मनमें " म अच्छा करता हु " ऐसा मानकर आपकी प्रशसा करै सो आपके विषे असाधुपणा है, तदपि आपमें अच्छापणा-साधुपणा मानना वो असाधुकों साधु माननेरूप मिथ्यात्व है

९ सिद्धभगवान जो अष्टकर्म यानें ज्ञानावरणी क्षय करकें अनतज्ञानरूप केवलज्ञान प्रकट किया हैं दर्शनावरणी कर्म क्षय करकें सामान्य उपयोगरूप केवलदर्शन प्रकट किया है मोहनीकर्म क्षय करकें चारित्रगुण (आपके आत्मस्वभावमेंही स्थिर रहना उस रूप चारित्रगुण) तथा क्षायक समकित प्रकट किया है अतरायकर्म क्षय करकें अनतवीर्यादिक गुण प्रकट किये ह नामकर्म क्षय करकें अरुपीगुण प्रकट किया

है, गोत्रकर्म प्रकट करके अगुरु लघुगुण प्रकट किया है. वेदनीकर्म क्षय करके अव्याबाधसुख प्रकट किया है. आयुकर्म क्षय करके अक्षयस्थितिकों पाये हैं. इसतरह आठ कर्म क्षय करके अष्टगुण प्रकट किये हैं–ऐसे सिद्धमहाराजजीकों सिद्ध न मानें–भगवंत न मानें और ऐसे पुरुषकी निंदा करै, ऐसे देषकों देव मानते होवै तो उसकों उलटा सुलटा समझाकर ऐसे देव परसें आस्ता उठावै. ये मिथ्यात्व सेवनसें आत्माके शुद्ध गुणभी कोइ दिन प्रकट नहीं होवैं; सबब कि ऐसे गुणकी इच्छा होवै तो ऐसेही पुरुषके गुणग्राम करता; मगर नहीं करता है और निंदा करता है वही मिथ्यात्व जानना.

१० सिद्ध नहीं हो याने जिनके अष्टकर्म रहे हैं, नये कर्मभी बांधे रहते हैं, विषयकषायमें आसक्त हैं, वो उनके चरित्रसें सिद्ध होता है; ऐसा होनेपरभी वैसे देवोंकों सिद्ध मानना–भगवंत मानना, उनोंकी आज्ञा मुजब चलना, वही संसारवृद्धिका कारण है. वही आत्माके गुणोंका घातकारक है. वास्ते मिथ्यात्व छोडनेका इतनाही उद्यम करें कि अपनकों धर्मकरणी करनेकों बतलाते हैं वो करणी करके देवोंने देवपणा प्राप्त किया है या अपनकोंही विषयकषायसें मुक्त होनेका कहकर आप खुद विषयकषायमें मग्न रहते है? यदि कथन मुजब वर्त्तन न हो तो एक ठगाइ जैसा काम हुवा ऐसा बुद्धिमानोंकों सहजमें समझमें आ जायगा. और जिसमें गुण प्रकट हुवे हैं वोभी समझमें आयगा. वास्ते अष्टकर्म क्षय किये होवै वही सिद्ध–भगवान्–देव–इश्वर माननें योग्य हैं. ऐसा करनेसें ये मिथ्यात्व दूर हो जायगा–यह दश प्रकारके मिथ्यात्व हैं.

औरभी छः मिथ्यात्व हैं याने पहिला लोकिक देवगत मिथ्यात्व सो उपरके दश मिथ्यात्वकी अंदर असिद्धकों सिद्ध माननेका मिथ्यात्व लिखा है वैसे देवकों देव मानना या सांसारिक कार्यके लिये मानत–आखडी रखनी उसे लोकिकदेवगत मिथ्यात्व कहाजाता है. १,

दूसरा लोकिकगुरुगत मिथ्यात्व सो गुरुनाम धराके रातदिन पांच अव्रत सेवन करै ऐसे संन्यासी–फकीर–पादरी वगैरःकों गुरु मानना सो गुरुगत मिथ्यात्व कहाजाता है. २,

तीसरा लोकिकधर्मगत मिथ्यात्व सो जिस पर्वके दिन धर्मका परमार्थ रहा नहीं, फक्त कितनेक पाखंडीओंने उत्पन्न किये हुवे पर्व याने होली, बलेव (श्रावणी

पूर्णीमी), नागपचमी, राधनछठ, शीलसप्तमी, वगैर' पर्वको धर्मपर्व मानना, और हिंसामय, विषयकषायमय प्रवृत्तिको धर्मप्रवृत्ति माननी, तथा पुद्गलभावकी प्रवृत्तिको धर्मप्रवृत्ति माननी उसे लोकिकधर्मगत मिथ्यात्व कहाजाता है. ३,

लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व, सो श्री तीर्थंकरमहाराजजीको तो मुक्तिके वास्ते देव मानना ये तो योग्य है, क्यों कि मुक्तिके लिये माननेसें समस्त कार्यसिद्धि होती है, परतु वो इच्छा छोडकर ससारी कामके लिये मानना याने मेरे बेटा होगा तो मैं सो रुपये चडाउगा ऐसी मानत माननेसें लोकोत्तर मिथ्यात्व लगता है, सबब कि भगवतजीकी यथार्थ श्रद्धा होवे तो सहज स्वभावसेंही होगा, लेकिन पुत्र होवेगा तो चडाउगा ऐसा न मानै वो तो युही जानता है कि जितनी वन सके उतनी भगवंतजीकी भक्ति करनी भक्ति सब कार्य-सिद्धिदायक है भगवतजीकी भक्ति करनेपरभी कभी कार्यसिद्धि हाथ न लगै तो जानता है कि जो बनता है सो पूर्वकर्मके उदयसें बनता है और निकाचित कर्म टालने-हठानेको कोइ समर्थ नहीं भगवान् वीरस्वामीजीकोंभी कर्म उदय आये सो भुक्तने पडे, ऐसा शोचकर श्रद्धा भ्रष्ट न होवे और जिनकी श्रद्धा मजबूत नहीं है उनकी विचारणा मानत माननेकीही रहती है पूर्वके निकाचितकर्मके जोरसें कार्य न हुवा तो फिर उसकी कुछ बाततोंमें अज्ञानताके मारे श्रद्धा उठ जाती है और धर्म भ्रष्ट होता है, वास्ते ऐसी मानत-आखडी न करनी करनेसें लोकोत्तर मिथ्यात्व लगता है पुन' जिनपुरुषका मिथ्यात्व नष्ट हुवा है उनोनें तो भगवतजीनें मोक्षमार्ग बतलाया है वो अगीकार किया है, उससें मोक्षके सिवा पुद्गलीक सुखकी इच्छाही नहीं है. फकत आत्मतत्त्वकीही सन्मुख हुवे हैं जो जो कर्म उदय होवे वो खुशीके साथ भुक्तते हैं कि मुझको उदय आये हुवे कर्म समभावसें भुक्ते जाय तो नये कर्मोका बध न हो सकै ऐसी भावना बन रही है, उससें स्वप्नमेंही ऐसी मानत की इच्छा नहीं सिर्फ सहजसुखके कामी हैं, वे लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व सेवन नही करते है ४,

लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व, सो जैन के गुरुमहाराज मोक्षमार्ग दायी हैं उनोको मोक्षके लिये मानने योग्य है. जो छोडकर ससारके मुतल्बी काममै मानै सो लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व है. जैनके साधुका वेष पहनते हैं, परतु प्रभुजीकी आज्ञासें बहार (विरुद्ध) वर्तन रखते हैं, उत्सूत्र प्ररपणा करते हैं, उन्मार्ग चलाते है-ऐसे वेषधारी

सुफेद या पीले कपडेवाले नामधारी साधुकों गुरु मानना सो लोकोतर गुरुगत मिथ्यात्व है. ५,

लोंकोत्तर धर्मगत मिथ्यात्व वा पर्वगत मिथ्यात्व, सो जैनके पर्व संसारार्थ करना; जैसें कि फल पंचमी करैं तो लडके होवैं, आशापुरीके आयंबिल करैं तो आशा पूर्ण होवै; ऐसी इच्छासें जो जो पर्वाराधन करना सो पर्वगत मिथ्यात्व है. और जो तपस्या कर्मक्षयके लिये करै तो वो निर्जरारुप फलदायक है, वो कुछ दोषित नहीं. संसारकी आशासें करना सो पर्वगत मिथ्यात्व है. धर्मसाधन करकें यह लोक परलोककी इच्छा करनी वो सपस्त कर्म आनेका कारण है; क्योंकि एक मनुष्यने देवलोककी या राजा होनेकी इच्छासें संसारका त्याग किया; अब ये त्याग इच्छा साहित है. उसकों देवता या मानवसुखकी या भोगकी इच्छा है, तो ऐसी इच्छासें तप करैं तो संसारकीही वृद्धि होय; वास्ते ऐसी इच्छाका त्याग करना और आत्मगुण प्रकट करनेकी इच्छासें धर्मकरणी करनी कि सहजसें ये मिथ्यात्व दूर हो जायगा, ६—ये छः मिथ्यात्व हुवे. अब तीसरी रीतिसें चार मिथ्यात्व हैं वो कहते हैं:—

१ प्रवर्त्तना मिथ्यात्व, सो मिथ्यात्वकी अंदर, प्रवर्त्तना रखनी याने कोइ मिथ्या सेवन करता है, उसकी सहाय्यतामें, या मिथ्यात्वीके जलसेमें,—वरघोडे-सरघसमें, वरातमें, पधरामणीमें, या अपने कुटुंबी अन्य देवकी सेवा करते होवे उनके साथ वर्त्तन रखना, या मिथ्यात्वके पर्व करना ये प्रवर्त्तना मिथ्यात्व है.

२ प्ररुपणा मिथ्यात्व, सो जिनेश्वर महाराजजीने आगममें-पंचांगीमें, या पूर्वाचार्यजीके ग्रंथोंमें जिस जिसतरह धर्म प्ररुपा है उससें विपरीत—अपनी मतिकल्पनासें प्ररुपणा करै; जैसें कि दिगंवर मार्ग चलानेवाले जैनी होनेपरभी वीतरागजीके आगम जो विद्यमान—प्रवर्त्तमान हैं, और कपोल कल्पित शास्त्र तैयार करकें जुदा मार्गही चलाते हैं. कितनेक ग्रंथोकी रचनामें निःकारण श्वेतांवरमतकों दोषित किया है, जैसें कि संयमसें भ्रष्ठ वर्त्तने वालेकों वंदन पूजन करना श्वेतांवरीभी निषेध करते हैं; तदपि ऐसें साधु श्वेतांवरी मतके हैं, उससें ये मत झुंठा है. ये लिखना कितनी और कैसी भूलसें भरपूर है? मगर जिसकों उत्सूत्र वोलनेका डर नहीं वही वोलते हैं. दिगंवर मत चलानेवालेने साधुकों वस्त्र न रखना ऐसा वतलाया है उससें क्या हुवा कि वस्त्र रहित साधु होना वंध हो गया, और साधुका मार्गही वंध हो गया,

नाम मात्र कोइ [साधु नग्नपनेसें रहनेवाला] होता है तौभी वो दिगंबर साधुभी उपरसें वस्त्र ओढकर रखता है. इससें मरुपा हुवा मार्ग कायम रहाही नहीं प्रभुजीका एक अंग पूजते हैं, प्रभुजीने आभूषणका त्याग किया है वै आभूषण न चढाना; तो प्रभुजीने स्नानकाभी त्याग किया है तब प्रभुजीकी मूर्त्तिकों पखाल [प्रक्षालन] भी क्यौं करते हो ? यदि पखाल करनेमें, एक अंगपूजनेमें तुमारे अभिप्रायसें हरकत नहीं आती तो शोचो कि येभी निषेध किया हुवाही तुम करते हो. वैसेही सब अंगोंकी पुजा करो और आभूषण चढाओ तो क्या हरकत होवे ? लेकिन बिगर विचारसेंही ये बात फैलाइ है, श्वेतांबर रीत मुजब चल्ते है जैसें मेरुशिखरपर भगवंतजीका जन्माभिषेक इंद्र महाराजने किया उस वक्त आभूषण पहनाये थे वो भाव ल्याकर ये सब कर्त्तव्य करना है, भगवंतजीकी मूर्त्ति आरोपित है उन्होंका जो जो अवस्था आरोपकर भक्ति करे वो होवे, ये विचार न करतें अष्टद्रव्यसें भक्ति करनेहारेकों निंदा करता है, वही विपरीत मरुपणा है. फिर स्त्रीकों मुक्ति नहीं मानते हैं और गोमटसार दिगंबरका करा हुवा है वो उन्होंने मान्य किया है. ये नामांकित ग्रंथ है, उसमें एक समयमे दश स्त्री मोक्ष जाय अैसा कहा है, तथापि उस बातपर लक्ष न रखकर स्त्रीकों मुक्तिही नहीं एसी विपरित परुपणा करते हैं दिगंबर मतकी चर्चा विशेष प्रकारसें अध्यात्ममत परिक्षामें उपाध्यायजी यशोविजयजी महाराजने दर्शाइ है उससें यहा ज्यादे नहीं लिखता हु ऐसही ढूंढीए तेरापंथी वगैरः आगमसें जितनी विपरीत मरुपणा करते हैं वो प्ररूपणा मिथ्यात्व जानना ये प्ररुपणा मिथ्यात्वज्ञान हुवे बिगर दूर होनेका नहीं, वास्ते वीतरागके वचनकी श्रद्धा सहित ज्ञानका अभ्यास करना कि प्ररूपणा मिथ्यात्व दूर होवे बोध बिगर ज्यौं करते आये हैं त्यौंही करना, ऐसा करनेसें मिथ्यात्व दूर नहीं हो सकता, वास्ते ज्ञान निष्पक्षपातसें करना

३ प्रणाम मिथ्यात्व, सो मिथ्यात्वमोहनीका जहांतक उदय है वहांतक प्रणाम मिथ्यात्व दूर नहीं होवेगा व्यवहारसें प्रभुपूजन प्रमुख करैगा, मगर अंतरगमेंसें मिथ्यात्वको क्षयोपशम या उपशम हुवा नहीं वहांतक प्रणाम मिथ्यात्व नहीं हटैगा ये जिवें उपशम समकित या क्षयोपशम समकित पावेगा, तब प्रणाम मिथ्यात्व दूर होवैगा. वास्ते ज्ञानमें ओर ज्ञानीपुरुषकी उपासनामें तत्पर रहेना. ओर ज्ञानीके वचन मुजब चलनेकी अति उत्कृष्ट ख्वनी देवगुरुका अतिशय आराधन करना, उससें ये मि-

ज्ञानमें चित्त लीन होवै, पंचेंद्रियें वश हो जाँय, मन कावूमें आवे, अपने आत्म स्वरूपमें लीनता होवे, यथार्थ वस्तुधर्मका ज्ञान प्राप्त होय-ऐसे प्ररूपे हुवे शास्त्रपर श्रद्धा करनी दूरुस्त है. और ऐसें गुरुपर यकीन रखना वही मिथ्यात्वनाशक चिन्ह है. प्रभुजीने राज्यऋद्धि, कुटुंब, देहपरसें ममत्वभाव त्यागकर संयम लिया. किसीकेपर रागद्वेष नहीं, इसतरहकी वर्त्तना करकें केवलज्ञान-केवलदर्शन प्रकट किया और मिथ्यात्व सत्ता, उदय, बंध-इन तीनु प्रकारसें नाश किया विसी तरह अपनकोंभी करना कि जिस्से कल्याण होवै याने यही कल्यान है.

१५ पंदरहवा निद्रा नामक दोष है सो दर्शनावरणी कर्मके उदयसें प्राप्त होता है. निद्रा पांच प्रकारकी है. पहेली निद्रा, सो ज्यादे उंघ न होय और जगानेसें सुखपूर्वक जाग उठे-दिलगीर न होवे. जगानेवालेपर गुस्सा न लयावे. दूसरी निद्रानिद्रा, सो जगानेमें वहुत महेनत पडे, जगानेवालेपर गुस्सा लयावे और अपना मन दुःख पावे जब जागें. ये निद्रा पहेली निद्रासें ज्यादे आवरणवाली है. तीसरी प्रचला सो चलते चलते उंघ लेवै. घोडा है सो उंघताही चलता है. इसी रीतिसें मनुष्यभी निंद लेते हुए वहुतसें चले जाते हैं. आंखोमें निंदही गरकाव हुइ रहती है. ये विशेष दर्शनावर्णीके आवर्ण होनेसें आती है. पांचवी थीनद्धिनिद्रा सो छः महीनेमें एक वक्त आती है. वो निंद लेता होय उस वक्त वर्त्तमानकालमें अपने वलसें दुगुना बल होता है. जागृतावस्थामें जो काम न किये जाँय वैसे वल स्फुरायमान करनेके काम निंदमें करता है. दिनमें जो काम चिंतन किया होय वो काम निंदमें करै. एक साधुजीकों निद्रा आनेसें रात्रीमें उठकर हस्तीके दंतूशल निकाल लायेथे. ऐसे थीनद्धिनिद्रावाले जीव नरकगामी होते हैं. ये साधुभी संयमसें पतीत होकर नरकमें गये थे. यह पांचों निद्राका त्याग होवै तब मोक्ष जाता है. अज्ञानतासें निंद आनेमें सुख मानता है; परंतु सुख मानने लायक नहीं है. सुख माननेसें, आलस्यतामें और निंदकी वहुत इच्छाएं करनेसेंही ये दर्शनावरणी कर्म बंधा जाता है. निंदसें आत्माका उपयोग आच्छादित हो जाता है. जीता मनुष्य मुवे हुवेकी अवस्थाकों पाता है. निद्रासक्तवालेके आगे कोइ वोलै चालै या शरीरपर कुच्छ करै तोभी उसकों खवर पडे. तव उपयोग आच्छादित हो गया ये प्रत्यक्ष नुकशान हुवा; वास्ते हरएक प्रकारसें जागृत दशा होवै ऐसी इच्छा रखनी. भगवान् श्रीमहावीरस्वामीजी कि जिन्होंकों बार वर्षमें दो घडी

निंद आइ हैं बाकी सब समय अप्रमाददशामेंही गया है–आत्मतत्त्वके विचारमें गये हैं उन्होंने खुद स्वाभाविक आत्मगुण प्रकट किया, वास्ते जिसतरह भगवतजीने दर्शनावरणी कर्म क्षय किया तिसतरह क्षय करनेका उद्यम करना कि जिससें अपनाभी दर्शनावरणी कर्म क्षय हो जावें, और केवलज्ञान केवलदर्शन प्रकट होवें पुन इस संसारमेंभी बहुत निंद लेनेवालेको दरिद्री कहते हैं, आपका काम करनेमेंभी शक्तिवान नहीं होता अभ्यास करनेवालेको ज्यादे निद्रा होय तो वो विशेष अभ्यास नहीं कर सकता है, गुरुजीके पास व्याख्यान सुननेका जाय तो वहा बैठे बैठे निंद लेवें इससें व्याख्यानकी धारणा नहीं कर सकता है और ऐसे प्रमादीके घरमें चोरभी मजेहसें चोरी कर सकता है–इतने इस लोकमें नुकसान होते हैं और परलोकके नुकसानमें दर्शनावरणी कर्म पैदा होता है ऐसा जानकर भगवतजीनें निंदकी इच्छाका नाश करकें केवलदर्शन प्रकट किया है जिसमें सब दर्शनगुण रहे हैं तिसी तरह अपनकोंभी भगवतजीकी आज्ञा मुजबही दर्शनावरणी कर्म क्षय करनेका उद्यम करना और निद्राका नाश करना

१६ अव्रत नामक दोष सो आत्मामें रहा हुवा है उसके प्रभावसें अनक प्रकारकी इच्छाए होती हैं, हिंसासें, झूठ बोलनेसें, चोरी करनेसे, मैथुनकी वाछासें और परिग्रहकी ममतासें यान इन पाच अव्रतसें चित्त नहीं हटता है ये पाच अव्रत कैसे है ? एक अव्रत सेवनेमें दूसरे अव्रत सहजसेंही फैले जाते हैं पुनः ये अव्रत सेवनके निमित्तभूत पाचों इद्रियके ते.स, विषय और मनकी चपलता जब तक पाचा इंद्रि और छठा मन छूटा रहता है, उसकी कामना बनी हुइ रहती है, वहातक छ कायकी हिसा रूकी जाती नहीं अब ये विषय हैं वो यह लोक और परलोकमें दु खके देनेहारे हैं; जैसें कि अपनको थोड सुइ बदनपे चुभका देवे तो कितनी तकलीफ होती है और डाक्तर नस्तरद्वारा व्रण वगर हुवा हो उसे चीरता है तो आखोंमेंसें आसु गिरते है, फिर चिल्लाताभी हे कि जिस्सें दूसरोंकोंभी धास्ती लगे इस बातका सबको अनुभव होनेमें इसका बयान ज्यादे करनेकी जरूरत नहीं जैसें अपनको दु ख होता है–पीडा होती है वैसेंही दूसरे जीवको जब काट डाले तो उसको क्यों दु:ख न होवें ? अवश्य दु ख होवे ! जो दु:खसे उसके मनमें बुराभी लगे तो सरकारमें फरियादभी करे तो उसमे अपनको शिक्षाभी होवे शायद फरियाद न करे और जोरदार होवे तो मारभी

मार बैठे तो प्रत्यक्ष दुःख भुक्तना पडे. कोइ मनुष्यको कोइ उस वक्त साह्यकारी [मददगार] न होवै तो जब मददगार मिल जाय तब उसको हरकतमें डाल देवे. इस मुजब दूसरे जीवको दुःख देनेसें यह लोकमें दुःख भुक्तना पडता है. और वो जीवकी अभी शक्ति न होवै तो आते जन्मकी अंदर उस जीवको शक्ति प्राप्त होनेसें दुःख देवैगा, या नरकादिकमें परमाधामी वगैरः दुःख देवैगे—इस लिये एकेंद्रीसें लगाकर पंचेंद्रि तकके किसी जीवको दुःख नहीं देना ऐसी बुद्धि प्राप्त होवैगी तो हिंसा करनेकी बुद्धि उत्पन्नही न होवैगी. झूठा बोलनेसेंभी दूसरे जीवोंको दुःख होवैगा. चोरी करनेसेंभी उस जीवको दुःखका पार न रहवैगा; सबब कि गरीब या क्रोडपति कोइ हो; मगर सबको धनकी इच्छा होती है; और वो धन ले जावे तो दुःख क्यौं न होवै? अलबत होवै! जैसें कुमारपाल राजाने एक उंदर—मूसेको अपने दर—बिलमेंसें सुवर्णम्होरें निकालकर उसके साथ खेल करता हुवा देखाथा. उस परसे राजाके दिलमें आया कि इस तिर्यचको धनपर प्रेम समझसे है या वेसमझमें है? उसका तमाशाः देखनेके लिये उसकी सुवर्णम्होरें उठालीं. थोडी देरके पीछे चूहा तडफडाट करके मर गया, कि कुमारपालको बहुत दिलगीरी पैदा हुइ, और उसके प्रायश्चितमें उंदरीआ प्रासाद बनवाया. इसपरसें ख्याल करो कि तिर्यचकोंभी धनपर कितनी तृष्णा है? तो मनुष्यको तो धनसेंही सब कारभार चलता है. उसका धन कोइ चुराके ले जाय तो मनुष्यको बेशक अपार दुःख होता है. दुनियामें शरीरकी पीडासें मनकी पीडा याने कायिक रोगसें मानसिक रोग—व्याधिसें आधि बहुत पीडाकारी है. कितनीक दफै धन चला जानेसें मनुष्यका मरण हो जाता है—शरीर सूख जाता है वो मनकी पीडासेंही होता है; वास्ते उससेंभी दूसरे मनुष्यको तकलीफ होती है. पराइ स्त्रीके साथ मैथुन करनेसें जब उसके पतिको खबर हो जाय या उसके मावाप आदिको खबर हो जाय तब कितना दुःख होता है वो जगजाहिर है. किसी वक्त जारपुरुषका जान चला जाता है. अगर कोइ समय उस व्यभिचारिणीकाभी जान जोखममें फंस जाता है. अगर तो उस स्त्रीके पतिका जीव जोखममें गिरफतार होता है. कभी जीव न जाय तो रातदिन इसकी पीडा दुःख देती है. फिर अपनी स्त्रीके साथ संभोग करनेसें योनिसें समुर्छिम जीव असंख्याते मर जाते है, तो उन जीवोंको दुःख होता है. पुनः अपना शरीरभी नरम हो जाता है—शरीरमें तक-

लीफ होती है, और अतमें रोगके भोग हो मरनके शरन हो जाता है परिग्रहकी इच्छा होवें वहांतक हर प्रकारसें धन इकठ्ठा करना—उसमें लुच्चाइ—ठगाइ—दगाबाजी करनेमें निडर रहते है झूठ बोलनेसंभी नहीं डरते है, किसीका प्राण लेनेमेंभी नहीं डरते हैं, और आप खुदभी विचित्र प्रकारसे दुःखी होते है, ये परिग्रहकी मूर्छाके फल है यह पाचों अव्रत ऐसें है कि एकका सेवन करनेसें दूसरेका सेवन हो जाता है अगर तो हो जाय, उससें भगवतजीने पाचो अव्रतका त्याग किया है और भगवानजीका यही उपदेश है कि हरप्रकारसें अव्रतका त्याग करना चाहिये यदि विशेष विशुद्धि होवै और सब प्रकारसें अव्रतका त्याग होवै तो वो करना, और सब तरहसें त्याग न हो सकै तो देशसें त्याग करकें श्रावकके वारह व्रत धारण कर लेना इस तरहसें श्रावक या साधु धर्म बाह्यसें अंगीकार करकें (अतरग शुद्ध न हुवा तो अव्रत दूर नहीं हो सक्ता है वास्ते) अतरग शुद्धिके लिये कषायकी परिणती त्याग करनी चाहिये बहारसें प्रवृत्ति न करै तोभी अतरमें इच्छाए—हुवेही करै तो पीछे कर्मबध होता हुवा नहीं रुकता है पुद्गल भावसें अनादिकी इच्छाए—हिंसाकी—झूठकी—चोरीकी—मैथुनकी—धनकी इन पाचो पदार्थकी इच्छाए मुक्त हो जावे तब आत्माका काम होता है देखो, तदुलि मच्छ है वो मत्सकी पापनमें होता है वो जिस मत्सकी पापनमें होता है, उस मत्सका मुंह बडा है उससें कितनेक मत्स उसके मुंहमें आते हैं और निकलते हैं वो तदुली मत्स देखता है. देखकर शोचता है कि यदि मेरा मुंह इतना बडा होता तो एक जीवकोंभी पीछा नहीं जाने देता ऐसा दुष्ट विचार करनेके सबबसें मरकर वो सातवी नरकमें जाता है उसने कुछ खाया पिया नहीं, मगर तिव्र इच्छासें दुष्ट ध्यान ध्याता है उसके प्रभावसें नरकमें जाता है ऐसेंही दुनियामें जो चीजें हैं सो सब अपनको प्राप्त नहीं हो सकती है, मगर वै चीज उपयोगमें लेनेकी इच्छा होती है. हुवाही करती है कितनीक वस्त पसेकी तगीसें मिल नहीं सकती, अगर पैसा है पर कृपणतासें पैसे खर्चे नहीं जाते उससें नहीं मिल सक्ती है कितनीक दफे शरीरको प्रतिकूल (वो वस्तुए) होनेसें उपयोगमें नहीं ले सक्ता है, परतु अव्रतके उदयसें इच्छाए हुवाही करती है यो अज्ञानकाही प्रभाव है अपनी क्या वस्तु है, आपके आत्मभावमें किस तरह वर्त्तते रहना उसकाभी ज्ञान नहीं उसके मारे इच्छाए हुवा करती हैं, दुनियामें हजारो चीए है, वै कोइ मुंहपर धुकनेकीभी नहा, मगर, जो जो दृष्टिगोचर होती हैं

कि चित्त दौडै या कानोंसें सुन लेवै कि फलानी स्त्री बहुत खुबसूरत है तब चित्त दौडै परंतु ये बात अज्ञानके जोरसेंही बनती है वास्ते वो न होना चाहियें. पुनः धन जो बिलकुल न हो तो शोचै कि हजार रुप मिल जाय तो अच्छा, मगर जब हजार मिल चुके तब लाखकी इच्छा होती है. लाख मिले तो करोडकी इच्छा होती है, करोड मिले तो अबजकी इच्छा करता है और उससेंभी ज्यादे मिले तो राजकी इच्छा होती है, राजा हुवा तो वासुदेवके राजकी इच्छा होती है, वासुदेवपणा मिला तो चक्रीपदकी होती है, और चक्री हुवा तो इंद्र होनेकी इच्छा होती है. अब ऐसी इच्छाएं करता है उससें कुछ हाथ आता नहीं; परंतु जीवकों तृष्णा नहीं मिट सकती है—ये अव्रतकी राजधानी है. फिर कितनेककों दस बीस हजार मिलते है कि व्यापार बंध करते हैं क्यों कि ये मिले हुवे शायद न चले जॉय ! इसके डरकेमारे विशेष धन पैदा करनेका उद्यम नहीं करता, उससें उसकी तृष्णा रुक गइ है ऐसा न समझना, वास्ते हरतरहसें इच्छा रोक देनी योग्य है. कभी संसारका त्याग किया और चेला चेलीकी, पुस्तककी मानकी इच्छा न दूर हुइ या इंद्रिये वश न हुइ तोभी अव्रत दूर नहीं होता है. कभी इस लोकके विषय रोक दिये; मगर परलोककी इच्छा करै कि मैं मरकें राजा होउं—धनवान होउं-देवता होउं—देवताकी, इंद्राणीका सुख भुक्तुं-ऐसी इच्छाएं हैं वोभी अव्रत है. उपाध्यायजी महाराजने मंडुक चूरण न्याय कहा है याने मरे हुवे मेंढकके चूर्णमें मेघजलकी बुंदे पडे तो बहुतसें मेंढक पैदा हो जॉय, विसी तरह इस भवके विषय छोड दिये और परभवके बहुत विषयकी इच्छाएं की इससें कुछ अव्रत दूर नहीं हुवा शुभ क्रिया है वो कारणरुप है, वो कारणरुप धर्म जानकर करनी; मगर उसकों आत्मधर्म न समझना. आत्मधर्म तो जितनी जितनी इच्छाएं होती बंध हो जायगी—वो कर्त्तव्य नहीं—स्वभाविक धन—स्त्री—पुत्र—शरीर किसीकाभी दरकार न रक्खे, और अपनेही स्वभावमें आनंदित होवै और स्थिर रहेवै जो जो पुद्गलकों होवै वो जानने देखनेका स्वभाव है वो स्वभावमें रहना, उसमें रागद्वेष न करना यही आत्माका कार्य है इस दस दशामें रहवे कि सहजहीमें अव्रत दूर हो जायगा. कषायका सर्वथा नाश होनेसें अव्रत सर्वथा दूर हो जाते हैं. अंशअंशसें देशविरती गुणस्थान पाता है वहांसें दूर होना शरु होता है. भगवंतकों सर्वथा अव्रत दूर हो गया है उससें भगवान हुवे हैं.

१७ राग नामक दूषण है ये रागके घरके माया और लोभ है ये राग परिणती अनादिकालकी है धनके ऊपर या कुटुंब, स्त्री, पुत्र, स्वजन, मकान, दुकान, बाग, बगीचेके ऊपर राग होता है मिली हुइ वस्तुपर राग होता है और न मिली हुइ वस्तुपरभी [राग] होता है, देखी हुइ-बिन देखी हुइ, सुनी हुइ और पढनेमें आइ हुइ वस्तुपरभी राग होता है-एसें अनेक प्रकारसें रागदशा है और रागदशाके प्रभावसेंही पापी जीवका संयोग मिलता है और ऐसे खराब मनुष्यका संग मिलनेसें पीछा द्वेष जागृत होता है परवस्तुके ऊपर राग होनेमेंही जीव अनादिका संसारचक्रमें परिभ्रमण करता है अनेक प्रकारसें जन्ममरण करने पडते हैं परस्त्रीपर राग होवे तो आप मरजाय तोभी उसकी इच्छा पुरन नहीं होती ऐसे अधर्मीजीवोंको मनुष्यजन्म तो प्राप्त होनेही नहीं, मगर मनुष्य शरीरके भीतर कीडा या कृमीके भवको प्राप्त होवे यही रागका प्रभाव है जो जो कर्मबंध होता है वो रागद्वेषसेंही होता है और जीव संसारमें रूलता है द्वेषभी रागसें होता है-अपनी वस्तु मानली है वो वस्तु कोइ ले जाय तो यह वस्तुपर राग है उससें ले जानेवालेपर द्वेष होता है द्वेष करनेवालेकों कोइ कहनेवाला मिले कि तुम मुफ्त होरग कषाय करते हो, मगर रागकी बाबतमें मुनीमहाराजजी सिवा कोइ समझानेवाला नहीं यह जडपदार्थपर राग करनेसें आत्माके गुणोंका राग नहीं होता, और उसके कारण जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र है उसपरभी राग नहीं होता रागके वशसें जीव लज्जाका छोडकर निर्लज्ज कर्म करते हैं उच्च जातिके मनुष्यकों धन-कुटुंब-रूपवती स्त्री होव, तथापि नीच जाती-भंगीकी स्त्री पर राग हुवा होवे तो ये धन कुटुंब छोडकर उसकी साथ संबंध करता है, ये रागकी विटंबना है जो वस्तु खानेसें शरीरकों उपाधि होती है, धर्म भ्रष्ट होता है, तोभी रागके वशनसें जो वस्तु खाता है-और ऐसी वस्तु खानेसें कितनेक रंक मनुष्य मरजाता है वो दिखता है तोभी ऐसे काम करता है धनके रागसें क्रमकें लोभ होता है वो चाहे उतने पैसे मिल जाय तदपि संतोष नहीं पाता और असंतोषसें लबे व्यापार करनेसें असल पैसे होवे वेभी चले जाते हैं किंतु लोभकों नहीं छोडता और कितनेककों देवाले निकालने पडते हैं कितनेक रन्दानतसें पैसे होवे तोभी लोगोंके पैसे नहीं देता है ये लोग ऐसा नहीं शोचते है कि एसा करनेसें जन्मपर्यंत दुनियामें बेइज्जत होवेगी, और लडकोंकोभी पडेंगे कि मेरे बापने देवाला निकालाथा. ऐसी बाबत बनती है तोभी धनके

रागसें स्हामनेवालेका और आपके भाइका, बापका, माताका प्राणभी लेता है तो औरोंका प्राण लेवै इसमें तो कहनाही क्या? ये विटंबना रागकी है. चोरी करते, ठगाइ करतेंभी रागसें करकें जीव डरता नहीं. विश्वासघात करनेमेंभी भय नहीं मानता कदाचित् गृहस्थपणा छोडकर दीक्षा लेता है; परंतु जडपदार्थपरसें राग गया नहीं उससें पुनः साधुके वेषमें गृहस्थकी प्रवृत्ति करता है—गृहस्थकी तरह धन मिलाता है, लडकेके रागकी तरह चेलेका राग जाग्रत रहता है. पुस्तकका राग सजग रहता है और ऐसी वर्त्तना करकें संयममें भ्रष्ट होता है आत्मभावमें नहीं रहते, शास्त्रका बोधभी निकम्मा जाता है. ज्ञानका बोध तो जैसें ज्ञानमें जाना गया वैसें वर्त्तन करै तब ज्ञानका फल होवै. जैसें कोइ मनुष्यने जान लिया कि यह ज्हेर है; परंतु खायगा तो बेशक मर जायगा, वैसें ज्ञान पढकर राग बंध तो मुक्त नहीं होता कर्मबंध हुवे बिना रहते नहीं. और जिसकों निरागदशा प्रकट हुइ है उस्के प्रभावसें कोइ कुछ ले जाता हैं तो, कोइ मारता कुटता है, पीडा देता है, निंदा करता है और किसीका वियोग होता है; तोभी आपकों खेद नहीं होता, मरनेकीभी फिकर नहीं, आपने अपना आत्मस्वरूप जान लिया है उससें जानते हैं कि मेरा आत्मा मरनेका ही नहीं! मरता है सो जड है. आत्मा अविनाशी है. शरीरकों पीडता है सोभी पूर्वकालमें जडकी सोबतसें दूसरे जीवोंकों पीडा की है उससें पीडता है, तो जैसा जेसा जडसंगतिसें कर्म बांधा गया है वैसा वैसा भुक्तना है. कोइ वस्तु ले जावै सो मेरी नहीं है; मगर जडकी संगतिसें मेरी मानली है और मेरी मानकर पराइ वस्तु ली है तो मेरी ले जाता है. पूर्वकालमें जिसने किसीकी वस्तु ली नहीं उसकी वस्तु मार्गमें पड रही हो तोभी कोइ नहीं ले जाता है. ऐसे ज्ञानके प्रभावसें जरासाभी खेद धारण नहीं करते हैं—अपने आनंदमेंही रहते हैं. ज्ञानीजन तो समवृत्तिसें करकें जो जो सुख दुःख प्राप्त होता है, उसमें राग-द्वेष करतेही नहीं. आत्माका जाननेका स्वभाव है सो जो जो रूप बनते हैं वो जान लेता है. कर्मका स्वरूप जान लिया गया है उससें कर्मके उदय मुजब बना हुवा रहता है—ऐसा जानकर कोइभी अनुकूल वस्तुपर रागदशा धारण नहीं करते. इसी तरह भगवंतजीने रागद्वेष क्षय करकें आत्माके अपने गुण प्रकट किये है. उन्होंके कदम दर कदमसें आज्ञा मुजब चलै तो अपने आत्माके गुण प्रकट करकें परमपद पावै.

१८ द्वेष नामक दूषण है-ये द्वेषकी प्रकृति जगतमभी निंदनीय है द्वेषके दो पुत्र हैं याने पहेला क्रोध और दूसरा मान क्रोध करनेसें दूसरेकों दु ख करता हु ऐसा मानता है; परतु आप खुदकों प्रत्यक्ष दु ख होता है-आपकाही शरीर भिन्न रूपवत हो जाता है याने लाल लाल हो जाता है, छातीमें धमडाहट होता है, लोहु उछल जाता है उससें खून सूख जाता है और निर्बल हो जाता है. ये बनाव क्रोधसें होता है क्रोधी मनुष्य कही नौकरी रहनेकों जाय तो उसें कोइ नोकर नहीं रखता. किसीके वहा क्रोधी व्राजु पैसे लेनेकों जाय तो वोभी खुश होकर देवै नहीं. दुकान की हो तो शात मनुष्यके यहा जितने ग्राहक आवै उतन ग्राहक क्रोधीके वहा नहीं आते कन्याकी जरूरत हो तो खुशीसें नहीं मिलती फिर क्रोधी मनुष्य अपनेही हाथसें अपना सिर फोडता है-कूवे वगेर. में गिरता है-जहर खाता है-फासा डालकर जान निकालता है अपने हाथसेंही अपना घात करता है और जगतमें अपयश पाता है क्रोधीजन कभी ससार त्यागकर साधु होता है तो कषायसे करकें उसमेंभी शोभा नही पाता, और आत्माकाभी कल्याण नही होता, मगर ससारकी वृद्धि होती है. जैसें कि चडकोशिये सॉपने पूर्व भवमें साधुपणेकी अदर क्रोध किया तो मरे बाद पुन: क्रोधी होनेकाही वक्त हाथ लगा वहाभी क्रोधसे मरण पाया और सॉप होनेका वक्त रुजु हूवा इसी तरह जो जो मनुष्य क्रोध करे उसकों यह लोकमें दु:ख होवे और परलोकमें नरकगतिमें जाना पडे, वास्ते हर प्रकारसें क्रोध दूर करनेका उद्यम करना अग्निशर्मा तापस मास मास खमणके अतर पारणा करता था, तोभी दुर्गतिमें जानेका वक्त आया (इसकी विस्तारसें हकीकत समरादित्यकेवलीके रासमें देखो कितनेक भव तक द्वेष रहा और कैसे कैसे दुर्गतिके फळ मिले है ?) क्रोधसें प्रत्यक्षमें मार खाता है, वक्तपर प्राणभी जानेका मोका हाथ लगता है, वास्ते ज्यौं बन सके त्यौ क्रोधकों जीतकर समतामें रहना कि जिससे यह लोकमें सुख होवे क्रोधीकों ससारमें सुख नहीं और परलोकमेंभी सुख नहीं नरकादिककी कठीन वेदनाए भुक्तनी पडेगी फिर मान करनेसे आप ऐसा समझता है कि मेरी बडाइ होती है, परतु वो बडाइके बदलेमें लघुता हासिल होती हे मद करनेसें बडे बडे राजाएभी दु खमें पड चुके हैं तो दूसरोंका तो कहनाही क्या ? इसलिये ज्यौं बन सके त्यो अहकारकों त्याग देना अहकार बोहोतकाही चीज हे अहकार नाश पावें ना कोइ आरोही नहीं जगतम जितनी

चीजें हैं उसमें जड है सो नजर आती है, तो आप चैतन है, तो जड चीज प्रिय अप्रिय करनेसें अप्रिय चीजपर द्वेष होता है; परंतु जो परवस्तु याने पराइ है उसके-पर द्वेष करनेसें कफ कर्मबंध करने सिवा दूसरा कुछ लाभ नहीं. वास्ते जो जो वस्तुके जो जो धर्म है वो जान लैना. जो जो अवसरपर जो जो वस्तु ग्रहण करनेका उदय हुवा वो वस्तु ग्रहण करनी. उसमें द्वेषकर ग्रहण करनेसें कर्मबंध सिवा और कुछ फायदा नहीं. आतमा मलीन होता है. मुनीमहाराजोंने और तीर्थंकरमहाराजजीने द्वेषका त्याग किया और केवलज्ञान पाये; वास्ते दूसरेभी आत्मार्थी जीव उन्हीकी रीति मुजब द्वेषका त्याग करना. खानेकी–पीनेकी–पहननेकी–ओढनेकी–बिछानकी–सोनेकी–चलनेकी कुछभी–कोइभी वस्तु प्रतिकूल मिलै उसमें द्वेष धारण नहीं करना. कोइ धन ले जावे, कोइ मारकूट कर जावे तोभी कर्मका विचार करना कि पूर्वके पुन्यकी न्यूनता होवे जब ऐसा बनता है; वास्ते रागसें जीवपर द्वेष करना वो निकम्मा है. ऐसा शोच करकें समभावदशा धारण करनी. द्वेषका अंशभी जागृत न होवे वैसी प्रवृत्ति करनी, और सत्ता, बंध, उदय इन तीनुं प्रकारसें नाश करना कि केवलज्ञान–केवलदर्शन गुण प्रकट होवे.

इस मुजब यह अठारह दूषण भगवंतजीने क्षय किये हैं, उससें आत्माके संपूर्ण गुण उत्पन्न हुवेले हैं कि जिससें एक समयमें तीन जगतके भाव जान सकेत हैं, ऐसी शक्ति प्राप्त हुइ हैं. एक एक द्रव्यके अंदर समय समय अनंत पर्याय परावर्त्तमान हो रहे हैं, वो एक एक द्रव्यमें पूर्वकाल याने जिस कालका अंत नहीं और आते कालमें पर्याय होनेके वो समस्त एकही साथ जान सकै ऐसा ज्ञान जिन्होंकों प्राप्त हुवा है. आत्माकी अनंत वीर्यशक्ति प्राप्त हुइ है–ऐसे आत्माके समस्त गुण प्रकट हुवे हैं. उसके प्रभावसेंही देवता स्फटिक रत्नमय समवसरणकी रचना करते हैं–तीन गढ रचते हैं–उसमें तीसरे गढमें देव सिंहासन कायम करते हैं उसपर विराजमान होकर भगवानजी देशना देते हैं. वो देशना कैसी है? जिसमें किसी प्रकारका आपका लाभ नहीं रहा हुवा होता है, किसी प्रकारसें स्त्री या धनकी स्वप्नमेंभी इच्छा नहीं. जिनकों धनादिककी और मान–गर्वकी इच्छा रही है वो धर्मोपदेश देते हैं, उसमें स्वार्थ रख देते हैं, और जहां स्वार्थ आया वहां सच्चा धर्मस्वरूपका दर्शाव होताही नहीं. तैसेंही सुननेवालेका ध्यानभी उपदेशकके स्वार्थ पर जानेसें उनका

उपदेश श्रवण करनेहारेकों लाभकारी नहीं हो सकता, सबब कि हमेशाः जो धर्मोपदेश देनेवाला जैसा उपदेश देवै उसी मुवाफिक वे खुद नही प्रवर्त्तते हैं, तब सुननेवाले शोचते है कि गुरुजी या भगवतजीसेंभी इसतरह नहीं हो सकता है, तो अपन किस तरह चल सकें ? ऐसा शोच करकें आप जिस स्थितिमें हैं वही स्थितिमें कायम रहवै मगर आत्माके गुण प्रकट करनेकों उत्सुक नहीं होते है. और जिनोंके अठारह दूषण नष्ट हुवे हैं उन्होंकों तो वीतराग दशा प्रकट हुइ है. न किसी वस्तुपर राग है न द्वेष है केवल जगतके जीवोंका उद्धार करनेके लियेही वसुधापर विचरकें धर्मोपदेश देते है, उससें श्रोताओंकाभी कल्याण होता है. सुननेके लियें बारह पर्षदा बैठती है (यह अधिकार श्राद्धशतक नामक प्रश्नोत्तरमेंसें यहापर लिखता हु) केवलज्ञानीमहाराज पूर्वद्वारसें समोवसरणकी अदर प्रवेश करते हैं, सोभी जिनेश्वरजीकों तीन प्रदक्षिणा कर ' नमोतीथ्थस्स ' कहीकें पूर्व और दक्षिणके बीच बैठते हे उनके पीछे मनःपर्यवज्ञानी–अवधिज्ञानी–चौदह पूर्वधर–दस पूर्वधर–नव पूर्वधर और लब्धिवत मुनिभी पूर्वद्वारसें दाखिल होकर भगवतजीकों तीन प्रदक्षिणा दे नमस्कार कर ' नमोतीर्थाय, नमोगणधरेभ्यो, नमोकेवलीभ्य. ' इसतरह कहकरकें केवलज्ञानीजीके पीछे बैठक लेते हैं उस पीछे दूसरे समस्त साधुजी पूर्वद्वारसें प्रवेश करकें तीन प्रदक्षिणा दे ' नमस्तीर्थाय, नमोगणभृद्भ्यो, नम केवलिभ्यो नमो अतिशयज्ञानीभ्यो. ' इसतरह नमस्कार करकें–पहेले बैठे हुवे मुनिवरोंके पिछाडी बैठते हैं तदनतर विमानीक देवी पूर्वद्वारसें प्रवेश करकें प्रभुजीकों तीन परकमा देकर ' नमस्तीर्थाय, नम' सर्वसाधुभ्य ' इस तरह नमन कर साधुजीके पिछाडी बैठक लेती हैं पश्चात् साध्वीजी पूर्वद्वारसें प्रवेश करकें भगवानजीकों तीन प्रदक्षिणा देकर नमन कर वैमानिक देवीओंके पिछाडी बैठक लेवैं भवनपतिकी, व्यतरकी, ज्योतिषिकी देवीए दक्षिण द्वारसें प्रवेश करकें वैमानिक देवीओंकी तरह भगवतजीकों प्रदक्षिणा, नमन करकें दक्षिण और पश्चिम दिशाकी बीचमें क्रमवार बैठक लेवैं तत्पश्चात् भवनपति, ज्योतिषी, और वाणव्यतरके सुर–देव पश्चिम द्वारसें प्रवेश कर प्रभुजीकों प्रदक्षिणा नमनादि करक पश्चिम और उत्तरके बीच क्रमसें करकें बैठक लेवैं वैमानिकदेव और मनुष्य, मनुष्यस्त्रीए ये तीन उत्तर द्वारसे प्रवेश कर प्रदक्षिणा नमनादि करकें पूर्व और उत्तरके बीच बैठक लेवैं. इस मुजब बारह पर्षदा समवसरणमें जिनवाणी सुननेकों बैठती हैं वहां

भगवंतजीके अतिशय प्रभावसें तीन तर्फ भगवंतजीका प्रतिबिंब देवता बनाते हैं, उससें चारों कोर बैठे हुवे भगवंतजीकों सन्मुखही देशना देते हुवे देखते हैं, इससें चारों मुखसें देशना देते है ऐसा समझनेमें आता है. देशनाकि ऐसी खुबी है कि जिस जिसके मनमें जो जो शंका होवे या शंका पडती है वो सब प्रभुजी जान लेकरकें ज्ञानसें उत्तर देते हैं. किसीकोंभी प्रश्न करनेकी जरूरत नहीं रहती है, ऐसी जिन्होंकी शक्ति है. किसीके दिलका संदेह दूर करना मुश्कील नहीं. ऐसी भगवंतजीकी वाणी सुनकर निकट भवीजीव तो उसी वक्त प्रतिबोध पाकर संयम लेते हैं. और वैसी विशुद्धि न होवै तो वे श्रावकधर्म या सम्यक्त्व अंगीकार करते हैं और आत्माका कल्याण करते हैं ये दोनु प्रकारके धर्मका विस्तार युक्त वर्णन प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणिमें है, इससें यहांपर लिखनेकी आवश्यक्ता नहीं; परंतु सारांश यही हैं कि हर प्रकारसें संसारमोहनी, स्त्री पुत्रादिककी मोहनी और धनादिककी रागदशा अनादिकी है, वो रागदशा उतार डालनी, और आत्मदशाकी सन्मुख ज्यों ज्यों विकल्प दूर हठ जाय वैसा उद्यम करना, और विकल्पके कारण छोड देना. जहांतक संसारमें मन है वहांतक आत्मदशा जागृत होनेकीही नहीं, उस लिये संसार छोडकर साधु होनेकी जरूरत है. साधुजी होते हैं तब व्यापारादिकके कारण दूर हो जाते हैं, स्त्री वगैरःके कारणभी अलग हो जाते हैं, उससें आत्मज्ञान किसतरह करना उसके शास्त्र देखनेका निवृत्तिसें वक्त मिल सकता है. कितनेक शास्त्र तो ऐसे हैं कि वांचनेसेंही मोह हठ जाता है और आत्मभाव प्रकट होता है. आत्मभाव प्रकट होवें ऐसे बहुतसे शास्त्र हैं उसके अभ्याससें मग्न होते हैं पीछे अनुभवज्ञान प्रकट होता है, तब तो शास्त्रकीभी जरूरत नहीं. आपके प्रबल ज्ञानसें ध्यानादिकद्वारा कर्म क्षय करते हैं और केवलज्ञान तथा केवलदर्शन प्रकट करते हैं. इतनी विशुद्धि नहीं होवै तो मरनके बाद देवता होता है. वहां देवसुखका अनुभव करकें पुनः मनुष्य होकर धर्माराधन कर मुक्ति प्राप्त करते हैं. वास्ते ऐसे अढारह दूषण रहित देवकों देव मानने चाहियें, उन्होंकी भक्ति करनी और उन्हीके हुकम मुजब चलना. जो प्रभुजी मोक्ष पाये हैं उन्हीका बतलाया हुवा मार्ग अंगीकार करै तो अपनभी मोक्ष प्राप्त कर सकै.

किसीकों प्रश्न होगा कि क्या जैनधर्मकेही देव अठारह दूषण रहित है ? क्या दूसरे देव अैसें नहीं है ? उसका समझाना कि, हम कुछ अैसा नहीं कहते हैं इस सबधमें जैनधर्म सिवाके होवे उन्होंने अपने आपसेंही आपके देवोंके चरित्र लिख हुवे होवें वे देख लेने चाहिये, और वे चरित्र देखनेसें यदि अठारह दूषणमेंसें कोइभी दूषण न होवें तो उन्होंकों बडी खुशीके साथ देव मानने चाहियें और वैसे देवकों हमभी नमस्कार रातदिन करते है वाचनेवालेकों देवका चरित्र देखनेंही जो अठारह दूषण मेंसें दूषण देखनेमें आवें तो वें दूषणवाले देवकों कौन मानेगा ? जिनकों ये दूषण न छोडने होवेंगे वही मानगे और जो त्याग करने होवेंगे तो शोचेगा कि जिसने आपके आत्माका उद्धार न किया तो अपने आत्माका क्या उद्धार करेगा? ऐसी विचारकरकें सहजसेंही सत्य देवकीही आज्ञा धारण करगा

प्रश्न—बडे बडे पडित हो गये और बडे बडे भारी शास्त्र बनायें उन्होंने क्या देवकी पहेचान न की होगी ? न्याय और व्याकरणके शास्त्र जैनीओंकोंभी ब्राह्मणके पास पढने पडते है, वास्ते ऐसे विद्वानने कुछ देखनेका बाकी रख्खा होगा ? इस सबधमें यही समझना कि यह बात अपना अपना मन जान सकै ऐसी है कितनेक अन्यदर्शनके विद्वानोंके साथ बात हुइ हैं, वे विद्वान अपने धर्मकी पुष्टि करते हैं, परतु खानगी–गुफतगो करनेके वक्त उनोंके मुंहसें उससें विपरीत बोल निकलते हैं, जैसें कि आचार्य महाराज श्री आत्मारामजी पेस्तर ढूंढक मतमें थे, उस वख्तमेंही ढुंढकके पास पढनेके लिये गये थे. उस ढुंढकने शिक्षा दी कि–' प्रतिमाजीकी निंदा जो तुम करते हो, वास्ते में तुमें न पढाउगा, क्यों कि आगमजीमें देखनेसें प्रतिमाजी पूजनेका व्याजबी मालम होता है ' और उसने प्रमाणस्थल बतलाकरकें प्रतिमाजीकि श्रद्धा करवाइ तब आत्मारामजीने कहा कि–'तुम झूठ मार्गमें क्यों पड रहे हो? जवाब दिया कि–अब निकलनेसें लज्जा आती है ' ऐसी रीति हैं, वास्ते दूसरेकी तर्फ देखनेका विचार करना सो व्यर्थ है अपने आपसेंही शास्त्र देखकर निष्पक्षपातस तपासकर लेना कि सच्चा क्या है ? वो सहजसेंही समझमें आ जायगा जैनी व्याकरण न्याय पढते हैं वो तो भषा शीखने समान हैं उसमें कुछ मार्गका ज्ञान करनेका नहीं मार्गका ज्ञान किसी ब्राह्मणके पास लेनेकों नहीं जाते है मार्गका ज्ञान तो मार्ग पाया हुवा मनुष्यभी बतला सक्ता है, तो मुनि महाराज तो एक ससार त्याग करनेका काम कर चुके हैं. न्याक

रण पढानेवाला तो संसारमें पडा हुवा है वो क्या बता सके ? वास्ते यह सब पराये विचार छोडदेकर यदि अपना काम करना हो तो उसकों अपने आतमाका उद्धार करनेके वास्ते आप खुद शास्त्राभ्यास करकें देवगुरुकी तजवीज करो सोही दुरुस्त समझ लो तो बहुत फायदेमंद है. अनादिकी आदत तो ऐसी है की जिस मजहबमें पडे वही क्रिये करना; लेकिन वो रीति छोडकर अपनी बुद्धिसें सूक्ष्म विचार करकें जो जो देव नाम-धरवा कर अपनकों जो धर्म करनेका कहते हैं वो धर्नमें वो चले है ? और स्वभावमें रहकर विभावसें मुक्त रहेनेका कहते हैं वैसे रहे है ? ए देखनेका मुख्य काम है और अपनकोंभी मनुष्यजन्म पाकर यही करनेका हैं वास्ते अंशअंशसें जडकी प्रवृत्ति कमी होवे. और आत्मस्वभावमें स्थिरता होवे ये उद्यम करना. ये उद्यमसेंही वर्त्तमान समयमें या कलांतरमें अनुक्रमसें आतमगुण संपूर्ण उत्पन्न होवेगा; वास्ते ज्यों बन सके त्यों आत्मतत्त्वकी शुद्धिपद् दर्शनमेंसें जिस दर्शनमें विशेष मिल सके उस दर्शनकों ग्रहण करकें उस दर्शनकी श्रद्धा रखकर स्वगुरु खोजनेके कामी होना.

प्रश्न—तुमारे जैनदर्शनमें व्यवहार क्रियामें वर्त्तते हैं; परंतु कोइ आत्म खोजना करनी या आत्मगुणमें वर्त्तना, वैसे तो मालूमही नहीं होते.

उत्तर—सब जीव कुछ आत्माके शोधक नहीं होते हैं, और आत्मगुणमें वर्त्तनेवालेभी नहीं होते हैं. सबब कि यह दुषम कालमें ज्ञानीओंनें पेस्तरसेंही ज्ञानमें देख लिया है कि वर्त्तमान समयमें कोइ इस क्षेत्रकी अंदरसें मोक्ष नहीं जावेगा. इससें मोक्षमें जावे वैसे ध्यानदिकके करनेवाले कहांसें होवे ? लेकिन, वर्त्तमानकालानुसार साधन कर सके वैसे उत्तम जीव तो अभी मिल जावे. ध्यानादिक करकें समभाव दशा ल्यानी है, विषय कषायसें मुक्त होना है, तो कोइ मारपीट कर जाय या तो पूजा सत्यकार कर जाय तो उन दोनुपर तुल्य दशा करनी चाहिये. वो करनेके उद्यमी तो निकलेंगें; मगर कितनेक धर्मवाले ध्यान करनेका नाम देकर गांजेकी चिलम फूंकते हैं–भंग पीते हैं, उससें ज्ञान नष्ट हो जाता है ओर विषय कषाय बढते हैं. ऐसा उद्यम करकें कहवे कि– हम ध्यान करते हैं वो क्यों मान लिया जाय ? अन्य दर्शनमेंभी कितनेक वेदिये पशु कहेजाते हैं वो कैसे होते है ? कि जो वेदांतकी वातें करें, उसकी कथा करे और विषयकषायमें वर्त्ते. तब कहने लगे कि जडका काम जड करता है उसमें हमकों क्या ? जो खानेका दिल होवे सो खाना, भोगकी इच्छा हुइ होवे तो भोग करना, कुछभी

जडकर्त्तव्यमें रुकावट नहीं करनी. ऐसा धर्मपालन करकें स्वेच्छा मुजब चलै विषय-कषायमें मशगुल रहे और कहेवे कि हम ध्यानी हैं, उसें दुनियाम वदीए पशु कहे-जाते हैं पातांजली योगशास्त्रमें अष्टांग योग साधनेका कहा है, उसमें प्रथम योग यम है वो-पांच वस्तुके त्यागसें होता है याने जीवहिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह इन पांचोंका त्याग होवे तब यम नामक योग प्रकट होवे दूसरा योग नियम है, उसमें शौच, संतोष, तप, सज्झायध्यान और इश्वरध्यान इन पाचोंके सेवनसें नियम सिद्ध होता है तो ये जैसें जैनमें व्यवहार कहा है वैसेंही योगशास्त्रमें कहा है. तीसरा आसन योग है-याने आसन स्थिर करना, ये तीन सिद्ध हुवे पीछे चौथा प्राणायाम योग होता है, उसमें पूरक, कुंभक और रेचक करना कहा है-ये हठ समाधि योग है पांचवा प्रत्याहार योग है, उसमें पांचों इंद्रियके विषयोंका संवर होता है. संसारसें और जडभावसें विमुख होता है तत्त्वबोध होता है, सूक्ष्म ज्ञानभी होता है छट्ठा ध्यानयोग है सातवा धारणायोग और आठवा समाधियोग है ये तीन योग केवल सहज समाधिकी प्राप्तिके साधन हे सो होवे अब शोचो कि अष्टांगयोगके साधनवालोंनेभी प्रथमके योगमें व्यवहारशुद्धि बतलाइ है, वो व्यवहारशुद्धि न करै और कहवै कि ध्यान करते हैं वो बात ज्ञानवंत क्यौं कबूल करेंगे? जैनशासनमेंभी क्रमश चढनेकों गुणस्थानकका क्रम बतलाया है, उस मुजब उसमेंभी योग्यता मुताफिक ध्यानादिक हैं, और क्रमरहित गुणस्थानमें चढनेवालाभी पीछा पडता है, वो संयमश्रेणीकी स्वाध्यायमें कहा है. पुन. बृहत्कल्पकी शाखी दी है, वास्ते क्रमश' जिसतरह ध्यानादिककी रीति कही है, अष्टांगयोगकी व्याख्याभी योग्य दृष्टि समुच्चयमें हरिभद्रसूरिजीने विस्तारपूर्वक कही है उसमें ज्यादे तफावत नजर नहीं आता है और जैनी जानते नहीं, शोध करते नहीं, ये कहेना जैन धर्मशास्त्रके अजानपनाके लिये है जैनमें क्रमसें गुणस्थान चढनेका कहा है, उसमें योग्य होता है तब ध्यान करता है योग्यता न आवे वहातक भावनाए भावै. ये भावना ध्यानका स्वरुप ध्यान शरीक, योगशास्त्र, ध्यानमाला, षोडशकजी वगैर ग्रथोंमें देखोगे तो अच्छी तरहसें समझा जायगा मैंनेभी अंशमात्रसें प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणिमें दर्शाया है उससें यहा नहीं लिखता हु; वास्ते उसमेंसें देख लेना तुमारा प्रश्न इतना स्वीकारते है कि मार्गया दर्शावे मुजब मेरेसें नहीं हो सकता है वो प्रमाददशा है बाकी जो महापुरुष हुवे हैं और होनेवाले हैं वे

पुरुष तो आत्मतत्त्वकीही शोधमें वक्त व्यतीत करते हैं, निजस्वरूप शोचते हैं, आपके गुणपर्याय विचारते हैं. आपका स्वरूप शोचतें आपकी विपरीतदशा मालूम होवें उसें दूर करनेके लिये व्यवहारमें वर्त्तते हैं. व्यवहारमें वर्त्तनेसें जितना आत्मा कर्मसें मुक्त होता है और निर्मल होता है उसकोंही धर्म मानते है, उसीमेंही आनंदित होते हैं. आपके आत्माकी परीक्षा करनेकों कष्टभी सहनकर देखते हैं; सबब कि वातें करनेरूप जडपदार्थ मेरा नहीं ऐसा कहते हैं; परंतु ज्ञानी तो कष्ट सहन करनेके वक्त परीक्षा करते हैं कि जो शरीरकों कष्ट पडता है तब वो कष्ट मुझकों हुवा माना जाय या नहीं? जो दुःखमें चित्त लिप्त होता है तब तो कथनरूप हुवा. और जो शरीरकों कष्ट होता है उसमें समभाव रहते हैं तब सच्चा ज्ञान हुवा स्वीकारते हैं, ऐसी स्वाभाविकदशाही स्वस्वरूप परस्वरूप ज्ञान होनेसें हुई है, उसके प्रभावसें जो जो दुःख होता है उसमें किंचित्भी खेद नही पाते हैं, आपआपने आनंदमें रहते हैं. कर्मफलकी प्रतीत होती जाती है कि पूर्वसमयमें पाप किये हैं, उसका यह फल भुक्तता हुं. अबभी पाप करुंगा तो उसके फल भुक्तने पडेंगे, ये विचार जम गये हैं उससें कर्म क्षय करनेके प्रभुजीने जो जो उद्यम कहे हैं उससें व्यवहारमें वर्त्तते हैं, निश्चय स्वरूप हृदयमें चिंतन करते हैं, उसकी विचारणा कर रहे हैं. विशेष विशुद्धिवंत ध्यानादिमें लीन होते हैं, और ऐसे उद्यमसें पुरुष मोक्ष पावेंगे यह निश्चय वार्त्ता है; परंतु जिसने उद्यम छोड दिया उसकों तो कुछभी होनेका नहीं.

प्रश्नः—धर्मका उद्यम तो सब धर्मवाले अपने अपने विचार मुजब करते हैं तो जैनधर्ममें क्या विशेष है?

उत्तरः—जैनधर्मके मार्गमें निश्चय और व्यवहार ऐसें दो प्रकारका मार्ग है, उससें करकें वस्तुधर्मका यथार्थ निर्णय होता है, और यथार्थ प्रवृत्तिभी कर सकते हैं. जैन होकरकेंभी कितनेक अकेला निश्चय ग्रहण करते हैं. कितनेक अकेला व्यवहार ग्रहण करते हैं और निश्चयपर दृष्टिही नहीं देते. इन दोनुमें यथार्थ जैनपना ही नहीं. इस वास्ते यशोविजयजीने कहा है कि—'स्यादवाद पूरण जो जाने, नयगर्भित जस वाचा; गुणपर्याय द्रव्य जो बूझे, सोइ जैन है साचा.' इसतरह कथन है. और इसी मुजब चलै उसीकोंही जैनी कहना दुरूस्त है. तो जैसें जैन नाम धारण करकें एक पक्ष ग्रहण करै तो उसें जैनीकी गिनतीमें नहीं गिना जावै; सबब कि वो यथार्थ आ-

त्मसाधन न कर सकें किसी तरह अन्यदर्शनमेंभी एकांत पक्ष ग्रहण करें उसें वस्तुधर्मका यथार्थ ज्ञान न हो सकैगा और वस्तुधर्मके बोध सिवा आत्मधर्मकों आत्मधर्मके स्वरूपसें न जान सकें, जडधर्मकों जडधर्मके रूपसें न जान सकें, जैसा आत्माका लक्षण हैं वैसा लक्षण न जान सकें, परमात्माका जैसा लक्षण है वैसा न जान सकें, वो कदाचित् परमात्माका ध्यान धरे तोभी सफल किसतरह होवे? कितनेक कहते हैं कि–' इश्वर सिवा कोइ पदार्थ हेही नहीं जडपदार्थ है ऐसा कहते हैं सो भ्रांति है. अब प्रत्यक्ष पदार्थकों भ्राती कहते है वे मनुष्य उसके अनुसार ध्यान धरै वो आत्मकार्य किस प्रकारसें हो सकै? वास्ते जो जो वस्तु जिस जिस रूपसें रही है उस उस स्वरूपका ज्ञान करकें ध्यान धरै तो कल्याण होवे, बाकी जिस जिस जीवोंकों अपने आत्माका कल्याण करनेकेही बुद्धि हैं और वो बुद्धिसें जो उद्यम करते हैं वो परंपरासें हितकारी है, सबब कि आत्मधर्म पानेके सन्मुख हुवे हैं, उनोंकों सद्गुरुका योग मिल जाय तो ज्ञान होनेमें देर न लगे. वास्ते सन्मुख भाव करना ये अच्छा हैं उससें परंपरासें कल्याण होवैगा, और एक पक्षकी बुद्धि छोडकर निश्चय दृष्टि हृदयमें स्थापन कर निश्चय प्रकट होवे वैसे कारण सेवन करने चाहियें कि उससें कल्याण होवे, और परंपरासें इच्छित सुख होवैगा उसमें मुख्य शास्त्रज्ञान करनेका विशेष उद्यम रखना, उस ज्ञानानुसारके परभावसें मुक्त होनेके साधन करने चाहियें कि उससें सर्व श्रेय होवैगा

प्रश्न --जैनमें कितनी वस्तु कही है?

उत्तर.—जड और चेतन दो पदार्थ है, इनकी व्याख्या पेस्तर बहुतसी की है, इससें यहापर नहीं लिखता हु अब इतनाही लिखनेका है कि जड जो शरीर–घर–हवेली–कपडे–आभूषण वगैर' प्रकट पदार्थ हैं, उसकों अद्वैतवादी कहते है कि भ्रांति है, पदार्थ नहीं. अविद्याके प्रभावसें मानते हो यह जो कहा हुवा है इस विषयके बहुतसें ग्रथभी लिखाये गये हैं और न्यायभी रचे गये हैं; परतु मेरे विचारमें सर्वज्ञ पुरुषने क्या बतलाया है'–यह जडपदार्थ हैं, उससें ये पदार्थ मेरे नहीं, इन पदार्थोमें मेरापना मानता हु सो भ्रांति है–अविद्या है, आत्माका चेतन स्वभाव है वास्ते परस्वभावकों मेरा कहना सो भ्रांति हैं और यही भ्रांतिसें अनतकाल हुवा ससारमें परिभ्रमण किया, वास्ते जिसकों ससारमें भटकना न होवे उसकों इन पदार्थोपरसें मेरेपणेका ममत्व छोड देना, इसतरह परमात्माका कथन है, उसका रुपांतर

हो गया है. फिर जैनमत स्याद्वाद है, उसकों अंजानपनेसें युं जानता है कि हा और ना ये किस तरह बन सके? परंतु जो जो पदार्थ रहे हैं उसमें दो दो धर्म रहे हैं तो वें न माननेसें कार्यकी सिद्धि किस प्रकारसें हो सके? उसका दृष्टांत कि—औरतकों लडके होते हैं. अब एक पक्ष पकडकर कहें कि औरतकों लडके होतेही है, तो क्या दूषण आता है कि वंध्यास्त्रीकों लडके नहीं होते हैं. अब वंध्याकों होवेंही नहीं ऐसा मानते है उसमेंभी दोष आता है; क्यौं कि वंध्याकों औषध देनेसें वंध्यादोष मिटता है और लडके होते हैं. अब युं कहै कि औषधसें वंध्यादोष दूर होता है तो वोभी झूठा है; सबब कि कितनीक औरतोंकों औषधसेंभी वंध्यादोष नहीं मिटता है, तो एकांतसें युंभी कहुं तो दूषण आयगा. शरीरकी निरोगता अच्छी मावजत रखनेसें रहती है ऐसा यदि एकांतसें कहेंगे तो महाराणी साहबाकों मंदगी भुक्तनी पडी और शरीर त्याग करनेका समय आया, क्या उन्होंने मावजन करनेमे कुछ कमी रक्खी होगी? मगर पूर्वकृत कर्म जोर करै वहां मनुष्यका कुछ नहीं चल सकता है. अब यहांपर ऐसा सवाल होवेगा कि शरीरकी मावजत रखनेके लिये कुछ जरूरत नहीं, कर्मसें होता है सोही होवैगा, येभी एकांत पक्ष नहीं. हिफाजतसेंभी बचाव होता है; जैसें कि जानबूझकर विष खायेंगे तो फिर क्यौंकर जिया जायगा—जीवन कुशल रहवेगा? महामारी वगेरःकी हवा चलती होवे वहांसें दूर जाना चाहियें, युं करनेसें बचाव होता है—येभी एकांत नहीं. अब दाक्तरकोंभी भग जाना चाहिये ये सवाल ऊठेगा; क्यौं कि दूसरे भगें तब दाक्तर क्यौं न भग जाय? तब हम कहेंगे कि भाग जानेका एकांत नहीं. दाक्तर महामारी लागु न हो सके ऐसे बंदोबस्तसें रह करकें लोगोंकी सलामती समालै—दाक्तर भग न जाय. दूसरे जन दूसरी जगह चले जाय तो हरकत नहीं. इसी तरहसें धन पैदा करना, सो महेनत करनेसें धन पैदा होता है और नहींभी होता. बुद्धिवंत बुद्धिसें धन पैदा करता है, वोभी एकांतसें नहीं कहा जायगा, बुद्धिवंत देवालेभी निकालते हैं. और मूर्ख होते है सो धन समालकर रखते हैं, वोभी एकांत नहीं; बुद्धिकी न्यूनतासें बहुत नुकशान होता है. खाना वो अच्छा है मगर वोभी एकांतसें नहीं क्यौं कि शरीरमें खाया हुवा हजम नहीं हुवा और फेर और खाय लेवै तो अजीर्णादिक रोग होवै, वास्ते उसकों न खाना, उसमेंभी एकांत नहीं; सहज पदार्थ संतोषके लिये—निभावके लिये, खोराक लिया पाचन होनेके लिये खाना चाहिये.

घी बहुत उत्तम पदार्थ है, खाने लायक है, मगर निरोगीके वास्ते है, रोगीके लिये नही. रोगीकोंभी न खाना ऐसा एकात नही, औपधके अनुपानमें–रोगपर या शरीरस्थितिपर विचार करकें वैद्य–डाक्तर खानेकों कहें तो खानाभी चाहियें दान देना उत्तम है, मगर एकात नहीं अपने सिरपर करजे होवै वो न देवै, और दान देवै, उस प्रकारसें दान न देना येभी एकात नहीं आपके खानेके वास्ते दो रोटी बनाइ है उसमेंसें आधी या एक रोटी देकर बाकी रही हुइ रोटीसें आपका गुजारा चला लेवै सो उत्तम है दान न देता तो आप खाता, मगर आपने खाया नही और दान दिया सो महा फलदायी है किसीकों दु ख न देना ये शब्द एकात है तोभी वो एकात नहीं. किसी उत्तमपुरुषकों रोग हुवा है, वो रोग मिटानेके लिये दु ख देवै तो वो लाभकारी है, जैसें कि वर्ण व्रण गया हो और नस्तर देवै तो उससें दु.ख होता है सही, परतु शाता करनेके वास्ते दु'ख देना है तो वो दु ख देना निपेध नहीं लडकोंको पढानेके लिये शिक्षक आदि विद्यार्थियाकों मारते हैं–दु ख देते हैं वो दु ख देना निपेध नही वोभी एकात नही. मारनेसें हाथपॉव टूट जाय, जखम हो जाय, खून निकलै, कोइ भारी इजा होवै ऐसा मार वगेर भी न मारना चाहियें फिर कोइ कोमल अगका होवै वैसेकों बिलकुल न मारना चाहियें. फिर कोइ शिप्य अयोग्य होवै तो न मारना चाहियें. इसतरह सब विद्या पढनी यह साधारण नियम है, परतु वो एकांत नहीं मत्र–विद्या वगेरः विद्या सिद्ध करनेकी जिसमें शक्ति न होवै उसकों वो विद्या पढनीही न चाहियें और तप करना सो लाभकारी है, वोभी एकात नही. जिसकी शक्ति होवै वो तो सुखसें तप करे, मगर ताकत न हो तो तप करनेसें परिणाम बिगड जाता है वैसेकों तप न करना वोभी एकात नही अतिम मरण समय है और उस वक्त शक्ति हो या न हो तोभी चारों आहारकों त्याग करनाही दुरूस्त है वोभी एकात नहीं, जिनके भाव अच्छे न रहे ओर परिणाम बिगड बैठे तो उसकों त्याग करना व्याजबी नही धर्मोपदेश देना ये अच्छी बात है, मगर एकातसें नहीं. जिसने यथा प्रकारसें शास्त्रका ज्ञान मिलाया है वो उपदेश देवे, परतु जिसने वैसा ज्ञान न मिला लिया हो वै ओर उपदेश देने लगे तो प्रभुजीकी आज्ञाविरुद्ध देनेमें आ जाय, वास्ते ज्ञान रहित हो उसें उपदेश न देना ज्ञानयुक्त है वोभी श्रोता उपदेशके लायक न होवै तो उपदेश न देवै–वोभी एकात नहीं–

वर्त्तमानकालमें लायक श्रोता नहीं है, मगर उपदेश देनेमें लायक बनेगा ऐसा मालूम हो सकै तो देना. अयोग्यका जवाब न देनेसें शासनकी लघुता होती हो तो लघुता दूर करनेके लिये उपदेश देना यह स्याद्वाद रीति है. अपेक्षा अपेक्षाके वचन भिन्न भिन्न हैं. अब ऐसी अपेक्षाएं न समझे और एकही रीतिकी बात कहवे वो ज्ञानी कि अज्ञानी ? सरकारके कायदामेंभी अपवाद हैं. विसी तरह जैनशासनमेंभी उत्सर्ग अपवाद मार्ग बतलाया है. विगर अपेक्षासें हा उसकी ना ऐसा जैनमार्ग नहीं. विस तरहसें जैनमार्ग समझ लिये विगर किसी जगह शास्त्रमें उत्सर्ग मार्गकी बात होवै और किसी जगह अपवाद अपेक्षासें होवै, वो विचार ध्यानमें लिये विगर कहते है कि जैनमें एक जगह कुछ कहा है और दूसरी जगह और कुछ कहा है—ऐसा कहेनेवाले केवल मूर्खताका उपयोग करकें कहते हैं. जैनशासनकी सुज्ञता प्राप्त हुइ होती तो कभी ऐसा न कहेते. जैनमें जो सात नय सप्त भंगी आदि बतलाइ है वो ऐसा अपेक्षा ज्ञान होनेके लियेही है. वो नयादिकका यथार्थ ज्ञान हो जाय तो समस्त जगह जो जो नयका वचन है वो वो नयकों उसी जगह स्थाप लेवै तो किसी बातका संदेह रहवेही नहीं. परंतु वो ज्ञान विगर जैनशासनकी स्याद्वाद बातके संबंधमें विपरीत बोलै—भाषण करै ये अपने मजहब—पंथका हठ है. जो जो पदार्थ रहे हैं उसका निर्णय स्याद्वाद ज्ञानसेंही होता है. दुनियामें कोइभी वस्तुका स्वभाव स्याद्वाद सिवाका नहीं है; जैसें कि जीव है सो अविनाशी है ये सत्य है, किसी रोज जीवका विनाश होताभी नहीं. यही पक्ष पर अेकांतसें रहवे तो जो जो जीव संसारमें परिभ्रमण करते हैं वे एक शरीर छोडकर दूसरी जातिका दूसरा शरीर धारण करते हैं. तो पेस्तर हाथी था तब आपके आत्मप्रदेश सब हाथीके सारे बदनमें फैलकर रहे हुवे थे, वो हाथीभी मर गया और मख्खी हुइ तो जो हाथीमें फैलाव था उसका संकोच कर मख्खी जितनेमें समाया—इसी तरह आत्मप्रदेश हुवे तो हाथीवाली अवगाहनाका नाश हुवा, और हाथीकी—बोलने—चलने खाने—पीने वगैरः जो जो प्रवर्त्तनाथी वो बंध हो कर मख्खीपणेकी हुइ तो हाथीपणा नाश हुवा, उस अपेक्षासें जीवमें नाश धर्म भी रहा है. जो नाश धर्म न मानै तो विपरीत कि कैसा ? परमाणु पदार्थ अविनाशी है; मगर एक दूसरे मिलजाना, अलग हो जाना ये धर्म रहा है, सो विनाशी धर्म है. इसी तरह मिट्टीके अनेक घाट होते हैं, वो विनाश होते हैं, मिट्टी अविनाशीपणेसें है, तो इसी-

मेंभी दो धर्म रहे है, विसी तरह दो दो धर्म सबमें मौजूद हैं. आत्माम स्वभाव धर्म और विभावधर्म-ये दोनु दोनु अपेक्षासें रहे हैं स्वभावधर्म कृत्रिम नहीं, स्वभावधर्म जडमें रहेनेका, मगर जडकी साथ वर्त्तनेका नहीं मुँह नहीं उसमें बोलनेका नहीं, चलनेका नहीं; फकत जानना-देखना-स्वभावमें स्थिर रहना ये स्वभाव आत्माका है. अब एकांत मानै तो जडप्रवृत्ति करता है सो कौन करता है ? वेदांतीलोग ऐसा कहते है कि मायासें अविद्या होती है तो उस रीतिसेंभी परसंयोगसें वर्त्तनातो हुइ तो जीवमें स्वभाव न होवे तो किसतरहस वर्त्तना करे ? अब वर्त्तनेका स्वभाव मानै तो इससें रहित होवे नहीं. ऐसें एकस्वभाव माननेसें कुछभी वस्तु निर्णय नहीं हो सकैगा. जैनशास्त्रकारें स्वाभाविकधर्ममें कुछभी जडप्रवृत्ति नहीं ऐसा कहते है सो सत्य है. वैसा न होवे तो संसारसें मुक्त होकर कोइ शुद्ध हो सकही नहीं वास्ते शुद्ध निश्चयनयके पक्षसें निजस्वभावमें रहना यही धर्म है अशुद्ध निश्चयनयके पक्षसें जडकी संगतके जोर कर्म बंधे हुवे हैं वो कर्मके संयोगसें जडकी प्रवृत्ति होती है जड ज्यौं वर्त्तता है त्यौं आत्मा वर्त्तता है अब वो प्रवृत्ति छोडनेके वास्ते व्यवहारमें धर्मसाधन करना है और जो जो कर्म बांधे हुवे हैं वो क्षय होवै वैसा उद्यम करना कर्म क्षय करनेकाही यथार्थ उद्यम किये विगर आत्मा निर्मल होनेकाही नहीं और कर्मक्षय होनेकेही नहीं. ऐसे वस्तुओंमें स्वाभाविक विभाविक धर्मोंका ज्ञान विगर ध्यान करे तो विपरित ध्यान होवेगा. वास्ते पदार्थोंके धर्मका दर्शाव जैनशास्त्रकी अंदर बहुत विस्तारपूर्वक है, वो जानकर पीछे दया दानादिक करे तो सफल होवे, और मोक्षसाधनभी उसें कहा जावे. स्वभाव धर्मको स्वभावपणेसें श्रद्धा करके विभाव धर्ममें वर्त्तना है वो दूर करनेमें पेस्तर विभाव वर्त्तना करनी पडेगी; जैसें कि गृहस्थपणेकी प्रवृत्ति विभाविक छोडकर साधु धर्मकी प्रवृत्ति करनी अब निश्चयनयकी अपेक्षासें येभी विभाव है परंतु ये विभाव कैसा है ? स्वभावको आवरण लगा हुवा होवे उसे हटानेवाला है-वीतराग आज्ञासें साधुपणा आता है सो तो विभावके अंश क्षय होनेसेंही आता है, वो ज्यौं ज्यौं संयममें तत्पर होवे और संयम स्थानमे चडता जाय त्यौं त्यौं विभावदशा हटती जावे और आत्मशुद्धि होवे अनुक्रममें गुणस्थान चडता जाय सो सर्वथा विभावसें मुक्त होवे और स्वभावधर्ममें प्रकट होवे उससें अनंत ज्ञानशक्ति प्रगट होवे और एक समयमें तीनलोकके भाव जाननेमें आवे अनंतदर्शन प्रगट होवे उससें

दडियेमें जल ल्याकर पिलाया, और पानी पीकर राजा प्रसन्न हुवा. उस पीछे भीलने फल वगैरः ल्याकर दिये वो राजाने खाये उससें राजा बहुतही खुश हुवा. उतनेमें प्रधान वगैरः सब आ पहुंचे. तब राजाने कहा कि इस भीलने मेरे प्राण बचाये हैं. पीछे राजा भीलकों अपने साथ ले गया. वहां विविध मेवा मिठाइ खिलाइ, उससें भीलभी खूब राजी हुवा, और कितनेक रोज वहां रहकरकें राजाकी रजा मांग अपने घर गया. तब औरतने पूंछा कि 'नगरमें कैसा सुख था?' जवाब दिया 'बहुत सुख था.' औरतने कहा—'उसका ठीक ठीक बयान कर बतलाओ.' मगर वो कुछ बयान न कर सका. इसी तरह सिद्धमहाराजजीका सुख मुँहसें कहा जावै ऐसा नहीं है. सब कि उस सुखका बरोबर मुकाबला कर बतलावै वैसी चीज सुख पूर्ण संसारमें हैही नहीं; वास्ते सच्ची रीतिसें तो वो सुख वैसी दशा पावै सोही जान सकै. कितनेक सुख लिखनेमें आये हैं वे दृष्टांतरूप हैं. उससें बुद्धिवंत कितनाक समझ सकै. ऐसा सिद्धमहाराजजीका सुख अठारह दूषण त्याग करनेसें होता है. वास्ते हरएक दूषण भगवंतजीने दूर किये, उसका स्वरूप वे दूषण नाम मात्रसें बतलाया है. विस्तारसें शास्त्रोंमें हैं, वहांसें देखकर भगवंतजीने दूषण त्याग करनेका उद्यम द्रव्य भावसें कहा है विसतरह करना कि आत्माका कल्याण होवै, और सिद्धमहाराजजीके बीच भेद है वो दूर करकें सिद्धमहाराजजीके समान गुणवाला आत्मा होवै, यही मनुष्य जन्म पायेका फल है.

प्रश्नः—आत्माके गुण आत्माकों देना उसें दान कहा और आत्माके गुणकी प्राप्तिकों लाभ वगैरः बतवाया वो कौनसें आधारसें?

उत्तरः—देवचंदजी कृत चौवीसीमें सुपार्श्वनाथजीके स्तवनकी अंदर दर्शाया है. पुनः आनंदघनजीकी चौवीसीमें भी वैसा दर्शावहै उसके आधारसें लिखा है.

प्रश्नः—वर्त्तमान समयमें महापुरुषोंके किये हुवे ग्रंथोंके और सूत्रोंजी—सिद्धांतजीके भाषांतर होते हैं सो योग्य है या नहीं?

उत्तरः—अभी जो भाषांतर होते हैं वे भाषांतर कोइ मुनी महाराजजी तो करते नहीं. पेस्तरके किये हुवे बालावबोध मुनि महाराजजी और आचार्यजीके बनाये हुवे हैं, उसमेंभी टीकाके जितना विश्वास विद्वान नहीं रखते हैं—टीका देखकर मिलता हुवा आवै याने टीका के साथ मिलता होवै तो उसें मान्य करते हैं. अभी तो ऐसे

पुरुष कोइ ग्रंथका भाषांतर करते हुवे मालुम नहीं होते. फक्त अपनी आजीविकाके वास्ते जैनी गृहस्थ या ब्राह्मणपंडित करते है. जो मनुष्य अपनी आजीविकाके वास्ते करते है उन्होंने जैनशासनकी रीति पेम्नरसेंही लुप्त कर दीहै, सबब कि यह लोकार्थे प्रभुजीका पूजन करै उसें लोकोत्तर मिथ्यात्व कहा है तो ज्ञानका अर्थकर या ज्ञान (पुस्तक) वेचकर पैसे पैदा करना सो इस लोकका लाभ है, तो प्रथम हीसें मिथ्यात्व हुवा, सो मिथ्यात्व लगता है, ऐसा शास्त्रसें जाने, परंतु आपकों मिथ्यात्व लगता है वो नहीं मानते हैं. ऐसी दशावाले जैनी या जिम मिथ्यात्वी हैं, ऐसे जीवोंकों यथार्थ सिद्धांतका बोध किसतरहसें हो सके? और यथार्थ बोध बिगर अर्थका अनर्थ हो जाय, वास्ते ये कार्य आत्मार्थीकों करना योग्य नहीं कदाचित् आजीविका-गुजरानके लिय काम करते हैं उन्होंकों शुद्ध क्षयोपशम नहीं होता है फिर विशेषावश्यकजीमें तो ऐसा कहा है कि सामायक अध्ययन गुरुके पाससें पढना, मगर " ननु पुस्तक चोर्यात् " अपने आपसें पुस्तककी अंदरसें पढना नहीं तो ये तो सिद्धांतके अर्थ करनेके हैं पुन. पयन्नादिक बिगर दूसरे आगमजी (अगउपागादि) श्रावककों साधुजी पढावें तो प्रायश्चित निशिथजीम कहा है तो पढानेकी तो मनाही होवे, और ये तो अपने आपसेंही अर्थ कर लेते हैं, उसमें गुरुमहाराजजीके आशय नहीं आसकते है उससें पूर्णपणेसें अर्थ न हो सकेगा, वास्ते आत्माका डर रखकर ऐसे काम करनेम समता रखनी और जो जीव भय न रख्खें और ऐसे काममें प्रवर्चे तो उसके किये हुवे बालावबोधपर आत्मार्थी विश्वास न रख्खेंगे और जिसकों मार्गका ज्ञान नहीं, मार्गके ज्ञानवंतकी अनुयायीस चलना नहीं वो तो अपनी मरजी मुजब चलेगा उसमें तो कोइ इलाज नहीं—लाइलाज हैं

प्रश्न —तुमारे लिखे हुवे प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणिमें जिनपूजनकी अंदर अल्प हिंसा लिखी है, और दूसरे शास्त्रोंमें तो अल्पहिंसाभी नहीं लिखी उसका क्या सबब है?

उत्तर —पूर्वपुरुष अनुबंध हिंसा नहीं कहते सो कहना व्याजबी है पूजाम अनुबंध तो कुशलानुबंधी है इससें मोक्षमें मिला दे सके वैसा अनुबंध है, वास्ते अनुबंध हिंसा नहीं स्वरूप हिंसा है वो कथनमात्र है, फल नहीं त्यों हमारा कथन शब्द भेद है, आशय एकही है हम अल्प जिसकों मुक्तिसुखकी देनेहारी जिनपूजा है याने जिनपूजा मोक्षसुखदायक है—अल्पहिंसाका फल नहीं होवे अल्पशब्द अभा-

ये कैसी बाल ख्यालके जैसी बात है ? यहांपर कोइ दिगंबरी प्रश्न करैगा कि—शिकं-दरबादशाहकी तवारीखमें है कि जैनके नग्न साधु गाँव बहार थे. तो असल वस्त्र नहीं ऐसा सबूत होता है. ' ऐसा कहने लगे उसें समझादेना कि श्वेतांबर साधु हरदम कपडे रखते हैं ऐसा नहीं समझना. एकांतमें ध्यानादिक करैं तब वस्त्ररहित होवें; क्यौं कि श्वेतांबरी एकासणे, पच्चख्खाण करते हैं उसमे ' चोलपटा आगारेण ' ऐसा आगार है याने एकासणा करनेकों मुनिमहाराजजी बैठे हैं और उस वक्त गृहस्थी आ गया तो उठकर चोलपटा पहन लेवें तो एकासणाका भंग न होवै—ऐसा अर्थ है. मगर ये आगार गृहस्थके वास्ते नहीं. यह देखनेसें गृहस्थीकी रुबरु वस्त्र पहने हुवे होवै ये समझनेमें आता है. वास्ते शिकंदरबादशाहने देखे हुवे श्वेतांबर साधु जंगलमें काउस्सग्ग ध्यानमें वस्त्ररहित देखे होवैंगे, उससें कुछ दिगंबरी साधु नहीं हो गये. वास्ते मार्ग वस्त्रसहितका श्वेतांबर चलनेसेंही साधु साध्वीका मार्ग कायम रहा है. फिर दिगंबरमत निकालनेवालेकोंभी साध्वी वस्त्ररहित रहवै ये अच्छा मालूम न हुवा उससें साध्वी होनेका मार्गही नष्ट होगया. और श्वतांबरमतमें हजारों साध्वीजी हो गइ हैं, होती है, और होवेंगी, और उस्से आत्माका कल्याण करेंगी. और दिगंबरीस्त्रीओंका तो आत्म कल्याण नष्ट होगया. ये दिगंबरीबाइयोंकों फायदा किया या केवल धर्मसाधन करनेमेंही अंतराय किया ? फिर दिगम्बरीओंनें स्त्रीओंकों मुक्तिही नहीं ऐसा मतदर्शाया; परंतु उन्होंकेही गोतमसार ग्रंथमें स्त्री लिंगसें मुक्ति जानेका कहा है. उस ग्रंथका अपमान करते हैं और स्त्रीओंका मोक्ष साधन अटका देते है. तो जितना जितना नया मार्ग कथन किया है उसमें फायदेका तो नामही नहीं. उन्होंने अपने ग्रंथमें श्वेतांबरी साधुजीकी कितनीक निंदा की है, वैसा मार्ग श्वेतांबरी साधुका है नहीं और विस तरह साधु चलतेही नहीं. कोइ संयमसें भ्रष्ट होकर चले तो उसें कोइ श्वेतांबरी साधु मानता नहीं. असा होने परभी श्वेतांबरी साधुजीकी निंदा कीहै, उस्सें आपकाही आत्मा बिगडता है. साधुजीकों कुछ हरकत होनेकी नहीं. आपके साधुजीकी महत्ता करते हैं; परंतु पंच महाव्रतकों दूषण लगै असाही व्यवहार कायम किया गया है. मुनिकों सावद्य प्रवृत्ति कुछभी न करनी और न करवानी चाहिये; तथापि दिगंबरी साधु आहार लेनेकों आवे तो दो मनुष्य वहां परदा पकडकर खडे रहते हैं, और आहारभी उन्होंकों काम लगै वैसा कर रखते है. एक मनुष्य थाली बजाता है. ये रीति कुछ असंयमीसंयमीं

-वास्ते करे तो असयमी निरवद्य काम किस तरह करेंगे? सावद्यही करेंगे. और वो सावद्य मुनीकों लगेगा तो पचमहाव्रत किस तरहसें पाले जायेंगे वो विचार दिगंबरीओंको करनेका है श्वेतांबरी साधु असयमीके पाससें कुछ भी नहीं करवाते है आपके लिये किया गया भी काममें नहीं लेते है गृहस्थनें आप खुदके लिये किया होवे उसमेंसें थोडासा आहार अंगीकार करते हैं दुबारा गृहस्थकों रसोइ बनानी पडे वैसा आहार ग्रहण नहीं करते हैं, थोडा थोडा जगह जगहसें अंगीकार करते है इससें किसीकों तकलीफ नहीं. इस सबबसें श्वेतांबरी साधुजीकों कोइभी तरहस सावद्य नहीं लगता है दिगबरी साधुजीके लिये जो बनाया गया हो वही आहार काममे आता है इससें सावद्य लगता है तब सयम कहा कायम रहा? ये होनेका सबब इतनाही है कि भगवतजीके प्ररूपे हुवे आगम विद्यमान होनेपरभी उसें न मानना और अपनी मरजी मुजब [स्वकपोल कल्पित] शास्त्र मानना उस कल्पनाकी अदर सर्वज्ञजीके समान ज्ञान कहांसें हो सके? ये साफ मालूम होता है फिर दिगबरी गृहस्थ प्रभुजीकी पूजा एकअंगकीही करते है और कहते है कि श्वेतांबरी भगवानजीका आभूषण चडाते हैं वो योग्य नहीं, परंतु वे शोचते नहीं कि आप खुद कचे पानीसें प्रतिमाजीकों पखाल करते हैं वोभी गृहस्थावस्थाका आरोप करते हैं. फिर एक अंगमें केशर वगैर' चडाते हैं वोभी साधुपणेका आरोप नहीं परंतु जिस वक्त इंद्रमहाराजने भगवतजीकों राज्याभिषेक किया उस वक्त युगलियोंने एक अंगूठेपें पखाल वगैर. किया, वैसा हेतु धारण करते होवे तो येभी राज्यावस्थाका है, या मेरुशिखरपर इंद्रने अभिषेक किया वो अवस्था ग्रहण करते होवे तो ये दोनु अवस्थामें सब अंगोंपें केसर–चदन–वस्त्र–आभूषण हैं. तो एक अंग पूजनेकी कौनसी अवस्था है वो शोचेंगे तो आपकी भूल मालूम हो जायगी यदि केवली अवस्था कहोगे तो उस वक्त ठंडा पानी चढानेका देही नहीं, वास्ते वो अवस्था स्थापित न की जायगी और जो नहीं स्थापित करोगे तो जन्मअवस्था या तो राजअवस्था विगर दूसरी अवस्था स्थपायगीही नहीं और वो स्थापोगे तब तो सब अंग पूजो, आभूषण धारण करावो फिर दिगबरमें तेरापथियोंने तो ऐसा तर्क आनेसें एक अंग पूजनाभी छोड दिया है, फक्त पखालही करते हैं तो वो पखाल वक्तमेंभी कौनसी अवस्था विचारेंगे? पुन अरीहतजीके आगे नैवेद्य रखेंगे तब कौनसी अवस्था विचारेंगे? उन्होंसेंभी दूसरी अवस्था स्था-

पित न की जा सकैगी; परंतु आपकी भूल आत्मार्थी समझेंगे. ये भूल होनेके सबब आगमोंकों नहीं मानते वही है, दूसरी नहीं. भगवंतजी आहार करतेही नहीं ऐसा मॉनते हैं और नैवेद्य धरते हैं वो उनकों विचार करनेका है. हम तो 'आहार करते हैं.' ऐसा मानते है, इससें श्वेतांवरीकों तो सब सुलटा है. दिगंबरीकृत समयसार नाटकमें तो कहते हैं कि ज्ञानीपुरुषका भोग है सो तो निर्जराका हेतु है, तो भगवंतजी ओछे ज्ञानी है? कि कर्मबंधका हेतु होवैगा! ऐसा विचार करें तो आहार करनेसें भगवंतजीकों दोष लगता है वो कहना झूठा है ऐसा समझमे आयगा. इन बातोंका विशेष विस्तार अध्यात्ममत परीक्षामें है, उससें यहांपर जियादा लिखना मोकूफ रखता हुं. [उस ग्रंथमेंसें देख लेना.] आत्मार्थीजीवकों श्वेतांबर दिगंबरमतकी परीक्षामें इतनाही देखनेका हैं कि आत्माका जो स्वभाव हैं वो प्रकट होनेका साधन कौनसे मार्गमें है वो देखना. जो जो आत्म निर्मल होनेके सबब दोनु मजहबमें बतलाये हैं, उसमेंसें निकट कौनसे मार्गमें हैं वो देखना चाहियें.

कितनेक अध्यात्मा ग्रंथ दिगंबर मार्गमें है. उसें पढकर बहुतसें जीव संसारमें पड जाते हैं, उसका सबब इतनाही है कि जैसें यशोविजयजी उपाध्यायने अध्यात्मके शास्त्र बनाये हैं उसमें एक ढाल निश्चयकी है. और एक ढाल व्यवहारकी है, उससें उसें पढकर कोइ मार्गमेंसें उन्मार्गी या वक्री नहीं होते है, और वैसा दिगंबरके ग्रंथमें नहीं, इस सबबसें दिगंबरके ग्रथ पढनेसें निश्चय नहीं पाते हैं, और व्यवहार नहीं पालते हैं, उसके मारे जीव दोनु मार्गसें भ्रष्ट होते हैं. उसका सबब इतनाही है कि आगम नहीं माननेसें. आगममें तो इस समयमें विशेष चार नयकीही व्याख्या करनेकी कही है, उसका सबब, व्यवहारमार्गमें पुष्ट नहीं हुवे, वो जीव निश्चय एकांत पढनेसें संसारमें लीन हो जाते हैं. और जो व्यवहारमार्गमें मजबूत हुवेले होवै, उसकों निश्चय मार्गका ज्ञान होनसें व्यवहारमार्ग पालते होवै उसका अहंकार नष्ट हो जाता है. ज्यौं प्रभुजीने आत्मतत्त्वमें रमना कहा है त्यौं रमण नहीं किया जाता; वास्ते निज स्वभावमें रमुंगा वो दिन पूर्ण धर्म किया गिनायगा. उस मार्गकी मेरेमें न्यूनता मिटानेके लिये साधन करना. वो साधनमें तत्त्वज्ञानके शास्त्र वो तत्त्वज्ञानके जाननेवाले पुरुषकी संगति करं ऐसा शोचकर निश्चय धर्म पानेके उद्यमी होवै कि गुणकी वृद्धि होवै. मगर जो सख्स ऐसा शोचे कि ज्ञान बिगर क्रिया काया क्लेश है; वास्ते क्रिया करनीही नहीं. युं बि-

चारकें क्रियापरसें विमुख होते है वै क्या करते है ? तप न करै. तब खाकर पुद्गलकी पुष्टि करैं, विषयकषायकी वृद्धि करे, फरसुदके वक्तमें निंद लवै या लडकोंकों रम्मतगम्मत करावें या गप्पे मारै, ऐसा निकम्मा वक्त जावे और ऐसे गप्पे मारनेकी आदत पडनेसें पढनेका अभ्यासभी छुट जाता है, पीछे संसारमें मग्न हुवे नजर आते हैं, वास्ते पूर्व पुरुषोंने " ज्ञान क्रियाभ्या मोक्ष " ये पाठ रख्खा है इस लिये आत्मार्थीकों अध्यात्मज्ञानका अभ्यास करकें ससारी विषय कषायकी क्रियासें मुक्त होना चाहियें और कुशलानुबंधी अनुष्टान है सो आदरना चाहियें और जो जो गुणस्थानमें जो जो क्रियाए मुक्त करनेकी है उसें छोड देवें और ग्रहण करनेकी हो उसें ग्रहण कर लेवै–तभी गुणस्थान चढनेका वक्त आ मिलता है, और आत्मविशुद्धि होवे वैसी वैसी प्रवृत्ति होनेसें अध्यात्मज्ञान पक्का हुवा गिना जाय. नाम ध्यात्म, ठवण अध्यात्म और द्रव्य अध्यात्म तो आनदघनजी छोडनेका कहते है–उन अध्यात्मोंसें कार्य सिद्ध होनेका नहीं भाव अध्यात्मही आत्माका कार्य फतेह करनेवाला हैं वो अध्यात्यम दिगवरी श्वेतांबरीका अलग नहीं, परतु सामान्य रीतिसें ठीक है; मगर वस्तुधर्मके ज्ञानमें फेर न होवे फेर होवे उसकों जिनागममें भाव अध्यात्म नहीं कहते है प्रभुजीके फरमाये हुवे वस्तु धर्मकी यथार्थ श्रद्धा करकें ध्यानादिक करते हैं तो सफल होता है परतु वो विपरीततासें श्रद्धा करकें ध्यान करै सो सफल नहीं होता है अरुपीपदार्थज्ञान और रुपीपदार्थकें वस्तु धर्मका ज्ञान सर्वज्ञता आये विगर यथार्थ नही होता, वास्ते उसकी श्रद्धा आगमानुसारसें करै तभी वन सकै, और उन आगम मुजब न करै तो यथार्थ श्रद्धा कहासें हो सकें ? और वो न होवे वहांतक भाव अध्यात्म नही आ सकता और आत्मकार्य हो सकता नहीं वो आगमकी श्रद्धा श्वेतांवरधर्ममें है, वास्ते यही कल्याण करनेवाला है

प्रश्न —तुम यु कहते हो कि आगमकी श्रद्धासेंही भाव ध्यात्म आ सकै तो जैनागममें पद्रहँ भेदसें सिद्ध हुवे है वो क्यों करकें माना जायगा ?

उत्तर —पद्रह भेदसें सिद्ध कहे हैं वो प्रमाण है और उनमें कितनेक भेद तो आगम माननेवालेंकीही हैं फकत अन्यलिंगस सिद्ध कहे हैं वै आगम माननेवाले न होवै, परतु वे जिस पक्षकों मानते होवें उसमें आगमसें विरुद्ध वार्त्ता होवें उसपर सहजसेंही अश्रद्धा होती है जैसें कोइ मनुष्यकों विगर उपयोग जमीनमें पॉव घुम जाय

और निधान नजर आ जाय, वैसें वे जीवोंकों सिद्धांत मुजब श्रद्धा आपके क्षयोप-शमके जोरसें जागृत होती है, उससें जो जो उसके आगममें जैनागममें विपरीत है वो विपरीत आ जाय और जैनागम देखे विगर जैनागममें कहे हुवे मुजब श्रद्धा होवे उसें भाव अध्यात्म प्रकट होता है. इसी तरहसें दिगंबरकोंभी होवे उसमें कुछ आश्चर्यकी वात नहीं है. वीतरागधर्म केवल कुछ लिंगमें नहीं; मगर यथार्थ नौ तत्त्वका और षट्द्रव्यका ज्ञान जिसकों होवे उसकों भाव अध्यात्म प्रकट होवे; वास्ते वस्तुधर्म यथार्थ ढुंढनेका उद्यम करना जिस्सें कार्य हो जायगा.

प्रश्नः—जैनमें रोने पीटनेकी रीति है सो योग्य है?

उत्तरः—जिन याने रागद्वेषकों जीत लेवे उसें जिन कहेजाय, उन्होंके श्रावक-सेवककों जैनी कहेजाते हैं; तो जिनजीका उपदेश रागद्वेष जीत लेनेका है. उपदेशके सुननेवाले राग धारण करकें रुदन करै, छाती कूटे-शिर कूटे तो उससें प्रभुजीकी आज्ञाका उल्लंघन होता है, फिर रोनेसें और मरनेवालेकी फिकर करनेमें कितनेक मनुष्य मरभी जाते है देखो, लक्ष्मणजीका संबंध! लक्ष्मणजी और रामचंद्रजीके बीच जो स्नेह था उसकी प्रशंसा इंद्रमहाराजने की है, वो किसी देवसें सहन न हो सकी उससें परीक्षा देखनेकों आया. मनुष्यलोकमें आकर लक्ष्मणजी सुनै ऐसा सीताजीका रूप लेकर रामचंद्रजी मर गये, इस संबंधमें रोने लगा. और लक्ष्मणजीकों पूज्यभ्रा-तके अंतकी वात सुनी कि मनमें अत्यंत शोक प्राप्त हुवा और उस अनावधि शोकके मारे तुरंत लक्ष्मणजीका मरण हो गया. ऐसी हानी वासुदेव जैसे पुरुषकों हुइ, तो उन्होंके वीर्यकी अपेक्षासें अपनेमें कुछभी वल-शक्ति-वीर्य नहीं है, तो अपने शरीरकों कितनी हानी पहुंचे? कभी उन्हमें भाइका राग था, उससें कमी राग होवै तो मरण न होवै; मगर ताकत तो कम होवैही होवै, रोगादिकभी शायद हो आवैं. और फिक-रकेमारे इन्सान दिवाने-भ्रमित-बुद्धिभ्रष्ट हो जाते हैं-ये वडा भारी नुकसान है. फिर जगतमेंभी इज्जत नहीं वढती. राज्यकर्त्ता यवनराजा है, तदपि ये रोने पीटनेकी रीतिकों धिक्कारता है. अपनी जगतमें उच्च कोम कही जाती है, उसकी नीच कोम हांसी करै ये वात अपनी इज्जतकों कितना बुरा लगानेवाला है. वाजारके वीच रोना पीटना होता हो उसें देखकर राहदारी लोगभी तकलीफ पाते है और दिल्लगी करते हैं. फिर कितनेक मुल्कमें घुंघट निकालनेवाली औरतें होनेपरभी शिरपरका पल्ला क-

मरपर नारअर कूटते पीटते हैं कपरके उपरका शरीर सब खुल्लाही रहता है ये कैसा हसी लायक है ? ये रीति नीच कोमके जैसी है या नहीं सो विचारसें देखो तो समझमें आ जायगी हमेशा मनुष्यकों छातीका जोर अच्छा होगा तो बुद्धि अच्छी रहती है, और छातीपर जोरसें कूटने पीटनेसें छातीमें कमजोर हो जाता है उससें बुद्धिभी कम हो जाती है, और उससें हार्टडिसीझ–हृदयरोग हो जाता है वो रोग ऐसा है कि उसका दर्दी एकदम मरजाता है, काम करनेमें अशक्त हो जाता है और वैसे छातीके दर्दवाले लोग बहुतसे नजर आते हैं उन मनुष्योंकों तप–सयम–ज्ञान वगैर का अभ्यास करनेमें वडी हरकत आती हैं गुजरात अहमदावादमें पेस्तर रोने पीटनेका वहुतही रिवाज था, मगर अब कुछ सुधारा हुवा सुननेमें आया है; परतु अहमदावादके जितना सुधारा और शहेरोंमें नहीं हुवा है मगर मेरी समझमुजब और ज्ञानीपुरुप हो गये हैं उन्होंके विचार मुजब रोने पीटनेका रिवाज बध करने लायकही है अपने देव वीतराग है ओर उन्होंका हुकमभी वीतरागदशा लानेका है, तो मनुष्य मर गया उसें देखकें शोचना कि ये मनुष्य छोटी उमरमें मर गया, तो मैं कब मर जाउगा वो खबर नहीं, अगर मैं बुढ्ढा होकर मर जाउगा येभी किसीका मालुम नहीं–निश्चय नहीं उससें धर्ममें तत्पर रहना सोही सर्वोत्तम है ऐसी मेरी आत्माकी स्वभावदशा है वो प्रकट करनेका मुख्य सबब रागद्वेप है उसें मुक्त हो जाना, या तो दिनप्रतिदिन रागद्वेप कम होते जावे वेसा मार्ग ग्रहण करना प्रभुजीने रागद्वेपकी न्युनता हो जानेके लिये योग–वेराग्य शास्त्र फरमाये हुवे हैं उसका अभ्यास करु कि जिससें मेरी रागदशा कम हो जावें–ऐसें विचार करना चाहियें, वो न करतें उलटा रोश वढे वैसा करना वो अयोग्य है, और मुँहसें कहता है कि मेरे मेरे भाइके साथ बहुत स्नेह था सो याद आता है उससें रोता हु, मगर उस वास्ते कोइ नहीं रोता ऐसा कहता है सो लोगोंमें मान पानेके वास्ते, लेकिन चित्तमें तो अपना स्वार्थ जो भाइसें होताथा वो मोकूफ हो गया उसके वास्ते रोता है परतु उस स्वार्थके लिये रोनेमें वो कार्य होनेका नहीं कर्मका विचार करना चाहियें आपने जो कुछ उसके पास रहेना रक्खा था वो ले चूके अब वो कहासें दे सकें ! मगर पुन्य वलवान होवेगा तो भाइसें विशेष काम करनेवाला आपही आप मिल जायगा मगर ऐसे रोनेपीटनेक निरुपकारसें नाहक बुद्धि भ्रष्ट होजाती है और जो कामकरनेके हैं वे नहीं हो सकते

फिर कितनेक रोनेका ढोंगभी करते है याने लोगोंके देखते रोते हैं और भतीजे या भोजाइ या भाइकी मिलकत होवै वो खा जाते हैं और उन्ह लोगोंके वास्ते बराबर खानेपीनेकाभी बंदोबस्त नहीं करते हैं. या तो सब मिलकत हजम करजाते हैं. या तो भोजाइकेसाथ बदचलन चलानेमें भाइका स्नेहभी शोचते नहीं वैसे मनुष्यका रोनापीटना वो ढोंगखोंग नहीं तो क्या है ? फिर सगे प्यारे या ज्ञातीके लोग आते हैं उन्होंका काम यही है कि इस मनुष्यका भाइ मर गया है सो हम जाकर उसें संतोष देआवें; मगर संतोषके बदलेमें आपखुद रोते हैं और वे रोते बंध हुवे होवै उसें फिर रोना शुरु करवाते हैं. पुनः बाइ लोगोंको पीटनेके वक्त उपदेश देते है कि ऐसा क्या कूटते-पीटते हो ? जोरसें कूटो-पीटो-एसी मतलबका उपदेश करते हैं, उससें कोइ समझदार कम कूटता होवै तो उसें जोरसें कूटना-पीटना पडता है. परंतु ये उपदेशसें क्या फळ होवेंगा वो अज्ञानतासें नहीं जान सकते है कि रोना पीटना ये रौद्रध्यानका आलंबन है याने इससें रौद्रध्यान होवै और रौद्रध्यानका फल ज्ञानीजीने नरक प्राप्ति बतलाया है. तो नरकके दुःख कैसे कहे हैं वो जीवभावना ग्रंथ या सुयगडांगजी सूत्र सुननसें हृदय कांप उठे वैसे नरकके दुःख इन उपदेशसें मिलते हैं. कोइ सुज्ञ मनुष्य ऐसें सुंदर विचार करकें कम रोवै पीटे या बिलकुल न रोवै पीटै, उसकी अज्ञानतासें निंदा करते हैं. ऐसी निंदाके करनेवालेकों दुर्गति सिवाय क्या फायदा हांसिल होवै ? वास्ते जो वीतरागी धर्मवंत ऐसा नाम धारण करते है वो नामका महात्म्य पालन करनेकी फिकर रखकर ज्यौं बन सकै त्यौं वैसी निंदाका त्याग करना, और रोना पीटना बंध करनेवालोंकों धन्यवाद देना. और अपनी शक्ति मुजब उपदेश देकरकें रोनेपीटनेका कुचाल बंध पडते जाय वैसा मार्ग हाथ धरना-और वैसी शक्ति न होवै तो जो लोग अच्छे काम करनेकी इच्छा रखते होवै उन्होंकों मदद देनी और उनके संपमें कायम रहकर ये काम बंध करनेमें जैसी वो सलाह देवै वैसा करना तो उससें कल्याण है. फिर पैसेका जोर होवै तो पैसोंकी लालच देकर ये काम बंध करवा देनेके जैसा मोका होतो बंध करवानेका इलाज करना. ज्ञातीके शेठसें हो सके वैसा हो तो ज्ञातिके जोरसें बंध करवा देना. मतलबमें जो जो उद्यम करनेसें ये काम बंध हो सके वैसा प्रयत्न करना चाहियें. कदाचित् हठीले मनुष्य होवै तो मध्यस्थ रहकरकें ये कामसें आप मुक्त रहवै. अगर अनुकूल मनुष्य होवै तो उसें समझाकरकें रोने पीटनेसें छुड-

वा देवे कि जिससे आर्तरौद्र ध्यान न हो सके और नरकादि गतिके महेमान न होना पडे सब मनुष्योंका वाद करनेकी जरुरत नहीं. अपने अपने वहां सुधारा करना चाहियें और पीछे धीरे धीरेसें दूसरेभी सुधरे वैसा उद्यम करना चाहियें कि जिससें बेशक सुधारा हो सके " आप न जावें सासरे, औरनकों सिख देत"–ऐसा न करना चाहियें, क्यों कि स्हामनेवालेके दिलमें युक्ति करनेसें पूरी असर नहीं होती वास्ते पहेले आप कर बतलाके पीछे औरोंकों वैसा करनेका बोध देवे कि फौरन असर हो जाय और सच्च कहे तो युक्ति करनेसें कितनीक जगहपर सुधारा हुवाभी है वास्ते बुद्धिमानोंकों लाजिम है कि पेस्तर अपनेही मकानसें रोने पीटनेका कुचाल बंधकर देना चाहियें न करनेसें निंदा होवे उसका डर रखना नहीं चाहियें ऐसा भय रखनेसें अपन धर्मध्यान नहीं कर सकते हैं मैंने मेरे माजी गुजर गयेथे तब ये खानाखराबी रिवाज बंध करनेका मुकरर किया, उस वख्त मेरे पूज्य पिताजीभी विद्यमान थे और वैभी बडे धर्मचुस्त थे, उन्होंने मेरी बातमें सामिलगिरी की और कहने लगे कि बेशक ऐसाही करना दुरुस्त है इस वख्त ये खराब रिवाज बंध हो जायगा तो मेरेमरने बादभी बंध रहेगा तो मुझकोंभी बहुत लाभ मिलेगा ऐसा सोचकर मेरे पिताने वीर्य स्फुरायमान करकें वो बुरा रिवाज मोकूफ कर दिया, उस्सें बेसमझदारोंने निंदाकी और समझदारोंने धन्यवाद दिया पीछे मेरे पिताजी कालधर्मको प्राप्त हुवे उस वख्तभी वैसाही किया, मगर मेरी मातुश्रीके वख्त जितनी निंदा करते थे उतनी न हुइ मतलब कि शुरुमें अज्ञानीजन कुछभी बकते है उसपर निगाह न रखकर समभावसें काम कियेही करना; क्यों कि पेस्तर बुराई कियेसें फतेहमंदी हाथ लगती है सब चीज उद्यमके आधीन है, और अपने घरके आप राजा है वास्ते आपके वहांसें अपनीही मुनासफीसें रोना पीटना न करें तो कुछ ज्ञानीवाले ज्ञातबहार नहीं छोडनेके ! इस लिये हिम्मत पकडकर ऐसें कुचालोंको रोकने चाहियें रोकनेका काम ऐसा है कि एक मनुष्य रोता होगा वो बात शांतपुरुषके सुनमें आनेस उसके दिलमेंभी साग पैदा होनेस आसु आते है,,उसका निमित्तभूत रोनेवाला है, वास्ते ज्यों बन सके त्यों ये बुरा रिवाज सुज्ञपुरुषोंको बंध करना चाहिये, उसके बदलेमें ये वहीवट हुवा है कि अपन दूसरके वहां रोने पीटनेकों न जायेंगे तो अपने वहां कौन आवेंगे ? इससे ये मुद्दा नीकलाके जीते हुवे मनुष्यभी रोवे पीटे उसमें शोभा मुकरर की–ये कैसी अज्ञानताकी राजधानी है ! ! मरनेके बाद सुज्ञ

तो देखनेकों आनेवाला नहीं, या रोवेंगे पीटेंगे कि नहीं उसकीभी उसें खबर न मिलेगी, तथापि नाहक कर्म बांध लेते है ये अज्ञानताई है. याने जीसके लिये रोते है उसकों तो दरकार नहीं और मुफत रोना उसें क्या फायदा ? वास्ते ये अज्ञानता आत्मार्थीकों अवश्य दूर करदेनीही लाजिम है. रोने पीटनेकी इच्छा तो न रखनी; मगर आपके मरने वाद कुटुंबी न रोवै वोभी पेस्तरसें समझाकरकें बंध करवा देना चाहियें कि मरनेके बाद कर्मबंध न हो सकै. कर्म बांधनेका भय लगा यही शुभ परिणामसें शुभ कार्य उपार्जन होवै; वास्ते ऐसा ठहरावही करना कि मेरे मरनेके वाद रोना पीटना नहीं. शायद कुटुंबी वो हुकम अमलमें न लेकर रोवेंगे पीटेंगे, तोभी मरनेवालेकों कर्मबंध न होगा. इस लिखानसें ऐसा न समझना कि मैयत होवै वहां जानाही नहीं. जाना तो बेशक; क्यौं कि स्नेही या ज्ञातिके मनुष्यकों दुःख पडा तो जरूर जाकरकें संतोष-दिलासा देना, और उसका कामकाज कर देना. यदि ऐसा न करैं तो निर्दयता मालूम होवै वास्ते जुरूर जाना चाहियें, और दिलासा प्राप्त होकर दिलगीरी दूर होवै वैसी बातें करनी चाहियें, कि जिससें शांत चित्त हो जाय. फिर मरनेवालेके स्थूल शरीरकों मरघटपें पहोंचानेमें मदद करनी ये जुरूरी काम है.स्नेहीकों मदद करनी और ज्यादा वक्त लगनेसें मुर्देमें जीवकी उत्पत्ति होवेगी ये फिकर रखकर जुरूर जाना चाहिये और उसका कामकाज करना चाहियें. रोने पीटनेका विकल्प बंध कराना या कमती करवाना येभी जुरूरी काम है. कितनेक मुल्कमें अवीभी हिंदुवर्गमें मरनेके वक्त रोते पीटते नहीं; मगर ढोल वगैरः बाजे वजाते-गाते-भजन करते हैं, तो उन लोगोंको मरनेवाले शख्सपर राग नही होगा ? रागसें आंखमें आंसु आवै ये स्वाभाविक नियम है; मगर थोडे वक्तमें शांत हो जाय; परंतु मरनेवालेके काम रूप वगैरः यादीमें ल्याकर रोवै उसका पार नहीं आता है और बुरा ध्यानभी ज्यादे होवै फिर स्त्रीएं पतिका सुख याद करकें रोवैं उससें कामदेवभी दिप्त हो आता है और कुलक्षण सेवन करनेकी कुबुद्धिभी पैदा हो आनेका संभव रहता है. ऐसे नुकसानकारक कुरिवाजोंकों सुधार लैना ये वडे पुरुषोंकी फर्ज है. हमेशां रोना पीटना शुरुही रहनेसें पतिकों स्त्रीसंबंधी विकार जागृत होनेका साधन होता है; वास्ते इसके वदलेमें उतना समय धर्मसाधनमें व्यतीत करना यही मुकरर किया जाय तो वैराग्यदशा जागृत होवै, और विकल्पकी शांति होवै, खोटे मार्गकी बुद्धि होवे नहीं-और होय सो नष्ट हो जाती है; वास्ते ऐसे

समयम वैराग्यकी कथा वगैर' श्रवण करनेमें वक्त व्यतीत करना–यही जुरूरी वात है मगर वर्त्तमानसमय जैनीओंमें जैसी रीति प्रचलित हो रही है वैसी रीति पेस्तर होगी, ऐसा संभवही नहीं यहांपर कोइ प्रश्न करेगा कि जिस वक्त मरुदेवी माताजी निर्वाणपद पाये उस वक्त भरतमहाराजजीने जोरसें रोना शुरू कियाथा–ये वात शास्त्रमें हैं, मगर यह कुछ धर्मरीति नहीं, संसारकी रीति है, ऐसा रोनेसें लोगोंके जाननेमें आवे जिससें लोग इकट्ठे हो जाँय–ये तो मरनके समयकी एक क्रिया है, परंतु ऐसा बाजारके बीच बेअदबीसें चिल्लाके रोना पीटना दिवानेके जैसे ढोंगसोंग करना, हमेशाः रोना शुरू रखना ये कुछ इससें साबित नही होता उस वक्त रागके बंधनसें रोना आ जाय, लोगोंकों मैयत हुवेकी खबर होनेके लिये पुकार वाचक शोरेदगार जाहिर करे ये कृत्य संसारनीतिका है, परंतु उसके पीछे जो विशेष कृत्य किया जाता है वो धर्मीष्टकों करने योग्य नहीं धर्मीष्टकों तो रागादिक कमी होवे वोही करना यही सार है

प्रश्न'—जैनकोमकी चडती दशा किसतरह होवै?

उत्तर —यह प्रश्नका जवाब तो अतिशय ज्ञानी विगर दूसरा कोइ देनेकों समर्थ नहीं, और वो अपने तकदीरकी न्यूनतासें अतिशय ज्ञानीका विरह पडा है, इससें प्रतीतिपूर्वक जवाब देनेमें अशक्त हु पुन. में जवाब लिखता हु उस परतेंभी मेरेसें ज्यादे बुद्धिमान ज्यादे बता सकें, वास्ते जिसका विशेष होवे सो अंगीकार करना।

१ पेस्तर तो अन्यायकी प्रवृत्ति जैनमें जो धनाढ्यपणेसें शोभायमान होवें वैसे शुरुप या शेठीएका नाम धारण करनेवाले हो या धर्मी गिनाये जाते होवें उन्होंकों बंध करनी चाहियें, सबब कि यथाराजा तथाप्रजा–याने ऐसे वडे पुरुषोंकी ऐसी सुंदर प्रवृत्ति देखकरकें छोटेजनभी न्यायमें प्रवर्त्तने लगें ऐसे वर्त्तनेके वास्ते मार्गानुसारीके गुण योगशास्त्र–धर्मबिंदुमें और श्राद्धगुण वर्णनमें बतलाया हैं उसपरसें पूर्व पुस्तक प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिकी अंदर वे गुण दाखिल किये हैं उसें देखोगे तो मालूम हो जायगा ये पैंतीसें मार्गानुसारिके गुणोमें जैनकोम प्रवर्त्तने लगें ऐसा उपदेश मुनिमहाराजुकोंभी शुरु रखनेकी अत्यावश्यक्ता है और रात्रीभोजन वगैर के नियम करवानेमें उद्यम करते हैं वैसा उपदेशके उद्यममें प्रवर्त्तना शुरु रक्खे तो विशेष लाभ होवे ऐसा उपदेश नहीं देते हें ऐसा मेरे कहेनेका मतलब नहीं, मगर देनेवाले महापुरुषोंका उत्साह बढानेके लिये और कोइ सामान्यपणेसें देते होवें वे विस्तारसें देवे ये हेतुसें लिखा है गृहस्थोंकों ऐसी प्रवृत्ति रोककरके

अपने स्नेही अन्याय त्याग करदें वैसी प्रेमयुक्त ताकीद दियेही करनी चाहियें. कदाचित कोइ उसकों अमल न करै तोभी उदास होकर वैसा उपदेश मोकूफ न करना. हमेशां शुरु रखनेसें कुछ न कुछ सुधारा होताही रहैगा. अन्यायका धन कायम नहीं रहेता है ऐसा श्राद्धविधिमें और दूसरेभी ग्रंथोमें जगह जगह लिखा है. वास्ते न्यायकी प्रवृत्तिसें धन मिलता है वही कायम रहता है, और जैन कोमका दूसरी कोममें वहुतही विश्वास पडै उससें व्यापार करनेकों पैसे चाहियें वोभी मिल सकते हैं. फिर नौकरी करनेकों जाय तो तुरंत नौकरी अच्छे पगारकी मिल सकती है. दलाली करनेकों जाय तो उस धंदेमें पैसा पैदा करता है, हरकोइ माल वेचनेकी दुकान खोले तो वहुतसें ग्राहक उसकी दुकानपर सौदा लेनेकों आते हैं. सुरतमें कल्याणभाइ करकें एक उत्तम श्रावक थे, उन्हकी साख ऐसी पडीथी कि जिससें टोपीओंके व्यापारमें दो तीन हजार रुपै हरवर्ष पैदा करते थे. उन्हके पिताके पास धन नहीं था तोभी स्वोपार्जीत धन ९०००० दम नकद पैदा कियाथा, वो तीन भाइयोंने और पिताने धन वांटलिया. उस वाद आपने व्यापार करना छोड दिया; मगर भाइ वैसी दुकान न चला सकै और पैदास न होनेसें दुकान वंध करनेका वक्त आया. भरूचमें एक पारसीकी दुकान है वो एकही तरहका भाव रखता है उसमें उसके वहां वहुत खरीदी होती है. वंवइमें ऑफिसेंवाले वडे व्यापारी एकही रीति रखते हैं तो उसमें वे सुखी भये हुवे दिखते हैं; वास्ते व्यापारमें जो अन्याय वंध किया जाय तो वेशक अच्छी छाप पड जाय और पुन्यानुसारसें अच्छी पैदासभी हो सकै. गतकालमें सत्यवादी श्रावक हो गये हैं वे इतनी छाप लगाकर गये है कि श्रावक गैरव्याजवी रीतिसें नहीं चलै. उससें इस समयमें श्रावक लुच्चाइ बुरा काम करते हैं उतने अर्थमें श्रावक लुच्चाइ न करै ये छाप चली हुइ आती है. उसके वदलेमें वर्त्तमानसमयमें धर्मी नाम धारण करकेंभी कितनेक ठगाइ करते हुवे नजर आनेसें दूसरे धर्मीश्रावकके वहां कोइ प्रतीतिवचन कहता है तो धनवान गृहस्थों उनका विश्वास नहीं करते और धर्मठगकी उपमा देते हैं; वो मैंनेभी सुनी है. ऐसा होनेमें धनवानकी भूल नहीं; परंतु धर्मी होकरकें ठगाइका धंदा करै तव लोगमें सवी धर्मीकी निंदा होवै और व्यापाररोजगारमें विश्वास उठनेसें पैदास नहीं होवै और सुखी होनेका वक्तभी न मिल सकै; वास्ते ज्यौं वन सकै त्यौं श्रावकोंकों अच्छी छाप वैठानी चाहियें. कितनेक व्यापारी व्यापार करते हैं उसमें

नुकशान लगता है तब देवेमेंसें छुटनेके लिये सरकारके पास जाते हैं और लाभ लेते हैं-नादार बनते है याने कायदेका फायदा मिलाकरके कर्जसें मुक्त होते है, उसमें पैसा छुपा रखते हैं यह खुल्ली तरहसें अन्यायही है शायद किसीने न रख्खा और पीछे पैसे पैदा किये तोभी पेस्तरके ल्हेनदारोंको कुछभी न देवै, तो जगतमें जैनकोमकी सुंदर छाप किस तरह पडे ? सो विचारना चाहियें और ऐसा पैसा रखकर शासनकी प्रभावना करे-सघकों जिमावे उसमें अन्यायके पैसे आवें तो जीमनेवालोंकी बुद्धि क्यु करकें सुधर सके ? साधारण मनुष्यभी दृष्टांत लेवे कि देनेवाले तो ऐसे धनवान होते हैं शासनके स्थभ समान कहे जाते हैं वे नहीं देते हैं तो अपने क्यों करकें देवें ? ऐसें विचार फैलानेसें लोगाके दिल्में ऐसा आया कि पैसा होवेगा तो इज्जत मुरतबा कायम रहेगा. देनदारकों सब पैसा दे देवेंगे तो प्रतिष्टा नहीं पावेंगे-ये बुद्धि फैला गइ है. इस विषयमें सघका या ज्ञातीका ऐसा अकुश चाहियें कि देनदार हो जाय तो ल्हेनदारोंके सब पसे देने चाहिये और उस बाद बडे ज्ञातीभोजन, स्हामीवत्सल्के खर्च करनेकी परवानगी देनी चाहियें ऐसीचीज करनेकों कोइ तैयार हुवा कि फौरन-तुरत ज्ञातीवाले खूब हितरुप कथन करे कि तुनें नादारी ली है उस वक्त पैसें देनदारोंकों कम दिये हैं-बाकीका देना रह गया है सो दे दो और उसके बाद मरजी मुजब ज्ञातीभोजन वगैरे करो ऐसा अकुश ज्ञातवाले आगेवान रख सकें तों जैनकी बडी इज्जत बढे और ऐसी छापस श्रावकोंकों धीरधार करनेमें कोइभी दिल न चोरे, उससें सबसें शिरोमणी कोम हो जाय. परतु अभीके वक्तमें तो श्रावक प्रथम देवद्रव्यका पैसा खानेवालोंपर ऐसा अकुश नहीं रख सकते हैं और उससें लोग दु खी हुवे बिगर नहीं रहते है कितनेक गाँवोंमें ऐसीभी रीति है कि देवद्रव्यका देना होवे वहा तक श्रावक उसके घर ज्ञातीभोजन करनेकों नहीं जाते हैं, उससें वैसे गाँवोंमें देवद्रव्यके ल्हेनेका तुरत निकाल-फैसला आ जाता है, परतु ऐसा रिवाज तमाम शहर और गाँवोंमें हो जाय तब जैन कोमकों खुशी होनेका साधन है फिर किसीने नादारी ली नहीं, अपनी रीतिमें है मगर पैसा पदरमें नहीं, जो मनुष्य कर्ज करकें ज्ञातीभोजन वगैरे करे उसका ज्ञातीभोजन न स्वीकारनार पुन लुचाइ ठगाइका व्यापारही करता है तो उसकों ज्ञातीकी तर्फसें सिक्षा होनी चाहिये ऐसी रीति हो जायतो ज्ञाती सुखी होवे अगर इस लोकमें व्यापार रोजगार अच्छा चले जगतमें इज्जत मान बढे, सुखी

होवे और उसके पुन्यसें परलोकमेंभी सुखी होवे. विद्याभ्यास करके हुंशियार होकर अन्यायका चालचलन न सुधरे तो उससें कोमकी इज्जत न बढेगी. इज्जत बढनेका सबब यही है कि अन्यायका त्याग करना, और वो पेस्तर बडे पुरुषोंको करकें दिखलाना चाहियें, जब बडे लोग वैसा करेंगे तब साधारण लोग वैसाही करना मंजूर रखेंगे; मगर बडेलोगही चालचलन न सुधारे तो फिर औरोंको क्या कह सकें ? वास्ते आगेवान गृहस्थ पेस्तर करकें दिखलाना यही सर्वोत्तम है. और देवद्रव्य-साधारण द्रव्य-ज्ञानद्रव्य ऐसें द्रव्यका श्रावकके वहां विशेष व्याज पैदा होता होवे तदपि न देना चाहियें, ए विषयमें श्राद्धविधि और द्रव्यसितरी वगैरः शास्त्रोंमें मना की है और विस्तारसें उसमें दूषण बतलाये हैं वो अवलोकन करना चाहियें ' देवादिकद्रव्य जिसने खाया-हजम किया उसकी सातपेढी तक उसका वंश सुखी नहीं होता है वास्ते धीरधारका रस्ताही बंध करना चाहियें और रखनेवालोंको व्याजसें तो न लेना; मगर धीकी टीपके पैसे देनेके होवें वोभी रखने न चाहियें. रखनेसें शास्त्रकी अंदर बहुत सा नुकशान बतलाया है; वास्ते इस बातपर खूब लक्ष रखनेसें सुखी होनेका साधन है. मंदिर संबधीके पैसेमें आपके पैसेका कुछभी संबंध न करना, उससें यह लोक और परलोकके सुखभाजन होवेगा.

२ दूसरा, जैनकोमके शेठियोंको जो सट्टेका व्यापार अपनी कोमवाले करते होवें उसें मना करवा देनेका अवश्य ध्यान देना चाहिये; क्यों कि सट्टेके व्यापारसें मनुष्यको बहुत तरहके नुकसान होते हैं-पेस्तर सट्टेका व्यापारी आलसु-सुस्त हो जाता है, तमाम व्यापारकी शोध करनेकी या शीखनेकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, व्यापारकी रीतिकीभी खबर उसे न पड सकती है, नामा लिखनेकी या समझनेकी रीतिभी वो नहीं शीख सकता है, दूसरे व्यापारकीभी उसें माहेती नही हो सकती; उससें कदाचित् सट्टेमें नुकसान गया तो फिर सुखी होनेका वक्तभी मुश्कीलीसें मालूम होता है. सट्टेके धंदेसें मनुष्य वक्र बोलना-बोल पलट देना, लुच्चाइ करनी, मुखस्वादका बढा देना इत्यादि बहुतसी बुरी आदते शीखता है. कोइ भाग्यवंत ऐसी आदत न शीखे तो उसें ये लेख लागु नहीं है. मगर ये कारण ऐसाही है. सटोरियेके पास ५०० रुपै देनेकी शक्ति होवे और पांच हजारकी नुकसानी जावे ऐसा व्यापार करे तब नुकसानी कहांसें देवेगा ये फिकर तो रहनीही नहीं; क्यों कि नुकसानी होवे तो ना-

दारी लेनी पडे कभी फिर पैसेदार हो जाय तोभी कर्जा देनेकी दानत नहीं रहती ये अन्याय नहीं तो क्या है? सट्टेका धदा लगा क्यों चला सकता है कि व्यापारमें पैसे रोकने नहा पडते है जो रोकने पडते होवे तो सहजसेंही लगा व्यापार न हो सके. फिर जुगार और सट्टेमें कुछ तफावत नहीं-फकत नाममे फेर है जुगारमेंभी पैसकी जरूरत नहीं-फकत एकी बेकी-दोमेंसे एक बोलनेमें आव वो सचा हो जाय तो जीतता है आकके धदेमेंभी ऐसाही है फलकत्तसे मिलता हुवा आक आ जाय सो जीतता है और नफा लेता है-ये दोनु रीति एकही जैसी है अभी सुरतमें बाइ-लोगेनेभी सट्टेका व्यापार करना शुरु कीया है-अफसोस! अपनी श्रावक कोम इस स्थितिपर पहोच गइ है!! अब सुखी क्यों करके हो सके? सट्टेमें एक पैदा करे और एक गुमावे, इससें एक श्रावक सुखी हुवा और दूसरा दुखी हुवा उसमें कुछ बहारसे पैसा आया नहीं दूसरे व्यापारमें तो माल देशावर चडाना पडता है या मगवाना पडता है उसमें फायदा होता है कोइ कहेगा कि-'क्या श्रावक सिवाय और ज्ञातीके लोग सट्टेका धदा नहीं करते है?' तो कहेंगे कि सभी कोम करती है, तोभी श्रावककी वस्तीके प्रमाणमें बहुतसे श्रावक सट्टेका धदा करनेवाले निकलते है बड शहरोंमें दलाल और सट्टेका धदा करनेवाले विशेष मालुम होते है, उसमें हा! दलालीके धदेवालाकों बुरे नहीं कहते है या उन्हाकी टीका नहीं करते है, क्यों कि दलालीका धदा बिगर जोखमका है-नुकसानका नामही नहीं-जो पैसा करनेका ही धदा है, मगर जो सट्टेके दलाल है वे दलालीपर सतोष करके रहवे तो जरूर दलालीमें अच्छे पैसे पैदा कर सके, परन्तु व दलाल तो फिर सट्टा करनेकाभी शोख रखते है उससें दलालीसे पैदा किया हुवा धन सट्टेमे गुमाते हैं, इसस करके दलालाकोंभी सुखी होनेका वखत नहीं मिलता है फिर जिसका बाप सट्टा करता होवे उसके बेटेभी वही धदा पसद करते हैं, उसके मारे पढने गुननेमें वे दिल नहीं देते हैं, और मावा-पकोंभी लडकोंकों जास्ती पढानेकी फिकर नहीं रहती है, वास्ते सट्टेका व्यापार जैन कामकों न करना ऐसा ज्ञाती या सघ तर्फसें बदोबस्त किया जाय तो जैनकोमकों दूसरे व्यापार ढूढनेकी जिज्ञासा होवे, मावाप और लडकाका ज्यादा इल्म शीखाने और शीखनेकी बुद्धि जागृत होवे और लडके विद्वान होवे तो न्याय अन्याय सहजसेंही समझने लगे उसमें अन्यायका त्याग होवे, इस लिये हरएक प्रकारसे सट्टेका

धंदा छूट जाय वैसे लेक्चर–भाषण अगर मुनीमहाराजजीका उपदेश शुरु करकें मनुष्योंके दिलमें सट्टेकी नुकसानीकी बातें ठसा देकर पीछे ज्ञानी तर्फसें बंदोबस्त हो जाय तो अच्छी तरहसें सुधारा होनेका स्थान है.

३ तीसरा कि, जैनकोममें विद्याभ्यासकी बहुतही न्यूनता है; वास्ते जैनोंको विद्याभ्यासमें सामेल करदेनेकी कोशिश करनी चाहियें. लेकिन वो काम धनाधीन है. धन बिगर नहीं बन सकता है. अब धन इकट्ठा करनेमें ऐसा होना चाहिये कि जो पैसे खर्च किये जाते हैं उनमेंसें बचाकर वैसे कामके लिये रकम निकालनी चाहियें, जिससें कोम खर्चके बोजेमें न आवें. उसके वास्ते ऐसा होना चाहिये कि लग्न–सीमंत–मरणके पिछाडी हजारोः रुपे खर्च किये जाते हैं. कितनीक ज्ञातीमें–कितनेक शहरोंमें लग्नकी अंदर एक एक लडका पाणीग्रहण करता है तब पैसे बांटनेका रिवाज है सोभी सौ देडसो रुपे बरबाद किये जाते हैं, वो रिवाज बंध करके वे बचे हुवे पैसे विद्याभ्यासके फंडमें ले लिये जाय. जिस ज्ञातीमें लग्न और गर्भाधान संस्कारका ज्ञातीभोजन एकसें ज्यादे वक्त करनेका रिवाज है उस ज्ञातीमे वो रिवाज बंध करके दूसरी वक्तके ज्ञातीभोजनके बचे हुवे पैसे विद्याभ्यासके फंडमे लिये जावें. और उसके वास्ते ऐसा अंकुश चाहिये कि जहांतक ठहराये हुवे पैसे फंडमे न देवै वहांतक हस्तमिलाप वगेरः न हो सके. यह ठहराव पसार हो अमलमें आ जाय तो हरवर्ष कितनीही आमदनी हो आवे. फिर मरणके पिछाडी कितनीक ज्ञातीमें ज्ञातिभोजन करवानेका रिवाज है, ये रिवाज बहुतही दिलगीरीभरा हुवा है, ये रीति बहुत करके अन्यदर्शनीओकी जैनमें दाखिल हुइ मालूम होती है. ये ज्ञातीभोजन कितना निर्दयतावंत है उस संबंधमें कुछ इसारा करता हुं. कितनेक मुल्कोंमें जिस दिन ज्ञातीभोजन होवै उसी रोज परदेशके मनुष्य रोनेको आते हैं, वै बहुत करकें जिस वक्त भोजन करनेको बैठे उस वक्त रोने पीटनेका शुरु करते हैं. अब जिस मनुष्यके वहां मरण हुवा हो उसके दिलमे कितनी दिलगीरी होगी वो सबके जाननेमेंही है. जहां ऐसी दिलगीरी फैल रही होवै वहां भोजन, वोभी मिष्टभोजन खानेका काम वज्र जैसी कठोर छातीवालोंसेंही हो सकता है. दयालु मनुष्यसें ऐसा निर्दयतावाला काम कभी न हो सकैगा. और हो सके तो निर्दयता साबित होती है; क्यों कि एक बाजुपर रोने पीटनेसें दिलगीरी छा रही होवे और छातीमेसें पीटनेके सबबसें खून वहन होता

नजर आता है, और दूसरी बाजुपर प्रसन्नतासें मीठे भोजन उडाते हैं ये कैसी निर्दयता ? फिर कितनेक बुड्ढे मनुष्य मौतके बिछोनेमें पडे होवे और उसको देखनेके लिये आवे वे बोलते है कि अब तो लड्डु सही हो जायगे, [बुड्ढोका मरण विवाहके जैसा है] पीछे जो मनुष्य मरजाता है, तब खुशी होते हैं कि अब लड्डु खानेकों मिलेंगे वो लड्डु खानेके बदल खुश होते हैं उसमें गर्भित पंचेंद्रिके मरणकी अनुमोदना होती है ये पाप कितना है जो ज्ञानी फरमावें सो सही, मगर खानेकी तृष्णाके लिये मनुष्य नहीं विचारते हैं और ये रिवाज चलाये जाते हैं, वास्ते ये रिवाज बंध होवे तो पैसेभी बच जॉय और पाप मिश्रित अनुमोदनाका पापभी दूर हो जाय इसलिये ये रिवाज बंध करकें बच हुवे पैसे विद्याभ्यास फंडमें ले लेवें फिर मरण पिछाडी शुभ मार्गमें हजारो रुपे निकालते हैं उनमेंसें कुछ हिस्सा इस खातेमें लेनेका प्रबंध रखना चाहियें और बडे गृहस्थोंको लाजिम है कि खुशीसें बडी रकमकी मदद इस कार्यमें देनी चाहियें ऐसा होनेसें व्यय होते हुवे पैसे इन फंडमें आवेंगे उससें विशेष बोजा न उठाना पडेगा, और विद्याभ्यासके कार्यमें इन फंडमेंसें अच्छी मददभी मिल सकेगी. कदाचित् इतने पैसेसें बस न हो सकेगा तो आमदनीपर सेंकडे एक रुपया या आधा रुपया याने हजार रुपेकी पैदासवालोंके पाससें सेंकडे आधा रुपया और हजारसें ज्यादे पैदा करनेवालोंके पाससें एक रुपया लेना मुकरर करना चाहियें बडी पैदासवालेकों कुछ भारी पडे ऐसा नहीं, सबब कि शास्त्रमें तो हेमचन्द्राचार्यजीने पैदासमेंसे चौथा हिस्सा शुभमार्गमें व्यय करनेका कहा है, तो यह तो एक रुपया है वो कुछ भारी पडनेका नहीं इस सिवा ज्ञातीमें कितनेक दंड लिये जाते हैं वो दंडके पैसे इस फंडमें लेना चाहियें एसा होनेसें पैसेकी उत्पत्ति अच्छी होनेका संभव है और हमेशां उस मेंसे जो जो काम करने होवेगे वो हुवेही करेंगे अभी हरएक ज्ञातीमें ज्ञातीकी पुंजी (धन) है वो इस फंडमें जो दि जाय तो कामकी शुरुवात सहजसें हो जाय और किसीकों घरमेंसें पैसाभी न निकालना पडे तथा हमेशाकी आमदनी शुरू रहे पैदासमेंसें लेनेका अनुकूळ न आवे तो बहुतसी जातके माल व्यापारके लिये आता है उन हरएकपर कुछ लेनेका ठहराव कीया जाय तो मुरादकर आनेका वक्त आवे ऐसा ठहराव पांजरापोलके लिये है तो वो खाता सुखपूर्वक चलता है, मगर वस्तुतासें पैदाशका ठहराव उत्तम है व्यापारपर डालनेसें व्यापारमें कितनीक हरकत पडनेका

संभव है; वास्ते पैदाशपर किया जाय तो अच्छा, अगर ज्यों लोगोंकों अच्छा लगै वैसें करना सबकी प्रसन्नतासें ऐसे काम अच्छी तरहसें होते हैं; वास्ते किसीकों अप्रीति पैदा न होवे त्यों करना योग्य है. ये काम करनेमें जैसें आपकी ज्ञातीके मनुष्यकों भोजन करनेका मिलता है वो अपने लडके हुशियार होवेंगे तो विशेष भोजन करनेका मिलेंगा. भोजन करनेका बंध नहीं होवेंगा. फंडमें पैसे देवेंगे तो लडकोंकों पढानेके लिये स्कूलोंमें ज्यादे फी देनी पडेगी वोभी बच जायगी. वास्ते तमाम भाइ अवश्य ये बात दिलमें शोचकर विद्याभ्यासके वास्ते पैसे इकट्ठे करनेका फंड खोलनेका यत्न करें तो बहुतही फायदा हांसिल होवेंगा. पैसे विगर कुछ काम होनेकाही नहीं.

४ ये पैसे खर्च करनेमें पेस्तर गुजराती, इंग्रेजी, संस्कृत और जैनधर्मका शिक्षण दिया जाय वैसी स्कूल ओपन करनी चाहियें, और वहां अन्यायमेंसें दिल उठ जाय वैसा उत्तम शिक्षण देना चाहियें. संस्कृत पढनेवालोंकों बहुत वर्ष तक अभ्यास करना पडता है, वहांतक उनके कुटुंबका पोषण हो सकै वैसा बंदोबस्त करनेकी जरूरत है; उसकी न्यूनतासें करकें अभीके वक्तमें संस्कृतशालाओंमें लडके अभ्यास करते हैं; मगर वै पूरा संस्कृत ज्ञान नहीं मिला सकते हैं; क्यों कि धनवानके लडके तो बहुत करकें अभ्यास नहीं करते हैं और करनेवाले विरलेही निकलेंगे. साधारण स्थिति के लडके २८–३० वर्षकी उमर तक अभ्यास करें. तब संस्कृतज्ञान पूर्ण प्राप्त हो सकै, और उतनी उमर तक उनके कुटुंबका निर्वाह क्यों करकें हो सकै? धनकी तृष्णा धनवानोंकों लखो रुपै हाथ लगे जाय तोभी शांत नहीं होती, तो साधारण मनुष्यकी तृष्णा क्यौं शांत हो सकै? वास्ते पद्रह वर्षकी उमर होवे तबसें कुटुंबके निर्वाहकी फिकर होती है वो फिकर, पढानेवालोंकी तर्फसें न होनेका बंदोबस्त हुवा होवे तो सुखसें करकें अभ्यास पूर्ण हो सकता है; इस वास्ते व्याकरणका अभ्यास करै उसकों माहावारी पांच रुपै देनेका शुरू करना. पीछे ज्यों ज्यों अभ्यास बढता जाय त्यौं त्यौं परीक्षा लेकर पगार बढाना चाहियें. अंतमें न्यायशास्त्र पूर्ण करने तक अभ्यास करै तो माहावारी ५० रुपैका महिना देना ऐसा आशा होवै तो संस्कृतका अभ्यास करनेवाले उमेदवार लडके निकलेंगे; वास्ते ऐसे नियम बांधनेसें जैनमें संस्कृत पढे हुवे विद्वान प्राप्त होवेंगे. फिर ब्राह्मणोंके पास साधुजीओंकों पढना पडता है वो नहीं पढना पडेगा, उसी श्रावकभाइकों संघ पगार दे करकें रख लेगा कि श्रावकके पैसे

दूसरी कोममें हरवर्षमें कमसेंकम करीब पचीश हजार पगारके दिये जाते होंगे वो जैन कोमकों प्राप्त होवेंगे वास्ते ये फंड होवे तो ये प्रबंध करनेकी आवश्यक्ता है कोइ सुखी मनुष्य होगा वो स्वात्मार्थके वास्ते पढेगा तो वो माहावारी पगार नहीं भी लेगा परंतु ऐसी शालाओंमें बडेमरडी ५० रूपिये माहावारी तनखाहकी आशा देनेकी जरूरत है. ५० का पगार एक वर्षसें ज्यादा इस फंडमसें देना न पडेगा, मगर उस पठित लडकेकों ५० का पगार देनेवाले बहुतसें गृहस्थ मिल जायेंगे फिर संस्कृतके भाषांतर वगैरः में दूसरी शालाओंमें ऐसी पैदाश हो सकेगी और जैनोंकी विद्वत्ता प्रशंसापात्र होवेगी और उनके साथ वाद करनेकोंभी कोइ शक्तिवान् हो सकेगा, इससें बडी प्रभावना होवगी अभी सुरत और अहमदावादमें धर्मके ज्ञानका अभ्यास जेसें एक एक कलाक कराया जाता है, वसें करतेही रहेंगे तो बहुतही शोभिता होगा

जो मनुष्य बिनरोजगारी और दुःखी है उसके वास्ते हरएक बडे शहरोंमें उद्योगशाला करनेकी जरूरत है उस शालामे उन्होंकों दाखिल किये जाय और उन्होंकों लायक काम सुपरद किये जाय याने जो काम जिस मनुष्यसें बन सके वो काम उसकोंही सुपरद करना, जिस्सें जैनकोमका भूखमरा बंध हो जावे ये शालाओंमें कुछ मालभी बेचनेमें नुकशान होवे सो इस फंडमेंसें देना चाहिये बहुतसी जातके व्यापार हाथोंसे करनेके है और जो आ सके ऐसे काम उद्योगशालामें रखने चाहियें, जिससें वे सहजसें हो सके, वास्ते नमुने मुवाफिक बतलाया है जो चीज जैनोंमें हजारो मन उपयोगमें आती है, वो बनानेका काम औरतोंका है और वे सरलतासें शीख सके दगीए बनानेका कामभी कर सके बालाकुचीयें बांधनेका काम शीख सके वैसा है निर्बल स्थितिकी बाइयेंकों दाल बिननेका काम आदि सोंप देना, और भाइयोंकों बीडीए वालनेका, सूतके दडे बनानेका, डोरीए बुनने-गुथनेका, और कितनेक सुखे पदार्थकी गोलीए दबाके लिये बनाके बेचनेका काम कर सके ऐसे है वे सोंप देना योग्य हे मीलोंमें काम कर सके वेसे होवे वैसेकों धंदेमे सामिल कर देवे और बिलकुल अशक्त मनुष्य होवे उस गुप्त मन्द देनी योग्य है ऐसा होनेस जैनकोममे निराधार विशेष न रहेंगे यह उद्योग तो एक नाम मात्र लिखे गये हे जगतमें बहुतसी तरहके व्यापार हैं, उनमेंसें जो बन सके और उसमेंभी जिसमें नफा विशेष और नुकशान कम हो वैसे देखकर दाखिल करने चाहियें बनाइ हुइ वस्तु बेचनेका कामभी उसे सुपरत करना कि जिससें गॉवमें चकर लगाकर बेच देवे

५ जैनकोमकी लडाइयें सरकारमें जाती है, या ज्ञातीमें फांटे पडते हैं और उससें एकदूसरोंमें द्वेषबुद्धि रहती है—एकसंप नहीं रहता और उन एकदूसरेके बीच बहुत मुद्दततक फिसाद चलता है. और उस बदल हरएक बावतोंमें तकरारें पेठ जाती है उससें सरकारमें हजारां रुपै जैनकोमके नाहक विगडने हैं. मन भिन्न होनेसें एकदूसरेका काम विगाडनेकेही तदबीर चलाते हैं; वास्ते वैसा बंदोवस्त किया जाय कि जैनकी हरएक गाँवमें लवाद कोरटें कायम करनी और जो तकरारें होवें वो लवाद कोरटमेंही रुजु की जावें ऐसा ज्ञाती तर्फसें ठहरावही हो जाना चाहियें. मगर उसमें मुकरर करना कि उस गाँवकी लवादके फेंसलेसें नाराज होवें तो बडे शहरोंकी लवादमें अपील करे. अहमदावाद और बंबइ जैसेमें तीन तीन कोरटें रख्खें, लंबर पहेले—दूसरे—तीसरेकी रख्खें उसमें लंबरवार एकसें एक बडी रखनी चाहियें याने अव्वल दर्जेकी अव्वल लंबरकी, उसमें जो तीसरे क्लासकी कोरटसें नाराज होवै वो दूसरे लंबरकी और अंतमें पहेले लंबरकी कोरटमें अपील करे कि जिस्सें पक्षपातका शक रहने न पावै; और हरएक टंटा फिसाद ट्रंकेमें बंध पड जाय. मारामारीकी तकरारें वगैरःके तोफान करनेवालोंको लायक शिक्षाभी करनी चाहियें कि जिससें कोरटके सिपाइ वगैरःका पगारभी वसूल होता रहेवै. ऐसा ठहराव होनेसें बहुतसें टंटे तकरार कम हो जावेंगे, और ज्ञातीमें कुसंप न रह सकेगा. ज्ञातिके रिवाजके कायदे ज्ञातिमें अनुकूल होवै वो बांध रखने चाहियें, उसमें एक दो वर्ष होवै कि बहुतसे मतसें सुधारा करना चाहियें; मगर हमेशां चल सके वैसें करने चाहियें. ऐसा हो जाय तो बहुत फायदा हांसिल हो सके. वारिसनॉवेकी तकरारेंभी बडी रकमकी हो उसकाभी फेंसला मिलता रहवे. लाख रुपैसें ज्यादे रकमके फेंसलेके लिये एक दस वीस मनुष्योंकी सभा करनी चाहियें, उसमे सब देशके बडे गृहस्थ लिवादमें कायम करने चाहियें, और अंतके फेंसले उन्हीकों सुपरद करने चाहियें कि अपक्षपातसे इन्साफ मिल सके. और जैनकोमकी ऐसी तकरारोंमें धनका नाश होता है वो बंध पड जाय.

६ वीसाश्रीमालीकी ज्ञाती बहुतसें गॉवोमे हैं; तथापि एक दूसरेको उंच नीच गिनते है वो न गिनना चाहियें. वस्तुतासें तमाम श्रावकोंमें भेदही न होना चाहियें. लेकिन वो भेद भांग देनेका अभि योग—समय मालूम नहीं होता है. शायद एकरूप हो जाय तो बहुतही अच्छा. और कभी वैसा न हो सकै तो अपनी

ज्ञातिका मनुष्य कोइभी शहरमे होवे उसको कन्या देनेमें या लेनेमें भेद न रखना चाहियें, और कन्या देकर पैसे लिये जाते है वो न लेने चाहियें, उसके बंदोबस्तकीभी बडी जरूरत है, उसमे वो गॉमवालोंका बडा हिस्सा समान होवे वहा ज्ञातिका जोर नही चल सकता है, वास्ते उन्हको रोक देनेके लिये दुसरे शहरवालोंको रस्ता निकाल देना चाहिये बहुत करके बडे शहरवाले पैसे देते हैं, वे देनेवालोंके उपरभी जबरदस्त अंकुश रखना चाहियें, तो कन्याविक्रयका मार्ग बंध सहजसेंही हो जाय, और अयोग्य स्थानमें कन्या जाकर दुःख न पावे, वास्ते पैसे लेने देनेवालोंको याने दोनुको मनाकी जाय तो ये काम सुधर जाय श्रीमाली, पोरवाड, ओसवाल, वगैर जो जो ज्ञाती जो जो देशमें होवे उन्ह सबके साथ सपरां लेने देनेका वहीवट करनमें रुकावट है वो निकाल देनी चाहियें. दसा बीशेका भेद है वोभी दूर हो जाय तो विशेष अच्छा हो जाय इनमेंसें ज्यों बहुत मतसें बंदोबस्त हो सके वैसा है फिर जैनधर्मके पालक कितनीक ज्ञातिके हैं वे सब अपने धर्मीभाइ हैं, उन्हीके साथ इकठ्ठे बेठकर भोजन करनेका रिवाज नहीं है वोभी खराब है, सबब कि अन्यधर्मी वनिये बहमनका खाते है, वो खानेमें हरकत है, क्यों कि वे लोक जिसको अपने अभक्ष कहते है वो चीजें खाते है, वास्ते उन्होंका बनाया हुवा भोजन न खाना चाहिये ये खानेकी प्रवृत्ति है वो रोक देनेसें श्रावकके व्रतमें दूषण नहीं लगेंगे इतना फायदा है जो जैनी है, छाना हुवा जल पीते है और अभक्षकाभी त्याग करते है उसके वहा न खाना पीना ये अच्छी बात है? इससें प्रभुजीकी आज्ञाका लोप होता है–स्वामीभाइयाका तो बहुत मान [सत्कार] करना ये समकितका आचार है, उसके बदलेमें उनको नीच कहे, उससें समकित मलीन क्यों न होवेगा? यहापर मुझको कोइ सवाल करेगा कि तुम खुद एसा समझनेपरभी क्या नहीं करते हो? उस विषयमें मेरा जबाब यही है कि बहुतसे लोग वैसी प्रवृत्ति नहीं करते हैं वो प्रवृत्ति मैं करु तो बहुतसे लोगोंके साथ विरोध हो जाय, वास्ते वो विरोध अपनी ज्ञातिके साथ न होवे वैसा मै चलता हु, मगर मेरी श्रद्धा तो दूसरे कोमके श्रावकोंके साथ भेद न रखना यही है और मेरे जैसी जिनकी श्रद्धा होती है उनको तो मैं यही विचार दृढाता हु कि एकके साथ संप करके एकके साथ विरोध करना उससें कुच्छ फायदा नहीं है और वर्त्तमान समयमेंभी सब लोग, जैनधर्मकी क्या मर्यादा है वो नहीं जानते है वहातक ये बात मान्य नहीं करेगे, जिननेक बहुतोंमे

भिन्न ज्ञातिके जैनीओंका सीधा (भोजन सामग्री) लेकर खाते हैं और कितनेक शहरोंमें ऐसा ममत्व बंधा गया है कि वैसाभी नहीं करते है, और कहते हैं कि लाडवे श्रीमाली पीछेसें जैनधर्मी हुवे हैं. पीछेसें हुवे कि नहीं उसका कहीं प्रतीतिवंत लेख नजर नहीं आता है; तथापि उनके साथ खानेपीनेका संबंध अभी नहीं रखते हैं-उससें मालूम होता है कि वे पीछेसें हुवे होवेंगे: सबब कि ओशवाल, पोरवाड वगैरः ज्ञातिभी आचार्य महाराजजीने प्रतिबोध करके स्थापितकी हैं और स्थापित करनेके वक्त जिस जिसने आचार्य महाराजजीकी आज्ञा पालनकी उन सबको ओशवाल बनाये, उसमें ज्ञाति-भेद रहा नहीं. और हरिभद्रसूरिजीने पोरवाड बनाये सोभी इसी तरहसें आज्ञावंत हुवे. वे सब ओशवाल-पोरवाड-श्रीमाली वगैरः इकठे बैठके जीमते हैं. विसी तरह लाडवे श्रीमालीकोंभी किसी आचार्यने प्ररुपणा की होगी और जैनधर्म पानेसें एक ज्ञाति हुइ मालूम होती है. तथापि उनके पैसेसें खरीद कीये हुवे. सीधे की रसोइ बनवाकर खानेका कहवे तोभी ओशवाल श्रीमाली वगैरः जीमनेकी ना कहते हैं-ये किसी तरहका असत्य हठ बधा गया हुवा मालूम होता है; मगर ये हठ छोडने लायक है; सबब कि किस लिये हठ बंधा गया वोभी किसीकों मालूम नहीं. और वैसा हठ पकडकर बैठ रहना वोभी भूलभरित है. कितनेक शहरोंमें कुनबी, छींपे पैसे या सीधा देते हैं तो पोरवाड ओशवाळ वगैरः खुशीसें जीमते हैं, और वहीवट चला हुवा आया सोही चला जाता है, तो विसी तरहसें लाडवें श्रीमालीके साथ ऐसा वहीवट नहीं चलता है सो चलाना चाहियें. वे लोग अपना पैस्तरें खाते थे; मगर अपन उनके साथ खाना बंध किया जिससें उनकों बुरा मालूम होने लगा, तब उन्होंनेंभी अपने साथ खाना मोकूफ कर दिया-इससें शासनमें भेद पड गया. यह जैनीभाइयोंमें भेद पडनेसें कितनेक शासनके कामोंमें बहुत हरकत आ पडी. वे लोग अपने विचार मुजब नहीं चलते हैं. यदि इनके साथ ऐक्यता होती तो वेभी अपने विचारसें भिन्न न पड सकें, और परस्पर धर्म पानेका सुलभ पडे अगर औरभी सब सुगमता पडे; वास्ते इकठे होना-खाना पीना वही उत्तम है. वो न बन सके तो उनके पैसेसे भोजनसामग्री लेकें भोजन बनाकर खानेका प्रबंध शुरु करना चाहिये-ये भेद दूर होगा तो बहुत गुण प्राप्ति होवेगी. साडेतीनसो गाथके स्तवनमें गच्छके अंदर भेद न पाडनेके वास्ते साधुजीके लिये कहा गया है, उसी वचनानुसार श्रावकोंमेंभी भेद न पाडने चाहियें. वेदिलीसें शासनकों

बहुत नुकशान है. फिर ममत्ववंत ओशवाल श्रीमाली वगैरः है वे कहते हैं कि हम उच्च हैं और वे नीच हैं ऐसा बोलकर उनकी निंदा करते हैं उससे नीचगोत्र बंधा जाता है. सबब कि श्रावकका धर्म पांचवे गुणस्थानकका है, वो गुणस्थानमें मनुष्यकों नीचगोत्रका उदयही नहीं, तथापि श्रावककों नीच कहना ये बडी भूल है; कर्मबंधका कारण है और वीतरागजीकी आज्ञा विरुद्ध कथन है. विचारसारकी टीकामें प्रश्न हुवा है कि हरीकेशी चंडालने दीक्षा ली है वो छठ्ठे सातवे गुणस्थानकमें वर्त्तते हैं और छठ्ठे सातवे गुणस्थानकमें नीचगोत्रका उदय नहीं इसके जवाबमें देवचंद्रजी महाराजने कहा है कि जिसकों चक्रवर्त्ती और सौधर्मेंद्र महाराज नमस्कार करते हैं उसकों उच्चगोत्रकाही उदय कहा जावे नीचगोत्रका उदय होता तो पूजनीक होताही नहीं— पूजनीकपणा उच्चगोत्रके उदयमेंही होता है, बारहव्रतकी पूजामेंभी श्रावकके बहुतमान्यके बारेमें कहा है कि, 'विरतीने परणाम करीने, इंद्रसभामा बेसे मेरे प्यारे' गुणस्थानवंत श्रावककों इंद्रमहाराजभी नमस्कार करते हैं, वैसे व्रतवंत, ओशवाल श्रीमाली पोरवाड वगैरः सिवाकी ज्ञातीमें क्या नहीं होवेंगे? अलबत्त होवेंगे ये होनेपरभी ऐसा भेद रखनेकी पद्धती होवे तो व्रतवंत लाडवेश्रीमाली प्रमुखकी निंदा होवे वो क्या प्रभुजीकी आज्ञाके बहार (विरुद्ध) का कथन नहीं है? वास्ते प्रभुजीकी आज्ञाके आराधक होना यही उत्तमपुरुषोंका या उत्तमपुरुष होना होवे उसका कार्य है; क्यौं कि धर्मग्रंथकी ५९ वी गाथामें मिथ्यात्वमोहनी उपार्जन करनेमें उन्मार्गकी देशना वगैर. बहुतसे बोल कहे है, उसमें संघका प्रत्यनीकपणाभी गिना गया है और उस गाथाके अर्थमें श्रावककी निंदा वगैर. करनेसें मिथ्यात्व उपार्जन करै ऐसा कहते हैं; वास्ते परज्ञातीके धर्मीएकों नीच कहनेसें उसी गाथामें फल बतलाये है वो प्राप्त करते हैं और उन्हीके साथ भेद भग्न करके एकत्र हो जावे तो समकित निर्मल होवै; इस लिये अपन तमाम मित्र मनमेंसें ये भिन्नभाव निकालदेकें अभेदपणा होवै. वैसा उद्यम करें तो बहुतही अच्छा होवै जैनधर्मका पालन करनेवालेके और प्रशंसा करनेवालेका ज्यौं बन सके त्यौं बहुतमान करना चाहियें, शक्ति मुजब मदद देनी चाहियें; नहीं कि उनकेपर द्वेष इर्ष्याभाव ल्याना या नीचज्ञाती है ऐसा कलंक देना! ये रीत बिलकुल गेरलाभकारी है. अभी अपन रजपूत-क्षत्रीओंकी रोटी नहीं खाते हैं और ओशवाल प्रमुख उसी ज्ञातीयेंमें हुवे हैं, तिसी तरह लाडवेश्रीमाली वगैरः

धर्म पालनेसें एक ज्ञाती हुइ है. अपन जो असल ज्ञातीके थे उस ज्ञातीकी याद नहीं करते हैं, उसी मुजब उनकीभी क्या ज्ञाती थी वो तपासनेकी कुछ जरूरत नहीं. महावीरस्वामीजी आदि तीर्थंकरमहाराजजीके गुणग्रामके करनेवाले और प्रभुमरूपित मार्गका सेवन करनेवाले हैं; वास्ते वो गुणकी बहुतमान्यता अपनेसें जितनी बन सके उतनी करनी चाहियें, मगर उनकी लघुता करनी ये महान् दूषण समझता हुं; वास्ते समस्त भ्राताओंकों ये प्रयास करने योग्य है.

७ जैनमें ज्ञातीकी रीत रसमके कायदे करने चाहियें और जैनी मात्रकी एकही रीति नीति होनी चाहियें. रीतभातका-लेनेदेनेकाभी कायदा बंधाजाय तो बातबातमें ज्ञातीमें फांटे पड जाते हैं और लडाइएं होकर ऐक्यताका भंग होता है वो न हो सके. उन कायदाके आधार मुजब चलनेका होवै तो रीतिभांतिका भंग हो सकैही नहीं. हमेशां कायदे भंगका डर रहता है. भंग करै उसके प्रायश्चितकी व्यवहारिक मर्यादा चाहियें और एक गाँवके लडमरै तब उसका समाधान, कायदेमें देशविदेशके अध्यक्ष बनाये होवै वै कर देवै इस्सें उसका चुकादा हो जावै-लंबी तकारार न पहुंचने पावै-सबब कि थोडे थोडे मनुष्यमें पक्षपात हो सकता है; मगर बहुत मनुष्यमें वो नहीं हो सकता. सारा जैनमंडल एकही होवै और उनके रीत रसमके कायदे मुकरर कीये गये होवै, वो कानूनका भंग करै उसके साथ देशवदेशका जैनमंडल विरुद्ध हो जाय तो जैनका कायदा तोडनेमें भय रहेवै; क्यौं कि सबके साथ विरुद्धता हो जाय तो कामही क्यौं चल सकै? कायदे अमलमें लिये बादभी उसमें हरकत जैसा मालूम हो आवै तो सारा जैनमंडल हरसाल एकत्र होवै तब कायदेमें सुधारा करता रहवै-युं करनेसेंभी जैनकोमकों सुखी होनेका साधन है.

८ इस सिवा सुधारेके काम करनेके बहुत हैं; लेकिन वो काम करनेवालोंकी न्यूनता मालूम होती है. वो न्यूनता कब दूर होवै कि जैनमंडलमेंसें परोपकारी मनुष्योंकों ऐसे काम करनेकी खुशी बतलानी चाहियें और उसमेंभी दो बातकी खुशी बतलानेकी जरूरत है याने आप जितना काम कर सकै उतना काम करनेकी खुशी बतलानी चाहिये, और जिनने पैसेकी जो मदद देनी चाहते होवै उतने पैसेकी मदद देनेकों वै तत्पर भय हुवे गृहस्थोंकों जाहिर करना चाहिये कि फलाने काममें हम ये मदद कर सकेंगे. अब वो किसकों जाहिर करना चाहिये? इस वास्ते परोपकारी

अग्रेश्वरमंडल मुकरर करनेकी आवश्यक्ता है याने वैसें अग्रेश्वरोंकों जाहिर करना चाहियें, और पैसेकी मददमेंसें श्रावकोंकों कार्यभारी बनाने चाहियें और उन कार्यभारीओंसें, तथा परोपकारी अग्रेसर महेनतबन भाइयोंकी महेनतसें जितना जितना बन सकें उतना काम करना चाहियें. यु करते करते किसी वक्त सब सुधारा होनेका समय प्राप्त हो जायगा अकेली बातें करनेसें ये काम नहीं बन सकता है. चतुर्विध संघमेंसें कोइभी धनवान गृहस्थ अग्रेश्वर होवे तो ये काम बन सकें, वास्ते जिसने पूर्वमें पुन्य उपार्जन किया है वो पुन्यात्माके हित लिये उपार्जन किया है इस लिये उस पुण्यके फल यहीं है कि धन्याढ्य गृहस्थ अच्छे गुमास्ते-मुनीम रख्खें, अपने व्यापारका काम उन्होंकों सुपरद करकें आप खुद परमार्थके काममें कटिबद्ध हो रहेवे कि जिससें शासन शोभावंत होवें मगर मुकाम अफशोसका है कि वैसे धनवंत तो कहते हैं कि-हमकों तो ऐसे काम करनेकी फुरसद नहीं तब साधारण मनुष्यकों तो फुरसद होवेंही कहांसें ? पुन्यवंत ऐसा करें उससे धन प्राप्तिके शुभ फलका स्वादानुभव नहीं कर सकते है और जो शख्स जितना जितना कार्य करते हैं उतनें उतनें फलका स्वादानुभव ले सकते हैं भगवंतजीका शासन एकवीश हजार वर्षतक जयवंत कहा है, वास्ते कोइभी भाग्यशाली शासनके कार्य करनेमें कटिबद्ध रहेंगे और शासन जयवंत प्रवर्त्तेगा जो जो भव्यप्राणी शासन जयवंत रखनेकी महेनत करते हैं वे बहुतसा पुण्य उपार्जन करते हैं ये निःसंदेह वार्त्ता है-इस लिये ये लेख पढकर कोइभी भाग्यशाली शासनोन्नतिमें तत्पर रहवे यही हमारा उद्देश हैं जहातक कोइ भाग्यशाली जागृत न होवेगा वहातक तो चलता है वैसाही चला जायगा, तथापि अभी कुछ भाग्यशालीजन कहीं कहीं जागृत हुवे मालूम होते हैं और वे शासनकी उन्नतिका उद्यम करते हैं उन्होंकों मेरे लिखानसें कुछ अच्छा लगे तो वे विशेष जागृतिवंत होकर तन मन धनका सदुपयोग करने लगें, इस वास्ते इतना लिखा गया है. या आगामीक कालमेंभी जैनकोम सुधारनेके कामी होवे उनकोंभी मेरी बालबुद्धिके विचारमें कुछ अच्छा विचार होवें और पसंद पडें तो इस वाक्यानुसार चलना रख्खें इस लिये ये मेरा इसारा है कदाचित ये लिखान प्रवृत्तिका है उसमें किसीकों बुरा लगै वैसा लेख तो नहीं है, तथापि मेरी भूलसें किसीकों बुरा लगने जैसा लिखान हुवा होवें तो उनके पाससें मैं पेस्तरसेंही क्षमा करनेकी वीनती करता हु, और मुझकों लिख भेजेंगे

तो मै माफी मांग लुंगा. यदि प्रभुजीकी आज्ञा विरुद्ध लिखान हो गया होवे तो प्रभु-जीके आगे त्रिकरण शुद्धिसें मिच्छामिदुक्कड देता हुं.

प्रश्नः—जिस तरह जैनमें अभक्ष्य पदार्थ—मांस, मदिरा, सहत, मख्खन, मूली वगैरे अनंतकाय, द्विदल, वेंगन, रात्रीभोजन अभक्ष्य कहे है तिस तरह अन्यदर्शनी-योंने कहा है?

उत्तरः—श्रीचंदकेवलीके रासमें पुराणांतर्गत श्लोक लिखे गये हैं वो श्लोक मै लिखता हुं, उससें प्रतीति होयगी. जो जो आत्मार्थी मनुष्य हैं वै तो शोचेंगे, मगर जो विषयी जीव हैं वै तो जो धर्म मानते हैं उसके शासनपरभी विश्वास नहीं रखते हैं इससें लाइलाज हुं. अन्यदर्शनीओंके धर्म प्रकाशनेवालेहा आपके शास्त्रमें अभक्ष्य कहा है वो पढकरकेंभी उसका त्याग नहीं करते हैं और श्रोताओंकों त्याग करनेका उपदेशभी यथास्थित न दे सकते हैं, इससें अभी ऐसा हुवा है कि श्रावक रात्रिभोजन न करै तिसी तरह कोइ दयालु ब्राह्मन रात्रिकों न खावें तो उसें दूसरे वैश्नव कहनें लगे कि क्यौं श्रावकधर्म स्वीकार लिया है कि ऐसी दशा बन गइ है? ये सब योग्य गुरुके वियोगकेही फल हैं; वास्ते जैनीभाइयोंकों वैसोंकी दयाचिंतवन करनी सोही उत्तम है. मुकाम अफशोसका है कि कितनेक शहरोंमें पानीके नल हो गये हैं वहां जैनी हो करकेंभी नलके मुंहपें एक चीथडा बांध दिया कि पानी छाना गया ऐसा मानने लगे हैं. संखाराभी नहीं समाला जाता है ये वडे अफशोसकी बात है! क्यौं कि अन्यदर्शनी तो कहते है कि जैनी पानी छानकर उपयोगमें लेते हैं और खुद जैनी भाइ ऐसा करकें मुद्देकी बात छोडते चले जाता है, और चिंता होती है कि दीर्घ समय जानेसें अन्यदर्शनी जैसाही हो जावैगा. कितनेककों कहते है कि नलमेंसें पानी लेकर उसें छानकर उसका जीवाणी-संखारा यदि नल तालावमेंसें लिया गया हो तो तालावमें, नदीमेंसें या कूवेमेंसें नल लिया गया हो तो नदी—कूवेमें डाल दे; मगर कोन सुनता है! वैसा करनेवाले थोडे हैं, वास्ते जैनीभाइ जीवदया प्रतिपाल कहे जाय तो वो नाँव सच्चा कव होवे कि जब जीवकी जतना कि जावै तब. वास्ते जीवरक्षणके लिये पानी छान लैना और उसका संखारा तालाव, कूवेमें जहांका पानी हो वहां डाल दैना. बाइस अभक्ष्य है उसका त्याग करना. उन बाइसमेंसें कितनेक तो अन्यदर्शनीमेंभी त्याग करनेका फरमान है; लेकिन उन अन्यदर्शनीकाभी पूर्णप-

ऐसें मालूम नहीं है कि हमारेही शास्त्रोंका क्या फरमान है ! इस लिये लिखता हु, और अन्यदर्शनी जिस चीजको त्याग करनेका कहते है तो जैनीओको वेशक विसका त्याग करनाही मुनासिब है वैसी श्रद्धा होनेके वास्ते दर्शाता हु कि:—

माहाभारतमें कहा है कि.—

घातकश्चानुमन्ता च भक्षक क्रयविक्रयी ॥,
लिप्यते प्राणिघातेन पंचेतेपि युधिष्ठिर ॥ १
यावन्तीपशुरोमाणी पशुगात्रेषु भारत ॥
तावद्वर्षसहस्त्राणी पच्यते पशुघातका' ॥ २

अर्थ—हे युधिष्ठर ! जीवोंको प्राणघातसें करके मारनेवाला, उसें खानेवाला, उसें वेचनेवाला, वचाउ लेनेवाला और सम्मती देनेवाला ये पाचो जन पापसें लिप्त होते है और पशुके शरीरपर जितने वाल है उतने हझार वर्षतक वे नरकमें दु.ख पाते हैं १–२

शांतिपर्वमें लिखा है कि —

यु पछित्वा पशुन् हत्वा कृत्वा रुधिर कर्दमान् ॥
यद्येव गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥ ३

अर्थ'—[महाभारतांतर्गत शांतिपर्वमें कहा है कि] यज्ञ स्तमको और पशुओंको छेदकरकें पृथिवीपर लोहुका कीचड कर स्वर्गमें जावे तो फिर नरकमें जानेवाले कौन बाकी में रहे ? याने यज्ञकर और पशु वगैर. जीवोको मारनेवालाही नरकमें जाता है; वास्ते पशुघात और यज्ञ होमादि करनेसें ऐसे फल होते है ३

मार्कंडपुराणमें कहा है कि —

जीवाना रक्षण श्रेष्ठ जीवा' जीवितकांक्षिण ॥
तस्मात् समस्तदानेभ्योभयदान प्रशस्यते, ॥ ४ ॥

अर्थ —जीवोंका रक्षण करना यही उत्तम है जीवभी अपने जीवितकी इच्छा करते हैं, वास्ते सब दानोंसें जीवोंको अभयदान देना ये अधिक है अभयदानकी कितनी महत्ता बतलाइ है ? यु फरमान होनेपरभी पशुका होम करना ये कितनी वालचेष्टा है ? वास्ते तमाम धर्ममें किसीको दु ख न होवे ऐसा वर्तन रखना यही सच्चा धर्म है ४

पुनः उसी पुराणमें अष्ट पुष्प कहे हैः—

अहिंसा परमपुण्यं पुष्पं इंद्रिये निग्रहम् ॥
सर्व भूत दया पुष्पं क्षमा पुष्प विशेषतः ॥ ५ ॥
ध्यान पुष्पं तपः पुष्पं ज्ञान पुष्पं तु सप्तमम् ॥
सत्ये चैवाष्टमं पुष्प तेन पुष्यंति देवता. ॥ ६ ॥

अर्थः--उसी पुराणमें 'जीवानां रक्षणं श्रेष्ठं' ऐसा कहा है वहांही अष्टपुष्पका कथन है कि-हिंसा न करनी ये प्रथम पुष्प है, इंद्रियोंकों वश्य करनी ये दूसरा पुष्प है, सर्व जीवोंपर दया रखनी ये तीसरा पुष्प है, शांति रखनी ये चौथा पुष्प है, ध्यान करना ये पांचवा पुष्प है, तप करना ये छट्ठा पुष्प है, ज्ञान मिलाना ये सातवा पुष्प है, और सत्य भाषन करना ये आठवा पुष्प है कि ये पुष्पोंसें देवता प्रसन्न रहते हैं. ५-६

फिर महाभारतमें लिखा है किः—

यूकामत्कुनदंशीमसात् जंतुश्च तुदति तनूं ॥
पुत्रवत् परिरक्षंति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ७ ॥
आत्मपादौ य ये घ्नंति ते वै नरकगामिनः ॥
सर्वत्रकार्यो जीवानां-रक्षाचैवापराधिनाम् . ॥ ८ ॥

अर्थः—जु, खटमल, मछर वगैरः जंतु जो शरीरकों काटते हैं, उसकों पुत्रकी तरह रक्षण करता है वो प्राणी स्वर्गमें जाने योग्य है. और जो मनुष्य जीवोंके शरीर या पांउकों छेदता है वो नरकमें जाता है; वास्ते अपराधी जीवोंकीभी सब प्रकारसें रक्षा करनी यही मुख्य धर्म है. ७-८

पुनः महाभारतमें कहा है किः—

विंशत्यंगुलमानंतु त्रिंसदंगुलमायतम् ॥
तद्वस्त्रं द्विगुणिकृत्य गालयित्वापिबेत् जलम् ॥ ९ ॥
तस्मिन्नवस्त्रेस्थितान् जीवान् स्थापयेत् जलमध्यतः ॥
एवं कृत्वा पिबेत् तोयं स यांति परमांगतिम् . ॥ १० ॥

अर्थः—बीस अंगुल विशाल और त्रीस अंगुल लंबा वस्त्र हो उसें दुपट करकें पानी छानकर पीना और उस वस्त्रकी अंदर रहे हुवे जीवोंकों कूवे वगैरःमें डाल दैना. इसतरह करकें जो मनुष्य पानी पीता है वो उत्तमगतिकों पाता है. ९--१०

इस तरह महाभारतके वचन हैं, तथापि सन्यासी पुराणी होकर अनछाना जल पीते है या न्हाने धोनेके काममें लेते हैं उनकी क्या गति होवेगी ? वो महाभारत पढने सुननेवाले लक्ष नहीं देते हैं वो कैसी बालदशा है ? आत्मार्थियोंको अवश्य दया करनीही योग्य है

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेत् जलम् ॥
सत्यपूतं वदेत् वाक्यं मनः पूतं समाचरेत् ॥ ११ ॥

अर्थः—आंखोंसे देखकर पांव रखना, कपडेसें छानकर पानी पीना, सत्यसें वचन बोलना और मन पवित्रसें आचरना

पुनः महाभारतमें कहा है कि —

संग्रामेण यत् पापं अग्निना भस्मसात्कृतम् ॥
तत्पापं जायते तस्य मधुबिंदु प्रभक्षणात् ॥ १२ ॥

अर्थः—महान् युद्ध करनेसें जितना पाप होता है और अग्निसें गाँव वगैर जलानेसें जितना पाप होता है, उतना पाप सहतका बिंदु खानेसें होता है सहत खानेमे ऐसा पाप है तोभी शास्त्र पढानेवाले सहतका त्याग नहीं करते हैं सुननेवाले तो सहतका त्याग करेंही कैसें ? वास्ते प्रथम कथा वांचनेवालोंको दयालुतासें सहत खानेका त्याग करना कि जिससें श्रोताजनभी सुधारा कर सकें. १२

विष्णुपुराणमें कहा है कि —

ग्रामाणां सप्तके दग्धे यत् पापं समुपजायते ॥
तत् पापं जायते पार्थ जलस्यागालिते घटे ॥ १३ ॥
संवत्सरेण यत् पापं, कैवर्तस्यैव जायते ॥
एकाहेन तदाप्नोति अपूतजल संग्रही. ॥ १४ ॥

अर्थः—हे पार्थ ! सात गाँव जलादेनेसें जितना पाप होता है उतना पाप घटमें छाने बिगरका पानी भरनेसें होता है मच्छीमार वर्ष दिनतक जाल डालनेसें जितना पाप होवें उतना पाप एक दिन छान बिगरका जलका उपयोग करनेवालोंको होता है. १३—१४

पुनः उसी पुराणमें कहा है कि —

यः कुर्यात् सर्वकार्याणी वस्त्रपूतेन वारिणा ॥
स मुनिः स महासाधुः स योगी स महाव्रती १५

अर्थः—जिस कपडेसें छाने हुवे पानीसें करकें सब काम करता हैं वोही मुनी, वोही वडा साधु, वोही योगी और वोही वडा व्रतवाला जानना. १५

पुनः इतिहास पुराणमें कहा है किः—

अहिंसा परमंध्यानं अहिंसा परमंतपं ॥
अहिंसा परमंज्ञानं अहिंसा परमंपदम् ॥ १६ ॥
अहिंसा परमंदानं अहिंसा परमोदमः ॥
अहिंसा परमोजाप अहिंसा परमंशुभम् ॥ १७ ॥
तमेवमुत्तमं धर्ममहिंसाधर्मरक्षणम् ॥
ये चरन्ति महात्मानः विष्णुलोकं व्रजन्ति ते. ॥ १८ ॥

अर्थः—अहिंसा यही उत्तम ध्यान है, अहिंसा वही उत्तम तप है, अहिंसा वही उत्तम ज्ञान है. अहिंसा वही उत्तम पद है, अहिंसा वही उत्तम दान है, अहिंसा वही उत्तम दम है, अहिंसा वही उत्तम जाप है, अहिंसा वही उत्तम शुभ है और अहिंसा रूप धर्म करना यही उत्तम धर्म है. उस धर्मका जो महात्मा आचरण करते है वें विष्णुलोकमें जाते हैं. १६–१८

नागपडल ग्रंथमें श्रीकृष्णजीने युधिष्ठिरसें कहा है किः—

अभक्ष्याणि न भक्ष्याणि कंदमूलानी भारत ॥
नूतनोद्गमपत्राणि वर्जनीयानी सर्वतः ॥ १९ ॥

अर्थः—हे भारत ! कंदमूल अभक्ष्य हैं वे न खाने चाहियें. और नये पैदा हुवे अंकुरादिके पत्र वगैरःभी त्याग करने चाहियें. इसतरह कहे हुवे परभी कंदमूल, जमीकंद–सक्करकंद पटाटे रतालु वगैरः एकादशीके रोज याने एकादशीव्रत करकें खाते हैं उसका कितना पाप हैं वो बुद्धिमानकोंही विचार कर लैना योग्य है.

मदिराके लिये कहा है किः—

मधुपाने मतिभ्रंशो नराणां जायते खलु ॥
धर्मेणतेभ्योदातॄणां न ध्यान न च सत्क्रिया. ॥ २० ॥
मद्यपाने कृतेक्रोधो मान लोभश्च जाय ते ॥
मोहश्च मत्सर श्चैव दुष्टभाषणमेवच ॥ २१ ॥
मद्यमांसे मधुनि च नवनीते बहिःकृते ॥
उत्पद्यंते विलीयंते सु सूक्ष्मजंतुराशयः ॥ २२ ॥

अर्थ.—दारु पीनेसें मनुष्योंकी बुद्धिका भ्रंश होता है उससें पापाचरण करते है; वास्ते वैसेकों कोइ वस्तु देनेसें धर्म नहीं होता है मदिरा पीनेवालोंकों ध्यान और सत्क्रिया फल रहित होती है मदिरा पीनेसें क्रोध, मान, लोभ, मोह, मत्सर होता है और दुष्ट भाषणका उपयोग किया जाता है औरभी कहा है कि मदिरा, मास, सहत ओर छासमेंसें बहार निकाला गया मरवनमें सूक्ष्म जतुका समूह पैदा होता है और नाशभी होता है मरुखनका दोप कहा है तोभी अन्यदर्शनी उसका कुछ दोष नहीं गिनते है और कहते है कि शास्त्रसे विरुद्ध नहीं हैं, इस वास्ते न्यायीकों इस श्लोकसें शोचनेकी जरुरत है २०–२२

अभक्ष्य भक्षणके दोप सवधमें कहा हे कि:—
पुत्रमांस वरभुक्त न तु मूलकभक्षणम् ॥
भक्षणात् नरक याति वर्जनात्सवर्गमाप्नुयात् ॥ २३ ॥

अर्थ—पुत्रका मास खाना सो अच्छा, परतु मूला खाना बुरा है मूला खानेसें प्राणी नरकमें जाता है और उसका त्याग करनेस स्वर्गमें जाता है. २३

इतिहास पुराणमेंभी लिखा है कि —
यस्तु वृताक कालिग मूलकाना च भक्षरः ॥
अतकाले स मूढात्मा न स्मरिष्यति मा प्रिये ॥२४॥

अर्थ.—हे प्रिये ! बेंगन, कलिंगड और मूले, खानावाला प्राणी अतकालमेंभी मुझकों याद न कर सकेगा याने ये चीज खानेवाला अधर्मी होता है उससें अतसमय मुझकों याद न करनेसे वो दुर्गतिमें जाता है २४

शिवपुराणमभी कहा है कि.—
यस्मिन् गृहे सदा नाथ, मूलक पचति जन ॥
श्मशान तुल्य तद्वेश्म पितृभि परिवर्जितम् ॥ २५॥
मूलकेन सम भोज्य यस्तु भुक्ते नराधम ॥
तस्यशुद्धि र्न विद्येत चाद्रायण शतैरपि ॥ २६ ॥
भुक्तं हलाहल तेन कृत चा भक्ष्य–भक्षणम् ॥
वृताक भक्षणाच्चापि नरायात्येव रौरवम् ॥ २७॥

अर्थ:— हे नाथ! जिसके मकानमें हमेशा मूलेका शाख या उसके साहित भाजी तैयार की जाती है उसका मकान श्मशान (मरघट) के समान है, और उस मकानका पि-

.. त्याग किया है. मूलेके साथ जिस चीजका जो भोजन करता है वो मनुष्य अधम गिना जाता है-और उसकी बुद्धि चांद्रायणादि व्रतोंसें करकेंभी शुद्ध नहीं होती. जिसने अभक्ष्य-मूले, वेंगन वगैरः खाया होवें उसने हलाहल झहर पीया है ऐसा समझना और वो प्राणी अंतमें रौरव नामक नरकमें जाता है. २५-२७

पद्मपुराणमें कहा है किः—

गोरसं माषमध्ये तु मुद्गादिके तथैव च ॥
भक्षयेत्त भवेत् नूनं मांसतूल्यं युधिष्ठिर. ॥ २८ ॥

अर्थः—हे युधिष्ठिर! दूध, दहीं, छास ये उर्दसें मुंगमें या दाल होनेवाले द्विदलमें डालनेसें वो मांस तूल्य हो जाते हैं; वास्ते ये खाना और मांस खाना ये दोनु बरोबर है. २८

रात्रीभोजनके वारेमेंभी कहा है किः—

अस्तंगते दिवानाथे आपोरूधिर मुच्यते ॥
अन्नमांससमंप्रोक्तं मार्कंडेन महर्षिणा. ॥ २९ ॥
चत्वारो नरकद्वारः प्रथमं रात्रिभोजनम् ॥
परस्त्रिगमनं चैव संधानानन्तकायिका. ॥ ३० ॥

अर्थः—सूर्य अस्त हुवे वाद पानी पीना सो लोहीके समान है, और अन्न मांसके समान है. नरकके चार द्वार हैं उसमें पहेला रात्रिभोजन, दूसरा परस्त्रीगमन, तीसरा आचार वगैरः खाना और चौथा मूले वगैरः अनंतकाय भक्षण करना सो हैं.

इस श्लोकमें रात्रीभोजन, परस्त्रीगमन, धूप वतलाये हुवे विगरका आचार कि जिसमें जंतु पड जाते हैं, और अनंतकाय याने मूले विगरमें अनंतजीव है इन चारोंका सेवन करनेहारा नरकगामी है; ऐसा वतलाया है वास्ते इन्होंका त्याग करना. २९-३०

